अथर्ववेद

अथर्व वेद

(सायण-भाष्यावलम्बी सरल हिन्दी भावार्थ सहित)

[द्वितीय खण्ड]

सम्पादक :

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट् दर्शन,
२० स्मृतियाँ व १८ पुराणों के
प्रसिद्ध भाष्यकार।

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब, (वेद नगर) बरेली-२४३००३ (उ०प्र०)

फोन : ७४२४२

प्रकाशक :

डॉ० चमनलाल गौतम

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)

बरेली-२४३००३ (उ० प्र०)

फोन : ७४२४२

❀

लेखक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

❀

❀

संशोधित संस्करण

सन् १९९२

❀

मुद्रक :

शैलेन्द्र बी० माहेश्वरी

नव ज्योति प्रेस

भीकचन्द मार्ग, मथुरा।

फोन : ४०३८९५

❀

मूल्य :

बीस रुपये मात्र
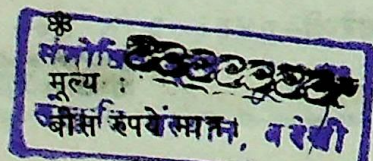
सूक्त–६

(ऋषि–वृहस्पतिः । देवता–वनस्पति, फलामणि, आपः । छन्द–गायत्री, अनुष्टुप्, जगती, शक्वरीः, अष्टि, धृतिः, पंक्तिः)

अरातीयोर्भ्रातृव्यस्य दुर्हार्दो द्विषतः शिरः । अपि वृश्चाम्योजसा ।१

बर्म मह्यमयं मणिः फालाज्जातः करिष्यति ।
पूर्णो मन्थेन मागमद् रसेन सह वर्चसा ।२
यत् त्वा शिक्वः परावधीतु तक्षा हस्तेन वास्या ।
आपस्त्वा तस्माज्जीवलाः पुनन्तु शुचयः शुचिम् ।३
हिरण्यस्रगयं मणिः श्रद्धां यज्ञं महो दधत् ।
गृहे वसतु नोऽतिथिः ।४
तस्मै घृतं सुरां मध्वन्नमन्नं क्षदामदे ।
स नः पितेव पुत्रभ्यः श्रेयः श्रेयश्चिकित्स्तु भूयोभूयः ।
श्वःश्वो देवेभ्यो मणिरेत्य ।५
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फाल घृतश्चुतमुग्र खदिरमोजसे ।
तमग्निः प्रत्यमुञ्चत सो अस्मै दुह आज्यं भूयोभूयः
श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ।६
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तमिः प्रत्युमुञ्चतोजसे वीर्याय कम ।
सौ अस्मै वलमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ।७
यमवध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
त सोमः प्रत्यमुञ्चत महे श्रोत्राय चक्षसे ।
सो अस्मै वर्च इद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ।८
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तं सूर्यः प्रत्यमुञ्चत तेनेमा अजयद् दिशः ।
सो अस्मै भूतिमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ।९

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तं विभ्रच्चन्द्रमा मणिमसुराणांपुरोऽजयद दानवानां हिरण्ययीः ।
सो अस्मै श्रियमिद दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि।१०

जो शत्रु मुझसे द्वेष भाव रखता है, मैं उसके शिर को मन्त्र की शक्ति से काटता हूँ ।१। यह फल द्वारा उत्पन्न हुआ मणि रस और मंथ से युक्त है। यह तेज के सहित मेरे पास आ रहा है। यह मणि मेरे लिए कवच के समान रक्षक होगा ।२। तुझे शिक्व ने अपने हाथ से आयुध द्वारा काटा है, उस तुझ पवित्र को प्राणदायक पवित्र जल पवित्र बनावे ।३। यह हरिण्यस्रक मणि यज्ञोत्सवों को कराता हुआ हमारे गृहों में अतिथि के समान निवास करे ।४। जैसे पिता पुत्रों के कल्याण की बात सोचता है, वैसे ही यह मणि हमारे लिए कल्याणमयी हो। हम इन मणि को घृत, सुरा, मधु और अन्न भेंट करते हैं। देवताओंके पास से आने वाली यह मणि बारम्बार हमको प्राप्त होती हुई मङ्गल करने वाली हो ।५। इस खदिर फाल की मणि को बृहस्पति ने बल-प्राप्ति के लिए बाँधा और अग्नि ने इसका प्रतिमुंचन किया। यह मणि घृत के समान सार पदार्थों की करने वाली है। उसके द्वारा तू शत्रुओं का हनन कर ।६। जिस खदिर फाल मणि को बृहस्पति ने बल प्राप्ति के लिए बाँधा और इन्द्र ने जिसे ओज वीर्य के निमित्त बँधवाया तब वह सार पदार्थों की वर्षा करने वाली मणि इन्द्र को नित्य नवीन बल प्रदान करती रहती है। तू उसी मणि से अपने शत्रुओं का हनन कर ।७। जिस खदिर फाल मणि को बृहस्पति ने बल पाने के लिए बाँधा और सोम ने उसे महिमा-मय श्रोतृ और दर्शन शक्ति की प्राप्ति के लिए बँधवाया, वह घृत के समान सार पदार्थों की वर्षा करने वाली मणि सोम को नित्य नवीन वर्च प्रदान करती है। उसी मणि के द्वारा तू अपने शत्रुओं का हनन कर ।८। जिस खदिर फाल मणि को बल प्राप्ति के निमित्त बृहस्पति ने बाँधा था और सूर्य ने जिसे दिशाओं पर विजय प्राप्त करने को बँध-वाया था, वह घृत के समान सार पदार्थों की वर्षा करने वाली शत्रु के

लिए उग्रमणि प्रति दूसरे दिन सूर्य को अधिकाधिक भूति प्रदान करे। उसी मणि से तू शत्रुओं का संहार कर।९। जिस खदिर फाल मणि को बृहस्पति ने ओज के लिए बाँधा था, उस मणि को धारण कर चन्द्रमा ने राक्षसों के सुवर्ण से बन नगरों पर विजय प्राप्त की। यह मणि घृत के समान सार पदार्थों की वर्धक और शत्रु के लिए उग्र हैं। यह मणि चन्द्रमा को नित्य प्रति बारम्बार श्री प्रदान करने वाली है। तू उसी मणि से अपने शत्रुओं को नष्ट कर।१०।

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
सो अस्मै वाजिनं दुहे योभूय: श्व: श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि।११
यमवध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
तेनेमा मणिन कृषिमश्विनावभि रक्षतः।
स भिषग्भ्यां महो दुहे भूयोभूय: श्व स्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि।१२
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
तं बिभ्रत् सविता मणिं तेनेदमजयत् स्व:।
सो जस्मै सूनृतां दुहे भूयोभूय: श्व:श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि।१३
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
तमापो विभ्रतोर्मणिं सदा धावन्त्यक्षिताः।
स आभुयो ऽमृतमिद् दुहे भूयोभूय: श्व:श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि।१४
यमवध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
तं राजा वरुणो मणिं प्रत्यमुञ्चत शभुवम्।
सो अस्मै सत्यमिद दुहे भूयोभूय: श्व:श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि।१५
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
तं देवा विभ्रती मणिं सर्वाल्लोकान युधाजयन्।
स एभ्यो जितिमिद दुहे भूयोभूय: श्व:श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि।१६
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
तिममं देवता मणिं प्रत्युमुञ्चन्त शंभुवम्।
स आभ्यो विश्वमिद दुहे भूयोभूय: श्व:श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि।१७

ऋतबस्तमबध्नतार्तवास्तमबध्नत ।
संवत्सरस्तं बदध्वा सर्वं भूतं वि रक्षति ।१८
अन्तर्देशा अवघ्नत प्रदिशस्तमबध्नत ।
प्रजापतिसृष्टो मणिर्द्विषतो मेऽधां अकः ।१९
अथर्वाणो अवध्नताथर्वणा अबध्नत ।
तर्मेदिनो अङ्गिरसो दस्यूनां विभिदुः पुरस्तेन त्वं द्विषतो जहि।२०

जिस मणि को बृहस्पति ने वायु के बाँधा था, वह मणि नित्य प्रति बारम्बार वायु को वेगवान बनाती है। तू उस मणि के द्वारा ही शत्रुओं को मार ।११। जिस मणि को बृहस्पति ने अश्विनी कुमारों के बाँधा था, उससे अश्विनीकुमार कृषि की रक्षा करते हैं। वह बारम्बार अश्विनीकुमारों को जल प्रदान करती है। तू उसी मणि के द्वारा शत्रुओं को नष्ट कर ।१२। जिस मणि को बृहस्पति ने सविता के बाँधा था, जिससे सविता ने स्वर्ग पर विजय प्राप्त की। वह सविता के लिये नित्य प्रति बारम्बार वाणी प्रदान करते हैं। उस मणि से तू शत्रुओं का नाश कर ।१३। जिस मणि को बृहस्पति ने जलों के बाँधा था, उसे धारण कर वह सदा गतिमान रहते हैं। वह मणि इन जलों को नित्य प्रति अधिक से अधिक अमृतत्व देती रहती है। उसी मणि के द्वारा तू शत्रुओं को नष्ठ कर ।१४। बृहस्पति ने जिस मणि को राजा वरुण के बाँधा था, वह मणि कल्याण प्रदायनी है और नित्य प्रति वरुण को सत्य प्रदान करती रहती है। तू उसी मणि के द्वारा शत्रुओं का नाश कर ।१५। जिस मणि को बृहस्पति ने देवताओं के बाँधा था और देवताओं ने उसके प्रभाव से सब लोकों पर विजय प्राप्त की थी उसी मणि से तू अपने शत्रुओं का हनन कर।१६। जिस मणि को बृहस्पति ने द्रुतगति के लिये वायु के बाँधा था और देवताओं ने भी उसे धारण किया था, वह मणि को उनको विश्व प्रदान करती रहती है। तू ऐसी ही मणि से अपने शत्रुओं को नष्ट कर ।१७। इस मणि को ऋतु ने, उनके अवयव महीनों के भी बाँधा था और सम्वत्सर इसी के बल से प्राणियों की रक्षा किया

करता है ।१८। अन्तर्देशों और प्रदिशाओं ने भी इस मणि को धारण किया था । इसका आविष्कार प्रजापति ने किया था । यह मणि मेरे शत्रुओं की दुर्गति करने वाली हो ।१९। अथर्ववेद के मन्त्रों द्वारा जिन्होंने इस मणि को धारण किया, उन्होंने शत्रुओं के नगरों को तोड़ दिया । तू ऐसी ही मणि से अपने शत्रुओं का संहार कर ।२०।

तं धाता प्रत्यमुञ्चत स भूतं व्यकल्पयत् ।
तेन न त्वं द्विषतो जहि ।२१
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितम् ।
स मायं मणिरागमद रसेन सह वर्चसा ।२२
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत् सह गोभिरजाभिरन्नेन प्रजया सह ।२३
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत सह ब्रीषियवाभ्यां महसा भूत्या स ।२४
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमन्मघोर्घृ तस्य धारया कीलालेन मणिः सह ।२५
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमर्गया पयसा सह द्रविणेव श्रिया सह ।२६
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत तेजस त्विष्या सह यशसा कीर्त्या सह ।२७
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत सर्वाभिर्भूतिभिः सह ।२८
तमिमं देवता मणिं मह्यं ददतु पुष्टये ।
अभिभु क्षत्रबर्धनं सपत्नदम्भनं मणिम् ।२९
ब्रह्मणा तेजसा सह प्रति मुञ्चामि मे शिवम् ।
असपत्नः सपत्नहा सपत्नान मेऽधरां अकः ।३०

इस मणि को धारण करके ही धाता ने प्राणियों को रचा । उसी मणि से तू शत्रुओं को नष्ट कर ।२१। असुरों का क्षय करने वाली जिस

मणि को बृहस्पति ने देवताओं के बाँधा था वह मणि रस और वर्च सहित मुझे प्राप्त हो गई है ।२२। राक्षसों को क्षीण करने वाली जिस मणि को वृहस्पति ने देवताओं के बाधा था; वह मणि गौ, भेड़ आदि तथा सन्तानों के सहित मुझे प्राप्त हो गई है ।२३। राक्षसों को क्षीण करने वाली जिस मणि को बृहस्पति ने देवताओं के बाँधा था, वह मणि यव, धान्य, उत्सव और भूत आदि से सम्पन्न हुई मुझे मिल गई है ।२४ राक्षसों को नष्ट करने वाली जिस मणि को बृहस्पति ने देवताओं के बाँधा था, वह मणि घृत और मधु की धाराओं और अन्न से सम्पन्न हुई मुझे मिल गई है ।२५। असुरों को क्षीण करने वाली जिस मणि को वृहस्पति ने देवताओं के बाँधा था, वह मणि अन्न, बल और लक्ष्मी सहित मुझे प्राप्त हो गई है ।२६। राक्षसों को क्षीण करने वाली जिस मणि को बृहस्पति ने देवताओं के बाँधा था, वह मणि तेज, यश, कीर्ति और दीप्ति सहित मुझे प्राप्त हो गई है ।२७। राक्षसों को क्षीण करने वाली जिस मणि को बृहस्पति ने देवताओं के बाँधा था, वह मणि सम्पूर्ण विभूतियों से सम्पन्न हुई मुझे प्राप्त हो गई है ।२८। क्षात्र बल की वृद्धि करने वाली, शत्रुओं को वशीभूत करने वाली तथा उनका संहार करने वाली इस मणि को तुष्टि के लिए देवगण मुझे प्रदान करें ।२९। हे मणे ! तू कल्याण करने वाली है। तुझे मन्त्र शक्ति सहित ग्रहण करता हूँ। तू शत्रु रहित होने से अपने धारण करने वाले के शत्रु का नाश करती है। इसलिए मेरे शत्रुओं को भी बुरी गति प्रदान कर ।३०

उत्तरं द्विषतो मामयं मणिष्कृणोतु देवजाः ।
यस्य लोका इमे त्रयः पयो दुग्धमुपासते ।
स मायमधि रोहतु मणिः श्रेष्ठयाय मूर्धतः ।३१
यं देवाः पितरो मनुष्या उपजीवन्ति सर्वदा ।
स मायमधि रोहतु मणिः श्रेष्ठयाय मूर्धतः ।३२
थायवीजमुर्धरायां कृष्टे फालेन रोहति ।
एवा मयि प्रजा पशवोऽन्नमन्नं वि रोहते ।३३

यस्मै त्वा वज्रवर्धन मणे प्रत्यमुञ्च शिवम् ।
तं त्वं शतदक्षिण मणे श्रेष्ठयाय जिन्वतात् ।३४
एतमिध्म ममाहित जुषाणो अग्ने प्रति हर्य होमै: ।
तस्मिन विदेम सुमतिं स्वस्ति प्रजां चक्षुः पशून्त्समिद्ध
जातवेदसि ब्रह्मणा ।३५

इस मणि का देवताओं ने आविष्कार किया । यह मुझे शत्रुओं से श्रेष्ठ बनावे । जिस मणि से दूध और जल की याचना की जाती है, वह मणि श्रेष्ठता के निमित्त ही मेरे द्वारा धारण की जाय ।३१। देवता, पितर और मनुष्य जिस मणि से जीवन पाते हैं, ऐसी यह मणि श्रेष्ठता से मुझ पर चढ़े ।३२। फाल द्वारा कुरेदे जाने पर जैसे भूमिगत बीज उत्पन्न होता है, वैसे ही यह मणि प्रजा, पशु और खाद्यान्नों की उत्पत्ति करने वाली हो ।३३। मणे ! तू यज्ञ की वृद्धि करने वाली है । तू कल्याणकारिणी है । मैं तुझे जिसके लिए धारण कर रहा हूँ, उसे तू श्रेष्ठता देती हुई सन्तुष्ट बना ।३३। हे अग्ने ! तुम मन्त्र शक्ति से प्रदीप्त होते हुए इस हवि का सेवन कर तृप्त होओ हम इन अग्निदेव से श्रेष्ठ मति, प्रजा, चक्षु, पशु और सब प्रकार का कल्याण चाहते हैं ।३५।

सूक्त–७ (चौथा अनुवाक)

(ऋषि–अथर्वा । देवता–स्कम्भः, अध्यात्मन् । छन्द–जगती, त्रिष्टुप् उष्णिक्, बृहती, गायत्री, पंक्ति)

कस्मिन्नङ्गे तपो अस्याधि निष्ठति कस्मिन्नङ्ग ऋतमस्याध्याहितम ।
क्व व्रतं क्व श्रद्धास्य तिष्ठति कस्मिन्नङ्ग सत्यमस्य प्रतिष्ठितम् ।१
कस्मादङ्गाद दीप्यते अग्निरस्य कस्मादङ्गात पवते मातरिश्वा ।
कस्मादङ्गाद वि मिमीतेऽधि चन्द्रमा मह स्कम्भस्य मिमानो अङ्गम् ।२
कस्मिन्नङ्गे तिष्ठति भूमिरस्य कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्यन्तरिक्षम् ।

कस्मिन्नंगे तिष्ठत्याहिता द्यौः कस्मिन्नंगे तिष्ठत्युत्तरं दिवः ।३
क्व प्रेप्सन् दोप्यत ऊर्ध्वो अग्निः क्वः प्रेप्सन् पवते मातरिश्वा ।
यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यावृता स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेय सः।४
क्वार्धमासाः कव यन्ति मासा संवत्सरेण सह संविदानाः ।
यत्र यन्त्यृतवो यत्रार्तवाः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेवः सः ।५
क्व प्रेप्सन्ती युवती विरूपे अहारात्रे द्रवतः संविदाने ।
यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यापः स्कम्भं त ब्रूहि कतमः स्विदेवः सः ।६
यस्मिन्स्तब्ध्वा प्रजापतिर्लोकान्त्सर्वा अधारयत् ।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव स ।७
यत् परममवस यच्च मध्यमं प्रजापति ससृजे विश्वरूपम् ।
कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र यन्न प्राविशत कियत् तद् बभूब।८
कियता स्कम्भः प्र विवेश भूतं कियद् भविष्यदन्वाशयेऽस्य ।
एकं तदंगयकृणोत् सहस्रधा नियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र ।९
यत्र लोकांश्च कोशांश्चापो ब्रह्म जना विदुः ।
असच्च यत्र सच्चान्तः स्कम्भं तं ब्रूहि कतम स्विदेव सः ।१०

इसके किस अङ्ग में तप, किस अङ्ग में ऋतु, किस अङ्ग में श्रद्धा, किस अङ्ग में सत्य और किस अङ्ग में व्रत रहता है ? ।१। इसके किस अङ्ग से वायु चलता, किस अङ्ग से अग्नि प्रज्वलित होती और चन्द्रमा इसके किस अङ्ग द्वारा मान करता है ? ।२। इसके किस अङ्ग में भूमि, किस अङ्ग में अन्तरिक्ष और किस अङ्ग में द्युलोक का निवास है ? द्युलोक से भी श्रेष्ठ स्थान इसके किस अङ्ग में स्थित है ? ।३। ऊपर को उठाता हुआ अग्नि कहाँ जाने की इच्छा करता है ? वायु कहाँ जाने की इच्छा करता हुआ चलता है ? आवागमन के चक्कर में पड़े प्राणी कहाँ जाने की इच्छा करते हुये किस स्कम्भ के सामने चलते हैं, उसे बताओ ? ।४। संवत्वर मे सहमति रखने वाले पक्ष और मास कहाँ जाते हैं, ऋतुऐं और मास जहाँ जाते हैं, उस स्कम्भ (सर्वाधार)

को बताओ ? ।५। रात्रि और दिन अनेक रूपों के धारण करने वाले हैं, वे मिलने और वियुक्त होने वाले हैं, वे दौड़ते हुए कहाँ जाते हैं। जहाँ प्राप्ति की इच्छा वाले जल जा रहे हैं, उस स्कम्भ को बताओ ? ।६। प्रजापति जिसमें स्तम्भित होकर सब लोकों को धारण किये हुए हैं, उस स्कम्भ को बताओ ।७। जो परम, अवम और मध्यम हैं, जिन सब रूपों को प्रजापति ने बताया है, उनमें कितने अंश से स्कम्भ प्रविष्ट हुआ है। जिससे प्रविष्ट नहीं हुआ, वह अंश कितना है ? ।८। कितने अंश से स्कम्भ भूत में घुसा है। भविष्य में कितने अंश से सो रहा है ? जो अपने अङ्ग को सहस्र प्रकार का बना लेता है, वह उसमें कितने अंश से प्रविष्ट होता है ? ।९। लोक कोश और जल जिसमें निहित माने जाते हैं, जिसमें सत् और असत् भी है, उस स्कम्भ को बताओ ।१०।

यत्र तपः पराक्रम्य व्रतं धारयत्युत्तरम् ।
ऋतं च यत्र श्रद्धा चापो ब्रह्म समाहिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ।११

यस्मिन भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन्नध्याहिता ।
यत्राग्निश्चन्द्रमा सूर्यो वातस्तिष्ठन्त्यार्पिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ।१२

स्यय त्रयस्त्रिशद् देवा अंगृ सर्वे समाहिताः ।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ।१३

यत्र ऋषया प्रथमजा ऋचः साम यजुर्मही ।
एकर्षिर्यस्मिन्नापित स्कम्भ तं ब्रूहि कतम स्विदेव स ।१४

यत्रामृतं च मृत्युश्च पुरुषेऽधि समाहिते ।
समुद्रो यस्य नाड्यः पुरुषेधि समाहिताः स्कम्भं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ।१५

यस्य चतस्रः प्रदिशो नाड्यस्तिष्ठन्ति प्रप्यसाः ।
यज्ञो यत्र पराक्रन्तः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ।१६
ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम् ।
यो वेद परमेष्ठिनं यश्ज वेद प्रजापतिम् ।
ज्येष्ठं ब्राह्मणं विदुस्ते स्कम्भमनुसंविदुः ।१७
यस्य शिरो वैशवानरश्चक्षरङ्गिरसोऽभवन् ।
अङ्गानि यस्य यातवः स्कम्भ तं ब्रूहि स्विदेव सः ।१८
यस्य ब्रह्म मुखमाहुर्जिह्वां मधुकशामुत ।
विराजमूधो यस्याहु स्कम्भ तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ।१९
यस्माद्दचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन् ।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ।२०

जिस स्थान में तप और व्रत द्वारा तजस्वी हुआ पुरुष बैठता है, जहाँ श्रद्धा, ऋतु, जल और ब्रह्म भी प्रतिष्ठित है, उस स्कम्भ को कहो ।११। जिसमें अग्नि, सूर्य, चन्द्र, वायु, पृथ्वी, अन्तरिक्ष और दिव्य लोक हैं, उस स्कम्भ को हमसे कहो ? ।१२। जिसके शरीर में तेतीस देवताओं का निवास है, उस स्कम्भ को हमें बताओ ? ।१३। जिसमें आरम्भ काल में उत्पन्न हुये ऋषि, पृथ्वी, ऋक्, साम और यजुर्वेद हैं, उस स्कम्भ को हमसे कहो ? ।१४। जिसमें मरण, अमरण भले प्रकार निहित है, समुद्र जिसकी नाड़ी है, वह स्कम्भ कौन सा है ? ।१५। चारों दिशा रूप जिसकी मुख्य नाड़ी है, जिसमें यज्ञ जाता है, उस स्कम्भ का वर्णन करो ? ।१६। जो पुरुष में ब्रह्म को जानने वाले हैं, वे परमेष्ठी, प्रजापति और अग्रज ब्राह्मण को जानते हैं, वही स्कम्भ के भी ज्ञाता हैं ?।१७ जिसका शिर वैश्वानर, जिसके नेत्र अङ्गिरावंशीय ऋषि, जिसके अङ्ग 'यातु' हैं, वह स्कम्भ कौन सा है ? ।१८। जिसकी जीभ को मधुकशा और मुख को ब्रह्म कहते हैं, जिनका ऐन विराट् कहलाता है, उस स्कम्भ को बताओ ? ।१९। जिससे यजुर्वेद के मन्त्र और ऋचायें प्रकट हुई हैं । सामवेद के मन्त्र जिसके रोम और यजुर्वेद जिसका मुख है, उस स्कम्भ को बताओ, वह कौन सा है ?

सूक्त–८

(ऋषि–बृहस्पतिः । देवता–वनस्पतिः, फलामणि, आपः । छन्द–गायत्री, अनुष्टुप्, जगती, शक्वरी, अष्टिः, धृतिः, पंक्तिः)

अरातीयोर्भ्रातृव्यस्य दुर्हार्दो द्विषतः शिरः । अपि वृश्चाम्योजसा ।२१

वर्म मह्यमयं मणिः फालाज्जातः करिष्यति ।
पूर्णो मन्थेन मागमद् रसेन सह वर्चसा ।२२

यत् त्वा शिक्वः परावधीत् तक्षा हस्तेन वास्या ।
आपस्त्वा तस्माज्जीवला पुनन्तु शुचयः शुचिम् ।२३

हिरण्यस्रगयं मणिः श्रद्धां यज्ञं महो दधत् । गृहे वसतु नोऽतिथिः ।२४

तस्मै घृतं सुरां मध्वन्नमन्नं क्षदामहे ।
स नः पितेव पुत्रेभ्यः श्रेयः श्रेयश्चिकित्सु भूयोभूयः ।
श्वःश्वो देवेभ्यो मणिरेत्य ।२५

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणि फाल घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तमग्निः प्रत्यमुञ्चत सो अस्मै दुह आज्यं भूयोभूयः
श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ।२६

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तमिःप्रत्यमुञ्चतौजसे वीर्याय कम ।
सौ अस्मै बलमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ।२७

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
त सोमः प्रत्यमुञ्चत महे श्रोत्राय चक्षसे ।
सो अस्मै वर्च इद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्येन त्वं द्विषतो जहि ।२८

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तं सूर्यः प्रत्यमुञ्चत तेनेमा अजयद् दिशः ।२९

सो अस्मै भूतिमिद् दुहे भयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ।३०

जिसमें सूर्य, रुद्र, वसु, भृत, भव्य और सब लोक जिसमें निहित हैं, उस स्कम्भ को बताओ ।२२। तेतीस देवता जिसकी निधि की रक्षा करते हैं, उस निधि का ज्ञाता कौन है ? ।२३। ब्रह्म को जानने वाले देवता जहाँ महान् ब्रह्म की स्तुति करते हैं, जो उन्हें जानता है, वही ब्रह्म को जान सकता है ।२४। असत् से उत्पन्न हुए बृहत् नामक देवता स्कम्भ के ही अङ्ग हैं, वे असत् कहलाते हैं ।२५। स्कम्भ ने उत्पन्न पुराण को व्यवर्तित किया, वह स्कम्भ का अङ्ग पुराण कहा जाता है ।२६। तेतीस देवता जिसके शरीर में सुशोभित हैं, उन्हें ब्रह्म के जानने वाले विज्ञ जानते हैं ! ।२७। वह हरिण्यगर्भ, वर्णन करने में जो न आ सके, ऐसा है । उसे स्कम्भ ने ही इस लोक में प्रथम बार सींचा था ।२८। स्कम्भ में लोक, तप और ऋतु निहित है । हे स्कम्भ ! इन्द्र ने तुझे प्रत्यक्ष देखा है, तू इन्द्र में ही निहित है ।२९। इन्द्र में ही लोक, तप और ऋतु है । हे इन्द्र ! मैं तुझे जानता हूँ । सब स्कम्भ में निहित हैं ।३०।

नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात् पुरोषसः ।
यदजः प्रथमं संवभूव स ह तत् स्वराज्यमियाय यस्मान्नान्यत् परमस्ति भूतम् ।३१

यस्य भूमिः द्रमान्तारक्षमुतोदरम् ।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ।३२
यस्य सूर्याश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।
अग्नि यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ।३३

यस्य बातः प्राणपानौ चक्षुरङ्गिरसोसोऽभवन् ।
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्ततस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ।३४

स्कम्भो दाधार द्यावापृथिवी उभे इमे स्कम्भो दाघारोर्वन्तरिक्षम्
स्कम्भो दाधार प्रदिशः षड्उर्वीः स्कम्भ इदं विश्वं भुवनमा विवेश ।३५

य: श्रमात् तपतो जातो लोकान्त्सर्वान्त्समानशे ।
सौमं यश्चक्रे केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मण नमः ।३६
कथं वातो नेलययि कथं न रमते मनः ।
किमापः सत्यं प्रेप्सन्तीर्नेजयन्ति कदाचन ।३७
महद यज्ञं भुवनस्य मध्ये तपति क्रान्तं सलिलस्यपृष्ठे ।
तस्मिञ्छ्यन्ते य उ के च देवा वृक्षस्य स्कन्ध परितइव शाखाः ।३८
यस्मै हस्त्यभ्यां पादाभ्यां वाचा श्रौत्रेण चक्षुषा ।
यस्मै देवाः सदा बलिं प्रयच्छन्ति बिमिते ऽस्मितं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ।३९
अप तस्य हतं तमो व्यावृत्तः सः पाप्मनाः ।
सर्वाणि तस्मिञ्जयोतीषि यानि त्रीणि प्रजापतौ ।४०
यो वेतसं हिरण्ययं तिष्ठन्तं संलिले वेद ।
स वै गुह्यः प्रजापति ।४१
तन्त्रमेके युवती विरूपे अभ्याक्रामं वयतः षण्मयूखम् ।
प्रान्या तन्तूं स्तिरते धत्ते अन्या नाप वृञ्जाते न गमातो अन्तम् ।४२
तयोरहं परिनृत्यन्त्योरिव न वि जानामि यतरा परस्तात् ।
पुमानेनद वयत्युद गृणत्ति पुमानेनद वि जभाराधि नाके ।४३
इमे मयूखा उप तस्तभुदि सामानि चक्रुस्तसराणि वातवे ।४४

जो पहिले अजन्मा था, जिससे परे कोई भूत नहीं है, उसे वह आत्मा प्राप्त हो जाती है । वह सूर्य और उषा से पूर्व नाम रूपात्मक संसार को नाम से पुकारता है ।३१। पृथ्वी जिसकी 'प्रभा' अन्तरिक्ष उदर और द्युलोक शिर रूप है उस ब्रह्म को नमस्कार करता हूँ ।३२। चन्द्र और सूर्य जिसके नेत्र, सौर अग्नि जिसका मुख रूप है, उस ब्रह्म को नमस्कार करता हूँ ।३३। जिसके प्राणापान वायु, अङ्गिरा नेत्र और दिशायें प्रज्ञान हैं, उस ब्रह्म को नमस्कार करता हूँ ।३४। स्कम्भ ने आकाश, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, प्रदिशा और छः उर्वियों को धारण किया है और वही स्कम्भ

इस लोक में रमा हुआ है ।३५। जो सब लोकों का भोग करने वाला और तपस्या प्रकट होता है तथा जिसने सोम को बनाया है, उस ब्रह्म को प्रणाम है ।३६। किस सत्य की इच्छा से जल अचेष्ट रहते हैं, वायु प्रेरणा नहीं करता और मन नहीं रमता ।३७। लोक में एक अत्यन्त पूजनीय व्यक्तित्व है, वह सलिल पृष्ठ पर विराजमान है, उसे तप द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। जैसे वृक्ष की शाखायें वृक्ष की आश्रिता हैं, वैसे ही सब देवता उसके आश्रित हैं ।३८। हाथ, पाँव, वाणी और नेत्रादि के द्वारा देवता जिसकी सेवा करते हैं, जो विमित देह में अमित रूप से विराजमान है, उस स्कम्भ को बताओ ? ।३९। स्कम्भ के ज्ञाता का अज्ञान मिट जाता है, वह पाप से रहित होता है, प्रजापति में जो तीन ज्योतियाँ हैं, वे उसमें प्रतिष्ठित हो जाती हैं ।४०। प्रजापति वही है, जो जल में वेंत का जानने वाला है ।४१। यह अनेक दिन रात्रि छै ऋतु वाले गमनशील सम्वत्सर के आश्रित हैं, मैं इन पर चढ़ता हूँ। इनमें से एक तन्तु-विस्तार कर उन्हें धारण करता है और दूसरा भी उन्हें नहीं त्यागता। यह दोनों ही अन्न से युक्त नहीं होते ।४२। इन नर्तनशील दिन-रात्रि में पर (दूसरा) को मैं नहीं जानता। दिन इन्हें तन्तुवान बनाता और उद्‌गृणन करता हुआ दिव्य लोक में पुष्ट करता है ।४३। सोम प्रवाहमान होने के लिये 'तसर' करते हैं और मयूख द्युलोक को स्तम्भित करते हैं ।४४।

सूक्त—९

(ऋषि—कुत्सः। देवता—अध्यात्म। छन्द—वृहती, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, जगती, पंक्ति, उष्णिक्, गायत्री)

यो भूतं च भव्यं च सर्व यश्चाधितिष्ठति।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ।१
स्कम्भेनेमे विष्टाभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः।
स्तम्भ इद सर्वमात्मन्वद् यत् प्राणान्निमिषच्च यत् ।२

तिस्रो ह प्रजा अत्यायमायन् न्यन्या अर्कमितोऽयिशन्त ।
बृहन् ह तस्यौ रजसो विमानो हरितो हरिणीरा विवेश ।३
द्वादश प्रधयश्चक्रमेक त्रीणी नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तत्राहतास्त्रीणि शतानि शङ्कव: षष्टिश्च खीला अविचाचला ये ।४।
इदं सवितवि जानीहि यड् यमा एक एकज: ।
तस्मिन हापित्वमिच्छन्ते य एषामेक एकज: ।५
आवि: सन्निहितं गुहा जरन्नाम महत् पदम् ।
तत्रेदं सर्वमार्पित मेजत् प्राणत् प्रतिष्ठितम् ।६
एकचक्रं वर्त त एकनेमिसस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा ।
अर्धेन विश्व भुवनं जजान यदस्यर्धं क्वतद् वभूव ।७
पञ्चवाही वहत्यग्रमेषां प्रष्टयो युक्ता अनुसवहन्ति ।
अबातमस्य ददृशे न यातं पर नेदोयाऽवर द्वीय: ।८
तिर्यग्विलश्चमस ऊध्र्वबुध्नस्तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम् ।
सदासत ऋषय: सप्त साकं ये अस्य गोपा वभूबु: ।९
या पुरस्तादयुज्यते याचपश्चाद् या विश्वतो युज्यते य च सर्वत: ।
यया यज्ञ: प्राङतायते तां त्वा पृच्छामि कतमा स ऋचाम् ।१०

जो भूत, भविष्य और सब में व्यापक है। जो दिव्यलोक का भी अधिष्ठाता है, उस ब्रह्म को प्रणाम है।१। यह पृथ्वी और आकाश स्कभ द्वारा ही स्थान पर स्थित हैं। श्वास लेने और पलक मारने वाले यह आत्म रूप स्कभ ही हैं।२। तीनों प्रजायें इसे प्राप्त करती हैं और अन्य सब ओर से सूर्य में प्रविष्ट होती हैं। पृथिवी का रचियता ब्रह्म स्थित रहता हुआ हरे वर्ण वाली हरिणी में प्रविष्ट होता है।३। बारह 'प्रधि' और तीन 'नभ्य' है, उसमें तीन सौ आठ कीलें ठुकी हैं, इन्हें कौन जानता है।४। हे सविता देव ! यह छ: ऋतु दो-दो मास की हैं और वर्ष एक है। इनमें दो ब्रह्म से उत्पन्न प्राणी हैं, उनमें से एक प्रकार के प्राणी उस ब्रह्म में ही लीन होने की कामना करते हैं।५। गुफा रूप देह में

दमकता हुआ आत्मा निवास करता है। जरत नामक महत् पद में यह सचेष्ट और श्वासवान विश्व स्थित है।६। एक चक्र और एक नेमि सहस्राक्षर के साथ गतिमान है। उसके आधे भान से विश्व उत्पन्न हुआ है। परन्तु इसका अन्य आधा भाग कहाँ है ? ।७। अग्र को पञ्चवाही प्राप्त कराती हैं, प्रष्टियाँ अनुकूल संवहन करती हैं। इसका आना दिखाई देता, जाना दिखाई नहीं देता, वह पास से भी पास और दूर से भी दूर है।८। ऊपर की ओर जड़ और तिर्यग्वल चमस में विश्व का रूप आत्मा स्थित है उसमें इस शरीर की रक्षा करने वाले सप्तर्षि एक साथ रहते हैं।९। जो पहिले, पीछे अथवा सब समय विनियुक्त होती है, जिससे यज्ञ को बढ़ाया जाता है, वह ऋचा कौन-सी है ? ।१०।

यदेजति पतति यच्च तिष्ठति प्राणदप्राणन्निमिषच्च यद् भुवत्।
तद् दाधार पृथिवी विश्वरूपं तत् सभूय भवत्येकमेव ।११
अनन्तं बितत पुरुत्रानन्तमन्तवच्चा समन्ते।
ते नाकपालश्चरति विचिन्वन् विद्वान भूतमुत भव्यमस्य ।१२
प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्नरदृश्यमानो बहुधा वि जायते।
अर्धेन विश्वं जजान तदस्यार्ध कतमः सः केतुः ।१३
ऊर्ध्वं भरन्ममुदकं कुम्भेनेवोदहार्यम।
पश्यन्ति सर्वे चक्षुषा न सव मनसा विदुः ।१४
दूरे पूर्णेन बसति दूर ऊनेन हीयते।
महद् यज्ञं भुवनस्य मध्ये तस्मै बलि राष्ट्रभृतो भरन्ति ।१५
यतः सूर्यं उदेत्यश्तं यत्र च गच्छति।
तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं तदु नात्येति कि चन ।१६
ये अर्वाङ् मध्य उत वा पुराणं वेदं विद्वांसमभितो वदन्ति।
आदित्यमेव ते परि बवन्ति सर्धे अग्नि द्वितीयं त्रिबृतं च हसम् ।१७
सहस्राह्णयं बियतावस्य पक्षो हरेर्हसस्य पततः स्वर्गम्।
स दुवान्त्सर्वानुरत्युहदद्य संपश्यन् यान्ति भुवनानि विश्वा ।१८
सत्येनोर्ध्वस्तपति प्रह्मणार्वाङवि पश्यति।

प्राणेन तिर्यङ् प्राणति यस्मिञ्जेष्ठमधि श्रितम् ।१९
यो वै ते विद्यादरणी याभ्यां निर्मथ्यते वसु ।
स विद्वाञ्जअष्ठं मन्येत सा विद्याः ब्राह्मणं महत् ।२०

जो सचेष्ट है स्थित हैं, प्राण क्रिया करता और नहीं भी करता, जो निमिषत् के समान है, उसी ने इस भूमि को धारण किया है। वह सब रूपों में होता हुआ एक रूप को ही प्राप्त होता है।११। वह अनन्त है, अन्त युक्ति भी प्रतीत होता है वह अनेक स्थानों में विस्तृत है, स्वर्ग सुख को पुष्ट करने वाला प्राणी उसे खोजता फिरता है। भूत भविष्य भी उसी के कर्म हैं। वह सबको जानने वाला है ।१२। गर्भ में अदृश्य रहता हुआ प्रजापति विचरण करता और अनेक रूपों में उत्पन्न होता है उसके आधे भाग से जगत् उत्पन्न हुआ है और उसका आधा भाग कौन सा है ? ।१३। कुम्भ द्वारा जल के समान ऊपर को उभरते हुए को सभी अपने चक्षु द्वारा देखते हैं, परन्तु वे मन के द्वारा नहीं जान पाते ।१४। अपने को पूर्ण मानने वाले से वह दूर रहता है और हीन मानने से भी दूरी पर ही छिप जाता है। लोक में एक अत्यन्त पूजनीय व्यक्तित्व है, राष्ट्र का भरण करने वाले उसकी सेवा किया करते हैं ।१५। जिसके द्वारा सूर्य उदय और अस्त होता है, वही वड़ा है। उसका अतिक्रमण करने में कोई भी समर्थ नहीं है।१६। इस पुरातन, विद्वान् और सबके ज्ञाता का जो मध्य में और पीछे कहते हैं, वे सर्यं के ही कहने वाले हैं। वे अग्नि और त्रिवृत् हंस का वर्णन भी इसी प्रकार करते हैं ।१७। पाप का नाश करने वाले इस हंस के पङ्ख स्वर्ग गमन के लिए सहस्र दिवस तक फैले रहते हैं, वह सब देवताओं को हृदय में स्थित करता हुआ सब लोकों में रखता जाता है।१८। जिसमें वह महान् रमा हुआ है, वह सत्य के ऊपर तपता है और मन्त्र की शक्ति से नीचे देखता है तथा प्राण के बल से तिर्यग् गमन करता है ।१९। जो विद्वान धन-मंथन करने वाली अरणियों का ज्ञाता है, वही उस महान् ब्रह्म का भी ज्ञाता है ।२०।

उपादद्ये समभवत् सो अग्रे स्वराभरत ।

चतुष्पाद भूत्वा भोग्य सर्वमादत्त भोजनम् ।२१
भोग्या मवदथो अन्नमदद वहु ।
यो देवमुत्तरावन्तमुपासतै सनातनम् ।२२
सनातनमेनमाहुरुताद्य रयात पुनर्णवः ।
अहोरात्रे प्र जायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः ।२३
शतं सहस्रमयुत न्यर्वु दमसंख्ययं स्वमस्मिन् निविष्टम् ।
तदस्य घ्नन्त्यभिपश्यत् एव तस्माद् देवो रोचत एष एतत् ।२४
बालादेकमणीयत्कमुतैक नेव दृश्यते ।
ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया ।२५
इयं कल्याण्यजरा मर्त्यस्यामृता गहे ।
यस्मै कृता शये स यश्चकार जजार सः ।२६
त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी ।
स्वं जीर्णो दण्डेन बञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतो मुखः ।२७
उतैषां पितोत वा पुत्र एषामुतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः ।
एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उगर्भे अन्तः ।२८
पूर्णात् पूर्णमुदचति पूर्ण पूर्णेन सिच्यते ।
उतो तदद्य वि[illegible]ाम यतस्तत परिषिच्यते ।२९
एषा सनत्नी सनमेव जातैषा पुराणी परि सर्व बभूव ।
महो देव्युषसो विभाती सैकेनैवेन मिषता वि चष्टे ।३०

प्रथम पांव रहित हुआ वह स्वयं का पोषण करता और फिर चार पैर वाला होकर भोगने में समर्थ होता हुआ सब भोजन प्राप्त कर लेता है ।२१। जो उन सनातनदेव की आराधना करता है वह भोगने में समर्थ होता हुआ, बहुत-सा अन्न-दान करता है ।२२। यह सनातन कहे जाते हैं फिर नवीन होते हैं । इन्हीं सूर्य से दिन-रात उत्पन्न होते हैं ।२३। सैंकड़ों हजारों अयुत अर्बुद और दिन इनमें ही लीन रहते हैं, यह उसका साक्षिरूप ही रहता है। उनमें लिप्त न होने से यह देव तेजस्वी रहता है

।२४। यह आत्मा प्रमुख होते हुए भी दिखाई नहीं देता क्योंकि यह बाल से भी सूक्ष्म है। जो आतमा उससे मिलता है वह मुझे अत्यन्त प्रिय है।२५। आत्मदेव के लिए प्रस्तुत रहने वाली आत्मा कल्याणमयी और जरा रहित है। जो ब्रह्म मर्त्यलोक में अमृत के समान है, उसका उपासक भी पूजनीय हो जाता है।२६। हे आत्मा, तू ही कुमारी, तू ही स्त्री तू ही पुरुष है। तू जीर्ण होकर प्राण से विमुक्त करता और प्रकट होकर विश्वतोमुख होता है।२७। तू ही इन जीवों का पिता पुत्र, ज्येष्ठ और कनिष्ठ है। वही एक देवता मन में है। वही गर्भ में स्थित है और वही पहले उत्पन्न हुआ है।२८। पूर्ण से ही पूर्ण को सींचते हैं, पूर्ण से पूर्ण उदंचित होता है। जहाँ वह सींचा जाता है, इसे हम जान गये हैं। ।२९। यह तप द्वारा अनुकूल, सबको व्याप्त करके स्थित पृथ्वी, उषा से चमकती हुई सचेष्ट जीवों द्वारा देखी जाती है।३०।

अविर्वै नाम देवत ऋतेस्ते परीवृता।
न स्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः।३१
अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति मन्तं न पश्यति।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति।३२
अपूर्वेणेषिता वाचस्ता वदन्ति यथायणम।
वदन्तोर्मत्र गच्छन्ति तवाहुर्ब्राह्मण महत्।३३
यत्र देवाश्च मनुष्याश्चारा नाभाविव श्रिताः।
अपाँ त्वाँ पुष्प पृच्छामि यत्र तन्मायया हितम्।३४
येभिर्वात इषिः प्रवाति वे वदन्ते पञ्च दिशः सधीचीः।
य आहुतिमत्यमन्यन्त देवा अपां नेतारः कतमे त आसन्।३५
इमामेषां पृथिवी वन्त एकोऽन्तरिक्षं पर्येको बभूव।
दिवमेषां ददतीयो विधर्ता विश्वा आशा प्रति रक्षन्त्येके।३६
यो विद्यात् सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः।
सूत्रं सूत्रस्य ये विद्यात् स विद्याद् ब्राह्मणं महत्।३७

वेदाहं सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।
सूत्रं सूत्रास्यहं वेदाथो यद् ब्राह्मण महत् ।३८
यदन्तरा द्यावापृथिवी अग्निरैत प्रदहन् विश्वदाव्यः ।
यत्रातिष्टन्नेकपत्नीः परस्तात् क्वेवासीन्यातरिश्वा तदानाम् ।३९
अप्स्वा सीन्मातरिश्वा प्रविष्टा देवाः सलिलान्यासन् ।
वृहन् ह तस्वी रजसो विमानः पवमानो हरित आ विवेश ।४०
ऊत्तरेणेव गायत्रीममृतेऽथि वि चक्रमे ।
साम्ना ये साम संविदुरजश्त दद्दशे क्व ।४१
निवेशनैः संगमनो वसूनां देवइव सविता सत्यधर्मा ।
इन्द्रो न तस्थौ समरे धनानाम ।४२
पुण्डरीक नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम् ।
तस्मिन् यद यक्षमात्मन्वत् तद वै ब्रह्मविदो विदुः ।४३
अकामो धीरो अमृतः स्वयभू रसेन तृशे न कुतश्चनोनः ।
तमेव विद्वान् न विभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युधानम् ।४४

उस ऋतु से अवि नामक देव ढके हुए हैं । उसी के रूप से यह वृक्ष हरे रङ्ग के दिखाई देते हैं ।३१। यह समीप आये को नहीं छोड़ता, यह समीपवर्ती नहीं देखता । उस देव की यह कार्य कुशलता है कि न यह मृत्यु को प्राप्त होता है और न कभी जीर्ण होता है ।३२। अभूत-पूर्व से प्रेरित वाणियाँ सत्यासत्य का वर्णन करती है, वह उच्चारण की जाती हुई जहाँ लीन होती है, वहीं महादुब्रह्म कहलाते हैं ।३३। नाभि है अर्पित अरों के समान जिसमें देवगण अर्पित है, उसी नारायण को पूछता हूँ । वह अपनी माया द्वारा कहाँ स्थित है ? ।३४। वायु जिनकी प्रेरणा से वहता है जो पाँच ध्रीची प्रदान करते हैं, जो आहुति को श्रेष्ठ मानते हैं, वह जल के नेता कहाँ स्थित हैं ? ।३५। वही एक इस पृथिवी को आच्छादित करता वही अन्तरिक्ष के सब ओर स्थित और वही इन जीवों को स्वर्ग प्रदान करता है । सब दिशाओं की दिक्पाल रक्षा करते हैं ।३६। जिसमें यह प्रजायें स्थित है, उस विस्तृत सूत्र और

कारण के भी कारण को जो जानता है, वही उस महद्ब्रह्म का ज्ञाता हो सकता है ।३७। यह प्रजायें जिसमें स्थित हैं, उस विस्तृत सूत्र का में ज्ञाता हूं । उसके कारण को भी जानता हूँ । वही महद्ब्रह्म है ।३८। संसार को भस्म करने की सामर्थ्य वाला अग्नि आकाश पृथ्वी के मध्य आता है, जहाँ पोषणकर्त्री देवियाँ रहती हैं । उस समय मातरिश्वा किस स्थान पर था ? ।३९। मातरिश्वा जल में था, सब देवता सलिल में पृथिवी का रचियता ब्रह्म निश्चल रूप से स्थित था । उसी पाप का नाश करने वाले ने वायु रूप से जल में प्रवेश किया था ।४०। उत्तर से गायत्री में प्रविष्ट हुये, जो साम द्वारा साम के जानने वाले हैं, वह 'अज' कहाँ दिखाई देता है ।४१। सविता देवताओं में भी दिव्य है, वह सत्य धर्म वाले हैं, पुण्यात्मा उन्हीं में प्रविष्ट होते हैं, वही उन्हें स्वर्ग में वास देते हैं । इन्द्र धन में स्थित नहीं रहते ।४२। नौ द्वार युक्त पुण्डरीक त्रिगुणात्मक है । उसमें स्थित पूज्यनींय आत्मा के स्थान को ब्रह्मज्ञानी जानते हैं ।४३। कामना से रहित, धैर्यवान्, स्वयं भू ब्रह्म अपने ही रस से स्वयं तृप्त रहते हैं । वह किसी भी विषय मैं असमर्थ नहीं हैं, उस सतत युवा आत्मा के ज्ञाता को मृत्यु से भय नहीं लगता ।४४।

सूक्त—९ (पाँचवा अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—शतौदना । छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, पंक्ति, जगती, शक्वरी ।)

अधायतामपि नह्य मुखानि समत्नेषु वज्रमर्पयैतम् ।
इन्द्रेण दत्ता प्रथमा शतौदना भ्रातृव्यघ्नी यजमानस्य गातुः ।1
वेदिष्टेचर्म भवतु र्बाहर्लोमार्नियानि ते ।
एषा त्वा रशनाग्रमोद ग्रावा त्वैषऽधि नृत्यतु ।२

बालास्ते प्रोक्षणी. सन्तु जिह्वा स माष्ट्र्वंध्न्ये ।
शुद्धा त्व यज्ञिया भूत्वा दिवं प्रेहि शतोदने ।३
यः सतौदनां पचति काप्रेण स कल्पते ।
प्रीता ह्यस्य ऋत्विजः सर्वें यन्ति यथायथम् ।४
स स्वर्गमा रोहिति यत्रादस्त्रिदिवं दिवः ।
अपूपनाभि कृत्वा यो ददादि शतौदनाम् ।५
सताँल्लोकान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः ।
हिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतोदनम् ।६
ये ते देवि शमितारः पक्तारो च ते जनाः ।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति मैभ्यो भैषोः शतौदने ।७
वसवस्त्वा दक्षिणत उत्तरान्मरुतस्त्वा ।
आदित्याः पश्वाद् गोप्स्यन्ति साग्निष्टोममति द्रव ।८
देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरश्च थे ।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति सातिरात्रमति द्रव ।९
अन्तरिक्षं दिवं भूमिमादित्यान् मरुतो दिशाः ।
लोकान्त्स सर्वानाप्नोति यो ददाति शतौदनाम् ।१०

यह शत्रु का नाश करने वाली, यजमान को स्वर्ग प्राप्त कराने वाली धेनु इन्द्र प्रदत्त है। हिंसा-रूप करने वाले शत्रुओं के मुख को वन्द करती हुई यह धेनु उसमें वज्र-प्रेरणा करे ।१। तेरे लाभ कुशरूपी हो, चर्मवेदी रूप हो। तू रस्सी द्वारा पकड़ी हुई है, ग्रावा तेरे ऊपर नृत्य करे ।२। हे अघ्न्ये ! तेरी जिह्वा मार्जन करे। हे अज ! तेरे बाल प्रोक्षणी हों। हे शतौदने ! तू शुद्ध यज्ञीय होता हुआ स्वर्ग को गमन करेगा ।३। शतौदना को प्रस्तुत करने वाला, इच्छापूर्ति में समर्थ होता है और इससे प्रसन्न हुए ऋत्विज चले जाते हैं ।४। शतौदना को अपूप नाभि करके देने वाला अन्तरिक्षस्व स्वर्ग को गमन करती है ।५। स्वर्ण से अलंकृत कर

गौ को देने वाला, दिव्य और पर्थिय लोकों को प्राप्त करता है ।६। हे देवि ! तेरा रखने और शमन करने वाले, तेरे रक्षक होंगे, तू इससे भयभीत न हो ।७। दक्षिण की ओर से वसु और उत्तर की ओर से मरुत तेरी रक्षा करेंगे । पीछे से सूर्य तेरे रक्षक होंगे । इसलिए तू अग्निष्टोम की ओर गमन कर ।८। मनुष्य, पितर, देवगण, गन्धर्व और अप्सरायें तेरी रक्षा करेंगे, तू अतिरात्र की ओर गमन कर ।९। शतौदना का दान करने वाला, अन्तरिक्ष, द्यु लोक, पृथिवी, मरुद्गण और दिशा इन सबके लोकों को प्राप्त करता है ।१०।

घृतं प्रोक्षन्ती सुभगा देवी देवान् गमिष्यति ।
पक्तारमघ्न्ये मा हिंसादिवं प्र ही शतोदने ।११
ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये चेमे भूम्यामधि ।
तेभ्यस्त्वं धुक्ष्व सर्वदा क्षीरं सर्पिरथो मधु ।१२
मत ते शिरो यत् ते सुख यौ कर्णो ये च ते हनू ।
आभिक्षां दुह्लतां दावे क्षोरं सर्पिरथो मधु ।१३
यौ त ओष्ठौ ये नासिके ये शृङ्गे ये च तेऽक्षिणी ।
आमिक्षां दुह्लतां दात्रे क्षीर सर्पिरथो मधु ।१४
यस्ते क्लोमा यद्ध दयं पुरीतत् सहकण्ठिका ।
आमिक्षां दुह्लतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ।१५
यत् ते षक्टद् ये मतस्ने यदान्त्रं याश्चते गुदाः ।
आभिक्षां नुह्लतां दाज्ञे क्षीरं सर्पिरथो मधु ।१६
यस्ते प्लाशिर्यो वनिष्ठुर्यो कुक्षा यच्च चर्म ते ।
आमिक्षां दुह्लतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ।१७
यस्ते मजः यदस्थि यन्मांस यच्च लोहितम् ।
अभिक्षां दुह्लतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ।
यौ ते बाहू ये दोषणो यायसो या च ते ककुत् ।
आमिक्षां दुह्लतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ।१९

यास्ते ग्रीवा ये स्कन्धा याः पृष्टीर्याश्च पर्शवः ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथ मधु ।२०

हे शतौदने ! तू घृत का प्रोक्षण करती हुई देवगण को प्राप्त होगी। तू पक्ता को हिंसा न करती हुई स्वर्ग को गमन करेगी ।११। पृथिवी, स्वर्ग और अन्तरिक्ष में वास करने वाले देवताओं के लिए तू दूध, घृत और मधु का सदा दोहन करती रहे ।१२। तेरा शिर मुख, कान, ठोड़ी दाता के लिए आमिक्षा, दूध, घृत और मधु दोहन करें ।१३। ओष्ठ, नासिक, सींग और चक्षु दानदाता यजमान के लिए आमिक्षा दूध, घृत और शहद दोहन करें ।१४। तेरा क्लोक पुरीतत् हृदय और कण्ठ-नाड़ी दान देने वाले के लिए आमिक्षा, दूध, घृत और मधु का दोहन करें ।१५। तेरा यकृत, अन्तड़ियाँ और गुदा की नसें दाता के निमित्त आमिक्षा, दूध, घृत और मधु का दोहन करें ।१६। तेरा प्लासि, वनिष्ठु कुक्षियाँ और चर्म दाता के निमित्त आमिक्षा, दूध, घृत और मधु का दोहन करे ।१७। तेरी मज्जा, हड्डी, माँस और रक्त का दान करने वाले के लिए आमिक्षा, दूध, घृत और मधु का दोहन करें ।१८। तेरी भुजा, अंश और ककुद् दान देने वाले के लिए आमिक्षा, दूध, घृत और मधु का दोहन करे ।१९। तेरी ग्रीवा, कन्धे पृष्ठि, पसलियाँ दाता के लिये आमिक्षा, दूध, घृत और मधु का दोहन करें ।२०।

यौ त उरू अष्टोवन्तौ ये श्रोणो या च द भसत् ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ।२१
यत् ने पुच्छं ये ते वाला यदधो ये च ते स्मनाः ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ।२२
यास्ते जंघायाः कृष्ठिका ऋच्छारा ये च ते शफाः ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीर सर्पिरथो मधु ।२३
यत् ते चर्म शतौदने यानि लोमान्यघ्न्ये ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ।२४

काडौ ते स्तां पुरोडाशावाज्येकाभिधारितो ।
तो पक्षो देवि कृत्वा सा पक्नरं दि वह ।२५
उलूखते मुसले यश्च चर्मणि यो बा शूप तण्ड्रल: कण: ।
यं बा त्रातो मातरिश्वा पवमानो मभाथाग्निष्टद्धोता सुहुतं
कृणोतु ।२६

अपो देवीर्मधुमतीर्घृतश्चुतो ब्रह्माणं हस्तेषु प्रपृथक सादयामि ।
यत्काम इदमभिषिश्चामि वोऽहं तन्मे सर्वं सं पद्यतां वयं स्याभ
पतयो रयीणाम् ।२७

तेरे उरु, अष्टीवान् श्रोणी और कटिदान करने वाले के लिए आमिक्षा दूध, घृत और मधु देने वाले हो ।२१। तेरी पूँछ, गाल, ऐन और धन दानी के लिए आमिक्षा, दूध, घृत और मधु देने वाले हों ।२२। तेरी जाँघें, कुष्ठिका, सुम और ऋच्छा दान देने वाले के लिए आमिक्षा, दूध, घृत और मधु देने वाले हों ।२३। हे शतौदने ! तेरा चर्म और तेरे लोम दानी के निमित्त आमिक्षा, दूध, घृत और मधु देने वाले हों ।२४। हे देवि तेरे क्रोड़ घृत से युक्त पुरोडाश हो । तू उन्हें पङ्ख बनाकर पक्ता के साथ स्वर्ग को प्राप्त करे ।२५। जो धान्य-कण उलूखल मूसल, चर्म, छात्र में रहा है और मातरिश्वा ने जिसका मन्थन कर शुद्ध किया है, उसे होतागण अग्नि में सुहुत करें ।२६। घृत समान सार को देने वाली मधुमयी जलदेवियों को ब्राह्मणों से पृथक्-पृथक् देता हूँ । हे ब्राह्मणे ! जिस अभीष्ट के निमित्त मैं तुम्हें सींचता हूं वह सब धन से सम्पन्न हो ।२७।

सूक्त—१०

(ऋषि—कश्यप: । देवता—वशा । छन्द—अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, गायत्री)

नमस्ते जायमानायै जाताया उत ते नम: ।
वालेभ्य: शफेभ्यो रूपायाध्न्येन्ते नम: ।१
यौ विद्यात् सप्त प्रवता सप्त विद्यात् परावत: ।
शिरो यज्ञस्य यो विद्यात स वशां प्रति गृह्णीयात ।२

वेदाहं सम प्रवतः सप्त वेद परावतः ।
शिरो यज्ञस्याहं वेद सोम चास्यां विचक्षणम् ।३
यया द्यौर्यया पृथिवी ययापो गुपिता इमाः ।
वशां सहस्रधारां ब्रह्मणाच्छावदामसि ।४
शत कंसा शतं दोग्धारः शत गोप्तारो अधि पृष्ठे अस्याः ।
ये देवास्तस्यां प्राणन्ति ते वशां विदुरेकधा ।५
यज्ञपदीराक्षीरा स्वधाशणा महीलुका ।
वशा रजयपत्नी देवां अप्येति ब्रह्मणा ।६
अनु त्वग्निः प्राविशदनु सोमो वशे त्वा ।
ऊधास्ते भद्रे पर्जन्यो विद्युतस्ते स्तना वशे ।७
अपस्त्वं धुक्षे प्रथमा उर्वरा अपरा वशे ।
तृतीयं राष्ट्रं धक्षेऽन्नं क्षीरं वशे त्वम् ।८
यदादित्यैर्हूं ययानोपातिष्ट ऋतावरि ।
इन्द्रः सहस्र पहस्र पात्रान्त्सोमं त्वापाययद् वशे ।९
यदनूचीन्द्रमैरात् त्व ऋषभोऽह्वयत् ।
यन्मात् ते वृत्रहा पयः क्षीरं ऋद्धोऽहरद् वशे ।१०

हे अघ्न्ये ! तुझ उत्पन्न होने वाली को नमस्कार, तेरे बालों और खरों के लिए नमस्कार ।१। जो वशा गो की सात वस्तुओं तथा वशा से दूर रखने वाली सात वस्तुओं को जानता है और जो यज्ञ के शीर्ष का ज्ञाता है, वह दशा को ग्रहण करने में समर्थ है ।२। मैं सात प्रवतों, सात परावतों यज्ञ के शीर्ष और उसमें निहित सोम को भी जानता हूँ ।३। आकाश, पृथ्वी और यह जल जिस वशा द्वारा रक्षित हैं, उस सहस्रधार वाली वशा से हम सामने होकर मन्त्र द्वारा वार्तालाप करते है ।४। इस की पीठ में दूध, के पात्र और सौ दुग्धा हैं । इसमें प्राणन करने वाले विद्वान् वशा को एक प्रकार से जानते हैं ।५। यज्ञपदी, इस क्षीरा स्वाधाप्राणा तथा पर्जन्य की पत्नी रूप वशा, तन्त्र शक्ति से देवताओं को

सन्तुष्ट करती है ।६। हे वसे ! तुझमें सोम और अग्नि ने प्रवेश किया है । पर्जन्य तेरा ऐन और विद्युत रूप तेरे स्तन हैं ।७। हे वशे ! तू जल प्रदायिनी है, उर्वर वस्तुओं को भी देती है, तृतीय राष्ट्र को देती हुई अन्न, दुग्धादि प्रदान करती है ।८। तू आदित्यों द्वारा बुलाई जाने पर उनके पास गई थी, तब तुझे इन्द्र ने सहस्र पात्रों से सोम पिलाया था ।९। जब तू इन्द्र के समीप थी तब ऋषभ ने तेरा आह्वान किया था और वृत्रहा ने रुष्ट होकर तेरे दूध को हर लिया था ।१०।

यत् ते क्रुद्धो धनपतिरा क्षीरमहरद् वशे ।
इदं तदद्य नोकस्त्रिषु यात्रषु रक्षित ।11
त्रिषु पात्रेषु तं सोमसा देव्य हरद् वशा ।
अथर्वा यत्र दीक्षितो र्वाहिष्पास्त हिरण्यये ।12
सं हि सोमेनागत समु सर्वेंण पद्वता ।
वशा समुद्रमध्यष्ठाद गन्धर्वैः कलिभिः सह ।१३
स हि त्रातेनागत समु सर्वैः पतत्रिभिः ।
वशा सभेद्रे प्रानृत्यद्दवा समोनि विभ्रती ।१४
संहि सूर्येणगत समु सर्वेण चक्षुषा ।
वशां समुद्रमत्यख्यद् भद्रा ज्योतीषि विभ्रती ।1५
अभोवृता हिरण्येन यद्धतिष्ठ ऋतावरि ।
अश्वः समुद्रो भूत्वाध्यस्कदद् वशे त्वा ।१६
तद् भद्राः समगच्छन्त वशा देष्ट्रयथो स्वधा ।
तथर्वा यत्र दीक्षितो बर्सिष्यान्त हिरण्यये ।१७
वशा माता राजन्यस्य वशा मातास्वधे तब ।
वशाया यज्ञ आयुधं ततश्चित्तसजायत ।१८
ऊर्ध्वो बिन्दुरुदचरद् ब्रह्मणः ककुदादधि ।

ततस्त्वं जिज्ञषे वशे ततो होताजायत ।१९
आस्नस्ते गाथा अभवन्नुष्णिहाभ्यो बल वशे ।
अजास्याज्जज्ञे यज्ञ स्तनेभ्यो रश्मयस्तव ।२०

रुष्ट धनपति ने तेरे जिस दुग्ध को हर लिया था, उसे तीन पात्रों में रख स्वर्ग रक्षा कर रहा है ।११। देवी वशा ने उस सोम को तीन पात्रों में भरा, वहाँ सुन्दर कुशा पर अथर्वा बिराजमान हुए ।१२। सोम और सब पानयुक्तों के साथ सुसंगत हुई वशा कलि और गन्धर्वों सहित जल पर प्रतिष्ठित है ।१३। वह वशा वायु और सब पदायुक्तों के साथ सुसंगत होती हुई ऋचा और सामों को धारण करती हुई, ज्योतियों को धारण करती हुई समुद्र में नृत्य करती है ।१४। सूर्य तथा सबके नेत्रों से सुसंगत हुई, ज्योतियों को धारण करने वाली वशा ने सिन्धु में भी अधिक प्रशस्ति को प्राप्त किया ।१५। हे वशे ! तू सुवर्ण से विभूषित हुई खड़ी थी तब द्रुतगामी समुद्र अधिस्कन्दित हो गये थे ।१६। जहाँ दीक्षित अथर्वा कुशाओं पर बैठते हैं वहाँ वशा द्रेष्टी और स्वधा मङ्गल करने वाली हो जाती है ।१७। हे स्वधे ! वशा क्षत्रिय को उत्पन्न करने वाली है वैसे ही तेरी ही रचने वाली है । वशा का शस्त्र यज्ञ है फिर चित्त उत्पन्न हुआ है ।१८। हे वशे ! ब्रह्म के ककुद से उभरने वाले एक बिन्दु से तू उत्पन्न हुई और फिर होता उत्पन्न हुआ ।१९। हे वशे ! गाथायें तेरे मुख से निकलीं, उष्णिहा नाड़ियों से बल उत्पन्न हुआ, बल से यज्ञ हुआ और तेरे स्तनों से किरणें उत्पन्न हुई ।२०।

ईर्माभ्यामयनं जातं सक्थिभ्यां च वशे तव. ।
आन्त्रेभ्यो जज्ञिरे अत्रा उदरादधि वीरुधः ।२१
यदुदरं वरुणस्यानुप्राविशथा वशे ।
ततस्त्व ब्रह्मोदह्वयत् स हि नेत्रभवेत् तव ।२२
सर्वे गर्भादवेपन्त जायमानादसूस्त्राः ।
ससूव हि तामाहुर्वशेति ब्रह्माभिः क्लृप्तः स ह्यास्या बन्धुः ।२३

युध एकः सं सृजति ये अस्या एक इद वशी ।
तरांसि यज्ञा अभवन तरसां चक्षु रभवद् वशा ।२४

वशा यज्ञं प्रत्यगृह्णाद् वशां सूर्यमधारयत् ।
वशावामन्तरविशवोदनो ब्रह्मणा सह ।२५

यशामेवामुतमाहुर्वशां मृत्युमुपासते ।
वशेद् सर्वमभवद् देवा मनुष्या असुरा पितर ऋषयः ।२६

य एव विद्यात् स वशां प्रति गृह्णीयात् ।
यथा हि यज्ञः सर्वपाद् दुहे दात्रेऽनपस्फुरन् ।२७

तिस्रोज ह्वा वरुणस्यान्तर्दीद्यत्यासनि ।
तासां या मध्ये राजति सा वशा दुष्प्रतिग्रहा ।२८

चतुर्धा रेतो अभवद् वशायाः ।
आपस्तुरीयममृतं तुरीय यज्ञस्तुरीय पशवस्तुरीयम् ।२९

वशां द्योर्वशा पृथिवी वशा विष्णुःप्रजापतिः ।
वशाया दुग्धमपिवन्तमाध्या वसवश्च ये ।३०

वशाया दुग्धं पीत्वा साध्या वसवश्च ये ।
ते वे ब्रघ्नस्य विष्टपि पयो वस्या उपासते ।३१

सोममेनामेके दुहे घृतमेक उपासते ।
य एवं विदुषे वशां ददुस्ते गतास्त्रिदिवं दिवः ।३२

ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्वा सर्वाल्लोकान्तसमश्नुते ।
ऋतं ह्यस्यामार्पितमपि ब्रह्मणो तपः ।३३

त्रणां देवा उपजीवन्ति वशां सनुष्याज्य ।
वशदं सर्वमभवद् यावत् सूर्यो विपन्यति ।३४

हे वशे ! तेरे प्राणों और शक्तियों से अयन हुआ, आँतों से अस्त्र और

उदर से लतायें उत्पन्न हुई ।२१। हे वशे ! तू वरुण के उदर में घुस गई थी, वहाँ से ब्रह्मा ने तुझे निकाला, वहीं तेरे नेत्र को जानने वाला हुआ ।२२। जो प्राणी उत्पन्न होते हैं, वे सभी गर्भ से भयभीत होते हैं । यह वशा ही उन्हें जन्म देती है और मन्त्रों से समर्थ होने वाला कर्म ही इसका भ्राता है ।२३। एक मात्र युध ही रचने वाला है, वही इसका वशी है, तरस् यज्ञ है और यज्ञ वालों का चक्षु वशा है ।२४। यज्ञ का प्रतिग्रहण वशा करती है, वही सूर्य को यथास्थान रखती है, ब्रह्मा सहित ओदन भी वशा में निहित है ।२५। वशा ही अमृत कहलाती है, मृत्युरूप से भी वह उपास्य है । देवता, पितर ऋषि और मनुष्य सभी वशानयुक्त थे ।२६। इस प्रकार जानने वाला वशा का प्रतिग्रहण करने वाला है । सब पादों से सम्पूर्ण यज्ञ दाता को उसके कर्म का फल देने में कभी आना-कानी नहीं करता ।२७। वरुण के मुख में तीन जिह्वायें चमकती हैं । उनमें जो बीच की जिह्वा सुशोभित है, वही वशा है ।२८। वशा का रज चार मार्गों में विभक्त है—एक भाग जल, एक भाग अमृत, एक भाग पशु और एक भाग यज्ञ है ।२९। वशा ही द्यौ और पृथिवी है, वशा ही विष्णु और प्रजापति है । साध्य और वसु वशा का ही दुग्ध पान करते हैं ।३०। वशा के दूध पीने वाले साध्य और वसु सूर्य मण्डल में स्थित देव के आकाश में दुग्ध की ही आराधना करते हैं ।३१। एक सोम का दोहन करते, दूसरे घृत प्रदान करते हैं, ऐसा जानने वाले को जिन्होंने वशा दी, वे स्वर्ग में पहुँच गये ।३२। ब्राह्मण की वशा देने वाला सब लोकों के भागों को भोगता है । सत्य ब्रह्म और तप इस वशा के आश्रित है ।३३। वशा के द्वारा देवगण जीविका देते तथा मनुष्य भी उसके द्वारा जीविका दे सकते हैं । यह सब संसार जहां तक सूर्य देख सकता हैं, वह सब स्थान वशा रूप ही हैं ।३४।

॥ दशम काण्ड समाप्त ॥

एकादश काण्ड

सूक्त १-[प्रथम अनुवाक]

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—ब्रह्मोदन । छन्द—पंक्ति; त्रिष्टुप्, जगती, उष्णिक, गायत्री)

अग्ने जायस्वादितिर्नाथितय ब्रह्मौदनं पचति पुत्रकामा ।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते मन्थन्तु प्रजया सहेह ।१।
कृणुत धूमं वृषण सखायोऽद्रोघाविता वाचमच्छ ।
अयमग्निः पृतनाषाट सुवीरो येन देवा असहन्त दस्यून ।२।
अग्नेऽजनिष्ठा महते वीर्याय ब्रह्मोदनाय पक्तवे जातवेदः ।
सप्तऋषियो भूतकृतस्ते त्वाजीजनन्नस्य रयिं सवयीरं नि यच्च ।
।३।
समिद्धो अग्ने समिधा समिध्यस्व विद्वान देवान यज्ञियां एह वक्षः।
तेभ्यो हविः श्रपयञ्चजातवेद उत्तम नाकमधि रोहयेमम ।४।
त्र धा भागो निहितो यः पुरा देवाना पितॄणां मर्त्यानाम ।
अंशाजानीध्वं वि भजामि तान् वे यो देवानां स इमां पार
याति ।५।
अग्ने सस्वानहभिभूरभीदसि नीचो न्युब्ज द्विषतः सपत्नान् ।
इयं मात्रा मीयमाना मितः त्र सजातांस्ते बलिहृत कृणोतु ।६
साकं सजातेः पयसा सहैध्युदुब्जेनां महते वीर्याय ।
ऊर्ध्वो नाकस्याधि रोह विष्टपं स्वर्गा लोक इति यं वदन्ति ।७।
इयं मही प्रति गृहणातु चम पृथिवीदेवी सुमनस्यमाना ।
अथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम ।८।
एतो ग्रावा वाणौ सयुजापुङ्ग्ध चर्मणि निर्मिन्ध्वशून यजमानाय
साधु ।
अवघ्नतवो नि जति य इमां पृतन्यत्र ऊर्ध्वं प्रजायुद्धरन्त्युदह ।९।

गृहाणा ग्रावाणो सकृतौ वीर हस्त आ ते देवा तज्ञिया यज्ञ मगुः
त्रयो वरा यतमांस्त्व वृणीष तास्ते समृद्धीरिहं राधयामि ।१०

यह देवमाता अदिति पुत्र की कामना करती हुई ब्रह्मोदन करना चाहती है । हें अग्ने ! तुम मंथुन से उत्पन्न होओ । मरीचि आदि सप्तर्षि भूतों के उत्पन्न करने वाले हैं, वे इस देव यश में यजमान के पुत्र पौत्रादि सहित मंथन द्वारा प्रकट करें ।१। हे सप्तर्षियो ! तुम संसार केमित्ररूप एवं अभीष्ट वर्षकहो।मंथन केद्वारा धूम को पुष्ट करो। यह अग्नि यजमानों के रक्षक है । यह ऋषा रूप स्तुतियों के शत्रू सेना को वश करते हैं, देवताओं ने अपने क्षय करने वाले शत्रु असुरों को इन्हीं के द्वारा वश किया था ।२। हे अग्ने ! तुम उत्पन्न प्राणियों के ज्ञाता हो तुम मंथन द्वारा प्रकट होते हो । तुम दाह-पाक से समर्थ हो । मुझे अत्यन्त वीर्य प्रदान करने के लिए मन्त्र शक्ति से प्रदीप्त होते हो । तुम्हें सप्तर्षियों ने ब्रह्मोदन के निमित्त प्रकट किया हैं । इसलिए तुम इस पत्नी को पुत्रादि धन प्रदान करो ।३। हे अग्ने ! तुम समाधियों के लिए हवि पकाओ और इस यजमान के देहावसान पर इसे स्वर्ग में स्थित करो ।४। हे देवताओ ! अग्नि आदि, पिता, पितामह, प्रपितामह आदि तथा ब्रह्मणादि को जो भाग, तीन भागों में बाँटकर रखा था, उसे अपने अंश को जान लो । इनसे देव-भाग अग्नि में जाकर यजमान की इस पत्नी को अभीष्ट फल देने वाला हो ।५। हे अग्ने ! तुम शत्रुओं को वश करने वाले वल से युक्त हो । तुम हमारे शत्रुओं को वश करन वाले वल से युक्त हो । तुम हमारे शत्रुओं को नीचे गिराओ । हे यजमान ! यह शाला द्रव्य की भेंट लेने वाले पुत्रादि को मुझे प्राप्त करावे ।६। हें यजमान तू वृद्धि को प्राप्त हो । इसको अधिक पराक्रम के लिए उन्नति कर और देहावसान के पश्चात् उन्नत स्वर्ग आरोहण कर ।७। सम्मुख वर्तमान यज्ञभूमि चर्म को स्वीकृत करे । यह पृथिवी फैलने पर हम पर कृपा करने वाली हो। इसको कृपा को प्रणाम कर हम यज्ञ आदि से उत्पन्न पुण्यफल के कारणरूप लोक को प्राप्त हों ।

करें ।८। हे ऋत्विक् ! तुम इन उलखन मूसल को इस फैले हुए अजिन में स्थापित करो और यजमान के लिए धानों को सुन्दर बनाओ । हे पत्नि ! हमारी प्रजा को नष्ट करने वाले शत्रुओं को रोक और अहवन के पश्चात् मूसल को उठाती हुई हमारी सन्तान को श्रेष्ठ पद प्राप्त करो ९। हे अध्यर्वो ! तुम उत्तम कर्म वाले हाथों में ओखली-मूसल को ग्रहण करो । देवता तुम्हारे यज्ञ में आ गये हैं । हे यजमान ! तू जिन तीन वीरों की याचना करना चाहता है, उन कर्म की समृद्धि, फल को समृद्धि और परलोक की समृद्धि इन तीनों को इस यज्ञ द्वारा सिद्ध करता हूँ ।१०।

इयं ते धीतरिदम ते जनित्रं गृह्णातु त्वामदितिः शूरपुत्रा ।
परा पुनीहि य इमां पृतन्तवोऽस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ।११
उपश्वसे द्रवये सीदता यूयं वि बिच्यध्वं यज्ञियासस्तुषैः ।
श्रिया समा बनति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि ।१२
परेहि नारि पुवरेहि क्षिप्रमपां त्वा गोष्ठोऽध्यरुक्षद् भराय ।
तारां गृहींताद यतमा यज्ञिया असन् विभाज्व धीरीतर
जहीतात् । १३
एमा अगुर्योषितः शुम्भमानाउत्तिष्ठा नारि तवस रभस्व ।
सुपत्नी पत्या प्रजयाप्रजावत्तात्वागन् यज्ञः प्रति कुम्भ गृभाय।१४
ऊर्जो भागो निहितो यः पूरा व ऋषिप्रशिष्टाप आ भरैतः ।
अयं यज्ञो गातुविन्नाथ वित् प्रजाविदुग्रः पशुविद् वीरविद् वो
अस्तु ।१५
अग्ने चरुर्यज्ञियस्त्वाध्यरुक्षच्छुचिस्तपिष्ठस्तपसः तपैनम ।
आर्षेया देवा अभिसंगऽय भागमिमं तपिष्ठ ऋतुभिस्यपन्तु ।१६
शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इना अपश्चारुमव सर्पन्तु शुभ्रैः ।
अदुः प्रजां बहुलां पशून न । पक्तौदनस्य सुकृतामेतु लोकम् ।१७
ब्रह्मणा शुद्धा उत पूता घृतेन सोमस्यांशवस्तण्डला यज्ञिया इमे।
अपः प्रविशत् प्रति गृह्णात् वश्चरुरिमं पक्त्वा सुकृतामेत, लोकम्
।१८।

उरु प्रथस्व महतां महिम्ना सहस्रा पृष्ठः सुकृतस्य लोके।
पितामहा पितरः प्रजोपजाहंपक्ता पञ्चदशस्ते अस्मि ।१९
सहस्रपृष्ठ शतधारो अक्षितो ब्रह्मौदनो देवयानः स्वर्गः।
अमूस्त अः दधामि प्रजया रेषये नान् बलिहारायमृडतान्मह्यमेव ।२०।

हे सूप ! चावलों से तुषों को फटकना ही तेरा कार्य है । तुझेमित्रा वरुण, धाता आदि की माता अदिति पराणवत के हाथ में ले । इसस्त्री की हत्या के निमित्त जो शत्रु सैन्य संग्रह करना चाहते हैं, उन्हें पतित करने के लिए धनों को भुसी से अलग कर और इस पत्नी को पुत्र-पौत्रादि युक्त धेनु प्रदान कर ।११। हे चावलो ! तुम्हें सत्य फल रूप कर्म के निमित्त प्रभूत करता हूँ तुम सूप में बैठकर तुषों से पृथक हो जाओ । तुम से प्राप्त हुई लक्ष्मी द्वारा हम भी अपने शत्रुओं के पाप हों और उन्हें पाँवों से रोंद डालें ।१२। हे स्त्री ! तू जलाशय से जल लेकर शीघ्र लौट आ । जिसमें गौयें जल पीती हैं, वह गोष्ठ भरण करने के लिए तेरे शिर पर चढ़े । उन जलों में से यज्ञ योग्य जलों को ग्रहण करती हुई अयज्ञिय जलों को मत लेना ।१३। हे अलंकारों से सुसज्जित पत्नी ! यह जल लाने वाली स्त्रियाँ आ गई हैं, तू आसन से उठकर इन्हें ग्रहण कर । तू सुन्दर पति वाली पुत्र; पौत्रादि से युक्त सौभाग्य-वती हो जल के कलश को ग्रहण कर । यह यज्ञ तुझे जल रूप से प्राप्त हो ।१४। हे जलो ! ब्रह्मा ने जलो ! ब्रह्मा ने जो सारभूत भागकीतुममें कल्पना की थी, वही यहाँ लाया जायगा । हे भार्ये ! तू इन जलों को चर्म पर स्थापित कर । यह ब्रह्मोदन यज्ञ–मार्ग को प्राप्त कराने, बल देने और पुत्र-पौत्र, गवादि पशुओं को प्रदान कराने वाला है । हे यज मान की पत्नी आदि, यह यज्ञ तुम्हें इन्हीं फलों का देने वाला हो ।१५। हे अग्ने ! हवि पकाने के लिए तुम पर चरुस्थाली चढ़े और तुम अपने तेज से इसे तपाओ । गोत्र-प्रवर्तक ऋषियों के ज्ञाता आर्षेय ब्राह्मणतथा इन्द्रादि से सम्बन्धित देवता अपने-अपने भाग को पाकर इसे तपायें।१६ यह यज्ञ के योग्य निर्मल चरुस्थाली में प्रविष्ट हो । यह जल हमको पुत्रादि तथा पशुओं को देने वाले हों । ब्रह्मोदन पकाने वाला यजमान सुख के स्थान स्वर्ग को प्राप्त हो ।१७। मन्त्र से शुद्ध और घृत सेपककर दोष रहित होने वाले यह चावल सोम के अंश रूप हैं हे चावलो !तुम

यज्ञ के योग्य हो अतः चरुस्थाली में रखे हुए जलों में प्रविष्ट होओ, इस ब्रह्मोदन को पकाने वाला यजमान पुण्य लोक को प्राप्त हो।१७। हे ओदन ! तू सहस्रों अवयवो वाला हो। तेरे द्वारा पितामह आदि सात पुरुष तृप्ति को प्राप्त करते हैं। पुत्र-पुत्री तथा उनकी भी सन्तान सात पीढ़ी तक मुझसे ही तृप्ति पाते है इनके अतिरिक्त पकाने वाला मैं भी तृप्ति को प्राप्त करूँ।१९। हे यजमान ! तेरा यज्ञ सहस्रों पृष्ठ वाला तथा सैकड़ों धारों से युक्त है यह कभी क्षय को प्राप्त नहीं होता। कर्म करने वाले जिसके द्वारा इन्द्रादि देवताओं को प्राप्त होते है। हे यज्ञ ! मैं इन सजातियों को तेरे निमित्त उपस्थित करता हूँतू इन्हें पुत्र पौत्रादि से युक्त करता हुआ मुझे सुख देने वाला हो।२०।

उदेदि वेदिं प्रजय वर्धयैना नुदस्व रक्षाः प्रतरं धेह्य नाम।
श्रिया समाननति सर्वान्त्स्यामाधास्पदं द्विषतस्पादयामि।२१
अभ्यावर्तस्व पशुभिः सहैना प्रत्यङ्ना देवताभिः सहैधि।
मा त्वा प्रापच्छपथो माभिचारः स्वे क्षेत्रे अनमीवा वि राज।२२
ऋतेन तष्ठा मनसा पितैषा ब्रह्मौदनस्य विहित वेदिरग्रे।
असद्रीं शुद्धामुप धेहि नारि तत्रौदनं सादय दैवानाम्।२३।
अदितेर्हस्तां स्रुचमेता द्वितीयांसप्तऋषयो भूतकृतो यामकृणवन्।
सा गात्राणि विदुष्योदनस्य दर्विर्वेद्यामध्येत चिनोतु।२४
शत त्वा हव्यमुप सीदन्तु देवा नि सृप्याग्नेः पुनरेनान प्रसीद।
सोमेन पूतो जठरे सीद ब्राह्मणामर्षियस्ते मा रिषन् प्राशितारः।
।२५।

सोम राजन्त्संज्ञानमा वपेभ्यः सुब्रह्मणा यतमे त्वोपसीदान।
ऋषिनार्षेयास्तहसोऽधि ब्रह्मौदने सुहवा जोहवीमि।२६।
शुद्धा पूता योषितोयज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक सादयामि।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददिदंस्थ।
।२७।

इदं मे ज्योतिरमृतं हिरण्य पक्व क्षेत्रात कामदुधा म एष ।
इदं धनं निदये ब्राह्मणाषु कृणवे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ।२८
अग्नौतुषाना वप जातवेदसि परः कम्बूकां अडढि दूरम ।
एत शुश्रुम गृहराजस्य भागमथो विद्य निर्ऋतेर्भागधयम् ।२९
श्राम्यतः पचता विद्धि सुन्वतः पन्थां स्वर्ग मधि रोहयेनम् ।
येन रोहात परमापद्य तद वय उत्तमं नाक परमं व्योम ।३०

हे पके हुए ओदन ! तू वेदी में हवि रूप से स्थित होने को आ और इस पत्नी को सतानादि से समृद्ध कर । यज्ञ-हिंसक असुर को यहां से भगा हम समान पुरुषों से अधिक सम्पत्ति वाले हो मैं बैरियों को औंधे मुख डालता हूं ।२१। हे ब्रह्मोदन ! तू यजमान आदि के समान पशुबान होकर पूज्य देवताओं के सहित आ । हे यजमान दम्पत्ति ! तुम्हें अन्यों का आक्रोश प्राप्त न हो । अन्य द्वारा प्रेरित मारण-कर्म तेरे पास न आवे । तुम रोग रहित रहते हुए ऐश्वर्य को भोगने वाले होओ ।२२। ब्रह्मा से इस वेदी की रचना की । हिरण्य गर्भ ने इसे स्थापित किया । ऋषियों ने ब्रह्मोतन के लिए इस वेदी की कलपना की थी । हे स्त्री ? तू देवता, पितर और मनुष्यों को आश्रय देने वाली इस वेदी के पास आ और उस पर ओदन को रख । २३। देवमाता अदिति के द्वितीय हाथ रूप स्रुवे को सप्त ऋषियों ने बनाया । यह स्रुवा दर्वी ओदन के पके हुए शरीरों को जानती हुई वेदी पर ब्रह्मौदन को चढ़ावे ।२४। हे ओदन ! तेरे समीप पूज्य देवता आवे ! तू अग्नि से निकल कर उन्हें प्राप्त हो । दूध दही आदि सोम रस से शुद्धि को प्राप्त हुआ तू इन ब्राह्मणों के पेट में जा । यह अपने-अपने गोत्र प्रवर के ज्ञाता भोजन करके हिंसा को प्राप्त न हों ।२५। हे ब्रह्मोदन ! तू सोम से सम्बन्धित है । इन ब्राह्मणों को मोह में मत डाल, इन्हें ज्ञान दे । जो ब्राह्मण तेरे समीप स्थित है, ऋषियोंको मैं तपोत्पन्न सुन्दर आह्वान वाली पत्नी ब्रह्मौदन के निमित्त प्राप्त करती है ।२६। मैं यज्ञ के उपयुक्त, निर्मल,

पवित्र करने वाले; पाप, रहित जलों को ब्राह्मणों के हाथ पर डालता हूं। हे जलो ! मैं जिस अभीष्ट के लिए तुम्हें अभिसिंचित करता हूं। मेरे उस अभीष्ट को मरुतों सहित इन्द्र पूरा करें।२७। यह शुद्ध ओदन-धान जो आदि युक्त क्षेत्र से प्राप्त कामधेनु है और स्वर्ण मेरे स्वर्ग पथ मैं कभी न बुझने वाला दीपक है। मैं इस धन को दक्षिणा रूप में ब्राह्मणों को दे रहा हूं, यह स्वर्ग में करोड़ गुणा हो। पितरों का जो इच्छित स्वर्ग है। इसके द्वारा मैं उसका मार्ग बनाता हूं।२८। हे ऋत्विक, ब्रह्मौदन के चावलों से किये तुषों को अग्नि में डालो और फलीकरणों को पैर से पृथक करो। यह फलीकरण वास्तु नाग का भाग ३०।कहा जाता है तथा यह पाप निऋति का भी भाग रूप है।२९।ब्रह्मौ-दन ! तुम तप करने वाले सर्व यज्ञ रूप सोमाभिषव वाले यजमानों को जानकर स्वर्ग के मार्ग पर चढ़ाओ। यह श्येन पक्षी के समान जैसे भी स्वर्ग पर पहुंच सके वैसा हीं कार्य करो।

वभ्र रध्यर्वो मुखमेतद् वि मृडढयाज्याय लोक कृण।हि प्रविद्वान
घृतेन गात्रानु सार्वा वि मृडढि कृण्वे पन्था पितृषु यः स्वर्गः ।३१
व्रभ्रे रक्षा समदमा वपेभ्योऽब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान।
पुरीषिण: प्रथमानाः पुरस्तादृषेवास्ते मा रिषन प्राशिनारः।३२
आर्षेयेषु नि दध ओदन त्वा नानार्षेयाणामप्यस्त्यत्र।
अग्निमें गोप्ता मरुतश्च सर्वे विश्वे देवा अभि पक्षन्तु पक्वम्।३३।
यज्ञं दुहानं सदमित प्रपीनं पुमांसं धनुं सदन रयीणाम्।
प्रजामृतत्वमुत दीर्घमायू रायश्च पोषैरुप त्वा सदेम।३४
वृषभोऽसि स्वर्ग ऋषीनार्षेयानि गच्छ।
सुकृतां लोके सीद तत्र नौ संस्कृतम्।३५
समाचिनुष्वानु सप्राह्यग्ने पथः कल्पय देवयानान्।
एते सुकृतैरनु ष्टच्छेम यज्ञं नाके तिष्ठन्तमधि सप्तरश्मौ।३६
येन देवा ज्योतिषा द्यामुदायन ब्रह्मोदनं पक्त्वा सुकृतस्यलोकम्।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम्।३७

हे ऋत्विक् ! इन ओदन से मुख को शुद्ध करो, फिर ओदन केमध्य में घृत के लिए गढ़ा बनाओ और सब अवयवों को घृत से सींचो। जो मार्ग स्वर्ग में पितरों के समीप है। उसी को ओदन के द्वारा बनाता हूं।३१। हे ब्रह्मोदन ! ब्राह्मण के अतिरिक्त, प्राशन हेतु जो क्षत्रिय तेरे पास बैठें, उन्हें युद्ध-कलह प्रदान कर। जो गोत्र प्रवर आदि के ज्ञाता ऋषि बैठें वे पशु आदि से सम्पन्न हों। वे प्राशन करने वाले ब्राह्मण नाश को प्राप्त न हों।३२। हे ओदन! मैं तुझे आर्षेय ब्राह्मणों में स्थित करता हूं। इस ब्रह्मादन अनार्षेयों की सम्भावना नहीं है। अग्नि,मरुद-वरुण आदि सब देवता सब ओर से इस ब्रह्मोदन की रक्षा करने वाले हों। बह ब्रह्मोदन यज्ञों को उत्पन्न करने वाला, प्रवृद्धाधस्क, धनों का घर और पुगव रूप है। है ब्रह्मौदन ! हम तेरे द्वारा पुत्र, पौत्रादि धन-पुष्टि और दीर्घ आयु को प्राप्त करने वाले हों।३३। हे काम्य वर्षक ब्रह्मोदन ! तू स्वर्ग प्राप्त करने वाला है अत: आर्षेय ब्राह्मणों का मेरे द्वारा प्राप्त हो और फिर पुण्यात्माओं के फलेभूत स्वर्ग में जा। वहाँ हमारा तेरा संस्कार गुण होगा।३५। हे ओदन ! तू समाचयन करता हुआ गन्तव्यों का प्राप्त हो। हे अग्ने ! इस ओदन के गमन के लिएदेव मार्ग पर जाने बाले यानों को बनाओ और हम भी इन मार्गों से ही स्वर्ग में स्थित यज्ञ के अनुगामी हों।३६। ब्रह्मोदन कर्म द्वारा ही इन्द्रादि देवता देवयान मार्ग से स्वर्ग को गए। इसलिए जिसका नाम देवयान मार्ग हुआ, हम भी अपने पुण्यकर्म द्वारा उसी मार्ग से उसी लोक को प्राप्त हों, हम पहले स्वर्ग में चढ़े और फिर नाक पृष्ठ नामक स्थान में स्थित हों।३७।

सूक्त—२

(ऋषि-अथर्वा। देवता—भवादयो मन्त्रोक्ता:। छन्द-जगती,
उष्णिक:, अनुष्टुप्,गायत्री;त्रिष्टुप्, शक्वरी)

भवाशर्वौ मृडत माभि यातं भूतपतीवशुपती नमो वाम्।
प्रतिहितामायतां मा वि स्राष्टं मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा
चतुष्पद:।१।

शुने क्रोष्ट्रे मा शरीराणि कर्तमलिक्लवेभ्यो गृध्रभ्यो ये च कृष्था।
अविष्यवः मक्षिकास्ते पशुपते वयांसि ते विघसेमा विदन्त।२।
क्रन्दाय ते प्रानाय याश्चे ते भव रोपथः।
नमस्ते रुद्र कृण्मः सहस्राक्षायमर्त्य।३।
पुरस्तात ते नयः कएम उत्तरादधरादुत।
अभोवर्गादिवस्पर्यन्तरिक्षाद ते नमः।४।
मुखाय ते पप्रपते यानि चक्षषि ते भव।
त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः।५।
अङ्गेभ्यस्त उदराय चिह्वाया आस्याय ते।
दभ्द यो गन्धाय ते नमः।६।
अस्त्रा नीलशिखण्डेन सहस्राक्षोए बाणिना।
रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि।७।
स नो भवः परि बृराकतु विश्वत आपइवाग्नि परि वृएक्तु नो भवः।
मनीऽभि मांस्त वमो अस्त्वस्मैं।८।
चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय पशुपते नमस्ते।
तवेमे पञ्च पशवो विभक्त गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः।९।
व चतस्र प्रदिशस्तव द्यौस्तव पृथिवी तवेदमुग्रोर्वन्तीरक्षम।
तवेद सर्वमात्मन्वद यत् प्राणात पृथिवोमनु।१०।

हे भव, शर्व देवताओ ! तुम हमको सुख दो। रक्षा के लिए मेरे सामने चलो। हे भूतेश्वरी ! तुम गवादि पशुओं के पालक हो। मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। इससे प्रसन्न हुए तुम मेरी ओर अपने बाण कोमत छोड़ो और हमारे दुपाये, चौपायो का भी संहार मत करो।१। हे भव शर्व ! हमारे देहों को मांस भक्षी गिद्धों, कुत्तों, गीदड़ों के लिए मत करो। तुम्हारी जो मक्षिकायें और पक्षी है, वे खाद्यान्न रूप में मुझे प्राप्त न करें।२। हे भव! तुम्हारे प्राण वायु और क्रन्द शब्द कोहमारा

नमस्कार है। तुम्हारे मायामय शरीरों को नमस्कार है। हे संसार के साक्षिदेव ! तुम अमरणधर्म वाले को हमारा नमस्कार है ।३। हे रुद्र ! पूर्व, उत्तर और दक्षिण दिशाओं से हम तुम्हें नमस्कार करते हैं। तुम कोकश के मध्य में सबके नियता रूप से प्रतिष्ठित हो। हमारा नमस्कार है ।४। हे भवदेव ! तुम्हारे मुख, चक्षु, त्वचा और नील पीतवर्ण को नमस्कार है। तुम्हारी समान रूप वाली दृष्टि को नमस्कार हैं। हे देव ! मेरा नमस्कार ग्रहण करो ।५। तुम्हारे उदर, जिह्वा, दांत, घ्राणेन्द्रिय तथा अन्य अङ्गों के लिए हम नमस्कार करते हैं ।६। नीले केश, सहस्राक्ष, अश्व के समान वेग वाले, आधी सेना का शीघ्र नाश कर देने वाले रुद्र के द्वारा हम कभी आहत न किये जांय ।७। जिन भव की महिमा प्रत्यक्ष है, वे हमें सब उत्पातों से पृथक् रखे। अग्नि जैसे जलको छोड़ता है वैसे ही रुद्र हमको छोड़ दे। भवदेव को नमस्कार है। यह मुझे पीड़ित न करे ।८।शर्वदेव को चार बार नमस्कारभवदेव को आठ वार नमस्कार है। हे पशुपते ! तुम्हें दस बार नमस्कार। विभिन्न जाति वाले गवादि जीवों और पुरुषों की रक्षा करो ।९। हे रुद्र तुम प्रचण्ड वय वाले हो। यह चारों दिशायें तुम्हारी ही हैं। यह स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरिक्ष, सब दिशायें तुम्हारा शरीर रूप ही हैं। तुमसब पर कृपा करने वाले और पूजनीय हो ।१०।

उरु कोशो वसुधानस्तवायं यस्मिन्निमा विश्व भुवनान्यन्त:
स नो मृड पशुपते नमस्ते पर: क्रोष्टारो अभिभा: श्वा।
परो यन्त्वघरुदो विकेश्य: ।११
धनुर्विभर्षि हरितं हिरणमयं सहस्रघ्नि शतवधं शिखण्डिन।
रुद्रस्येषुश्चरयि देवहेतिस्तस्यै नमो यतमस्यां दिशीत: ।१२
योभियातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति।
पश्चादनुप्रयुङ्क्ष तं विद्धस्य पदनीरिव ।१३
भवारुद्रो सयुजा संविदानावुग्रोचरतो वीर्याय।
ताभ्यां दमा यतमस्यां दिशीत: ।१४

नमस्तेऽस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते मनः ।१५
नमः साय नमः प्रायर्नमो रात्र्या नमो दिवा ।
भवाय च शर्वाय चोभा यामकरं नमः ।१६
सपस्त्राक्षमातिपश्यं पुरस्ताद रुनुमस्यातं बहुधा विपश्चितम् ।
मोपाराम जिह्वयेयमानम् ।१७
श्याव श्वं कृष्णमसित मृणान्तं भीमं रथ केशिनः पादयन्तम् ।
पूर्वे प्रतीमो नमो अस्त्वस्मै ।१८
मा नोऽभिस्त्रा मत्यं देवहेतिं मा नः क्रुधः पशुपते नमस्ते ।
अन्यत्रास्मद दिव्यां शाखां बिधूनु ।१९
मा नो हिंसीरधि नो ब्रूहि परि णो वृङ्ग्धि मा क्रुधः ।
मा त्वया समरामहि ।२०

हे पशुपते ! निवास के कारण रूप कर्म जहाँ किये जाते हैं, वह अण्डकटाहात्मक कोश तुम्हारा ही है। इसी में सब भूत निवास करते हैं तुम हमको सुख दो। तुम्हें नमस्कार है। मांस भक्षक सियार, कुत्ते आदि हमसे दूर हो अमङ्गलकारिणी पिशाचिनी भी अन्यत्र गमन करें ।११। हे रुद्र ! तुम प्रत्यकाल में संहारात्मक धनुष धारण करते हो ।वह हरित सुवर्ण निमित्त धनुष सहस्रों को एक ही बार में समाप्त कर देता है। तुम्हारे ऐसे धनुष को प्रणाम! रुद्र का वाण 'सब ओर अबाध गति से जाता है, वह बाण जिस दशा में हो, उसी दिशा में उस बाण को हम प्रणाम करते हैं।१२। हे रुद्र ! जो पुरुष असमर्थ होकर तुम्हारे सामने से भाग जाता है, उस अपराधी को तुम उचित दण्ड देने में समर्थ हो। जैसे आहत पुरुष छिपे हुए के हृद चिह्न द्वारा पहुंच कर उसे पकड़ कर मारता है। वैसा ही तुम करते हो ।१३। भव और रुद्र समान मति वाले मित्र रूप हैं। वे प्रचण्ड पराक्रमी किसी से न दबते हुए, अपना शौर्य प्रकट करते हुए घूमते हैं। उनको नमस्कार है। वे जिस दिशा में विराजमान हो, उसी दिशा में उनको हमारा

प्रणाम प्राप्त हो ।४। हे रुद्र ! हमारे सामने आते हुए तुम्हें नमस्कार है । हम से लौटकर जाते हुए तुम्हें नमस्कार है । तुम्हें बैठे हुए और खड़े हुए भी हमारा नमस्कार है ।१५। हे रुद्र ! तुम्हें सायंकाल, प्रातः काल रात्रि और दिन में भी हम नमस्कार करते हैं । भव और शर्व दोनों देवताओं को हमारा नमस्कार है ।१६। अत्यन्त सूक्ष्मदर्शी सहस्रों नेत्र वाले मेधावी; असंख्य बाण छोड़ने वाले और संसार को व्याप्त करते हुए रुद्र के पास से हम न जांय ।१०। श्यावाश्व वाले, कृष्ण परिच्छेद को मथने वाले जिन्होंने केशी नामक दैत्य के रथ को गिरा दिया था; जिनसे संसार डरता है उन रुद्र को अपने रक्षक से धन्य स्तोताओं से भी पहले से जानते हैं । उनको हमारा नमस्कार है ।१८। हे रुद्र ! हम मरणधर्म वालों पर अपने बाण मत चलाओ । हम पर क्रोध न करो । दिव्य शाखा के समान अपने दिव्यास्त्र को हमसे पृथक् छोड़ो । तुम्हारे लिए हम नमस्कार करते हैं ।१६। हे रुद्र ! हमारे प्रति हिंसात्मक भाव मत रखो । हमको अपनी कृपा के योग्य मानो । हम पर क्रोध मत करो । तुम्हारा शस्त्र हमसे पृथक् रहे । हम आपके क्रोधित भाव से पृथक ही रहें ।२०।

मा नो गोषु पुरुषेषु मा गृधो नो अजाविषु ।
अन्यत्रोग्र वतय पियारूर्णां प्रजा जहि ।२१।
यस्य तक्मा का सका हेतरेकमश्वस्येव बृषणः क्रन्द एति ।
अभिपूर्वं निर्णायते नमो अस्त्वस्मै ।२२।
योन्तरिक्षे तिष्ठति विष्टभितो ऽयज्वनः प्रमृणान् देवपीयून ।
तस्मै नमो दशभिः शक्वरीभिः ।२३।
तुभ्यमारण्या पशवो मृगा वने हिता हंसाः सुपर्णाः शकुवा क्यांसि
तव यक्षं पशुपते अप्खन्तस्तुभ्य क्षरन्ति दिव्या आपो बृधे ।२४।
शिशुमारा अजगराः पुरीकया जषा मत्स्या येभ्यो अस्यिस ।
न ते दूर न परिष्ठास्ति ते भव सद्यः सर्वान् परि पश्यसि भूमि
पूर्वस्माद्धं स्युत्तरस्मिन न समुद्रे ।२५।

मा नो रुद्रतक्मना मा विषेणा मा नः सं स्रा दिव्येनाग्निना ।
अन्यत्रास्मद विद्यु तं पातयैताम ।२६।
भवो दिवो भव ईशे पृथिव्या भव आ पप्र उर्वान्तरिक्षम ।
तस्मै नमो यतमस्यां दिशीत. ।२७।
भव राजन यजमानाय मृड पशुनाँ हि पशुपतिर्बभूथ ।
यः श्रद्दधाति सन्ति देवा इति चतुष्पदे द्विपदेऽप्यमृड ।२८।
मा नो महान्तमुत मा नो घह बहन्तमुत मा नो वक्षयत ।
मा नो हिसीः पितरं मातरं च स्त्रां तन्व रुद्र मा रीरिषो ।२९
रुद्रस्यै लबकारेभ्यौ ऽ संसूक्तगिलेभ्यः ।
इदं महास्येभ्यः श्वभ्यो अकरं नमः ।३०।
नमस्ते घोरिणीभ्यो नमस्ते केशिनीभ्यः ।
नमो नमस्कृताभ्यो नमः सम्भुञ्जतीभ्यः ।
नमस्ते देव सेनाभ्यः सविस्त नो अभय च नः ।३१।

हे रुद्र ! हमारे गौ, पुत्र, भृत्यादि की हिंसा—कामना न करो । हमारे भेड़ बकरों की हिंसा कामना मत करो । तुम अपने शस्त्रास्त्रों को देव-विरोधियों पर छोड़कर उनकी सन्तान को ही नष्ट करो ।२१। जिन रुद्रदेव के आयुध रूप पीड़ामय कास और ज्वरादि व्याधि हैं, वे सेंचन समर्थ घोड़े की हुंकार के समान अपराधियों को प्राप्त होते है; वह आयुध कर्म को लक्ष्य में करता हुआ जो उसके योग्य होता है उसी का नाश करता है । ऐसे उन रुद्र देवता के लिए हमारा नमस्कार है ।२२। जो रुद्र अन्तरिक्ष में स्थित रहते हुए अज्ञानियों का संहार करते हैं हम उन रुद्र को हाथ जोड़कर प्रणाम करते हैं ।२३।हे पशुपते! वनमें सिंह, हिरण, बाज, हंसतथा अन्यवनचर और पक्षियों को तुम्हारेनिमित्त विधाता ने बनाया है; उन्हीं को अपने इच्छानुसार स्वीकार करो, इन गाँव के पशुओं की हिंसा मत करो। तुम्हारा पूजनीय रूप जल में स्थित है इसलिए तुम्हें अभिषिक्त करने को दिव्य जल प्रवाहमान रहते

हैं ।२४। हे रुद्र ! शिशुमार, अजगर, पुरीकय, जष मत्स्य आदि जलचर भी तुम्हारे निमित्त है, उनके लिये तुम अपने तेज शस्त्र को फेंकते हो। हे भव ! तुम से दूर कुछ नहीं है, तुम क्षण भर में परिपूर्ण पृथिवी को देखते और पूर्व से उत्तर में पहुंच जाते हो ।२५। हे रुद्र ! तुम हमको ज्वरादि रोग रूप अस्त्र से मत मिलाओ और स्थावर जङ्गम के विषसे भी मत मिलाओ। आकाश विद्युत रूप अग्नि से भी हमको मत मिलाओ। इस विद्युत रूप अस्त्र को जङ्गली पशु आदि पर हमसे दूर डालो ।२६। भवदेवता द्युलोक और पृथिवी के अधिपति हैं, आकाश-पृथिवी के मध्य में स्थित अन्तरिक्ष को वही अपने तेज से युक्त करते हैं, हे भवदेव जिन दिशाओं में हो, उनको वहीं नमस्कार है ।२७। हेभव हे राजन् ! तुम पांच प्रकार के पशुओं के स्वामी हो, जो तुम्हारेनिमित्त यज्ञ करता है, उस यजमान को सुख दो। जो पुरुष इन्द्रादि देवताओंका अपना रक्षक मानता है, उसके चोपायों दुपायों को सुख प्रदान करो।२८ हे रुद्र ! हमारे बड़े मध्यम अथवा छोटों का संहार न करो। हमारे माता पिता को मत मारो। हमको वहन करने वाले पुरुषों की हत्या न करो और हमारे शरीर की भी हिंसा न करो ।२९। रुद्र के प्रेरणा युक्त कर्म वाले प्रथम गणों को नमस्कार करता हूं, कटुभाषी गणों को नमस्कार करता हूं। मृगया निमित्त किरात वेशधारी भव के श्वनों को नमस्कार करता हूं ।३०। हे रुद्र तुम्हारी प्रभूत घोष वाली, केशिनी, चण्डेश्वर आदि सेनाओं को नमस्कार है, सह भोजन करने वाली तथा अन्य सेनाओं को भी नमस्कार है। तुम्हारी कृपा से हमारा कुशल हो और हम भय रहित हों ।३१।

सूक्त-३ (१) [दूसरा अनुवाक]

(ऋषि—अथर्वा। देवता—बार्हस्पत्योदनः। छन्द—गायत्री, पंक्तिः, अनुष्टुप् उष्णिकः, जगती, बृहती, त्रिष्टुप्)

तस्योदनस्य बृहस्पतिः शिरो ब्रह्म मुखम् ।१

द्यावापृथिवी श्रोत्रे सूर्याचन्द्रमसावक्षिणी सप्तऋषयःप्राणापानाः२

चक्षुर्मुसलं काम उलूखलम ।३
दितिः शूर्पमदिति शूर्पग्राहो वातोऽपाविनक ।४
अश्वाः कणा गावस्तण्डुला मशकास्तुषा ।५
कब्रु फल करणाः शरोऽभ्रम् ।६
श्याममयो ऽय मंसानि लोहितमस्य लोहितम् ७
त्रपु भस्म हरितं वर्णाः पुष्करमस्य गन्धः ।८
खलः पात्रं स्फ्यावसावीष अनूक्ये ।९
आन्त्राणि जत्रवो गुदा वरत्रा ।१०

इस ओदन के शिर बृहस्पति हैं और उसके कारणभूत ब्रह्म उसके मुख हैं।१। आकाश पृथिवी इसके कान, सूर्य, चन्द्र, नेत्र और मरीच्यादि सप्तर्षि उसके प्राणस्पान हैं ।३। इस ओदन के उपादान रूप मूसलइसका नेत्र है और उलूखन इसकी कामना है । दिति ही सूप है और जो सूप से छरती है, वह अदिति है तथा वायु धान और चावलों का विवेचन करने वाला है ।४। ओदन के कण अश्व हैं, तण्डुल गौ हैं और पृथक्‌की हुई भूसी मच्छर रूप है ।५। फलीकरणों का शिर जिसकी भ्रू है, वह कब्रू है, मेघ शिर हैं ।६। कुदाली आदि का उपादा काले रङ्ग का लोह इस ओदन का मांस और लाल रङ्ग वाला तांवा इसका रक्त है ।७। ओदन पकने के पश्चात जो राख होती है, वह सीमा हैं, जो ओदन का वर्ण हैं वह सुवर्ण है, ओदन की गन्ध कमल है सूप इसका पात्र है गाड़ी के अवयव इसके अस हैं, ईशायें अनूक्य हैं, वृषभों के कण्ठ में बंधी हुई रस्सियां इसकी आंतें हैं और चमड़ें का बन्धन गुदा है ।८-१०।

इयमेव पृथिवी कुम्भी भववि राध्यमातस्यैदन द्यौरफिधानम।११
सीताः पर्शवः सिकता ऊ बध्यम ।१२
ऋतं हस्तावनेजनं कुल्या पसेचनम् ।१३
ऋचा कुम्भ्यधिहितार्त्विज्येन प्रेषिता ।१४

ब्रह्मण परिगृहीता साम्ना पयढा ।१५
वृहदायवनं रथन्तरं दवि ।१६।
ऋतव पक्तांर आर्तवाः समिन्धते ।१७।
चरुं पज्वबिलमुभ घर्मीभोन्धे ।१८
ओदनेन यज्ञवचः सर्वे लोकार समाप्याः ।१९
यस्मिन्त्समुद्रो द्यौर्भू मिस्त्रयोऽव्ररपर श्रिताः ।२०।

यह पृथ्वी ही ओदन-पाक के लिए कुम्भी है, आकाश इसका ढक्कन है ।११। लांगल पद्धतियाँ इसकी पसली और नदी आनि में जो रज, है वह ऊतध्व है ।१२ सम्पूर्ण सांसारिक-जल इस हाथ धोने का जल और छोटी नदियाँ इसका उपसेचन रूप है ।१३। रक्त लक्षण वाली कुम्भी ऋग्वेद रूप अग्नि पर चढ़ी है, इसे अथर्ववेद द्वारा स्थित कियाहै और सामवेद रूप अङ्गार इसके चारों ओर लगे हैं ।१४-१५। जल में डाले हुए चावलों को मिलाकर कष्ट वृहत्साम और करछली रथन्तर साम है ।१६। ऋतुयें इस ओदन में पकाने वाली हैं । अखिल विश्वमय ओदन का पकाना समय के वश की ही वात है; उसके सिवा उसे कोई नहीं पा सकता । दिन रात ही इसे प्रज्वलित करने में समर्थ हैं ।१७। चरु को ओदन कहते हैं; उसे पकाने की स्थाली भी चरु कहलाती है । उस चरु को तेजस्वी सूर्य तपाता है ।१८। अग्निष्टोम आदि यज्ञों के द्वारा जिन लोकों की प्राप्ति बताई जाती है, वे सब लोक इस अत्यन्त प्रभाव वाले पके हुए ओदन के द्वारा प्राप्त होते हैं ।१९। जिस ओदन के नीचे ऊपर पृथिवी, समुद्र, आकाश स्थित हैं, यह वहीं ।२०।

यस्य देवा अकल्पन्तोच्छिष्टे षडशोतयः ।२१।
तबौदनस्य पृच्छामि यो अस्य महिमा महान् ।२२।
स य ओदनस्य महिमान विद्या ।२३।
नाल्प इति ब्रू यात्रानुपसेचन इति नेदं च कि चेति ।२४।
यावद् दातामिमनस्येत तन्नाति वदेत ।२५।

ब्रह्मवादिनो वदन्ति पराञ्चमोदन प्राशीः प्रत्यञ्चामिति ।२६

त्वमोदनं प्राशीस्त्वामोदना इति ।२७

पराञ्च चैनं प्राशीः प्राणास्त्वा हास्यंन्तीत्येनमाह ।२८

प्रत्यञ्च चैन प्राशीरपानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ।२९

नैवाहमोदन न सामोदनः ।३०

ओदन ऐवौदन प्राशीत् ।३१

जिस ओदन के यज्ञ से बचे हुए अंशमें चारसौ अस्सी देवता समर्थ हुए, उस ओदन से सभी लोकों की प्राप्ति सम्भव है ।२१। इस ओदन की जो महान महिमा है, मैं तुमसे पूछता हूँ ।२२। इसी महिमा को जो गुरु जानता हो, वह महिमा को अल्प न बतावे और यह भी न कहेकि उसमें दूध, घृत आदि की आवश्यकता नहीं है । केवल उसके महात्म्य को ही कहे ।२३-२४। 'वसयज्ञ' का अनुष्ठान करने वाला दानी अपने मन से जितने फल की कामना करे, उससे अधिक न कहे ।२५। ब्रह्म-वादी महर्षि परस्पर कहते हैं कि तू इस पराङ्मुख अथवा आत्माभि-मुख ओदन का प्राशन कर चुका है । तूने ओदन को खाया है याओदन ने तेरा प्राशन कर लिया है ।२७। यदि तूने पीछे स्थित ओदन का भक्षण किया है तो प्राण वायु तुमसे पृथक् हो जायगा । इस प्रकार प्राशिता से कहना चाहिए ।२८। यदि तूने प्रतिमुख ओदन का भक्षण किया है तो अपान वायु तेरा त्याग करेगा—इस प्रकार प्राशिता से कहना चाहिए ।२९। ओदन का प्रांशन मैंने किया और न ओदन नेमेरा प्राशन किया है ।३०। यह ओदन प्रपंचात्मक है । ओदन करने वाले ने इसका प्राशन स्वात्मरूप से किया ।३१।

सूक्त—३ (२)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—मन्त्रोक्ता: छन्द—त्रिष्टुप्, गायत्री, जगती, अनुष्टुप्, पंक्ति—बृहती, उष्णिक्)

ततश्चैनमन्ये शीर्ष्णा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन ।

ज्येष्ठतस्ते प्रजाँ मरिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अह नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
बृहस्पतिना शीर्ष्णा । तेनेन प्राशिषं तेनैनमजोगमम् ।
एषा वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वम सर्भ तनूः ।
सर्वांग एव सर्वतनूः सं वति य एवं वेद ।३२
ततश्चेनमन्याभ्यां श्रोत्राभ्यां प्राशीयांभ्यां चैत पूर्व ऋषयः
पाश्नन् ।
यधिरो भविष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अह नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
द्यावापृथिवीभ्यां श्रोताभ्याम् ।
ताभ्यामेन प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतन् ।
सर्वाङ्ग एव सर्व तरुः सर्वतनूः स भवति य एवं वेद ।३३

ततश्चेनमन्याभ्यामक्षीभ्यां प्राशीयाभ्यां चैतं पूर्वं ऋषयःप्राश्नन्
अन्धो भविष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
सूर्याचन्द्रमसाभ्यामक्षभ्याम् ।
ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्व परुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ।३४

ततश्चैनमन्येन मुखेन प्राशीयेंन चैत पर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
मुखतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
ब्रह्मणा मुखेन तेनैन प्राशिषं तेनैनमजीगम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनू ।

सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ।३५
ततश्चैनमन्या जिह्वाया प्राशीर्यया चैतं ऋषयः प्राश्नन् ।
जिह्वा ते मरीष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नावाञ्जच न प्रत्यञ्जचम् ।
अग्नेर्जिह्वया । तयैनं प्राशिषं तयैनभजीगगम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वांग एव सर्व परुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ।३६

ततश्चेनमन्यर्दन्तैः प्राशीर्येश्चेतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ।
दन्तास्ते शत्स्यन्तीत्येनमाहः ।
तं वा अहं नार्वाञ्जच न पराञ्चं न प्रत्यञ्चचम् ।
ऋतुभिदन्तै तैरेनं प्राशिष तैरेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्ग सर्व परुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्व परुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ।३७

ततश्चैनमन्यैः प्राणापानैः प्राशीर्यैश्चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
प्राणापानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ।
तं वा अवं नार्वाञ्चचं न प्रत्यञ्चचम् ।

सप्तऋषिभिः प्राणापानैः । तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वं परु सव तनूः ।
सर्वांग एव सर्व परुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ।३८

ततश्चंनमन्येन व्यचसा प्राणोर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
राजयक्ष्मस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चचं न पराश्च न प्रत्वञ्जचम् ।
अन्तरिक्षण व्यचसा । तेतैनं प्राशिर्ष तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वांगः सर्व परुः सर्व तनूः ।

सर्वाङ्ग एव सर्वपरु: सर्वतनू: स भवति य एवं वेद ।३९
ततश्चैनमन्येन पृष्ठन प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
विद्युत् त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चम् न पराञ्चम् न प्रत्यञ्चम् ।
दिवा पृष्ठेन । तेनैन प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एष व ओदन: सर्वाग सर्वापरु: सर्वतनू: ।
सर्वाङ्ग एव एर्वपरु: सर्व तनू: सं भवति य एवं वेद ।४०

पूर्व अनुष्ठाताओं ने जिस शिर से ओदन का प्राशन किया था, उसके अतिरिक्त अन्य शिर से तूने प्राशन किया है तो बड़े से लेकर क्रमश: तेरी सन्तान नष्ट होने लगेगी ।" अभिज्ञ पुरुष प्रतिज्ञा से ऐसा कहे । मैंने उस ओदन को अभिमुख और पराङ्गमुख होने पर भी नहीं खाया । ऋषियों ने बृहस्पति से सम्बन्धित शिर से इसका प्राशन किया था, मैंने भी ओदन-सम्बन्धी शिर से उसी प्रकार प्राशन किया है । मुख ओदन को खाया है । इस प्रकार प्राशित यह ओदन सब अङ्गों से पूर्ण शरीर वाला होकर सर्वाङ्ग फल पाता हुआ, स्वर्गादि लोकों में पहुं-चता है ।३२। 'पूर्व ऋषियों की विधि के अतिरिक्त अन्य सुनी हुई विधियों से प्राशन किया है तो तू बधिर होगा ।'' मैंने द्यावा पृथिवीरूप श्रोत्रों से इस ओदन का प्राशन किया हैं, लौकिक श्रोतों से नहींकिया । इस प्रकार से प्राशित ओदन सर्वाङ्ग पूर्ण होता हुआ फल देता है । ओदन प्राशन को इस प्रकार जानने वाला पुरुष सर्वाङ्ग फल पाताहुआ स्वर्गादि लोक प्राप्त करता है ।२३।" पूर्व ऋषियों ने जिन नेत्रों से प्राशन किया था,, तूने उसके अतिरिक्त लौकिक नेत्रों से इसका प्राशन किया है तो तू अन्धा हो जायगा ।" मैंने सूर्य चन्द्र रूपी नेत्रों से प्राशन किया है, इस प्रकार का ओदन प्राशन सर्वाङ्ग देह युक्त फल कहनेवाला है । जो इस प्रकार जानता है वह सर्वाङ्गात्मक फल को प्राप्त करता हुआ स्वर्गादि लोक में अवस्थित होता है ।३४। "जिस ब्रह्मात्मक मुखसे ऋषियों ने ओदन-प्राशन किया था, यदि तूने उसके अमिरिक्त लौकिक

मुख से इसका प्राशन किया है तो तेरी सन्तान तेरे समान ही नाश को प्राप्त होने लगेगी ।" मैंने ब्रह्मरूपी मुखसे ओदन का प्राशन किया हैजो सर्वांगपूर्ण फल का देने वाला है । जो पुरुष ओदन के प्राशन को इस प्रकार जानने वाला है, वह सर्वाङ्ग फलसे पूर्ण होकर पुण्य-फल के धाम स्वर्ग को पाता है ।३५। "ऋषियों ने जिस जिह्वा से प्राशन किया था, उसके अतिरिक्त लौकिक जिह्वा से तूने ओदन-प्राशन किया हैं तो तेरी जिह्वा से मैंने ओदन का प्राशन किया है, जो सर्वाङ्ग फल को देने वाला है । इस प्रकार जानने वाला पुरुष सर्वाङ्ग फल को प्राप्त करता स्वर्गादि में स्थित होता है ।३६। "पूर्व ऋषियों की विधि के अतिरिक्त लौकिक दाँतों से यदि तूने प्राशन किया है तो तेरे दांत नष्ट होंगे ।" मैंने ऋतु रूप दाँतों से ओदन को खायाहै, इस प्रकार किया हुआप्राशन सर्वाङ्ग फल को देता है । जो इस प्राशन को इस प्रकारजानता है, वह सर्वाङ्ग फल को प्राप्त करता हुआ स्वर्गादि में स्थित होता है ।३७। "जिस प्राणापानों से पूर्व पुरुषों ने ओदन-प्राशन किया था, तूने उससे भिन्न लौकिक प्राणापानों से इनका प्राशन किया है तो तेरे प्राणा पान रूप वायु तुझे त्याग देंगे ।" मैंने सप्तर्षि रूप प्राणापानों से इसे खाया है । इस प्रकार खाया ओदन पूर्ण शरीर होता है । इस प्रकार ओदन-प्राशन का ज्ञाता पुरुष सर्वाङ्ग फल पाता हुआ स्वर्गादि मेंस्थित होता है ।३८। जिस विधि से पूर्व ऋषियों ने इसका प्राशन किया था, तूने यदि उससे भिन्न, लौकिक विधिसे प्राशन किया है तो मुझेयक्ष्मादि रोग नष्ट कर देंगे । मैंने उसी अन्तररिक्षात्मक विधि से इसकाप्राशन किया है, जिससे यह सर्वाङ्ग पूर्ण हो जाता है । जो पुरुष ओदन प्राशन को इस प्रकार जानता है वह सर्वांग फल वाला होकर स्वर्ग में स्थित होता है ।३९। "पूर्व ऋषियों ने जिस पृष्ठ से प्राशन किया था, तूने

उसके अतिरिक्त अन्य पृष्ठ से यदि ओदन का प्राशन किया है तो विकृत तेरा संहार करेगी।" मैंने जो रूप पृष्ठ से इसका प्राशन कर यथा स्थान पहुंचाया है। इस प्रकार प्राशित यह ओदन सर्वाङ्ग पूर्ण हो जाता है। जो पुरुष ओदन-प्राशन को इस प्रकार जानता है सर्वाङ्ग फल से युक्त स्वर्गादि लोक में स्थित होता है।४०।

ततश्चौनमन्येनोरसा प्राशीर्येन चौतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्।
कृत्वा न रात्स्तसीत्येनमाह।
तं वा अह नार्वाञ्चं पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्।
पृथिव्योरसा। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्।
एष वा ओदना सर्वाङ्ग सर्वपरुः सर्वतनूः।
सर्वांग एव सर्वपरुः सर्वतनू, सं भवति य एवं वेद।४१

ततश्चौनमग्येनोदरेण प्राशीर्येन चौतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्।
उदरदा रस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराश्चं न प्रत्यञ्चम्।
सत्येनोदरेण। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्।
एष वा ओदनः सर्वांग सर्वपरु सर्वतनूः।
सर्वांग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद।४२

ततश्चौनमन्येन वस्तिना पाशीर्येम चौतंपूर्वं ऋषय प्राश्नन्।
अप्स मरिष्यस त्येनमाह।
तं वा अह नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्।
समुद्रेण वस्तिना। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्।
एषा वा ओदनः सर्वांगः सर्वपरुः सर्वतनूः।
सर्वांग एव सर्वपरु सर्वतनू सं भवति य एवं वेद।४३

ततश्चौनमन्याभ्याभूरुभ्यां प्राशोर्याभ्यां चौतं पूर्व ऋषयःपाश्नन्
उरू ते मरिष्यत इत्येनमाह।
त वा अह नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम।
मित्रावरुणयोरूरुभ्याम्। ताभ्यामेनं पाशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्

एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेदः ।४४
ततश्चैनमन्याभ्यामष्ठीवद्भयां प्राशीर्याभ्यां चैत पूर्व ऋषयः
प्राश्नन् ।
सामो भविष्यतोत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
त्वष्टु ष्ठीवद्भ्याम् । ताभ्यामेनं प्राशिष ताभ्यामेनमजीगमम्
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरु सर्वतनू स भवति य एवं वेद ।४५
ततश्चैनमन्याभ्यां पादाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः
प्राश्नन् ।
बहुचारी भविष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्च न पूत्यञ्चम् ।
अश्विनोः पादाभ्यां । ताभ्यामेनं प्राशिष ताभ्यामेनमजोगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एव वेद ।४६
ततश्चैनमन्याभ्यां प्रपदा प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नत् ।
सर्पस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न वराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
सवितुः प्रपदाभ्यां । ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वांगः सर्व परुः सर्वतनूः ।
सर्वांग एव सर्व परुः सर्व तनूः सं भवति य एवं वेद ।४७
ततश्चैनमन्याभ्यां हस्ताभ्यां प्राशोर्याभ्यां चौतं पूर्व ऋषयः
प्राश्नन् ।
व्राह्मण हनिष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अह नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
ऋतस्य हस्ताभ्याम् । ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।

ऐष वा ओदन: सर्वाङ्ग सर्वपरू: सर्वतन् ।
सर्वाङ्ग ऐव सवपरु सर्वतन् सं भवति य एव वेद ।४८
ततश्चेनमन्यया प्रतिष्ठया प्राशीयंया चैत पूर्व ऋषय: प्राश्नन् ।
अप्रतिष्ठानो ऽनायतनो मरिष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अह् नार्वाञ्च नपराञ्च: न प्रत्यञ्च: सत्ये प्रतिष्ठाय ।
तयैन प्राशिषं तयैनमजोगम ।
ऐष वा ओदन. सर्वाङ्ग सर्व परु: सर्वतन् ।
सर्वाङ्ग ऐव सर्वपरु: सर्व तन सं भवति य एवं वेद ।४९

"जिस वक्ष से पूर्व ऋषियों ने इस ओदन का प्राशन किया । तूने उस बृक्ष से नहीं किया है तो मुझे कृषि में सफलता प्राप्त नहीं होगी ।' मैंने पृथिवी रूप वक्षस्थल द्वारा इस प्राशन किया हैं, उसी से इसे यथा-स्थान पहुंचाया है । यह प्राशन सर्वाङ्ग फल वाला होता है । जो पुरुष इसे इस प्रकार जानता है । वह सर्वांगफल युक्त स्वर्गादि लोक में स्थित होता है ।४१। 'पूर्वऋषियों ने जिस उदर से ओदनका प्राशय किया था, तूने यदि उस प्रकार नहीं किया है तो तू अतिसार आदि से ग्रसितहोकर मृत्यु को प्राप्त होगा ।' मैंने सत्यरूप उदर से इसका प्राशन कर यथा-स्थान पहुंचाया है । इस प्रकार का प्राशन सर्वाङ्गफल वालाहोता जाता है । जो इसे जानता है, सर्वांगफल से सम्पन्न हुआ स्वर्गादि लोक में स्थित होता है ।४२। पूर्व ऋषियों ने जिस अस्ति द्वारा ओदन का प्राशन किया था, तूने उस वस्मि से नहीं किया है तो तू जलमें मृत्युको प्राप्त होगा ।' मैंने समुद्र रूप शक्ति से प्राशन किया हैं और उसी से इसे यथास्थान पहुंचाया है । इस प्रकार का ओदन सर्वाङ्ग फल वाला होता है । जो इसे जानता है वह सर्वांग फल से सम्पन्न होकर स्वर्गादि पुण्य लोकों में स्थित होता है ।४३। पूर्व ऋषियों ने जिन ऊरु नष्टहो जायेगी ।' मैंने मित्रावरुण रूप उरुओं से प्रशन कर उसे यथास्थान पहूंचाया है । इस प्रकार प्राशित वह ओदन सर्वांगपूर्ण होता

है। जो इस प्रकार जानता है वह सर्वाङ्ग फल से युक्त होकर स्वर्गादि लोकों में स्थित होता है।४४। 'पूर्व ऋषियों ने जिन अस्थियुक्त जांघों से ओदन का प्राशन किया था, यदि तूने उससे भिन्न किया है तो तेरी जंघायें सूख जायेगी।' मैंने त्वष्ठा की जंघाओं से इसका प्राशन कियाहै और यथास्थान पहुंचाया है। ऐसा यह प्राशन सर्वाङ्ग फल वाला होता है। जो इस प्राशित ओदन को इस प्रकार जानता है; वह स्वर्गादि पुण्य लोकों के स्थित होता है।४५। 'पूर्व ऋषियों ने जिन पांवों से ओदन का प्राशन किया था तूने यदि उससे भिन्न किया है तो तू ब्रह्मचारी हो जायेगा। मैंने अश्विद्वय के पादों से प्राशन किया है और उन्हीं से यथा स्थान पहुंचाया है। इस प्रकार प्राशित यह ओदन सर्वाङ्ग फल वाला होता है। जो इसे इस प्रकार जानता है, वह स्वर्गादि पुण्य लोकों में स्थित होता है।४६। 'पूर्व ऋषियों ने जिन पदार्थों से इसका प्राशन किया था तूने यदि उससे भिन्न किया है। तो मुझे सर्प डस लेगा। मैंने सविता के पदार्थों से इस ओदन का प्राशन किया है और उनके द्वारा ही इसे यथास्थान पहुंचाया है। इस प्रकार का यह ओदन-प्राशनसर्वाङ्ग पूर्ण होता है। जो पुरुष उसे इस प्रकार जानता है वह सर्वाङ्गफलदाता स्वर्ग में स्थित होता है।४७। पूर्व ऋषियों ने जिन हाथों से इसका प्राशन किया था, यदि तूने उससे विपरीत किया है तो ब्रह्म हत्या दोष का भागी होगा।' मैंने परब्रह्म के हाथों से प्राशन कर उसे यथास्थान पहुंचाया है। ऐसा ओदन प्राशन सर्वाङ्ग पूर्ण होता है और-प्राशन के ज्ञाता पुरुष को स्वर्ग में स्थित करता है।४८। प्राचीन ऋषियों ने जिस ब्रह्मात्मिका प्रतिष्ठा से ओदन का प्राशन किया था, तूने यदि उसके विपरीत किया है तो तू प्रतिष्ठा रहित हो जायेगा।' मैंने ब्रह्म में प्रतिष्ठित होकर उस जगप्रतिष्ठात्मकब्रह्म से ही ओदन-प्राशनकिया है और स्वर्ग में पहुंचाया है। ऐसा यह प्राशित ओदन सम्पूर्ण अङ्गवाला होता है। इसे इस प्रकार जानने वाला पुरुष सर्वाङ्गपूर्ण हुआ स्वर्ग में स्थित होता है।४९।

सूक्त—३ (३)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—मन्त्रोक्ताः। छन्द—अनुष्टुप् उष्णिक् त्रिष्टुप्, बृहती)

एतत वै ब्रध्नस्य विष्टर्प यदोदनः ।५०
ब्रध्नलोको भवति ब्रध्नस्य विष्टपि श्रयते य एवं वेद ।५१
एत-माद वा ओदनात् त्रयस्त्रिशत लोकान् ।
निरमिमीत प्रजापतिः ।५२
तेषां प्रज्ञानाय यज्ञमसृजत ।५३
स य एवं विदुष उपद्रष्टा भवति प्राण रुणद्धि ।५४
न च प्राणं रुणद्धि सर्व ज्यानि जीयते ।५५
न च सर्वं ज्यानि जीयते पुरं नं जरसः प्राणो जहाति ।५६

पूर्वोक्त महिमा से युक्त वह ओदन, अपनी महिमा से विश्व केरच-यिता एवं सूर्यमण्डल में वर्तमान ईश्वरी का मण्डल रूप ही है ।५०। जो पुरुष ओदन के सूर्य मंडलात्मक रूप का ज्ञाता है, वह सूर्य लोकको प्राप्त होता है ।५१। प्रजापति ने इस सूर्यात्मक ओदन द्वारा अष्टावसु एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, प्रजापति और वषट्कार इन तेतीस देव-ताओं की सृष्टि करते हुए उनके लोकों को भी बनाया।५२। उनलोकों के सुखों का ज्ञान कराने के लिए ही इस यज्ञका विधान किया गया।५३ इस प्रकार जानने वाले उपासक का जो पुरुष उसद्रष्टा होता है,वहउप रोधक अपने शरीर में स्थित अपने प्राणकी गति को रोक देता है, क्योंकि वह उपासक की इच्छा के विरुद्ध आचरण करता है।५४। उसके प्राणका हो अवरोध नहीं होता, वरन् सन्तान पशु आदि से हीन हुआ वह पतित हो जाता है ।५५। उसकी सर्वस्य हानि के साथ ही उसके प्राण उसे वृद्धावस्था से पूर्व ही त्याग देते है ।५६।

सूक्त—४

ऋषि—भार्गवो वैदर्भिः । देवता—प्राणः । छन्द—अनुष्टुप पंक्ति त्रिष्टूप्, जगती)

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे ।
यो भूतः सर्वस्येस्बरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ।१
नमस्ते प्राणा क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते प्राणा विद्युते नमस्ते प्राणा वर्षते ।२।
यत् प्राणा स्तनयित्नुनाभिक्रन्दत्योषथोः ।
प्रवीयन्ते गर्भान दधतेऽथो बह्वीर्भि जायन्ते ।३
यत् प्राणा ऋतावागतेऽभिन्दत्योयधीः ।
सर्वं तदा प्र मोदते यत् किं च भूम्यामधि ।४
यदा प्राणो अभ्यवर्षीद वर्षेथा पृथिवीं महीम् ।
पशवस्तत प्र मोदन्ते महो वै नो भविष्यति ।५
अभिबृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन् ।
अयुर्वै नः प्रातोतरः सर्वा नः सुरभीरकः ।६।
नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते प्राणा प्राणाते नमो अस्त्वपानते ।
पराचीनाय ते नमः प्रतीचीनाय ते नमः सर्वस्मै त इदं नमः ।८
या ते प्राणा प्रिया तनूर्यो ते प्राणा प्रयसी ।
अथो यद् भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे ।९।
प्राणाः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम ।
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणार्त यच्च न ।१०

सम्पूर्ण प्राणियों के शरीर में व्याप्त सचेष्ट को प्रणाम है, जिसके

वश में यह संसार रहता है। वह भूतकाल से अविच्छिन्न है। वह प्राणियों का ईश्वर है, उसमें सब संसार प्रतिष्ठित हैं । ऐसे उस प्राण के लिए नमस्कार है ।१। हे प्राण ! तुम ध्वनि करने वाले हों, तुम मेघ जल में विष्ट एवं गर्जनशील हो, तुम को प्रणाम है। तुम विद्युतरूपमें चमकते हो, वर्षा करने वाले हो। तुमको नमस्कार है ।२। सूर्यात्मक मेघ ध्वनि से जब प्राण औषधि आदि को अभिलक्षित करता हुआ गर्जता है तब वे औषधि आदि गर्भ-धारण में समर्थ होती हैं ।३। वर्षा ऋतु की प्राप्ति पर जब प्राण औषधियों के प्रति गर्जन करता है, तब सब हर्षित होते है पृथिवी के सभी प्राणी आनन्द में भर जाते हैं तब गवादि पशु प्रसन्न होते हैं ।४। प्राण द्वारा सींची गई औषधियां उससे कहती हैं कि हे प्राण ! तू हमको सुन्दर गन्ध वाली वना और हमारे जीवन की बृद्धि कर ।६। हे प्राण ! तुझ सुम्मुख आते और फिर कर जाते हुए को नमस्कार है। तू जहाँ कहीं स्थित हो वहीं स्थित हो वहीं स्थित को नमस्कार है ।७। हे प्राण ! तुम प्राणन व्यापक बाले और अपानन व्यापार वाले नमस्कार है। परागमनस्वभाव से स्थित,प्रनीचीन गमन वाले सब व्यापारों क कर्त्ता तुमको नमस्कार हैं ।८। हे प्राण ! यह शरीर तुम्हारा प्रिय हैं। तुम्हारी अग्नीषोमात्मक प्रेयसी और अमरत्व से युक्त जो औषधि है, उन सबके पास से अमृत गुण देने वाली भेषज के प्रदान कर ।९। जैसे पिता अपने पुत्र को ढकता है, वैसे ही प्राण मनुष्यादि को ढकते हैं। जो जगमात्मक वस्तुप्राणन व्यापारवाली है और जो स्थावरात्मक वस्तु प्राणन व्यापार से रहित है, परन्तु प्राण उनमें निरुद्धगति से बास करता है, इन सब जगमवस्थावर जीवों युक्त संसार का स्वामी प्राण ही है ।१०।

प्राणो मृत्युः प्राणास्तक्मा प्राणां उपासते ।
प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमेलोक आ दधत् ।२१
प्राणो विराट प्राणो देष्टी प्राणाँ सर्व उपासते ।
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमा प्राणामाहुः प्रजापतिम् ।२२

प्राणापानौ व्रीहियवावनड्वान् प्राण उच्यते ।
यवे ह प्राणा आहितोऽपानौ व्रीहिरुच्यते ।१३
अपानति प्राणाति पुरुषो गर्भे अन्तरा ।
यदा त्वं प्राणा जिन्वस्यथ स जायते पुनः ।१४
प्राणामाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राणा उच्यते ।
प्राणो ह भूतं भव्यं सर्वं प्रतिष्ठितम् ।१५
आथर्वणानीयङ्गिरसीर्दैवीमनुष्यजा उत ।
ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राणा जिन्वसि ।१६
यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेणा पृथिवी महीम् ।
ओषधयः प्र जायन्तेऽथो या काश्च बीरुधः ।१७
यस्ते प्राणैदवेद यस्मिमश्चाभि प्रतिष्ठितः ।
सर्वे तस्मै बालि हरानमुष्मिल्लोक उत्तमे ।१८
यथा प्राणा बालिहृतस्तुभ्य सर्वाः प्रजा इमाः ।
एवा तस्मै बालि हराम् यस्त्वा शृणवत् सुश्रव ।११
अन्तगर्भश्चरति देवयास्वाभूतोभृतः सउ जायते पुनः ।
स भूतो भव्यं भविष्यत पिया पुत्रं प्र विवेशा शचीभिः ।२०

प्राण ही शरीर से निकल कर मृत्यु उपस्थित करता है । प्राण ही जीवन को दुःख देने वाले ज्वरादि रूप तक्मा हूं । देह वर्तमान उसी प्राण की अराधना इन्द्रियां करती है । वही प्राण सत्याचरण वाले को श्रेष्ठ लोक में स्थित करता है ।११। प्राण ही विराट है, वही देष्ट्री है, ऐसे प्राण की सभी सेवा करते हैं । वही सबको प्रेरणा देने वाला सूर्य है, वही सोम है, ज्ञातीजन उस प्राण को ही प्रजापति कहते हैं ।१२। प्राणापान प्राण की ही वृत्ति है, वही व्रीहि और जो हैं । वृत्तिमानप्राण अनडवान कहता है । स्रष्टा ने जो में प्राणवृत्ति और व्रीहि में अपान-वृत्ति वाला प्राण स्थापित किया है । इन दोनों से ही सब प्राणी अपना कार्य चलाते हैं । इसलिए व्रीहि, जो और अनड्वान रूप से प्राण ही

को कहते हैं ।१३। हे प्राण ! शरीर धारण करने वाला मनुष्य स्त्री के गर्भ में तुम्हारे प्रवेश से ही अपान व्यापार और प्राणन व्यापार को करता है । तुम गर्भस्थ शिशु को माता द्वारा भोजन किये आहारसे ही पुष्ट करते हो फिर वह पुरुष पुण्य पाप का फल भोगने के लिए भूमि पर जन्म लेता है ।१४। मातरिश्वा वायु को प्राण कहते हैं । संसार का आधार भूत वायु ही प्राण है । संसार के आधारभूत प्राण में भूतकाल में उत्पन्न संसार और भविश्य में उत्पन्न होने वाला संसार आश्रय रूप में रहता है । सम्पूर्ण विश्व ही इस प्राण में प्रतिष्ठित है ।१५। हे प्राण ! जब तुम वर्षा द्वारा तृप्त करते हो तब अथर्वा अगरागोत्र बालों और देवताओं द्वारा रची गई तथा मनुष्यों द्वारा प्रकट की जाने वाली सब औषधियाँ उत्पन्न होती हैं ।१६। जब प्राण वर्षा के रूप में पृथिवी पर बरसता है, उसके पश्चात ही व्रीहि, जौ तथा लता रूप औषधियां उत्पन्न होती हैं । प्राण ! तू जिस विद्वान में प्रविष्ट होता है और जो तेरी उक्त महिमा को जानता है, सब देवता उस विद्वान को श्रेष्ठस्वर्ग में अमृतत्व प्रदान करते हैं ।१८। हे प्राण ! देवता, मनुष्यादि जैसे तुम्हारे उपभोग के योग्य अन्न को लाते हैं, वैसे ही तुम्हारी महिमा जानने वाले विद्वान के लिए भी वे लावे ।१९। मनुष्यों में ही नहीं, देवताओं में भी प्राण गर्भ रूप से घूमता है । सब ओर व्याप्त होकर वही उत्पन्न होता है । इस नित्य वर्तमान प्राण भूतकाल की और भविष्व की वस्तुओं में भी पिता का पुत्र में अपनी अवयवों से प्रविष्ट होने के समान, अपनी शक्ति से प्रवेश कर लिया है ।२०।

एकं पादं नोत्खिदति सलिल द्धंस उच्चरन ।
यदंग स तमुत्खिदेन्नैवाद्य न श्वः स्यान्न रात्री नाहः ।
स्यान्न व्युच्छत् कदा चन ।२१।
अष्टाचक्र वतत एकनेमि सहस्राक्षर प्र पुरो नि पश्चा ।
अर्धेन विश्वं जजान यदस्यार्ध कतमः केतुः ।२२
यो अस्य विश्वजन्मन ऐसे विश्वस्य चेष्टतः ।

अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राणा नमोऽस्तुते ।२३

यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टत: ।
अतन्द्रो ब्रह्मणा धीर: प्राणो मानु तिष्ठतु ।२४

ऊर्ध्व: सूप्तेषु जागार ननु तिरङनि पद्यते ।
न सुप्तमस्य सुप्तेष्वन कश्चन ।२५।

प्राणा या मत् पर्यावृतो न मदन्यो भविष्यसि ।
अपां गर्भमिवजोवसे प्राण इध्नामि त्वा तयि ।२६।

शरीर में व्याप्त प्राण को हंस कहते हैं। वह पंच भूतात्मक देह प्राणवृत्ति द्वारा ऊपर उठता हुआ अपानवृक्ति वाले एक पाद को नहीं उठाता। यदि वह अपानवृकि वाले पाद को उठा ले तो शरीर मेंप्राण निकल जाने पर शरीर का काल विभाग न हो। अन्धकार भी दूरनहो इसलिए संसार को प्राण युक्त रखने के लिए वे अपने एक पादकोस्थिर रखते हैं।२१। अष्ट धातु रूप जो चक्र हैं, उनसे युक्त शरीर प्राण रूप एक नेमी वाला कहा जाता है। यह चक्र अनेक अक्षों से युक्त है। ऐसे रथात्मक शरीर को पहले पूर्व में फिर अपर भाग में व्याप्त होकर वर्तता है। वह प्राण आधे अंश में, फिर अपर भाग में व्याप्त होकर दूसरे भाग का रूप निर्धारित शक्ति से परे हैं ।२२। जो प्राण जन्म धारण करने वाला सचराचर विश्वका अधिपति हैं, वह देहधारियों के देह में शीघ्रता से प्रतिष्ठित होता है। ऐसी महिमा वाले हे प्राण!तुम्हें नमस्कार है।२३। जो प्राण संसार का अधिपति हैं, वह प्रमाद रहित होकर वर्तमान रहे।२४। हे प्राण ! निद्रा पराधीन हुए प्राणियों में उनके रक्षार्थ तुम चैतन्य रहो। प्राणी सोता है परन्तु प्राण का सोना किसी से नहीं सुना।२५। हे प्राण ! तुम मुझसे मुख मत फिराओ। मुझसे अन्यत्र न होओ। मैं जीवन के निमित्त तुम्हें अपने शरीर में रोकता हूं। वैश्वानर अग्नि को जैसे देह में धारण करते हैं, वैसे ही मैं तुम्हे देह में धारण करता हूं।२६।

सूक्त-५ (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—ब्रह्मचारी । छन्द—त्रिष्टुप, शक्वरी, बृहती, जगती, अनुष्टुप, उष्णिक)

ब्रह्मचारीष्णांश्चरति रोदसी उभे तस्मिम् देवा: समनसोभवन्ति
स दाधार पृथिवी दिवं च स आचार्यं तपसापिपर्ति ।१।
ब्रह्मचारिणा पितरौ देवजना पृथग देवा अनुसंयन्ति सर्वे ।
गन्धर्वा एनमन्वायन् त्रयस्त्रिशत् त्रिशता: षटसहस्रा ।
सर्वान्त्स देवांस्तपसा पिपर्ति ।२
आचाय उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्त: ।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं प्रष्टुमभिसंयन्ति देवा: ।३।
इयसमित पृथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति ।
ब्रह्मचारी समिधा श्रमेणा लोकांस्तपसा पिपर्ति ।४।
पूर्वो जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी धर्म वसानस्तपसोदतिष्ठत् ।
तस्माज्जातं ब्राह्मणा ब्रह्म ज्येष्ठ देवाश्च हवै अमृतेन साकम
।५।
ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धि कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रु ।
स सद्य एति पूर्वं स्मादुत्तरं लोकान्त्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत् ।
।६।
ब्रह्मचारी जनयन ब्राह्मणो लोक प्रजापतिं परमेष्ठिन विराजम ।
गर्भो भूत्वामृतस्थ योनाविन्द्रो ह भूत्वासुरांस्ततर्ह ।७।
आचार्यं स्ततक्ष नभसो उभे इमे उर्वो गम्भरे पृथिवीं दिवं च ।
ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तस्मिन् देवा: संमनसो भवन्ति ।८।
इतां भूमि पृथिवीं ब्रह्मचारी भिक्षामा जभार प्रथमो दिव च ।
ते कृत्वा समिधाबुपास्ते तयोरार्पिता भुवनानि विश्वा ।९
अर्वागन्य: परो अन्योदिवस्तृष्ठादगुहानियौनिहितो ब्राह्मणास्य ।
तौ रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तत् केवलं कृणोते ब्रह्म विद्वान ।
।१०।

आकाश पृथिवी दोनों लोकों को व्याप्त करने वाले ब्रह्मचारी को सर्व देवता सम्पन्न मन वाले होते हैं वह अपने तप से आकाश का पोषण करता और अपने गुरु का भी पोषण करता है ।१। ब्रह्मचारी के रक्षार्थ पितर, देवता और इन्द्रादि उसके अनुगत होते हैं, विश्वासु आदि भी इसके पीछे चलते हैं । तेतीस,देवता इनकी विभूति रूप तीन सौ तीन देवता और छः सहस्र देवता इन सबका ब्रह्मचारी अपने तप द्वारा पोषण करता है ।२। उपनयन करने वाला आचार्य विद्यामय शरीर के गर्भ में उसे स्थापित करता हुआ, तीन रात तक ब्रह्मचारी को अपने उदर में रखता है, चौथे दिन देवगण उस विद्या देहसे उत्पन्नब्रह्मचारी के सम्मुख आते हैं ।३। पृथिवी इस ब्रह्मचारी की प्रथम समिधा है और आकाश द्वितीय समिधा है । आकाशपृथ्वी के मध्य अग्नि में स्थापित हुई समिधा से ब्रह्मचारी संसार को सन्तुष्ट करता है । इस प्रकार समिधा, मेखला मौञ्जी, श्रम,इन्द्रियनिग्रहात्मक खेद और देह को सन्ताप देने वाले अन्य नियमों को पालता हुआ, पृथिव्यादि लोकों का पोषण करता है ।४। ब्रह्मचारी ब्रह्म से भी पहले प्रकट हुआ, वह तेजोमयरूप धारण कर तप से युक्त हुआ, उस ब्रह्मचारी रूप से तपते हुए ब्रह्मा द्वारा श्रेष्ठ वेदात्मक ब्रह्म प्रकट हुआ और उसके द्वारा प्रतिपादित अग्नि आदि देवता भी अपने अमृतत्व आदि गुणों के सहित प्रकट हुए ।५। प्रातः सायं अग्नि में रखी समिधा और उससे उत्पन्न हुए तेज से तेजस्वी, मृगचर्म धारी जो ब्रह्मचारी अपने भिक्षादि नियमों का पालन करता है वह शीघ्र ही पूर्व समुद्र से उत्तर समुद्र पर पहुँचता है और सब लोकों को अपने समक्ष करता है ।६। ब्रह्मचर्य से महिमायुक्त ब्रह्मचारी ब्राणह्म जाति को उत्पन्न करता है । वही गंगा आदि नदियों को प्रकट करता है, स्वर्ग, प्रजापति परमेष्ठी और विराट् को उत्पन्न करता है । यह अमरलशील ब्रह्म की सत् रज-तम गुणों से युक्त प्रकृतिमें गर्भ रूप होकर सव वर्णन किये हुए प्राणियों को प्रकट करता और इन्द्र होकर राक्षसों का नाश करता है ।७। यह आकाश और पृथिवी विशाल हैं । इन पृथिवी और आकाश के उत्पादक आचार्य की भी ब्रह्मचारी रक्षा

करता है। सब देवता ऐसे ब्रह्मचारी पर कृपा रखते हैं। पृथिवी और आकाश को ब्रह्मचारी ने भिक्षा रूप में ग्रहण किया फिर उसने उन आकाश पृथिवी को समिधा बनकर अग्नि की आराधना की संसार के सब प्राणी उन्हीं आकाश-पृथिवी के आश्रय में रहते हैं।९। पृथिवी लोक में आचार्य के हृदय रूप गुहा में एक वेदात्मक विधि है। दूसरी देवात्मक निधी उपरि स्थान में है। ब्रह्मचारी इन निधियों की अपने तप से रक्षा करता है। वेद विद्व ब्राह्मण शब्द और उसके अर्थसे सम्बन्धित दोनों निधियों को ब्रह्म रूप करता है।१०।

अर्वागन्यः इतो अन्यः पृथिव्या अग्नि समेतो नभसी अन्तरेमे।
तयोः श्रयन्ते रश्मयोऽधि दृढ़ास्ताना तिष्ठति तपसा ब्रह्मचारी।११

अभिक्रन्दन् स्तनयन्नरुणाः शितिंगो बृहच्छेपोऽन् भूमौ जभार।
ब्रह्मचारी सिश्चति सानौ रेत पृथिव्यां तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः।१२

अग्नौ सूर्य चन्द्रमसि मातरिश्वन् ब्रह्मचर्यप्सु समिधमा दधाति।
तासामर्चीषि पृथगभ्रे चरन्ति तासामाज्य पुरुषो वर्षमापः।१३

आचार्यो मृत्युर्वरुणाः सोम ओषधयः पयः।
जीमूता आसन्त्सत्वानस्तोरिद स्वराभृतम्।१४

अमा घृतंकृणुते केवलमाचार्योभूत्वा वरुणाग्रद्यदैच्छत् प्रजापतौ।
तद् ब्रह्मचारी प्रायच्यत स्वान्मित्रो अध्यात्मनः।१५

आचार्यो ब्रह्मचारी प्रजापतिः।
प्रजापतिर्वि राजति विराडिन्द्रोऽभवद् वशा।१६

ब्रह्मचर्येणा तपसाराजा राष्ट्र वि रक्षति।
आचार्यो ब्रह्मार्येणा ब्रह्मारिणामिच्छते।१७

ब्रह्मचर्येणा कन्या युवानं विन्दते पतिम्।
अनडवान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घसं जिगीषति।१८

ब्रह्मचर्येणा तपसा देवा मृत्युमपाघ्मत।

इन्द्रो हं ब्रह्मचर्येणा देवेभ्यः स्वराभरत् ।१९
ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः ।
सवत्सरः सहर्तु भिस्ते जाता ब्रह्मचारिणाः ।२०

उदय न हुआ सूर्य रूप अग्नि पृथिवी से नीचे रहते हैं । पार्थिव अग्नि पृथिवी पर रहते हैं । सूर्योदय होनेपर आकाश-पृथिवीके मध्य यह दोनों अग्नियां संयुक्त होती हैं । दोनों की किरणें संयुक्त होकर दृढ़ होती हुई आकाश पृथिवी को आक्षित होता है । इन दोनों अग्नियों से सम्पन्न ब्रह्मचारी अपने तेज से अधिदेवता होता है ।११। जल पूर्ण मेघ को प्राप्त हुए वरुणदेव अपने वीर्य को पृथिवी में सींचते हैं । ब्रह्मचारी अपने तेज से उस वरुणात्मक वीर्य को ऊँचे प्रदेश में सींचता उससे चारों दिशायें समृद्ध होती हैं ।१२। ब्रह्मचारी, पार्थिव अग्नि में, चन्द्रमा, सूर्य, वायु और जल में समिधायें डालता है । इन अग्नि आदि का तेज पृथक-पृथक रूप से अन्तरिक्ष में रहता है । ब्रह्मचारी द्वारा समृद्ध अग्नि वर्षा जल, घृत, प्रजा, आदि कार्य को करते हैं ।१३। आचार्य ही मृत्यु है, वही वरुण हैं, वही सोम है । दुग्ध, व्रीहि यव और ओषधियाँ आचार्य की कृपा से ही प्राप्त होती है । अथवा यह स्वयं ही आचार्य हो गये हैं ।१४। आचार्य रूप से वरुण ने जिस जल को पास रखा, वही वरुण प्रजापति से जो फल चाहते थे, वही मित्र ने ब्रह्मचारी होकर आचार्य की दक्षिणा रूप से दिया ।१५। विद्या का उपदेश देकर आचार्य ब्रह्मचारी रूप से प्रकट हुए हैं । वही तप से महिमावान् हुए प्रजापति बने । प्रजापति से विराट होते हुए वही विश्व के स्रष्टा परमात्मा हो गये ।१६। वेद को ब्रह्म कहते हैं । वेदाध्ययन के लिये आचरणीय कर्म ब्रह्म हैं । उसी ब्रह्मचर्य के तप से राजा अपने राज्य को पुष्ट करता है और आचार्य भी ब्रह्मचर्य से ही ब्रह्मचारी को अपना शिष्य बनाने की इच्छा करता है ।१७। जिसका विवाह नहीं हुआ है । ऐसी स्त्री ब्रह्मचर्य से ही श्रेष्ठ पति प्राप्त करती है । अनडवान आदि भी ब्रह्मचर्य से ही श्रेष्ठ स्वामी को प्राप्त करती है । अश्व ब्रह्मचर्य से ही भक्षण योग्य तृणों की इच्छा करता है ।१८। अग्नि आदि देवताओं ने ब्रह्मचर्य से ही मृत्यु

को दूर किया। ब्रह्मचर्य से ही इन्द्र ने देवताओं को स्वर्ग प्राप्त कराया ।१९। व्रीहि जो आदि औषधियाँ, वनोषधियाँ, दिन-रात्रि चराचरात्मक विश्व, षट ऋतु और द्वादश मास वाला वर्ष ब्रह्मचर्य की महिमा से ही गतिमान हैं ।२०।

पार्थिवा दिव्या: पशव: आरणया ग्राम्याश्च ये ।
अपक्षा: पक्षणिश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिण: ।२१
पृथक सर्वे प्रजापत्या: प्राणानात्मसु बिभ्रति ।
तान्त्सर्वान ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिणयाभुतम् ।२२
देवानामेतत् परिषूतमनभ्यारूढ चरित रोचमानम् ।
तस्माज्जातं ब्राह्मणा ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमतेन साकम् ।२३
ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद्‌बिभर्तितस्तिन देवा अधि विश्वे समीता: ।
प्राणापानो जनयन्नाद व्यात वाचं मानो हृदयं ब्रह्म मेधाम् ।२४
चक्षु श्रात्र यशो अस्मासु धेह्यन्नं रेतो लोहितमुदरम् ।२५
तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठय तप्यमान: समुद्रे ।
स स्नातो वभ्रु पिंगल: पृथिव्यां बहु रोधते ।२६

आकाश के प्राणी, पृथिवी के देहधारी पशु आदि, पंख वाले और विना पंख वाले यह सभी ब्रह्मचर्य के प्रभाव से ही उत्पन्न हुए हैं ।२१। प्रजापति के बनाये हुए देवता मनुष्य आदि सब प्राणों को धारण-पोषण करते हैं। आचार्य के मुखसे निकला वेदात्मक ब्रह्म ही ब्रह्मचारी में स्थित होता हुआ सब प्राथियों की रक्षा करता है ।२२। वह परब्रह्म देवताओं से परोक्ष नहीं है। वह अपने सच्चिदानन्द रूप से दीप्तिवान् रहता है, उनसे श्रेष्ठ कोई नही हैं, उन्हीं के ब्राह्मण का सर्वश्रेष्ठ धन वेद प्रकट हुआ है और उससे प्रतिपाद्य देवता भी अमृतत्व सहित प्रकट हुए हैं। ।२३ ब्रह्मचारी वेदात्मक ब्रह्म को धारण करता और सब प्राणियों के प्राणापनो को प्रकट करता है फिर व्यान नामक वायु को, शब्दात्मिका

वाणी को अन्तःकरण और उसके आवास रूप हृदय को देवात्मक ब्रह्म और विद्यात्मिक बुद्धि को वही ब्रह्मचारी उत्पन्न करता है।२४। हे ब्रह्म चारिन् ! तुम हम स्तुति करने वाली में रूप-ग्राहक नेत्र, शब्द ग्राहक श्रोत्र यश और कीर्ति की स्थापना करो। अन्न, वीर्य,रक्त, उदर आदि की कल्पना करता हुआ ब्रह्मचारी तपमेंलीन रहता और स्नान से सदा पवित्र रहता है और वह अपने से दमकता है।२५-२६।

सूक्त—६

(ऋषि—शन्ताति, देवता—अग्न्यादयो मंत्रोक्ता। छन्द—अनुष्टुप्)

अग्नि ब्रूमो वनस्पतीनोषधीरुत वीरुधः।
इन्द्रं बृहस्पतिं सूर्यं ते नो मुञ्चन्त्वहसः।१
ब्रूमौ राजन वरुणाँ मित्रं विष्णुमथो भगम्।
अशं विवस्वन्त ब्रूमस्त नो मु चन्त्वहसः।२
ब्रूमो देव सवितारं धातारमुत पूषणाम।
त्वष्टारमग्रिय ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वहसः।३
गन्धर्वाप्सरसो ब्रूमो अश्विना ब्रह्मणास्पतिम्।
अर्यम नाम यो वेवस्ते नो मुञ्चत्वहसः।४
अहोरात्रे एद ब्रमः सूर्याचन्द्रमसाबु भाः।
विश्वानादित्यान् ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्वंहसः।५
वात ब्रूमः पर्जन्यरिक्षमथोदिशः।
आशाश्च सर्वा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वहसः।६
मुञ्चन्तु मा शपथ्या दहोरात्रे अथो उषाः।
सोमो मा देवोमुञ्चन्तु यमाहुश्चन्द्रमा इति।७
पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या उत ये मृगाः।
शकुन्तान् पक्षिणा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वहसः।८

भवाशर्वाविदं ब्रूमो रुद्रं पशुपतिश्च यः ।
इषूर्या एषां संविसा ता नः सन्तु सदा शिवाः ।६
दिव ब्रूमो नक्षत्राणि भूमिं यञ्जणि पवतान ।
मुद्रा नद्या वेशन्तास्ते नो मुञ्चन्त्व हसः ।१०

हम अग्निदेव की स्तुति करते हुए अभीष्ट फल मांगते हैं। हम महावृक्षों की, व्रीहि, यव, वनौषधि आदि की स्तुति करते हैं । इन्द्र, बृहस्पति और आदित्य की भी हम स्तुति करते हैं वे पाप से रक्षा करें ।१। वरुण देवता की, मित्र, विष्णु, भग हंस और विवस्वान् की हम स्तुति करते हैं, हमें पाप से छुड़ावे ।२। सर्व प्रेरक सूर्य, धाता, पूषा और त्वष्टादेव की स्तुति करते हैं । वे हमें पाप से छुड़ावें।३। हम गन्धर्व और अप्सराओंकी स्तुति करते हैं । अश्विद्वय, वेदपति ब्रह्मा और अर्यमा की स्तुति करते हैं, वे देवता हमको पाप से छुड़ावे ।४। दिन और रात्रि के अधिष्ठात्र देवता सूर्य चन्द्र और अदिति के सब पुत्रों की हम स्तुति करते हैं वे हमें पाप से छुड़ावें ।५। वायु, पर्जन्य, दिशा-विदिशा के देवताओं की भी हम स्तुति करते हैं, वे हमें पाप से छुड़ावें ।६। दिन और रात्रि के अभिमानी देवता मुझे शपथात्मक पाप से मुक्त करें । उषाकाल के अभिमानी देवता, चन्द्रमा रूप सोम मुझे शपथ के कारण लगे पाप से छुड़ावें ।७। आकाश के प्राणी पृथिवी के देहधारी, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि की भी हम स्तुति करते हैं वे हमको पाप से छुडावे ।८। भव और शर्व की ओर देखते हुए हम यह कहते हैं। रुद्र और पशुपति की हम स्तुति करते हैं । इनके जिन बाणों के हम ज्ञाता हैं, वे बाण हमारे लिए सुख देने वाले हों ।६। हम आकाश, नक्षत्र, पृथिवी पुण्य क्षेत्र, पर्वत समुद्र, नदी, सरोवर आदि की स्तुति करते हैं वे हमको पाप से छुड़ावे ।१०।

सप्तऋषीन वा इदं ब्रूऽमो देवीः प्रजापतिम् ।
पितृन यमश्रेष्ठान ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वहसः ।११

ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षदसश्च ये ।
पृथिव्यां शका ये श्रितास्ते नो मुञ्जचन्त्वंहस ।१२

आदित्या रुद्रावसवो दिवि देवा अथर्वाणाः ।
अगिरसो भनीषिणस्ते नो भुञ्चन्त्वंहसः ।१३

यज्ञं ब्रूमो यजमानमृचः सामानि भेषजा ।
यजूषि होत्रा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।१४

पञ्चराज्यानि वीरुधां सोमश्रेष्ठानि ब्रूमः ।
दर्भो भङ्गो यवः हस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।१५

अरायान ब्रूमो रक्षांसि सर्पाम पुण्यजनान पितृन ।
ऋयुनेकशत ब्रूमस्ते नो मुञ्चचन्त्वंहसः ।१६

ऋतुन ब्रूमऋतुपतोनार्तबानुत हायनान् ।
समाः सवत्सरान् मासांस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।१७

एत देवा दक्षिणातः प्राञ्चात् उदेत् ।
पुरस्तादुत्तराच्चका विश्वे देवाः समेत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।१८

विश्वान् देबानिदं ब्रूमः सस्यसंधानृतावृत्तः ।
विश्याभिः पत्नीभि सहः ते नो मुञ्चन्त्व हसः ।१९

सवान देवानिदः ब्रूमः सत्यसंधानृमावृधा ।
सर्वाभि सह मे नो मुञ्चन्त्वंहसः ।२०

भूतं ब्रूमो भूतपति भूतानामुत यो वशी ।
भूतानि सर्वा संगत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।२१

वा देवीः पञ्च प्रदिशो ये देवा द्वादशर्तवः ।
सवत्सरस्य ये दष्टास्ते न सन्तु सदा शिवाः ।२२

यन्मातली रथक्रोममृत वेद भेषजम ।
तदिन्द्रो अप्सु प्रावेशयत् तदापो दत्त भेषजम् ।२३

हम इस स्तुति को सप्तर्षियों से कहते हैं । हम जल देवता को

प्रजापति की और पितरों की स्तुति करते हैं, वे हमको पाप से छुड़ावे ।११। आकाश के देवता, अन्तरिक्ष के देवता और पृथिवी के जो शक्तिशाली देवता हैं, वे हमें पाप से मुक्त करें ।१२। द्वादश आदित्य, एकादश रुद्र, अष्टावसु यह द्यु लोक के देवता, अथर्वके द्रष्टा महर्षि अथर्वा आंगिरस आदि मनीषी हमारी स्तुति से सन्तुष्ट होकर हमें पापसे छुड़ावे।१३। हम यज्ञों की स्तुति करते हैं, उनके फल प्राप्त करने वाले यजमान की स्तुति करते हैं, यज्ञ में विनियुक्त ऋचाओं की स्तुति करते हैं। स्तोत्रों को सम्पन्न करने वाले सोमों की ओषधियों की, और होत्रोंकी हम स्तुति करते हैं, वे हमें पाप से छुड़ावें ।१४। पत्र, काण्ड, फल पुष्प और मूल इन पाँच राज्य वाली ओषधियों में श्रेष्ठ सोमलता है उसकी दर्भ भग, यव और सहदेवा आदि ओषधियों की हम स्तुति करते हैं। यह हमको पापों से छुड़ावें ।१५। दान में बाधा देने वाले हिंसको की, पीड़क राक्षसों की, पिशाचों की, सर्पो की और पितरों की तथा एक सौ एक मृत्युओं की अधिष्ठात्र देवताओं की हम स्तुति करते थे ।१६। बसतादि ऋतुओं की, ऋतुपति देवता वसु रुद्र, आदित्य, ऋभु और मरुतों की तथा ऋतुओं में उत्पन्न पदार्थों की, चन्द्र संवत्सरों की और सौर संवत्सरों की चैत्रादि मासों की हम स्तुति करते हैं, यह हमको पाप से छुड़ावें हे देवगण ! तुम दक्षिण दिशा में दिशा में स्थित, उत्तर, पूर्व या पश्चिम दिशाओं में स्थित हो। अपनी-अपनी दिशाओंसे शीघ्र आकर हमको पाप से छुड़ाओ ।१८। हम पत्नियों सहित विश्वेदेवताओं की स्तुति करते हुए याचना करते हैं कि वे हमें पाप से छुड़ावे ।१९। हम यज्ञ की वृद्धि करने वाले देवताओं की, उनकी पत्नियों सहित स्तुति करते हुए पाप से मुक्त करने की याचना करते हैं ।२०। भूत भूतों के ईश्वर और भूतों के नियामक देवता की स्तुति करते हैं। सब एकत्रित होकर यहाँ आवें और हमें पाप से छुड़ावे ।२१। पाँच दिशायें बारह मास और संवत्सर तथा दुष्ट हिंसात्मक दाढ़ों की हम स्तुति करते हैं। वे हमारे लिए सुख देने वाले हों ।२२। इन्द्र की सारथि मातलि जिस

अमृतत्व शाली औषधि को जानता है, उसे रथ के स्वामी इन्द्रके जलमें डाल दिया था हे जलो! तुम मातलि द्वारा प्राप्त और इन्द्र द्वारा जल में पतित भेषज को हमें प्रदान करो ।२३

सूक्त–७ [चौथा अनुवाक]

(ऋषि—अथर्वा। देवता–उच्छिष्टः, अध्यात्मसू। छन्द—अनुष्टुप, उष्णिक्, बृहती)

उच्छिष्टे नाम रूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः ।
उच्छिष्ट इन्द्रश्चाग्निश्च विश्वमन्तः समाहितम् ।१
उच्छिष्टे द्यावापृथिवी विश्वं भूतं समाहितम् ।
आपः समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वात आहितः ।२
सन्नुच्छिष्टे असश्चोभौ मृत्युर्वाजः प्रजापतिः
लौक्या उच्छिष्ट आयत्ता व्रश्च द्रश्चापि श्रीर्मयि ।३
दृढो दृंहस्थिरो न्यो ब्रह्म विश्व सृजो दश ।
नाभिमिव सर्वतश्चक्रमुच्छिष्टे देवताः श्रिताः ।४
ऋक् सामयजुरुच्छिष्ट उद्‌गीथः प्रस्तुतं स्तुतम् ।
हिङ्कार उच्छिष्टे स्वरः साम्नो मेडिञ्च तन्मयि ।५
ऐन्द्राग्न षावमानं मतानाम्नीर्मब्रतम् ।
उच्छिष्टे यज्ञस्याङ्गान्यन्तर्गर्भंइव मातरिः ।६
राजसूयं वाजपेय मग्निष्टोमस्दध्वरः ।
अर्क्राश्वमेधावुच्छिष्टे जीववर्हिमदिन्तमः ।७
अग्न्यावेयमथो दीक्षा कामप्रश्छन्द सा सहः ।
उत्सन्ना यज्ञाः सत्वाणयुच्छिष्टेऽधि समाहिताः ।८
अग्निहोत्र च श्रद्धा च वषटकारो ब्रतं तपः ।
दक्षिणेष्ट पूर्तं चोच्छिष्टे ऽधि ससाहिताः ।९
एकरात्रो द्विरात्रः सभः क्रीः प्रक्रीरुक्थ्यः ।
ओतं निहितमुच्छिष्टे यज्ञस्याणू नि विद्यया ।१०

(हवन के पश्चात् बचा हुआ, प्राशनके लिए रखा ओदन उच्छिष्ट कहलाता है) उस उच्छिष्ट में पृथिव्यादि लोक समाये हुए हैं, उसी में स्वर्गपति इन्द्र और पृथिवीके स्वामी अग्नि स्थित हैं, और उसी उच्छिष्ट के मध्य ईश्वर द्वारा अखिल जगत् ही स्थापित किया हुआ है ।१। आकाश, पृथिवी उस उच्छिष्ट में अहित हैं, उनमें वास करने वाले जीव भी उसी उच्छष्ट में समाये हुए हैं । जल, समुद्र, चन्द्रमा और वायु— यह सभी देवता उसी उच्छिष्ट रूप ब्रह्म में समाहित हैं ।२। सत् और असत् उसी उच्छिष्ट में है । सत्-असत् से सम्बन्धित मारक मृत्यु देवता, और अमृत्व से युक्त सोम यह सभी उन ओदन के आश्रित है । उसी के प्रभाव से सम्पति मेरे आश्रित हो ।३। दृढ़ देह वाला, स्थिर किया गया लोक और वहाँ के प्राणी विश्व के कारणरूप ब्रह्म विश्व रचयिता नवम ब्रह्म और उनका भी रचयिता दशम ब्रह्म जैसे रथ चक्र की नाभि सब ओर से आश्रय बनती है, वैसे ही इस उच्छिष्ट के आश्रित रहते हैं ।४। उद्गीथ (गाया जाने वाला भाग,प्रस्तुत) स्तुति का जिससे प्रारम्भ होता है, (स्तोत्र कम) और हिंकार युक्त ऋक्साम, यजुर्वेद के मन्त्र उच्छिष्टमाण ब्रह्म में समाहित हैं ।५। इन्द्राग्नि की स्तुति वाला स्तोत्र पवमान सोम का स्तोत्र पवमान, महानाम्नी ऋचायें, महाव्रत यज्ञ के यह अङ्ग माता के गर्भ में स्थित जीव के समान उच्छिष्ट में रहते हैं ।६ राजसूर्य, वाजपेय, अग्निष्टोम,अध्वर, अर्क और अश्व मेध और जीवबर्हि वह सभी प्रकार के यज्ञ उच्छिष्ट में ही समाहित हैं।७। आन्याधेय, दीक्षा उत्पन्न यज्ञ और सोमयागात्मक सत्र यह सब ओदन में समाहित है ।८। अग्निहोत्र, श्रद्धा, वषट्कार, व्रत,तप, दक्षिणा और अभीष्टपूर्ति यह सभी उस उच्चिष्ट में समाहित है।६। एक रात्रि और दो रात्रियों में होने वाले सोमयाग, सद्य क्री, प्रकी और उक्थ यह सभी उच्छिष्ट में बँधे हुए यज्ञ के सूक्ष्म रूपी सहित ब्रह्म के आश्रित रहते हैं ।१०।

चतूरात्र पञ्चरात्रः षड्रात्रश्चोभयः सह ।

षोडशीसप्तरात्रश्चोच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वेयेयज्ञा अमते हिताः ।११

प्रतीहारो निधन विश्वजिच्चाभिजिच्च: यः ।
सृह्वातिरात्रावुच्छिष्टे द्वादशापो ऽपि तन्नयि ।१२

सूनृता सनतिः क्षेमः स्वधोर्जामृत सहः ।
उच्छिष्टे सर्वे प्रत्यञ्चः कामा कामेन तानृपुः ।१३

नव भूमीः समुद्रा उच्छिष्टे ऽधि श्रिता दिवि ।
आ सूर्यो भात्युच्छिष्टे ऽहो रात्रे तन्मयि ।१४

उपहव्य विषवन्तये च यज्ञा गुहा हिताः ।
बिभर्ति भर्ता विश्वस्योच्छिष्टो जनितुः पिता ।१५

पिता जनितुरुच्छिष्टा ऽसोः पौत्रः पितामह ।
स क्षियति विश्वयेशानो वृषा भूम्यामतिघ्न्य ।१६

ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च ।
त भविष्यदुच्जिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर्बल बले ।१७

समृद्धिरोज आकूतिः क्षत्रं राष्ट्र षडुर्व्यः ।
संवत्सरो ऽध्युच्छिष्ट इडा प्रैषा ग्रहा हवि ।१८

चतुर्होतार आप्रियश्चातुस्यिनि नीविदः ।
उच्छिष्टे यज्ञा होत्राः पशुउन्धास्तदिष्टयः ।१९

अर्धमासाश्चार्तवा ऋतुभि सह ।
उच्छिष्टे घोषिणाराप स्तनयिन्तु श्रु तिर्मही ।२०

चतुरात्र, पंचरात्र, षडरात्र और इनके दूने दिनों वाले, षोडशी और सप्तरात्र यज्ञ और अन्य सभी अमृतमय फल प्रदान करने वाले यज्ञ उच्छिष्ट से ही प्रकट हुए हैं ।११। प्रतिहार, निधन, विश्वजित, भिजित् साह्न अतिरात्र द्वादशाह यह सभी यज्ञ उच्छिष्ट रूप ब्रह्म के मिश्रित है । यह सब यज्ञ मुझमें स्थित हों ।१२। सुनता संनति, क्षेमस्वधा

ऊर्जा, अमृत,सह यह सभी कामना योग्य फल ब्रह्माश्रित हैं। यह सभी काम्य फल सहित यजमानकी तृप्ति करने वाले हैं।१३। नौखण्डी वाली पृथिवी, सप्तसमुद्र और आकाश उस उच्छिष्ट रूप ब्रह्म में समाहित हैं। सूर्य भी उसी ब्रह्म के आश्रित हुए दमकते हैं दिन रात भी उसी के आश्रय में है। यह सब मुझमें हों।१४। उपहव्य विषवान् और अज्ञात यज्ञों को भी उच्छिष्ट रूप ब्रह्म धारण करते हैं। वही ओदन संसारका पोषक और अनुष्ठता का जनक है।१५। यह उच्छिष्ट अपने उत्पादनकर्त्ता को अन्य लोक में दिव्य शरीर दिलाने वाला होने से उसका जनक है। ओदन प्राणका पौत्र रूप है परन्तु अन्य लोक में प्राण का पितामह है। अतः वह उच्छिष्ट सबका ईश्वर है और अभीष्ट देता हुआ पृथिवी में रहता है।१६। ऋत, सत्य, तप, राष्ट्राश्रम धर्म, कर्म, भूत, भविष्य, वीर्य, लक्ष्मी और बल यह सब उस उच्छिष्टात्मक ब्रह्म के आश्रित हैं।१७। समृद्धि ओज, आकूति, क्षात्र तेज राष्ट्र संवत्सर और छै उर्वियाँ यह सभी मेरे रक्षक हों। इड़ा, प्रैष, ग्रह हवि यह सभी उस उच्छिष्टमें समाहित है।१८। चतुर्होता, आप्रिय, चतुर्मासात्मक वैश्वदेव यह सभी उच्छिष्टमाण ब्रह्म में समाहित है।१६। आधा महीना, महीने ऋतुये, आर्तव घोषयुक्त जल, गर्जनशील मेघ, पवित्र पृथिवी यह उच्छिष्टमाण ब्रह्म मैं समाहित हैं।२०।

शर्करा: सिकताअश्मान ओषधयौ बीरुधस्तृणा।
अभ्राणिवर्षमुच्छिष्टे सश्रिता श्रिता।२१
राद्धिः प्राप्तिः समाप्ति व्याप्तिमह एवतुः।
अत्याप्तिरुच्छिष्टे मूतिश्चाहिता निहिता हितः।२२
यञ्च प्राणाति प्राणेन यच्च पश्यति चक्षुषा।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सवे दिवि देवा दिविश्रितः।२३
ऋच, सामानि च्छन्दांसि पुराणा यजुषा सह।
उच्चिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः।२४
प्राणोपानौ चक्षुः श्रोत्रामज्ञितिश्च या।

उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वो दिवि दिविश्रिता ।२५
आनन्दा मोदाः प्रमुदो ऽभीमोदमुदश्च ये ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ।२६
देवा पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सिरसश्च ये ।
देवा पितरो मनुष्या सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ।२७

सर्करा, रेत पाषाण औषधि, लता, तृण, मेघ विद्युत और सभी समवेत पदार्थ उसी उच्छिष्यमाण ब्रह्म मे आश्रित हैं।२१। रात्रि प्राप्ति समाप्ति व्याप्ति, तेज अभिबृद्धि, समृद्धि, अत्याप्ति यह सभी उच्छिष्माण ब्रह्म में आश्रित हैं ।२२। प्राणन व्यापार वाले जीव नेन्नान्द्रिय से देखने वाले प्राणी, स्वर्ग में स्थित देवता, पृथिवी के देवता यह सभी उस उच्छिष्यमाण ब्रह्म से ही उत्पन्न हुए ।२३। ऋक्, सा, छन्द, पुराण, यजुर्वेद, आकाश के देवता यह सभी उच्छिष्ट से उत्पन्न हुए ।२४। प्राण, अपान, चक्षु, कान, अक्षय और दिव्यलोक के सभी देवता उच्छिष्ट से ही प्रादुर्भूत हुए ।२५। आनन्द, मोद, प्रमोद, अभिमोदमुद और स्वर्ग, के निवास देवता यह सभी उच्छिष्ट से प्रादुर्भूत हुए ।२६। देवता, पितर, मनुष्य, गन्धर्व, अप्सरा और सब द्युलोक के देवता इस उच्छिष्ट से ही उत्पन्न हुए ।२७।

सूक्त—८

(ऋषि—कोरुपथिः। देवता—मन्युः अध्यात्मम्। छन्द–अनुष्टुप् पंक्ति)

यन्मन्युर्जायामावहत संकल्पस्य गृहादधिन ।
क आसं जन्याः के वराः क उ ज्येष्ठवरोऽभवत् ।१

तप चैवास्तां कर्म चन्तर्महत्यर्णवे ।
त आसं जन्यास्ते वरा व्रह्म ज्येष्ठावरोऽभवत् ।२

दशशाकमजायन्त देवादेवेभ्यः पुरा ।
यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं सवा अद्य महद् बदेत ।३

प्राणापानीचक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्न या।
व्यानोदानौ नाङ्मनस्ते वा आकूतिमावहन् ।४
आजाता आसन्नृतवोऽथो धाता बृहस्पतिः ।
इन्द्राग्नी अश्विना तर्हि क ते ज्येष्ठमुपासत ।५
तपश्च वास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे ।
तपो ह जज्ञे कर्णाणाष्तत् ते ज्येष्ठमुपासत ।६
येते आसीद् भूमिः पूर्वा यामद्धातय इद् विदुः ।
यो बै तां विद्यान्नमथा स मन्येत पुराणावित ।७

कुतः इन्द्रः कुतः सोमः कुतो अग्निरजायतः।
कुतस्त्वष्टा समभवत् कुतो धाता जायतः ।८
इन्द्रा दन्द्रः सोमात् सोमो अग्नेरग्निरजायत ।
त्वष्टा स जज्ञे त्वष्ट्र्घातुर्घाताजायत ।९
ये त आसन् दश जाता देवा देवेभ्यः पुरा ।
पुत्रेभ्यां लोकं दत्वा कस्मिंस्ते लोक आसते ।१०

मन्यु ने जाया को संकल्प के घर से विवाहा। उससे पहले सृष्टि न होनेसे वर पक्ष कौन हुआ और कन्या पक्ष कौन हुआ? कन्या के चरण कराने वाले बराती कौन थे और उद्वाहक कौन था? ।१। तप और कर्म ही वरपक्ष और कन्या पक्ष वाले थे, यही बराती थे और उद्वाहक स्वयं ब्रह्म था ।२। पहले दश देवता उत्पन्न हुए। जिनसे इन देवताओं को प्रत्यक्ष रूप से जान लिया वही ब्रह्म का उपदेश करने में समर्थ है ।३। प्राण, अपान नामक वृत्तियाँ, चक्षु, कान, अक्षिति, क्षिति, व्यान, उदान, वाणी, मन, आकृति—यह सभी कामनाओं को अभिमुख करते हुए उन्हें पूर्ण कराते है ।४। सृष्टिकाल में ऋतुएं उत्पन्न नहीं हुई थी। धाता, वृहस्पति, इन्द्र और अश्विनीकुमार भी उत्पन्न नहीं हुए थे। तब इन, धाता आदि ने किस बड़े कारणभूत उत्पादक की अभ्यर्चना की? । ५ । तप और कर्म ही

उपकरण रूप थे कर्म से तप उत्पन्न हुआ था। इसलिए वे धाता आदि अपने द्वारा किये हुए महान् कर्म को ही अपने उत्पादन के लिए प्रार्थना करते हैं।६। वर्तमान पृथिवी से पूर्व विगत पुत्र की जो पृथिवी थी, उसे तप द्वारा सर्वज्ञ होने वाले महर्षि ही जानते हैं। जो विद्वान् विगत युग की पृथिवी में स्थित वस्तुओं के नाम को जानने वाला है, वही इस वर्तमान पृथिवी को जानने में समर्थ है।७। इन्द्र किस कारण से उत्पन्न हुआ, सोम, अग्नि, त्वष्टा और धाता किस-किस कारणसे उत्पन्न हुए? ।८। विगत युग में जैसा इन्द्र था वैसा ही इस युग में हुआ। जैसे सोम, अग्नि, त्वष्टा और धाता पुरातन में थे वैसे ही इस युग में भी हुए।६। जिन अग्नि आदि देवताओं से प्राणापान रूप दश देवता उत्पन्न हुए, वे अपने पुत्रों को अपना स्थान देकर किस लोक में निवास करते हैं? ।१०।

यदा वे शानस्थिस्वान माँसं मज्जानमाभरत्।
शरीरं कृत्वा पादवत्कं लोकमनु द्राविशत्।११
कुतः केशान् कुता स्नाद कुतो अस्थोन्याभरत्।
अङ्गा पर्वाणि मज्जानं कोमांसं कुत आभरत्।१२
ससिचो नाम ते देवा ते संभारान्त्समभरन्।
सर्व ससिच्य मर्त्यं दवाः पुरुषमाविशम्।१३

ऊरू पादावष्टीवन्तौ शिषो हस्तावथो मुखम्।
पृष्टी र्बर्जह्ये पार्श्वे कस्तत् समदधादृषिः।१४
शिरो हस्ताचथो मुखं जिह्वग्रीवाश्च काकसाः।
त्वचा प्रावृत्य सर्वा तत् संधा समदधान्महो।१५
तत्तच्चरीरमशयत सँधया संहितं महत्।
येनेदमद्य रोचते को अस्मिन वर्णमाभरत।१६
सर्वे देवा उपाशिक्षन यदजानाद वधुः सती।
इशा वशस्य या जाता सास्मिन वर्णमाभरत।१७

यदा त्वष्टा व्युतृणात् पिता त्वष्टर्य उत्तरः।
गृह कृत्वा मर्त्यंदेवाः पुरुषमाविशन् ।१८
स्वप्नो वै तन्द्रर्निर्ऋ तिः पाप्मानो नाम देवताः।
जरा खालत्यं पालित्यं शरीरमनु प्राविशन्।१६
स्तेयं दुष्कृत वृजिनं सत्यं यज्ञो यशो बृहत।
बलं च क्षत्रोजश्च शरीरमनु प्राविशन् ।२०

सृष्टि के समय वह विधाता ने बाल, अस्थि, नसें मांस मज्जा को संचित किया तो उनसे शरीर की रचना कर उसने किस लोक में प्रवेश किया ? ।११। किन उपादान से केश संग्रहीत किये ? स्नायु कहाँ से प्रकट हुआ अस्थियाँ कहाँ से आई, मज्जा और मांस कहाँ से मिला ? यह सब अपने में से ही इकट्ठा किया ऐसा अन्य कौन कर सकता है ? ।१२। ससिच् नाम के देवता मरणशील देह को रक्त से भिगोकर उसे पुरुषाकृति में बना, उसी में प्रविष्ट हो गये ।१३। घुटनों पर वर्तमान जंघायें घुटनों के नीचे पांव, जांघों और पांवों के मध्य घुटने, शिर, हाथ मुख, वर्जह्य, पसलियां और पीठ इन सबको किसने परस्पर मिलाया ? ।१४। शिर, हाथ, मुख, जीभ, कण्ठ और हड्डियों की चर्म आवृत्त कर देवताओं ने अपने अपने कर्म में प्रवृत्त किया।१५। जधात्री देव के द्वारा जिसके अवयव इस प्रकार जुड़े हैं वह देहों में वर्तमान है, वह देह जिस श्याम-गौर वर्ण से युक्त हैं, उसमें किस देवता ने वर्ण की स्थापना की ? ।१६। इस शरीर के समीप सब देवता रहना चाहते थे । इसलिए वधू बनने वाली आद्या ने देवताओं की इस इच्छा को जान कर छै कोश देह में नील, पीत गौर आदि रंगों की स्थापना की ।१७। इस संसार के रचयिता ने जब नेत्र, कान आदि छिद्रों को बनाया तब त्वष्टा के द्वारा बहुत से छेद वाले पुरुष-वेह को घर बनाकर प्राण, अपान और इन्द्रिय ने प्रवेश किया ।१८। स्वप्न, निद्रा, आलस्य, निर्ऋति, पाप इस पुरुष देह में घुस गये और आयु हरण करने वाली जरा, चक्षु, मन, खालित्य, पालित्य आदि के अभिमानी देवता भी उसमें प्रविष्ट

हो गये।१६। चोरी, दुष्कर्म, पाप, सत्य, यज्ञ, यश, महान् बल, क्षात्रधर्म और ओज भी मनुष्य-देह में प्रविष्ट हो गये।२०

भूतिश्च वा अभूतिश्च रातवोऽरातयश्च याः ।
क्षुधश्च सर्वास्तृष्णाश्च शरीरमनु प्राविशन् ।२१
निन्दाश्च बा अनिन्दाश्च यच्च हन्तेति तेति च ।
शरीर श्रद्धा दक्षिणाश्रद्धा चानु प्राविशन् ।२२
विद्याश्च अविद्याश्च यच्चान्वदुषदेश्यम् ।
शरीरं ब्रह्मा प्राविशद्दचः सामाधो यजुः ।२३
आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमीदमुदश्च ये ।
हसो नरिष्टा नृत्तानि शरीरमनु प्राविशन ।२४
आलापाश्च प्रलापाश्चाभीलापलपश्च ये ।
शरीरं सर्वे प्राविशन्नायुजः प्रयुजो युजः ।२५
प्राणापानो चक्षु श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
व्यानोदानौ वाङ् मनः शरीरेण त ईयन्ते ।२६
धाशि षश्च प्रशिषश्च सँशिषो विशषश्च याः ।
चित्तानि सर्वे संकल्पाः शरीरमनु प्राविशन ।२७
आस्नेयीश्च वास्तेयोश्च त्वरणाः कृपणाश्च याः ।
गृह्याः शुक्रा स्थूला अपस्ता बीभत्सावसादयन् ।२८
अस्थि कृत्वा समिधं तदष्टापो असादयन ।
रेतः कृत्वाज्यं देवाः पुरुषयाविशन ।२९
या आपो याश्च देवता या विराड् ब्रह्मणा सह ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशच्छरीरेऽधि प्रजापतिः ।३०
सूर्यश्चक्षुर्वातः पुरुषस्य वि भेजिरे ।
अथास्येतरमात्मानं देवाः प्रायच्छन्नग्नये ।३१

तस्माद वै विद्वान पुरुषमिद ब्रह्मेति मन्यते ।
सर्वा ह्यस्मिन देवता गावो गोष्ठइवासते ।३२
प्रथमेन प्रमारेण त्रेधा विष्वङ् वि गच्छति ।
अदएकेन गच्छत्यद एकेन गच्छतीहैकेन नि षेवते ।३३
अप्सु सोमास वृद्धासु शरीरमन्तरा हितम् ।
तस्मिञ्छवोऽध्यन्तरा तस्माच्छयोऽध्युच्यते ।३४

समृद्धि, असमृद्धि, शत्रु, मित्र, भूख, प्यास आदि सब इस मनुष्य देह में घुस गये ।२१। निन्दा, अनिन्दा, हर्षोत्पादक वस्तु, अहर्षोत्पादक, श्रद्धा, धन, समृद्धि, दक्षिणा, अश्रद्धा आदि भी पुरुष देह में प्रविष्ट हुये ।२२। ज्ञान, अज्ञान, उपदेश्य, ऋक्, साम, यजुर्वेद आदि सब ने इस मनुष्य देह में प्रवेश किया ।२३। आनन्द, मोद, प्रमोद, हास्य, शब्द स्पर्श, विष, नतन यह सब मनुष्य देह में प्रविष्ट हुए ।२४। आलाप, प्रलाप, अभिशाप, आयोजन, प्रयोजन, योजन, इन सभी ने पुरुष देह में प्रवेश, किया ।२५। प्राण, अपान, नेत्र, कान, अक्षिति, क्षिति, व्यान, मन, उदान, वाणी यह सभी पुरुष देह में प्रविष्ट होते और अपने-अपने कर्मों उदान, वाणी यह सभी पुरुष देह में प्रविष्ट होते और अपने-अपने कर्मों में लगते हैं ।२६। आशिष, प्राशिष, शासन तथा मन की सब वृत्तियों ने पुरुष देह में प्रवेश किया ।२७। स्नान-जल, प्राण-स्थिर रखने वाले जल, त्वरणजल, अल्प जल, गुहास्थित जल, वीर्यरूपी जल, स्थूल जल और सर्व व्यवहारास्पद जल सभी अपने कर्म सहित शरीर में प्रविष्ट हुये ।२८। प्राणियों की हड्डियों को समिन्धन-साधन बनाकर आठ जलों ने शरीर में प्रवेश किया और उसमें वीर्य रूप घृत को बनाया । इस प्रकार इन्द्रियों और उसके अधिष्ठात्र देवताओं ने पुरुष देह में प्रवेश किया ।२९। पूर्वोक्त जल, इन्द्राभिमानी देवता, विराट् संज्ञक, देवता, ब्रह्मतेज वाले देवता शरीर में प्रविष्ट हुए । फिर संसार के कारणभूत ब्रह्म भी अलक्षित रूप से प्रविष्ट हुए । उस शरीर में पुत्रादिका उत्पादक जीव स्थित रहता हैं ।३०। सूर्य ने नेत्रेन्द्रिय को स्वीकार किया, वायु ने घ्राणेन्द्रिय को ग्रहण किया और इसके छं कोश वाले शरीर को

सब देवता अग्नि को भाग रूप में प्रदान करते हैं ।३१। इसलिए ज्ञानी पुरुष शरीर को भीतर बाहर व्याप्त होकर ब्रह्म ही मानता है क्योंकि गौओं के गौष्ठ में रहने के समान सब देवता इस शरीर में रहते हैं ।३२। पहले उत्पन्न देह के अवसान पर वह त्यक्तदेह आत्मा तीन प्रकार से नियमों में बँध जाता है । पुण्य से स्वर्ग को प्राप्त करता और पाप से नरक को पाता है और पुण्य पाप दोनों के योग से इस पृथिवी में उत्पन्न होकर सुख दुःख रूप भोगों को भोगता है ।३३। शुष्क संसार को गीला करने वाले प्रवृद्ध जलों में ब्रह्माण्ड सम्बन्धी देह स्थित है । उसके भीतर और ऊपर परमेश्वर है । वह देह से अधिक होने के कारण सुत्रात्मा कहाता है ।३४।

सूक्त-६ [पाँचवां अनुवाक]

(ऋषि—कांकायनः । देवता—अर्बुतिः । छन्द—शक्वरी, अनुष्टुप्, उष्णिक्, जगती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, गायत्री)

ये वाहवो या इषवो धन्यनां वीर्याणि च ।
असीन परशूनायुधं चित्ताकूतं च यदधृदि ।
सर्वं तदर्बदे त्वममित्रेभ्यो शे कुरुदारांश्च प्र दर्शय ।१
उत्तिष्ठत सं नह्या वं मित्रा देवजना यूयम् ।
संहष्टा गुप्त वः सन्तु या नो मित्राण्यर्बुदे ।२
उतिष्ठतमा रभेथामादानसंदानभ्याम् ।
अभित्राणां सेना अभि धत्तमर्वुदे ।३
अर्बुदिर्नाम यो देव ईशानश्च न्यर्बुदिः ।
याभ्यामन्तरिक्षमाबृतपिय च पृथिवी मही ।
ताभ्यामिन्द्रमेदि्भ्यामहं जितमन्वेमि सेनया ।४
उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह ।

भञ्जन्नमित्राणां सेनां भोगेभि परि वारय ।५
सप्त जातान न्युर्बुद उदारणां समीक्षयन।
तेभिष्ट वमाज्य हुते सर्वैरुतिष्ठ तेनया।६
प्रतिध्नानाश्रुमुखीं कृधुकर्णी च कोशतु।
विकेशी पुरुष हते रदिते अर्बुदे तव ।७
संकषन्तो कसकर मनसा पुत्रमिच्छन्ती ।
पति भ्रातरमात् स्वान रदिते अर्बुदे तव।८
अलिक्लवा जाष्कमदा गृध्राः श्येनाः पतत्रिण ।
ध्वाङ्क्षा शकुनयस्तृष्यन्त्वमित्रेषु समीक्षंयन रदिते अर्बुदे तव ।९
अथो सर्व श्वापदं मक्षिका तृप्यतु क्रिमि।
पौरुषेयेऽधि कुणपे रदिते अर्बुदे तब ।१०

शास्त्रों को उठाने से समर्थ हमारे वीरों के जो हाथ हैं, वे खड्ग, फरसा, धनुष-बाण आदि धारण किए हुए हैं। हे अर्बुद ! तू उन्हें हमारे शत्रुओं को दिखा, जिससे वे भयभीत हो जावें ।१। हे देवताओ ! तुम हमारी विजय में प्रवृत होने वाले हो। अब संग्राम को तैयार होओ। तुम्हारे द्वारा हमारे वीर भले प्रकार रक्षा को प्राप्त हों ।२। हे अर्बुदे! तुम और न्यर्बुदि दोनों अपने स्थान से उठकर संग्राम करो और आदान संदास नामक रस्सियों से शत्रु सेन को वशीभूत करो।३। न्यर्बुदि नामक जो सर्प देवता है, उनसे समस्त संसार घिरा हुआ है, उन्होंने अपने शरीर से सम्पूर्ण विश्व को और भूमि को भी बांध रखा है। यह दोनों देवता युद्ध विजय के कार्य में सदा लगे रहते हैं ।५। इन श्रेष्ठ अर्बुदि और न्यर्बुदि द्वारा विजित्-शत्रु के वल पर मैं अपनी सेना सहित आक्रमण करूँगा। हे अर्बुदे ! तुम अपनी सेना सहित उठो और शत्रुओं की सेना का संहार करते हुए अपने सर्प देह से उसे घेर लो ।५। हे न्युर्बुदि नामक सर्प देव ! तुम दृष्टि को निर्बल करने वाले उत्पातों को शत्रु पर करते हुए हविदति के अनन्तर हमारी सेना के सहित उठ पड़ो ।६। हे अर्बुदि ! अव तू मेरे शत्रु को डस कर मार डालो तव उस

ओर मुख करके उसकी स्त्री अपने बध को कूटे और अश्रुपात करती हुई, आभूषण उतार कर बालों को खोलती हुई रुदन करे।७। हे अर्बुदे! उठने के पश्चात् विष का आवेग होने पर शत्रु की स्त्री हाथ-पैर के जोड़ों की हड्डियों को दबाकर करुणामय शब्द कहे। फिर विष का प्रतिकार करने के लिए पुत्र भाई आदि किससे कहे, उस प्रकार कर्त्तव्य ज्ञान से रहित हो जाय।८। हे अर्बुदे! तेरे द्वारा डसे जाने पर हमारे शत्रु के मरण की प्रतीक्षा करने वाले गिद्ध, श्येन, काक आदि पक्षी उसके मांस भक्षण द्वारा तृप्त हो।९। हे अर्बुदे! गीदड़, व्याघ्र, मक्खी और मांस के सड़ने पर उत्पन्न होने वाले कीड़े शत्रु के द्वारा काट लेने पर उसके शव पहुँचते हुए तृप्ति को प्राप्त करे।१०

आगृह्णीत सं बृहतं प्राणापानान् न्यर्बुदे।
निवाशा स्त्रोषाः सं यन्त्वमित्रेषुसमीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव।११
उद् वेषय सं विजन्तां भियामित्रान्त्सं सृज।
उरुग्राहैर्बाह्वङ्कैर्विध्यामित्रान न्यर्बुदे।१२
मुह्यन्त्वेषा बाहवश्चित्ताकूतं घद्धृदि।
मृषामुच्छेषि किंचन रदिते अर्बुदे तव।१३
प्रतिघ्नानाः सं धावन्तूरः पट्रावाघ्नानाः।
अघारिण विकेश्यो रुदत्यः पुरुषेः हते रदिते अर्बुदे तव।१४
श्वन्वतीरप्सरसो रूपका उतार्बुदे।
अन्तःपात्रे रेरिहती रिशां दुर्णिहितैषिणीम्।
सर्वास्ता अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरुदारांश्च प्र दर्शय।१५
खडूरेऽधिचङ्क्रमां खर्विकां खर्ववासिनीम्।
य उदारा अन्तर्हिता गन्धर्वाप्सरसश्च ये। सर्पा इतरजना रक्षांसि।१६
चतुर्दंष्ट्राञ्छ्यावदतः कुम्भमुष्कां असृङ्मुखान।
स्वभ्यसा ये चोद्भ्यमाः।१७

उद् वेपय त्वमर्बुदेऽमित्राधामभूः सिचः ।
जयांश्च जिष्णुश्चमिद्राञ्जयताभिन्द्रमेदिनौ ।१८
प्रव्लीनो मृदितः शयां हतोमित्रो न्यर्बुदे ।
अग्निजिह्वा धूमशिखा जयन्तीर्यन्तु सेनया ।१९
तयार्बुदे प्रणुत्तानानिन्द्रो हन्तु बरबरन् ।
अमित्राणां शचौपतिर्मामीषां मोचि कश्चन ।२०

हे न्यर्बुदे ! अर्बुदे ! तुम दोनों शत्रु के प्राणों को ग्रहण कर उसे समूल उखाड़ डालो । तेरे द्वारा दंशित होने पर शत्रु क्रन्दन करने लगे ।११। हे न्युर्बुदे ! तुम हमारे शत्रुओं को कम्पित करो । वे अपने स्थान से भ्रष्ट होते व्यथित हों । इनको भयभीत करते हुए उन्हें हाथ पांवों की क्रियाओं से भी हीन कर दो । हे अर्बुदे ! तुम्हारे द्वारा दशित होने पर शत्रु की भुजाऐं विष के कारण निर्वीय हो जांय । शत्रुओं की इच्छायें विस्मृत हो जांय । उनके पास रथ, अश्व, गज कुछ भी शेष न रहे ।१३। हे अर्बुदे ! तुम्हारे द्वारा दशित होने पर शत्रुओं की स्त्रियाँ यज्ञ कूटती हुई बालों को खोलकर पति के वियोगसे रोती हुई अपने पति की ओर जांय ।१४। हे अर्बुदे, तुम क्रीडार्थ श्वानों को साथ में रखने वाली अप्सराओं को माया रूपी सेनाओंको शत्रुओंको दिखाओ उल्कापत और विकृत दिखाई पड़ने वाले दैत्योंको हमारे शिशुओं को दिखाओ।१५ द्युलोक में दूर घूमने वाली माता रूपिणी का शत्रुओं को दिग्दर्शन कराओ । अपनी माता से अलक्षित यक्ष, राक्षस, गन्धर्वों का शत्रुओं को दिखाकर भयभीत करो ।१६। सर्व रूप देवता, इतरजन, काले दांत वाले दैत्य, घटाण्डकोश वाले, रक्त से सने मुख वाले राक्षसों को भी अपनी माया द्वारा शत्रुओं को दिखाओ ।१७। अर्बुदे, तुम शत्रु सेनाओं को विषके वेगसे शोक करने वाली बनाओ और उसे कम्पायामन करो । तुम दोनों इन्द्र के मित्र हो । हमारे शत्रुओं को हराते हुए हमको विजय प्राप्त कराओ।१८। हे न्यर्बुदि, भय से कम्पित हुआ हमारा शत्रु अङ्गोंके टूटने पर मर कर सो जाय । अग्नि की धूमशिखा मुक्त सेनाएँ हमारी

सेना के साथ गमन करें ।१६। हे अर्बुदे,हमारे शत्रुओं में जो श्रेष्ठ हो ऊन्हें चुन-चुन कर इन्द्र हिंसित कर डालें । उनमें से कोई भी शेष न रहे ।२०।

उत्कसन्तु हृद्‌यान्यूर्ध्वः प्राण उदीषतु ।
शौष्कास्यनु वर्ततामामित्रान् मोत मित्रिणः ।२१
ये च धीरा ये चाधीराः पराञ्चो बधिराश्च ये ।
तमसा ये च तूपरा अथो बस्ताभिवासिनः ।२२
अर्बुदिश्च त्रिषन्धिश्चामित्रान नो बिध्यताम् ।
यथेषामिन्द्र वृत्रहन् हनाम शचीपतेऽमित्राणां सहस्रशः ।२३
वनस्पतीन् वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः ।
गन्धर्वाप्सरस, सपनि देवान् पुण्यजनान् पितृन् ।
सर्वास्तां अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो हशे कुत्तदारांश्च प्रदर्शय ।२४
ईशां वो मरुतो देव आदित्यो ब्रह्मणस्पतिः ।
ईशां व इन्द्रश्चाग्निश्च धाता मित्रः प्रजापतिः ।
ईशां व ऋषयश्चक्रु रभित्रेषु समीक्षयन रदिते अर्बुदे तव ।२५
तेषा सर्वेषा मीशाना उत्तष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम् ।
इमं संजित्य यथालोकं वि तिष्ठध्वम् ।२६

शत्रुओं के देह से अन्तःकरण और प्राण वायु पृथक् हो। भय के कारण वे सूख जांय । हमारे मित्रों को यह भय जनित सूखा प्राप्त हो ।२१। वीर, कायर, युद्ध में पीठ दिखाने वाले, भीत कर्त्तव्य विमूढ़ जो योद्धा हमारे पक्ष में हैं उन्हें हे अर्बुदे ! अपनी माया से शत्रुओं का पराजय दिलाने में सामने करो ।२२। हे इन्द्र ! हमारे शत्रुओं को जिन सहस्रों प्रकार से नष्ट कर सको, उन्हीं विधियों से उसे नष्ट करो । त्रिसन्धि नामक देवता और अर्बुद हमारे शत्रुओं को अनेक प्रकार से न करें ।२३। हे अर्बुदे ! वृक्ष, वृक्षों से निर्मित वस्तु ब्रीहि, जौ, लय,

गन्ध, अप्सरायें और पूर्व पुरुषों को हमारे शत्रुओं को दिखाओ और उन्हें अन्तरिक्षके उत्पातों को दिखाते हुये भयभीत करो।२४। हे शत्रुओं! मरुद्गण तुम्हें दण्ड दें, इन्द्राग्नी नियन्त्रित करे, ब्रह्मणस्पति, धाता, मित्र, प्रजापति, अथर्वा, अङ्गिरा आदि तुम्हें शिक्षा दें। तुम्हारे द्वारा दर्शित होने पर इन्द्रादि भी शत्रु को दण्ड देने वाले हों।२५। हे देवगण ! तुम हमारे मित्र रूप हो। हमारे शत्रुओं को शिक्षा देने को तैयार होओ और तुम इस युद्ध को जीतकर अपने-अपने स्थान को लौट आओ।२६

सूक्त–१०

(ऋषि—भृग्वङ्गिराः। देवता—त्रिषन्धिः। छन्द—बृहती, जगती, पंक्ति, अनुष्टुप्, शक्वरी, गायत्री)

उत्तिष्ठतसनह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह।
सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्रानतु धावत।१
ईशां बो वेदराज्य तिषन्धे अरुणैः केतुभिः सह।
वे अन्तरिक्षे ये दिवि पृथिव्यां ये च मानवाः।
त्रिषन्धेस्ते चेतसि दुर्णामान उपासदाम्।२
अयोमुखाः सूचीमुखा अथो विकंकतीनुखाः।
क्रव्यादो वातरंहस आ सजन्त्वमिवात् वज्रेण त्रिषन्धिना।३
अन्तर्धेहि जातवेद आदित्य कुणप वहु।
त्रिषन्धेरियं सेना सुहितास्तु मे वशे।४
उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनाया सह।
अयं बलिर्व आहुतेस्त्रिषन्धेराहुतिः प्रिया।५
शितिपदी सं द्यतु शरव्येयं चतुष्पदी।
कृत्येऽमित्रेभ्यो भव त्रिषन्धे सह सेनया।६

धूमाक्षी स पततु कृधुकर्णी ब क्रोशतु ।
त्रिषन्धेः सेनया जिते अरुणाः सन्तु केतवः ।७
अबायन्ताँ पक्षिणो ये वर्यास्वन्तरिक्षे दिवि ये चरन्ति ।
श्वापदौ मक्षिकाः सं रभन्तामामादो गृध्राः कुणते रदन्ताम् ।८
यामिन्द्रेण सधां समधत्था ब्रह्मणा च बृहस्पते ।
तयाहमिन्द्रसंधया सर्वान् देवानिह हुव इतो जयत मामुतः ।९
बृहस्पतिराङ्गिरस ऋषयो ब्रह्मसशिताः ।
असुरक्षयणं वध त्रिषन्धि दिव्याश्रयन ।१०

हे सेनानायको ! तुम अपनी ध्वजाओं सहित इस संग्राम के लिए कटिबद्ध होओ । कवचादि धारण कर रणक्षेत्र के लिए कूच करो । हे देवताओ, हे राक्षसों ! तुम हमारे शत्रुओं को खदेड़ते हुए दौड़ो ।१। हे शत्रुओ ! त्रिसन्धि नामक वज्र का अभिमानी देवता तुम्हारे राज्य का दण्डनीय माने । हे त्रिसन्ध,तुम अपनी अरुण ध्वजाओं सहित उठो और अन्तरिक्ष, आकाश और पृथिवी में जो केतु उत्पात रूप वाले हैं, उनके सहित उठो ।२। हे त्रिसन्ध, तुम्हारे मन में जो दुष्ट जीवों का दल है वह हमारे शत्रु की कामना करे । वे जीव लोह-चौंच, सुई समान नोंक वाली चौंच, कांटेदार मुख वाले होते हैं । वे मांस भक्षी पक्षी तुम्हारी प्रेरणा से वायु के वेग से शत्रुओं पर छा जांय ।३। हे अग्ने ! आदित्य को आच्छादित करो । त्रिसन्धि देवता की सेना भले प्रकार मेरे वशीभूत हो । हम अपने शत्रुओं पर उस सेना के द्वारा महान् प्राप्त करें ।४। अर्बुद देव, अपनी सेना सहित उठो । यह आहुति तुम्हें तृप्त करने वाली हो । त्रिसन्धि देव की सेना भी हमारी आहुति से तृप्त होती हुई हमारे शत्रूओं को नष्ट कर डाले ।५। यह चार पांव वाली गौ बाण रूप होकर शत्रुओं पर गिरे । हे कृत्या रूप वाली श्वेत पदों धनु, शत्रुओं के निमित्त तू साक्षात् कृत्या वन और त्रिसन्धि देवता की सेना भी तेरे इस कार्य में पूर्ण रूप से सहायक हो ।६। मायामय धुएँ से शत्रु की सेना के नेत्र आच्छादित हो जांय और

फिर वह गिरने लगे। उसकी श्रवण शक्ति नगाड़ों के घोषों से नाश को प्राप्त हो। जब त्रिसन्धि देवता शत्रु विजय की इच्छा से अपने केतु को रक्त वर्ण का करे तब शत्रु रोने लगे।७। शत्रु दल के मरकर गिरने पर आकाश में उड़ने वाले पक्षी उनके मांस भक्षणार्थ नीचे हों। शृङ्गाल और मक्खियाँ उन पर आक्रमण करे। कच्चा मांस खाने वाले गिद्ध उन्हें अपनी चोंचों और पंजों से कुरेद डालें।८। हे बृहस्पते ! तुमने इन्द्र और उनके उत्पत्तिकर्त्ता ब्रह्मा से जो संधान क्रिया ली है, उससे मैं इन्द्रादि देवताओं को इस युद्ध में आहूत करता हूँ। हे देवताओ ! हमारी सेनाओं को जिताओ और शत्रु सेना को हराओ।९। अंगिरा-पुत्र बृहस्पति और अपने मन्त्र से तेज को प्राप्त हुये अन्य महर्षि भी, राक्षसों का नाश करने वाले हिंसा-साधन वज्र की सहायता लेते हैं।१०।

येनासो गुप्त आदित्य उभाविन्द्रश्च तिष्ठतः।
त्रिषन्धिदेवा अभजन्तौजसे चबलाय च।११
सर्वाल्लोकान्त्समजयन् देवा आहुत्यानया।
बृहस्पतिरांगिरसो वज्रं यमसिञ्जतासुरक्षयणं वधम्।१२
बृहस्पतिरांगिरसो वज्रं यमसिञ्जजतासुरक्षयण वधम्।
तेनासममू सेनां नि लिम्पाभि बृहस्पतेऽमित्रान् हन्म्योजसा।१३
अर्थे देवा अत्यायन्ति ये प्रन्नस्ति वषट्कृतम्।
इमांजुषध्वमाहुतिमितो जयत मामुतः।१४
सर्वे देवा अत्यायन्तु त्रिषन्धेराहुतिः प्रिया।
सधा महतो रक्षत ययाग्रे असुपा जिताः।१५
वायुरमित्राणामिष्वप्रास्याश्चतु।
इन्द्र एषां वांहून् प्रति मनक्तु म शकन् प्रतिधामिषुम्।
आदित्य एषामस्त्रं वि नाशयतु चन्द्रमा यतामगतस्य पन्थाम्।१६
यदि प्रेयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे।
तनूपानं परिपाणं कृण्वाना यदुपोचिके सर्वंतदरससधि।१७

क्रव्यादानुवयन् मृत्युन च पुरोहतम् ।
त्रिषन्धे प्रेहि सेनया जयामित्रान् प्र पद्यस्व ।१८
त्रिषन्धे तमसा त्वमामित्रान् परि वारय ।
पृषदाज्यप्रणुतानां मामीषां मोचि कश्चन ।१९
शितिपदी सं पतत्वमित्राणामः मूसिचः ।
मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणा न्यर्बुदे ।२०

त्रिसंधि देवताओं ने राक्षसों के उत्पातों को मिटाकर जिस आदित्य की रक्षा की, वह आदित्य और इन्द्र उन्हीं त्रिसन्धि के बल से स्वर्ग में निर्भय रहते हैं । देवगण, राक्षसों के संसार-साधन त्रिसंधिकी ओज और बल की प्राप्ति के निमित्त सेवा करते हैं ।११। अङ्गिरा पुत्र बृहस्पति ने जिन संसार साधन को सींचकर बनाया था, इन्द्रादि देवताओं ने उस पृषदाज्यु यज्ञ द्वारा राक्षसोंका संहार कर, सब लोकों को पाया था ।१२। राक्षसों के हनन साधन जिस वज्र को अङ्गिरा पुत्र बृहस्पति ने बनाया था, हे बृहस्पते ! मैं शत्रु की सेना का मन्त्र बल से युक्त उसी वज्र द्वारा संहार करता हूँ ।१३। हवियों को भोगने वाले इन्द्रादि देवता शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर हमारे पास आ रहे हैं । ऐसे देवताओ ! शत्रु को हराओ और हमको जिता दो ।१४। हमारी ग्रह हवि त्रिसंधि देव को तृप्त करे । शत्रुओं को लाँघकर इन्द्रादि सब देवता हमारी ओर आवें । देवगण ! हमारी विजय प्रतिज्ञा को पूर्ण करो । तुमने इसी प्रण से राक्षसों पर विजय प्राप्त की थी ।१५। इन्द्र इन शत्रुओं की भुजाओं को शस्त्र ग्रहण करने में असमर्थ करे । वायु इन शत्रुओं के बाणों के अगले भाग पर पहुँच कर उन्हें निवीर्य करे और वे अपने बाणों को पुनः न चढ़ा पावें । सूर्य इन्हें शक्तिहीन करें चन्द्रमा शत्रु के हमारी ओर आने वाले मार्ग को छुपा दे ।१६। हे देवगण ! शत्रुओं ने यदि पहले ही मन्त्रमय कवच बना लिये हों तो तुम उन्होंने जो मन्त्र कहा हो उसे व्यर्थ कर दो ।१७। हे त्रिसंधि देव ! सामने खड़े इस शत्रु को मांस भक्षक दैत्य के सामने करो । तुम उस पर अपनी सेना सहित आक्रमण करते हुए शत्रु के मध्य में घुस जाओ ।१८। हे

त्रिसन्धे ! अपनी माया से प्रकट अन्धकार द्वारा उन्हें सब ओर से घेर लो और पृषदाज्य के द्वारा उन्हें खदेड़ो । इन शत्रुओं में से एक भी शेष न बचे ।१९। हमारे शस्त्रों से पीड़ित हुई शत्रु सेना में श्वेत पाद वाली गौ कूद पड़े । हे न्युर्बुदे ! दूर पर दिखाई पड़ने वाली शत्रु सेना मोह में पड़ कर कर्त्तव्य ज्ञान से रहित हो ।२०।

मूढा अमित्रा न्युर्बुदे जह्येषां वरंवरम् । अन्या जहि सेनया ।२१
यश्च कवची यश्चाज्मनि यश्चामित्रो यश्चाज्मनि ।
ज्यापाशैः कवचाशेरज्दनाभिहृतः शयाम् ।२२
ये वर्मिणो येऽवर्माणो अमित्रा ये च वर्णिाः ।
सर्वास्तां अर्बुदे हतञ्छवानोऽदन्तु भूम्याम् ।२३
ये रथिनो ये अरथा असादा ये च सादिनः ।
सर्वानदन्तु तान् हतान गृध्रा श्यनाः पतत्रिणाः ।२४
सहस्रकृणपा शेतादामित्री सेना समरे वधानाम् ।
विविद्धा ककजाकृता ।२५
मर्माविधं रोरुवतं सुपर्णोरदन्तु दुश्चितं मृदितं शयानम् ।
य इमाँ प्रतीचीमाहुतीममित्रो नो युयुसति ।२६
यां देवा अनुतिष्ठन्ति यस्या नास्ति विराधनम् ।
तयेन्द्रो हन्तु वृत्रहा वज्रेणा त्रिषन्धिना ।२७

हे न्युर्बुदे ! तुम हमारे शत्रुओं को अपनी माया द्वारा कर्त्तव्य ज्ञान से शून्य करो । शत्रुओं में जो श्रेष्ठ हों, उन्हें ढूंढ़ ढूंढ़ कर मारो । हमारी सेना द्वारा भी उनका नाश कराओ ।११। कवचधारी, कवच-हीन, नग्न, रथादि पर चढ़ा हुआ जो भी शत्रु हो ब्रह्म पाशों द्वारा बांधा जाकर निश्चेष्ट हो जाय ।२२। हे अर्बुदे ! कवचधारण किये हुए । कवच रहित, अनेक रक्षा-साधनों से युक्त जो शत्रु हैं, वे तुम्हारे द्वारा नाश को प्राप्त हों और फिर उन्हें श्वान या श्रृङ्गाल भक्षण कर डालें ।२३। हे

अर्बुदे ! रथारूढ़ हो, रथ रहित, अश्वारोही, अश्व रहित जो शत्रु है, वे सब तुम्हारी कृपा से मृत्यु को प्राप्त हों और गिद्ध आदि नोंच-नोंच कर खा डालें ।२४। हमारी सेना के निकट आने वाली शत्रु-सेना बुरी तरह आहत हो और मृत्यु को प्राप्त होती हुई कुत्सित जन्म को प्राप्त करे ।२५। हमारी पृषदाज्य आहुतिको लौटाकर शत्रु हमसे संग्राम करने की इच्छा करता है, हमारे बाणों से उसका मर्म स्थान टूक-टूक हो। वह रोता हुआ धराशायी हो और श्वान, शृगाल उसे भक्षण कर डालें ।२६। जिस पृषदाज्य हवि को वज्र की उत्पत्ति के लिए देवगण करते हैं और जो हवि कभी व्यर्थ नहीं होती, उस हवि के द्वारा उत्पन्न हुये वज्र से देवाधिपति इन्द्र हमारे शत्रुओं का संहार करें ।२७।

।। एकादशं काण्डं समाप्तम ।।

—×—

द्वादश काण्ड

सूक्त–१ [प्रथम अनुवाक]

(ऋषि—अथर्वा । देवता—भूमिः । छन्द—त्रिष्टुप्, जगती, पंक्ति अष्टि, शक्वरी, बृहती, अनुष्टुप्, गायत्री)

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपा ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारायन्ति ।
मा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरु लोकं पृथिवी न कृणोतु ।१
असवाध मध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु ।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ।२
यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्न कृष्टयः सबभूवुः ।

यस्यामिदं जिन्वति प्राणादेजत सा नो भुमिः पूर्वपेये दधातु ।३

यस्याश्चतस्त्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः सबभूवुः ।
या बिभर्ति बहुधा प्राणादेजत सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ।४

यस्यां पूर्वे पूर्व जना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भग वर्चः पृथिवी नो दधातु ।५
विश्वंभरा वसुधानो प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी ।
वैश्वानर बिभ्रती भूमिरन्द्रिऋषभा दविणे नो दधातु ।६

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विशवदानो देवा भूमि पृथिवीमप्रमादम् ।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ।७

यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीदयां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणाः ।
यस्या हृदयं परमे व्योमत्त्येनावुतममृत प्रणिव्याः ।
सा नो भूमिस्त्विषिं बल राष्ट्रे दधातूत्तमे ।८

यस्यामापः परिचरा समानीरहोरात्र अप्रमाद क्षरन्ति ।
सा नो भूमिर्भू रिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा ।९

यामन्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यांविक्रमे ।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रा शचीपतिः ।
सा नो भूमिर्वि सृजतांमाता पुत्राय मे पयः ।१०

ब्रह्म, तप, सत्य, यज्ञ, दीक्षा और वृहत जल पृथिवी के धारण करने वाले हैं। ऐसी यहभूत और भवितव्य जीवोंकी पालनकर्त्री पृथिवी हमको स्थान दे ।१। जिस पृथिवी में चढ़ाई, उतराई और समतल स्थान हैं,जो अनेक सामर्थ्योंसे ओषधियों को धारण करती हैं वह पृथिवी हमको भले प्रकार प्राप्त हो और हमारी कामनाओं को सफल करे ।२। समुद्र, नदियों और जलसे सम्पन्न पृथिवी, जिसमें कृषि और अन्न होता है, जिससे यह प्राणवान् संसार तृप्त होता है, वह पृथिवी हमको फल रूप रस उपलब्ध होने वाले प्रदेश में प्रतिष्ठित करे ।३। जिस पृथिवी

में चार दिशायें हैं, जिसमें कृषि और अन्न होता है जो प्राणवान् संसार की आश्रय रूप है, वह पृथिवी हम को गौ और अन्न से युक्त करे ।४। पूर्व पुरुषों ने जिस पृथिवी में अनेक कर्म किये, जिस पृथिवी में देवताओं ने दैत्यों से संग्राम किया, जो गौ, घोड़े और पक्षियों के आश्रय रूप हैं वह पृथिवी बर्च (तेज) और ऐश्वर्य दे ।५। जो पृथिवी धनों की धारण कर्त्री, संसार की भरणकर्त्री, सुवर्ण को वश में धारण करने वाली और विश्व की आश्रय रूपा है, वह वैश्वानर अग्नि को धारण करने वाली पृथिवी हमको द्रव्य दें ।६। जिस पृथिवी की रक्षा देवता जगत रहते हुये करते हैं वह पृथिवी हमको प्रिय एवं मधुर धनों से और वर्च से युक्त करे ।७। जो पृथिवी समुद्र में थी, विद्वान् जिस पृथिवी पर श्रम करते हुए विचरते हैं, जिसका हृदय आकाश में स्थित है, वह अमृतमयी पृथिवी हमको श्रेष्ठ राष्ट्र वल और दीप्ति में प्रतिष्ठित करे ।८। जिस पृथिवी में प्रवाहमान जल समान गति से दिन और रात्रि में भी गमन करते हैं ऐसी भूमि धारा पृथिवी हमको दूध के समान सार रूप फल और वर्च से युक्त करे ।९। जिस पृथिवी को अश्विनी कुमारों ने बनाया, विष्णु ने जिस पर विक्रमण किया, इन्द्र ने जिसे अपने आधीन कर शत्रुओं से हीन किया, वह पृथिवी, माता द्वारा पुत्र को दूध पिलाने के समान सार रूप जल मुझे प्रदान करे ।१०।

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरणय ते पृथिवि स्योनमस्तु ।
बभ्रुं कृष्णं रेहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां प्रथिवीमिन्द्रगुप्ताम् ।
अजीतोऽहतोअक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम् ।११
यत् ते मध्यं पृथिवी यच्च नभ्यं यास्त उर्ज तन्वः सबभूवुः ।
तासु नो तेह्यमि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अह पृश्विव्याः ।
पर्जन्यः पितः स उ नः पिपर्तु ।१२
यस्यावेदिं परिगृणिन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणा ।
यस्यां मीयन्ते स्वरब पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात् ।
सा नो भूमिवर्धमाना ।१३

यो नो द्वेषत् पृथिवी यः पृतन्याद् योऽभिदासान्मनसा यो वधेन।
तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ।१४
त्वज्जातास्त्वाय चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षिद्विपदस्त्वं चतुष्पदः।
तवेमे पृथिवी पञ्च मानवायेभ्योज्योतिरमृतं मृत्र्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिरातनोति ।१५

ता नः प्रजाः स दुह्रतं समग्रा वाचो मधु पृथिवी धेहि मह्यम् ।१६
विश्वस्व म तरमोषीधीनां ध्रुवां भूमि पृथिवीं धर्मणा घृताम्।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा ।१७
महत् सधस्थं महतो बभूबिथ महान् वेग एजथुर्वेपथुष्टे।
महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम्।
सा नौ भूमे प्ररोचय हिरण्यस्येब संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन ।१८

अग्निभूंम्यामोषधीष्वग्निमापो विभ्र द्वित्यग्निरवसु।
अग्निरन्त पुरुयेषु गोष्वश्वेष्यग्नयः ।१९
अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्बन्तरिक्षम।
अग्निमर्तासि इन्धते हव्यवाह घृतप्रियम् ।२०

हे पृथिवी ! तेरे पहाड़, हिम प्रदेश और जंगल हमारे लिए सुख वाले हों। अनेक रङ्ग वाली इन्द्रगुप्ता पृथिवी पर मैं क्षय रहित पराजय-रहित से सदा प्रतिष्ठित रहूँ ।११। हे पृथिवी ! तेरे मध्य भाग (नाभि के भाग) से शरीर पुष्ट करने वाले जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं, उनमें मुझे प्रतिष्ठित करो। मेरी माता भूमि और पिता मेघ हमको पवित्र करते हुए पुष्ट करें ।१२। जिस पृथिवी में वेदी बनाकर सम्पूर्ण कर्मों वाले यज्ञ को करते हैं, जिस पृथिवी पर आहुति देने से पूर्व ही यज्ञ स्तम्भ स्थित होते हैं, वह प्रवृद्ध पृथिवी हमारी वृद्धि करे ।१३। हे पृथिवी ! जो हमारा वैरी सेना एकत्र कर हमको क्षीण करता हुआ मारना चाहे, तुम हमारे निमित्त उन्हें नष्ट कर डालो ।१४। हे पृथिवी ! तुम पर जन्म लेने वाले प्राणी

तुम्हारे ऊपर ही घूमते रहते हैं। तुम जिन चौपाये पशु और दुपाये मनुष्यों को पोषण करती हो, उन्हें सूर्य अपनी रश्मियों द्वारा जीवन पर्यन्त पदार्थोंको प्रदान करते हैं। हे पृथिवी ! वे पचजन भी तुम्हारेही है।१५। सूर्य रश्मियां हमारे निमित्त प्रजा का और वाणियों का दोहन करे। हे पृथिवी ! मुझे मधुर पदार्थ प्रदान करो।१६। हम औषधियों को उत्पन्न करने वाली, संसार की ऐश्वर्य रूपा, धर्म और कर्म द्वारा आश्रित कल्याणमयी,सुख देने वाली पृथिवी पर सदा विचरण करें।१७। हे पृथिवी ! महती निवास भूमि है, तेरा वेग और कंपनभी महत्वपूर्णहै वे इन्द्र तेरे रक्षक हों। तू हमें सब का प्रिय बना। जैसे सुवर्ण सबके लिए प्रिय होताहै। वैसेही -मारा द्वेषी कोई न हो।१८। जल अग्निको धारण करता है, पृथिवी में अग्नि है, जल में, पुरुषमें और गो अश्वादि पशुओं में भी अग्नि है।१९। स्वर्ग में अग्नि तपते हैं, अन्तरिक्षमें भी हैं और मरणधर्म वाले मनुष्य हव्यवाह अग्नि की प्रदीप्त करते हैं।२०।

अग्निवासाः पृथिव्य सितज्ञ् स्त्वषीमन्तं संशितं मा कृणोतु ।२१
भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञ हव्यमरक्रतम् ।
भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः ।
सा नो भूमिः प्राणामायुर्दधातु जरदष्टि मा कृणोतु ।।२२
य तु गन्धः पृथिवि संबभूव य बिव्रत्योषधयो यमाप ।
य गन्धर्वा अप्सरश्च भेजिरे तेन मा सुरभि
कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ।।२३
यस्ते गन्धः पुष्करमाविवेश यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे ।
अमर्त्याः पृथिवि गन्धमग्रे तेन मा सुरभि ।
कृणू मा नो द्विक्षत कश्चन ।।२४
यस्तेगन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः ।
यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषू त हस्तिषु ।

कन्यायां वर्चो यद् भूमे तेनास्मां अपि सं वृज
मा नो द्विक्षत कश्चन ॥२५

शिला भूभिरमा पांसु: सा भूमि: सधृता धृता ।
तस्ये हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नम: ॥२६
यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्ठिन्ति विश्वहा ।
पृथिवी विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि ॥२७

उदीराणा उतासीनान्तिष्टन्त: प्रकामन्त: ।
पद्भ्यां दक्षणसव्याभ्यां मा व्यथिष्माहि भूम्याम् ॥२८
विमृग्वरी पृथिवीमा वदामि क्षमां भूमि ब्रह्मणा वावृधानम् ।
ऊज पुष्टं विभ्रतीमन्नभार्ग घृत त्वाभि नि पीदेम भूमे ॥२९
शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्त यो न: सेदुरप्रिये तं निदध्म: ।
पवित्रोण पृथिवी मोत् पुनामि ॥३०

जिस धूम में अग्नि का वास है, उस धूम को जानने वाली पृथिवी मुझे तेजस्वी बनावे ।२१। पृथिवी पर सुशोभित यज्ञोंमें देवताओंके लिए हवि दी जाती हैं, इसी पृथिवी पर मरणधर्म वाले जीव अन्न जल से व्यतीत करते हैं । यह पृथिवी हमको प्राण और आयु प्रदान करती हुई वृद्धावस्था तक जीवित रहने वाला बनावे ।२२। हे पृथिवी ! तेरे जिस गन्ध को ओषधि और जल धारण किए हुए हैं जिसका गन्धर्व और अप्सरायें सेवन करते हैं, मुझे उसी गन्ध से सुरभित बना । कोई मेरा बैरी हो ।२३। हे पृथिवी! तुम्हारी जो गन्ध कमल में है जिस गन्ध को सूर्य के विवाहोत्सव में मरण धर्म वाले जीवों ने धारण किया था, उसी गन्ध से मुझे सुरभित कर । मुझसे द्वेष करने वाला कोई न रहे ।२४। हे पृथिवी ! तुम्हारी जो गन्ध स्त्री पुरुषों में, अश्वों में, वीरों में, मृग, हाथी और कन्या में है, उस सब से मुझे सम्पन्न करो । मुझसे द्वेष करने वाला कोई न हो।२५। जो पृथिवी शिला, भूमि, पत्थर और

धूम के रूपों को धारण करती है। ऐसी पृथिवी हिरण्वक्षा है, मैं उसे नमस्कार करता हूँ।२६। वनस्पति उत्पन्न करनेवाले वृक्ष जिस भूमिपर अडिग रूप से खड़े रहते हैं, वे वृक्ष औषधादि के रूप में सब की सेवा करते हैं। ऐसी धर्म-आश्रिता पृथिवी का हम स्तवन करते हैं।२७। हम अपने दांये या बांये पांव से चलते हुए बैठते या खड़े होते हुए कभी व्यथित न हो।२८। क्षमा रूपिणी, परमपवित्र मन्त्र द्वारा प्रवृत पृथिवी का स्तवन करता हूँ। हे पृथिवी ! तू पोषक अन्न और बल के धारण करने वाली है। मैं तुझ पर घृताहुति देता हूँ।२१। पवित्र जल हमारे देहको सींचे। हमारे शरीर पर होकर जाने वाले जल शत्रु को प्राप्त हो। हे पृथिवी ! मैं अपने देह पवित्र द्वारा पवित्र करता हूँ।३०।

यास्ते प्राचीःप्रदिशो या उदीचीर्यास्तेभूमे अधराद्याश्चपश्चात्
स्योनास्ता म‍ चरते भवन्तु मा नि पप्त भुवने शिश्रियाणः।३१
मा नः पश्चान्मा पुरेस्तान्नुदिष्ठा मोत्तराद्धरादुत।
स्वास्ति भूमि नो भव मा विदन् परिपन्थनों बरोयो यावया
वधम् ।।३२

यावत् तेऽभि विश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना।
तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ।।३३
यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिण सव्यमाभि भूमे पार्श्वम्।
उत्तानास्त्वा प्रतीधो यत् पृष्टीभिरधिशेमहे।
माहिसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्यप्रतिशीवरि ।।३४
यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि पोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिषम् ।।३५
ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षा शरद्ध मन्तः शिशिरो वसन्तः।
ऋतवन्ते विहिना हायनीरहोरात्रे पृथिवी नो दुहाताम् ।।३६
याप सूर्यं विजमाना बिसृग्वरी यस्यामासन्नग्न्यो ये अप्स्वन्तः।
परा दस्यन् ददती देवपीयूनिन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम्।

शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे ।।३७

यस्या सदोहविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते ।
ब्रह्माणो यस्यामर्चयन्त्यृग्भि: साम्ना यजुर्विदः ।
युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे ।।३८

यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदनृधुः ।
सप्त सत्रेणा वेधसो यज्ञेन तपसा सह ।।३९

सा नो भूमिरादिशतु यमृनं कामयामहे ।
गो अनुप्रयुङ्क्ताभिन्द्र एतु पुरोगव ।।४०

हे पृथिवी ! तुम्हारी पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण रूप चारों दिशायें मुझे विचरण-शक्ति दे । मैं इस लोकमें रहता हुआ गिरने न पाऊँ।३०। हे पृथिवी! मेरे पूर्व,पश्चिम,उत्तर, दक्षिण चारों ओर खड़ी रह । मुझे दस्यु प्राप्त न करे, विकराश हिंसासे मुझे बचाती हुई मंगल करने वाली हो ।३२। मैं जब तक तुझे सूर्यके समक्ष देखता रहूँ तब तक मेरी दर्शन शक्ति नष्ट न हो ।३३। हे पृथिवी ! शयन करता हुआ मैं करवट लूँ या सीधा होकर सोऊँ, उस समय में हिंसित न होऊँ ।३४। हे पृथिवी! मैं तेरे जिस स्थल को खोदूँ वह शीघ्रही यथावत हो जाता मैं तेरे मर्म को पूर्ण करने में समर्थ नही हूँ ।३५। हे पृथिवी ! ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर और बसंत यह छैओं ऋतु तथा दिन-रात वर्ष यह सब हमको फल देने वाले हों ।३६। जो पृथिवी सर्प के हिलने पर कम्पायमान होती है, विद्युत रूपसे जल मे रहने वाला अग्नि जिस पृथिवी में भी निवास करता है जिसने वृत्रासुर को त्याग कर इन्द्र का वरण किया था, जो देवहिंसकों के फल-दायिनी नहीं होती और जो सुपुष्ट वीर्यवान् पुरुष के आधीन रहती है ।३७। जिस पृथिवी पर यज्ञ मंडप की रचना होतीहै, जिसमें यूप खड़े होतेहैं,जिस पृथिवीपर ऋक, साम, यजु के मन्त्रों द्वारा देव-पूजन और इन्द्र को सोम-पाग कराने का कार्य होता है ।३८। जिस पृथिवी पर भूत के रचयिता ऋषियोंने सात सूत्र वाले ब्रह्मयोग और स्तुतिरूप वाणियों से देव-पूजन किया था।३९

वह भूमि हमारा अभीष्ट धन दे। भार्गव हमको प्रेरणाप्रद हो और इन्द्र हमारे अग्रगण्य हों।४०।

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलवाः।
युध्यन्ते यस्याम क्रन्दोयस्यां वदति दुन्दुभिः।
सा नो भूमिः प्र णुदतां सपत्नानसमत्नं मा पृथिवो कृणोतु ।।४१
यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यैनमोऽस्तु वर्षमेदसे ।।४२
यस्याः पुरो दवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते।
प्रजापतिः पृथिवी क्षेत्रे यस्या विकुर्वते ।।४३
निधि बिभ्रता बहुधा गुहा वसु मणिः हिरण्यं पृथिवी ददातु मे।
बसूनि नो वसुदा रासमाना देवो मधातु सुमनस्यमाना ।।४४
जन विभ्रती बहुधा बिवाचसं नानाधर्माणाँ पृथिवी यथोकसम्।
सहस्रं धारा द्रविणास्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ।।४५
यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदशमा हेमन्तजब्धो भृमलो गुहा शये।
क्रिमिर्जित्वतपृथिवि यद्यदेजति प्रावृषि तन्नः सर्पन्मेप
सृपद् यच्छिवं तेन नो मृड।४६।
ये ते पन्थानौ बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे।
यैः संचरन्ष्तुभये भद्रापापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं
यच्छिवं तेन ना मृड ।।४७
मल्वं विभ्रती गुरुभृद्भद्रपापस्य निधनं तितिज्ञः।
वराहेणा पृथिवी संविदाना सकराय कि जिहीते मृगाय ।।४८
ये त आखयाः पशवो मृगा वने हिताः सिंह।
व्याघ्राः पुरुपादश्चरन्ति।
उल वृक पृथिविदुच्छुनामित ऋक्षीकांरक्षो अप वाधयास्मत्।४९

ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः ।
पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्मद भूमे यावय ।।५०

जिस पृथिवी पर मनुष्य नाचते गाते हैं, जिस पृथिवी पर संग्राम होते हैं, जिसपर रुदन होता और दुन्दुभि भी बजती है वह पृथिवीमुझे शत्रु हीन करे ।४१। जिस पृथिवी की पाँच कृषियाँ हैं, जिस पृथिवीपर धान्यादि अन्न होते हैं, उस वर्षा रूप मेवा द्वारा पुष्ट की जाने वाली पृथिवी को नमस्कार है ।४२। देवताओं द्वारा रचे गये हिंसक पशु जिस पृथिवी में अनेक क्रीड़ा करते हैं, जो सम्पूर्ण संसार को अपने में स्थित उस पृथिवी की दिशाओं को प्रजापति हमारे लिए मंगलमय करे ।३। निधियों को धारण करने वाली पृथिवी निवास कणि सुवर्ण आदि दे । वह धन प्रदान करनेवाली हमपर प्रसन्न होती हुई वरदायिनी बने।४४ अनेक धर्म और अनेक भाषा वाले मनुष्योंको धारण करनेवाली पृथिवी अडिग धेनु के समान मेरे लिए धनकी सहस्रों धाराओंका दोहनकरे।४५ हे पृथिवी ! तुम में जो सर्प वास करते हैं, उन सर्पो का देश व्यास लगाने वाला है, जो बिच्छू है वह हेमन्त में डंक न किये गुफामें सोता रहता है वर्षा ऋतु में यह प्रसन्नता से विचरने वाले प्राणी मेरे पास न आवे । कल्याणकारी जीव ही मुझें प्राप्त हों, उनसे मुझे सुख दो।४६। हे पृथिवी ! मनुष्यों के रथादि के चलने के जो मार्ग है, उन मार्गों पर धर्मात्मा और पापात्मा दोनों ही चलते हैं । जो चोर और शत्रुओं से रहित मार्ग है, वही कल्याणप्रद मार्ग हमें प्राप्त हो । उसीके द्वारा तुम हमें सुखी करो ।४७। पुण्य और पाप और कर्म वालों के शवों को तथा शत्रुको भी धारण करने वाली जिस पृथिवी को वराह ढूढ़ रहे थे वह उन बाराह को ही प्राप्त हुई।४८। जो हिंसक पशु व्याघ्र आदि घूमतेहैं उनको उल, वृक ऋक्षीका और राक्षसों को हमसे दूर करके बाधा दो ।४९। हे पृथिवी, गन्धर्व, अप्सरा, राक्षस, किमि दिन, पिशाच आदि को हमसे दूर कर ।५०।

यां द्विपादः पक्षिणः संपदन्ति हंसा सुपर्णा शकुना वयांसि ।
यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्च्यावयंश्च वृक्षान् ।
वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः ॥५१

यस्यां कृष्णमरुणं संहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि ।
वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये ।
धामनिधामनि ॥५२

द्यौश्च म इदं पृथिवी आन्तरिक्ष च मे व्यचः ।
अग्निः सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्च स ददुः ॥५३

अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम् ।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः ॥५४

अदो यद् देवि प्रथमाना पुरस्ताद् देवैरुक्ता व्यसर्पो महित्वम् ।
आ त्वा सुभूतमविशन् तदानीमकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्रः ॥५५

ये ग्रमा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम् ।
ये सग्रामाः समितय तेषु चारु ववेम ते ॥५६

अश्वइव रजो दुधुवे वि तान जनान् य आक्षियत ।
पृथिवो यादजायत् ।
मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा वन पतीनां गृभिरोषधीनाम् ॥५७

यद वदामि मधुमत तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा ।
त्विषीमानस्मि जूतियानवान्यान हन्मि दोधतः ॥५८
शन्तिवा सुरभि स्योना कोलालोध्नी पयस्वती ।
भूमिरधि ब्रवीते मे पृथिवी पयसा सह ॥५९

यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम ।
भुजिष्यं पात्रं निहितं गुदा यदायिर्मो अभवन्तमातृमद्भ्यः ॥६०
त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुघा पप्रथाना ।
चत् त ऊनं तत् त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा ऋतयात।६१

उपस्थास्ते अननीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः ।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृत स्याम ।।६२
भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रातिष्ठतम् ।
संविदाना दिवा कवे श्रियां धेहि भूत्याम् ।।६३

जिस पृथिवी पर दो पाँव के पक्षी हंस, कौए, गिद्ध आदि घूमते हैं, जिस पृथिवीपर वायु धूल उड़ाते और बृक्षोंको पतित करते हैं और वायुके तीक्ष्ण होनेपर अग्निभी उनके साथ चलते हैं।५१। जिस पृथियी पर काले और लाल दिन, रात्रि मिले रहते हैं, जो पृथिवी वर्षा से आवृत होती है. वह पृथिवी सुन्दर चित्तवृत्ति से हमारे प्रिय स्थान को प्राप्त करावें ।५२। आकाश, पृथिवी, अन्तरिक्ष, अग्नि, सूर्य, जल, मेधा तथा सब देवताओं ने मुझे गमन-सामर्थ्य प्रदान की है ।५३। मैं शत्रु-तिरस्कार वाला श्रेष्ठ रूप में पृथिवी पर प्रसिद्ध हूँ मैं शत्रुओं को सामने जाकर दबाऊँ मैं हर दिशा में रहने वाले शत्रु को भले प्रकार वश में कर लूँ।५४। हे पृथिवी! तुम्हारे विस्तृत होनेसे पहले देवताओं ने तुम से विस्तार युक्त होने को कहा था, उस समय तुम में भूतों ने प्रवेश किया तभी चार दिशायें बनाई गईं ।५५। पृथिवी पर जो गांव, जंगल और सभायें हैं, जो युद्धकी मन्त्रणायें तथा युद्ध होतेहैं उन सबमें हम, हे भूमि, तेरी वन्दना करते हैं ।५६। पृथिवी में उत्पन्न हुए पदार्थ पृथिवी पर ही रहते हैं, उन पर अश्वके समान धूल उड़ातेहैं। यहभूमि मुद्रा और इत्वरीहै तथा वनस्पति और ओषधियों के अभयसे लोकका पालन करने वाली है ।५ । मैं जो कुछ कहूँ वह मिष्ट हो जिसे देखूँ वही मेरा प्रिय हो । मैं यशस्वी और वेग वाला होऊँ, दूसरोंका रक्षक होता हुआ, जो मुझे कम्पित करे । उनका संहार कर डालूँ ।५८।सुख शान्ति देनेवाली अन्न और दूध वाली पृथिवी दूधके समान सार पदार्थ वाली होती हुई मेरे पक्ष में रहे ।५९। जिस पृथिवी को राक्षसों के चक्कर से हवि द्वारा निकालने की विश्वकर्माने इच्छाकी तो गुप्त रहने वाला भुजिष्य पात्र (अन्न) उपभोग के समय दिखाई पड़ने लगा।६०

हे पृथिवी ! तू कामनाओंको पूर्ण करने वाली है, इस विश्वकी क्षेत्ररूपा एवं विस्तार वाली है। तेरे कम होने वाले भागको प्रजापति पूरा करते हैं ।१। तेरे द्वीप भी हमारे लिए यक्ष्मा रोग से रहित रहें । हम अपनी दीर्घ आयु से युक्त हुये तुझे हवि देने वाले बने ।६२। हे पृथिवी माता ! मुझे मङ्गलमय प्रतिष्ठा में रखो । हे विज्ञ, मुझे लक्ष्मी और विभूति में स्थित रखते हुए स्वर्ग की प्राप्ति कराओ ।३।

सूक्त २ (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि–भृगुः । देवता–अग्नि, मन्त्रोक्ताः, मृत्युः । छन्द-त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, पंक्ति, जगती, बृहती, गायत्री)

नडमा रोह न ते अत्र लोक इदं सीसं भागधेयं य एहि ।
यो गोषु यक्ष्नः पुरुषेषु यक्ष्तस्तेन त्वं साकमधराङ् परेहि ।।१
अधशंसदुः शंसाभ्यां करेणानुकरेणा च ।
यक्ष्मं च सर्वं तेनेता मृत्युं च निरजामसि ।।२
निरितो मृत्युं निर्ऋतिं निररातिं निररातिमजामसि ।
यो नो द्वेष्टि तमदध्यग्ने अक्रव्याद् यमु द्विष्मस्तमु ते प्रसुवामसि ।।३
यद्यग्निः क्रव्याद् यदि वा व्याघ्र इम गोष्ठ प्रविवेशान्योकाः ।
तं माषाज्यं कृत्वाप्र हिणोमि दूरं स गच्छत्वप्सुषदोऽप्यग्नीन् ।।४
यत् त्वा क्रुद्धाः प्रचक्र मन्युना पुरुषे मृते ।
सुकल्पमग्ने तत् त्वया पुनस्त्वोद्दीपयामसि ।।५
पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः पुनर्ब्रह्मा वसुनीतिरग्ने ।
पुनस्त्वा ब्रह्मणात्पतिराधाददीर्घायुत्वाय ।।६
यो अग्निःक्रव्यात् प्रविवेश नो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम्।
तंहरामि पितृयज्ञदूरं स धर्मामन्धाँ परमे सधस्थे ।।७
क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः ।

इहायमितरो जातवेदा देवो देवेभ्यो हव्यंवहतु प्रजानम् ॥८
क्रव्यादमग्निमिषितो हरामि जनान् दृहन्त वज्रेण मृत्युम् ।
नि तं शास्मि गार्हपत्येन विद्वान पितृणाँ लोके अपिभागोअस्तु॥९
क्रव्यादमग्नि शशममुक्थ्यं प्र हिणोमि: पथिभि: पितृयाणै: ।
मा देवयानै: पुनरा गा अत्रैवैधि पितृषु जागृहि त्वम् ॥१०

हे क्रव्याद् अग्ने ! तू नड पर आरोहण कर । जो यक्ष्मा मनुष्योंमें या जो यक्ष्मा गौ में हैं तू उनके साथही यहाँसे दूर जा। तू अपने भाग्य सीमा पर आ।१। पाप और दुर्भावनाओं का नाश करने वाले कर और अनुकर से यक्ष्मा को पृथक करता हूं और मृत्यु को भी दूर भगाता हूं।२। हे अक्रव्याद् अग्ने ! हम पाप देवता निर्ऋति और मृत्यु को दूर करते हैं। अपने शत्रुओं को भी दूर करते हैं। जो हमारे बैरी हैं उन्हें तुम्हारी ओर भेजते हैं, तुम उनका भक्षण करो।३। यदि क्रव्याद् अग्नि ने या व्याघ्र ने हमारे गोष्ठ में प्रवेश किया है तो मैं उसे माष आज्य द्वारा दूर करता हूं, वह जल में वास करने वाली अग्नियों को प्राप्तहो।४। पुरुषकी मृत्युके कारण क्रोधित हुए प्राणियोंने तुम्हें प्रदीप्त किया, वह कार्य पूर्ण हो गया इसलिए तुम्हें तुमसे ही प्रदीप्त करते हैं।५। हे अग्ने, बसु ब्रह्मणस्पति, ब्रह्म रुद्र, सूर्य और वसुनीति ने तुम्हें, सौवर्ष का जीवन प्राप्त करनेके लिए पुन: प्रदीप्त किया था।६। अन्य अग्नियों के देखने के लिए यदि क्रव्याद् अग्नि हमारे घर में प्रविष्ट हुआ है तो पितृयज्ञ करने के लिए मैं उसे दूर करता हूं वह परम आकाशमें स्थित होकर घर्म को बढ़ावे।७। मैं कव्याद अग्नि को दूर करता हूं वह पाप को साथ लेता हुआ यमस्थान को प्राप्त हो जातवेदा अग्नि यहाँ प्रतिष्ठित होकर देवताओं के लिए हवि वहन करे।८। मैं अपने मन्त्र रूप वज्र से क्रव्याद् अग्नि को दूर करता हूं। गार्हपत्य अग्नि के द्वारा मैं अग्नि का शासन करता हूं, यह पितरों का भाग होता हुआ उनके लोक में स्थित होता हुआ उनके लोक में स्थित हो।९। उक्थ के प्रशंसक क्रव्याद अग्नि को, मैं पितृयान मार्ग से भेजता हूं। हे क्रव्याद्!

तू पितरों में ही प्रवृद्ध हो और नहीं जागता रहा देवयान मार्ग द्वारा पुज: यहाँ मत आ ।१०।

समिन्धते सकसुक स्व तये शुद्धा भवन्त शुचय: पावका: ।
जहाति रिप्रमत्येन एति समिद्धो अग्नि: सुपुना: पुनाति ।।११
देवो अग्नि: संकसुको दिवस्पृष्ठान्वारुहत ।
मुच्यमानो निरेणासोऽयोगस्मां अशस्त्या: ।।१२
अस्मिन वयं संकसुके अग्नौ रिप्राणि मृजाहे ।
अभम यज्ञिया: शुद्धा: प्रणा आयुंषि तारिषत् ।।१३
संकसुको विकसको निर्ऋथो यश्च निस्वर: ।
ते ते यक्ष्मं सवेदसो दूराद् दूरमनीनशान ।।१४
यो नो अश्वेषु वीरेषु योनो गोष्वज विषु ।
क्रब्याद निणुदामसि यो अग्निर्जनयोपन: ।।१५
अन्येभ्यो पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्य त्वा ।
नि: क्रव्यादं नुदामसि यो अग्निर्जीवितयोपन: ।।१६
यस्मि देवा अमृजत यस्मिन मनुष्या उत ।
तस्मिन घृतस्तावो मृष्टवा त्वमग्ने दिव रुह ।।१७
समिद्धो अग्न आहुत स नो माभ्यापक्रमो ।
अत्रैव दीदिहि द्यवि ज्योक च सूर्यं दृशे ।।१८
सीसे मृडढवं नडे मृडढवमग्नौ संकसुके च यत् ।
अथो अव्या रामायां शीर्षक्तिमुपबर्हणां ।।१९
सीसे मलं सादयित्वा शीर्षक्तिमुपबर्हणो ।
अव्यामसिक्न्यां मृष्टवा शुद्धा भवत यज्ञिया: ।।२०

पबित्रताप्रद अग्निदेव शुद्ध होनेके लिए शवभक्षक अग्निको प्रदीप्त करते हैं, तब वह अपने पाप का त्याग करता हुआ जाता है उसे यह

पवित्र अग्नि शुद्ध करते हैं ।११। शवभक्षक अग्नि स्वयं पाप से मुक्त और अमङ्गल से हमारी रक्षा करते हुए स्वर्ग पर चढ़ते हैं ।१२। इस शवभक्षक अग्निमें हम अपने पापों को शोधते हैं । हम शुद्ध होगए,अब यह अग्नि हमको पूर्ण आयु बनावें ।१३। यक्ष्मा के ज्ञाता संकसुत,विकसुक, निर्ऋथ और निस्वर अग्नि यक्ष्मा के साथ ही सुदूर चले गये और वहाँ जाकर नाज को प्राप्त हुए।१४। जो क्रव्याद हमारे अश्व,गौ बकरी आदि पशुओं और पुत्र-पौत्रादि में प्रविष्ट हुआहै उकेहम भगाते हैं ।१५। जो क्रव्याद् जीवनके क्रम को बिगाड़ने वाला हैं उसे हम मन्त्र बल से भगातेहैं । हे क्रव्याद् अग्ने, हम तुझे मनुष्यों गौओं और अश्वों से दूर करते हैं ।१६। हे अग्ने, जिसमें देवता और मनुष्य शुद्ध होते है उनमें शुद्ध होकर तू भी स्वर्गारोहण कर ।१७। हे गार्हपत्य अग्ने, तुम हमारा त्याग न करो तुम भलेप्रकार प्रदीप्तहो रहे हो तुममें आहुतियाँ दी जा रही हैं तुम सूर्य के चिरकाल तक दर्शन कराने के लिए प्रदीप्त होओ ।१८। हे पुरुषो, शिर रोग को सीसे में, नड नामक घास में सकसुक में और भेड़ तथा स्त्री में भी शुद्ध करो ।१९। हे पुरुष, शिर के रोग को तकिये में स्थापित करो मल को सीसे में और काली भेड़ में शुद्ध करके स्वयं शुद्ध होओ ।२०।

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्त एष इतरो दे देवयानत् ।
चक्षुष्मते श्रणवते ते ब्रवीतीहेमे वीरा बहवो भवन्तु ।।२१
इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्नभूद भद्रा देवहूतिर्नो अद्य ।
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय सुवीरासो विदथमा वदेम ।।२२
इमं जीवेभ्या परिधिं दधामि मैषां नु गदापरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तः शदरपरूचीन्तिरो मृत्युं दधतां पतेर्वन ।।२३
आ रोहतापुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यदि स्थ ।
तान् व त्वष्टा सुजनिमा सुजोषाः सर्वमायुर्नयतु जीवनाय ।।२४
यथाहान्यद्रपूर्वं भवन्ति यथर्तव ऋतुभिर्यन्दि साकम् ।
यथा न पर्वमपरो जहात्येवा धासरायूंषि कल्पयैषाम ।।२५

अश्म वती रीयते सं रभध्वं स वीरयध्वं प्र तरता सखाय ।
अत्रा जहीत ये असन् दुरेवा अनमीवानुत्तरेमाभि वाजान् ।२६।
उत्तिष्ठता प्र तपता सखायोऽश्मत्वतो नदी स्यन्दत इयम् ।
अत्राजहीतये अमन्नशिवा शिवान्त्स्योनानुत्तरेमाभि वाजान्।।२७
वेश्वदेवी वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भन्वतः शुचयः पावकाः ।
अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम ।।२८
उदीचीनेः पथभर्यायुमद्भिरतिक्रामन्तोप्वरान् परेभिः ।
त्रिः सप्त कृत्व ऋषयः परेता मृत्युं प्रत्यौहन पदयोपनेन ।।२९
मृत्योः दद योपयन्त एत द्रघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
असोना मृत्युं नुदता सधस्टेऽथ जीवासो विदधमा वदेम ।।३०

हे मृत्यो, तू देवयान से भिन्न मार्ग में जा । तू दर्शन और श्रोत्र शक्तियों से युक्त है तो युगले कि यहाँ हमारे बहुत से बीर पुत्रादि रहेंगे ।२१। यह प्राणी मृत्यु को दूर करने वाली शक्ति से युक्त हो गये । हम सुन्दर वीरों से सम्पन्न होकर नृत्य, गान, हास्यमें रत हैं । हम यज्ञको प्रशंसा करते हुये कहते हैं कि देवताओं को आहुति देना आज कल्याण-कारी हो गया।२२। हे मनुष्यों, तुम पत्थरसे अपनी मृत्यु को दबाओ । मैं तुम्हें जो मन्त्र रूप कवच देता हूँ उसे कोई अन्य न प्राप्त करे । तुम सौ वर्ष तक जीवित रहो ।२३। हे मनुष्यो, तुम वृद्धावस्था की दीर्घ आयु का वरण करो । तुम सुन्दर जन्म वाले और समान प्रीति वाले हो । तुम्हें दीर्घ जीवन के लिए त्वष्टा पूर्ण आयु प्रदान करें ।२४। जैसे ऋतुयें एक के पीछे दूसरी आती हैं जैसे दिन एक के पीछे दूसरे आते हैं जैसे नया पहले का त्याग नहीं करता, वैसे ही हे धाता. इन्हें आयुष्मान करो ।२५। हे मित्रो, यह पाषाण युक्त नदी सुनाई पड़ रही है। वीरतापूर्वक इससे पार होओ । अपने पापों को इसीमें डाल दो । फिर हम रोग-निवारण वेगों को पार करें ।२६। मित्रो, वह पाषाण नदी शब्द कर रही है, उठकर पैरों और अपने पापों को इसमें प्रवाहित करो । हम इसके कल्याणप्रद और सुख देने वाले वेगों से पार हों ।२७।

हे पवित्राप्रद अग्नियो ! शुद्ध होनेके समय देवताओं का स्तवन करो। ऋग्वेद के पदों से पापों को लांघते हुए हम सो हेमन्तों तक पुत्रादि सहित आनन्दित हों ।२८। परलोक गमनमें वायुसे पूर्ण बत्तरायण मार्ग में जाने वाले ऋषियों ने निकृष्ट मनुष्यों को लांघा था। उन्होंने मृत्यु को भी इक्कीस बार पदयोपन द्वारा पार किया था।२९। मृत्युके लक्ष्य को भ्रमित करने वाले ऋषि आयु से परिपूर्ण हैं। तुम भी इस मृत्युको भगाओ। फिर हम जीवन लोक में यज्ञ की स्तुति करें।३०।

इमा नारीरविधवा: सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा संस्पृशन्ताम् ।
अनश्रबो अवमीवा: सुरत्ना आ रोहन्तु जनयौ योनिमग्रे ॥३१
व्याकरोमि हविषाहमेतौ तौ ब्रह्मणाव्यहं कल्पयामि ।
स्वधां पितृभ्यो अजरां कृणोमि दीर्घेणायुषासमिमान्त्सृजामि।३२
यो नो अग्नि: पितरो हृत्स्वन्तराविवेशामृतो मर्त्येषु ।
मय्यहं तं परि गृह्णामि देव मा सो अ मान् द्विक्षत भावयं तम्
॥३३

अपाबृत्य गार्हपत्यात् क्रव्यादा प्रेत दक्षिणा ।
प्रियं पितृभ्य: कृणुता आत्मने ब्रह्मभ्य प्रियम् ॥३४
द्विभागधनमादाय प्रदक्षिणात्यवर्त्या ॥
अग्नि पुत्रस्य ज्येष्ठस्य य: क्रव्यादनिराहित: ॥३५
यत् कृषते यद् वनुते यच्चु वस्नेन विन्दते ।
सर्वं मर्त्यस्य तन्नास्ति क्रव्याच्चेदनिराहित: ॥३६
ययज्ञियो हुतवर्चा भवति नैनेन हविरत्तवे ।
छिनत्ति कृष्लागोर्धनाद यं क्रव्यादनुवर्त्तते ॥३७
मुहुर्गृध्यैं प्र वदत्यार्ति मर्त्यो नीत्य ।
क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादनुविद्वान बितावति ॥३८
ग्राह्या गृहा स सृज्यन्ते स्त्रिय यन्म्रियते पति: ।
ब्रह्मैव विद्वानेष्याय: क्रव्याद निरादधद् ॥३९

यद् रिप्रं शतलं चकृम यच्च दुष्कृतम् ।
आपो मा तस्माच्छुम्भमन्त्वग्नेः सकसुकाश्च यत् ॥४०

यह स्त्रियां सुन्दर पति से युक्त रहें विधवा न हो। यह अश्रुओंसे रहित और घृत से युक्त हों। सुन्दर अलंकारों को धारण करने वाली हो और संतानोत्पति के लिए मनुष्य योनि में ही रही आवें।३१। मैं इन दोनों को मंत्र शक्तिसे सामर्थ्यवान करताहूँ। पितरों की स्वधा को जीर्णतारहित करता हुआ इन्हें दीर्घ आयु वाला बनाता हूँ।३२। हे पितरो! हमारे हृदय में नष्ट न होने वाले फल का देने वाला अग्नि व्याप्त हैं वह हम सबसे द्वेष करने वाला न हों। हम भी उसके प्रति द्वेष न करें।३३। हे प्राणियो! मन्त्रों द्वारा गार्हपत्य अग्नि से दूर हटो और क्रव्याद् अग्नि से दक्षिण दिशा को प्राप्त होओ। वहां अपने और पितरों के लिए जो प्रिय हो, वही कार्य करो।३४। जो पुरुष क्रव्याद अग्नि को नहीं छोड़ता वह अपने ज्येष्ठ पुत्र के तथा अपने धन को लेता हुआ क्षय को प्राप्त होता है।३५। जो पुरुष क्रव्याद् अग्नि का सेवन न छोड़े, उसकी कृषि, सेवनीय वस्तु समूल्य वस्तु आदि जो उसके पासहों व शून्य के समान रह जाते हैं।३६। जो पुरुष क्रव्यादि अग्नि को नहीं छोड़ता वह यज्ञ करने का अधिकारी नही रहता उसका तेज नष्ट हो जाताहै और आहूम देवता उसके पास नहीं आते क्रव्याद् जिसका साथी रहता है, उसे कृषि, गौ और ऐश्वर्य से विमुक्त करता है।३७। क्रव्याद् अग्नि जिसके पास रहकर ताप देता है, वह पुरुष अत्यन्त व्यथाको प्राप्त होता है। उसे आवश्यक वस्तुओं के लिए बारम्बार दीन वचन कहने पड़ते हैं।३८। जो क्रव्याद् अग्निको पूर्णतः ग्रहण करताहै, उसके लिए घर कारागार रूप बन जाते हैं और स्त्री का पति मृत्यु को प्राप्त होता है। उस समय विद्वान् का आदेश मानना चाहिए।३९। जो पाप कर चुके हैं उस पाप से और शब भक्षक अग्नि के स्पर्शदोष से मुझे जल से पवित्र करें।४०।

ता अधरादुदीचीरावट्टत्रन प्रजनतीः पथिमिर्देवयानैः ।

पर्वतस्य वृषभस्यादिपृष्ठे नवाश्चरन्ति सरित पराणी: ।।४१
अग्ने अक्रव्यान्निष्क्रव्याद नुदा देवयजन वह ।।४२
इमं क्रव्यादा विवेशाय क्रव्यादमन्वगात् ।
व्याघ्रौ कृत्वा प्रानान तं हरामि शिवापरम् ।।४३
अन्तर्थिर्देवानां परिधिर्मनुष्याणामग्निगार्हपत्य ।
उपयान तक्षा श्रित: ।।४४
जीवानामायु: प्रतिर त्वमग्नेपितृणां लौकमपि गच्छन्तु ये मृता: ।
सूगार्हपत्यो वितपन्नरातिषामुषां श्रेयसीं धेह्यस्मै ।।४५
सर्वानिग्ने सहमान: सपत्नानेषामूर्जं रयिमस्मासु धेहि ।।४६
इममिन्द्रं वन्हि पप्रिमन्वारभध्व स वो निर्वक्षम् दुरितादवद्यात्।
तेनाप हम शरुमापतन्तं तन रुद्रस्य परि पातास्ताम् ।।४७
अनड्वाहं प्लवमन्वापभध्वस वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात् ।
आ राहत सवितुनमिमेतां षड्भिरुर्वीभिरर्मति तरेम ।।४८
अहोरात्रे अन्वेषि विभ्रत क्षम्यस्थिन प्रतरण: सुवीर: ।
अनातुराननसस्तल्प बिभ्रज्जतोगेव न पुरुषवान्धिरेधि ।।४९
ते देवेभ्य आवृश्चन्ते पाप जीवन्ति सर्वदा ।
क्रव्याद् यानग्निरन्तिकाद इवानुवपते नडम ।५०।

जो खल देवयान मार्गों से दक्षिण से उत्तरके स्थान पर छा जातेहैं और नवीन होकर वर्षा रूप से पर्वत पर नदी रूप हो जाते हैं ।४१। हे अक्रव्याद् गार्हपत्य अग्ने तुम क्रव्याद् को हमसे दूर करो । देव-पूजनकी सामग्री को वहन करो ।४२। इस पुरुष ने क्रव्याद्को प्रविष्ट कर लिया और उसीका अनुगामी हो गयाहै मैं इन दोनोंके व्याघ्रके समान मानता हूं । इन कल्याणसे भिन्न क्रव्याद् अग्निको मैं पृथक् करता हूं।४३।देवताओंकी अन्तर्धि और मनुष्योंकी परिधि रूप गार्हपत्य अग्निदेवता और मनुष्यों के लिए मध्यस्थ हैं ।४४। हे अग्ने जीवितोंकी आयु वृद्धि करो।

मृतकों को पितरलोक भेजो। गार्हपत्य अग्नि शत्रुओं को जलावे। हे गार्हपत्य अग्ने ! मंगलमयी उषा को हम में प्रतिष्ठित करो ।४५। हे अग्ने ! सब शत्रुओं को वशीभूत करते हुये उनके बल और धन को हममें प्रतिष्ठित करो ।४६। इन ऐश्वर्यवान् वह्नि का स्तवन करो। वह तुम्हें पाप से मुक्त करें। उसके द्वारा रुद्र के वाण को दूर हटाते हुये अपनी रक्षा करो ।४७। हवि रूप भार के वाहक नौका रूप वह्नि का स्तवन करो। वे पाप से तुम्हारी रक्षा करें। सविता की नौका पर चढ़ कर छै उर्वियों द्वारा अमिति को पार करें।४८।हे गार्हपत्य अग्ने ! तुम दिन रात्रिके आश्रय रूप हुये प्राप्त होते हो। तुम कल्याण-प्रद होते हुये पुत्र-पौत्रादि से युक्त करते हो। तुम्हारी आराधना सुगम है। तुम हमें निरोग रखते हुये और हर्ष युक्तमन से हयंक पर चढ़ाते हुये दीर्घ काल तक प्रदीप्त होते रहो ।४९। जिनके पास अश्व द्वारा घास को कुचलने के समान क्रव्याद अग्नि कुचलता है वे पाप से अपनी जीविका चलाने वाले पुरुष देवायज्ञों के द्योतक हैं।५०।

तेऽश्रद्धा धनकाम्या क्रव्यादा समासते।
ते वा अन्येषां कुम्भीं पर्यादधति सर्वदा ।५१
अव पिपतिषिति मनसा मुहुरा वर्तते पुनः।
क्रव्याद् यायग्निरन्तिकादनुविद्वान् बितावति ।५२
अविः कृष्ण भागधेयं पशूना स स क्रव्यादपि चन्द्रं त आहुः।
माषा पिष्टा भागधेयं ते हव्यमरण्यान्या गह्वरं सचस्व ।५३
इषीकाँ जरतीमिष्ट्वा तिल्पिञ्जं दण्ठन नडम्।
तमिन्द्र इध्मं कृत्वा यमस्याग्नि निरादधौ ।५४
प्रत्यञ्चमक प्रत्यर्पयित्वा प्रविद्वान् पन्थां वि ह्याविवेश।
परामीषामसून दिदेश दीर्घेणायुषा समिमा ऽसृजामि ।५५

जो धन की इच्छा से क्रव्याद अग्नि की सेवा करते हैं, वे पुरुष सदा अन्यों के घटादि ही उठाया करते हैं ।१५। जिस पुरुष के पास आकर क्रव्यादि अग्नि तपता है वह बारम्बार आवागमन के चक्रमें पड़ा

रहता है और अधोगति को प्राप्त होता है ।५२। हे क्रव्याद् अग्ने ! काली भेड़, सीसा और चन्द्रमाको विज्ञजन तेरा भाग बताते हैं और पिसे हुये उड़द भी तेरे हव्य रूप हैं। अतः तू घोर जंगल में पहुँच जा ।५३। पुरानी सींक, दडन, तिल्पिञ्ज ओर घास को इन्द्र ने ईंधन बनाया और उसके द्वारा यम की उस अग्नि को पृथक कर दिया ।५४। विद्वान् गार्हपत्य अग्नि सूर्य को अर्पित होकर देव्यान मार्गमें प्रविष्ट हुये और जिनके प्राणों को दिया, मैं उन यजमानों को चिर-आयु से युक्त करता हूँ ।५५।

सूक्त–३ [तीसरा अनुवाक]

(ऋषि–यम । देवता–स्वर्गः, ओदनः, अग्निः । छन्द–त्रिष्टुप्, जगती, पंक्ति, वृहती, धृतिः)

पुमान् पुंसोऽधि तिष्ठ चर्मेहि नत्र ह्वयस्व यतमा प्रिया ते ।
यावन्तावग्रे प्रथम समेयथुस्तद वाँ वयो यमराज्जे समानम् ।१
तावद बां चक्षुस्तति वीर्याणि तावत् तेजस्ततिथा वाजिनानि ।
अग्निः शरीर सचते यदैधोऽधा पक्वान्मथुना सं भवाथः ।२
समस्मिँल्लोके समु देवयाने सं स्मा समेतं यमराज्येषु ।
पूतौ पवित्रैरुप तद्ध्वयेथां यद्यद् रेतो अधि वां संबभूव ।३
आसपस्पुत्रासो अभि स विशध्वामिमं जीवं जीवधन्या समेत्यः ।
तासां भजध्वममृतं यमाहुर्यभोदन पचति वाँ जनित्री ।४
यं वां पिता पचति यं च माता रिप्रान्निर्मुक्तये शमलाच्च वचः ।
स ओदनः शतधारः स्वर्गं उभे व्याप नभसो महित्वा ।५
उभे नभसी उभयांश्च लोकान् ये यज्वनामजिताः स्वर्गा ।
तेषां ज्योतिष्मान् मधेमान् यो अग्रे तस्मिन् पुत्रैर्जरसि स श्रयेथाम् ।६
प्राचींप्राचीं प्रदिशमा रभेथामेतं लोकं श्रदधानाः सचन्ते ।
यद् वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तुस्य गुप्तये दम्पती सं श्रयेथाम् ।७

दक्षिणाँ दिशमभि नक्षमाणो पयवितेंयामभि पात्रमेतत् ।
तस्मिन् वां यमः पितृभि संविदानः पक्वाय शर्म ।
बहुल नि यच्छात् ।८

प्रताची दिशामियमिद् वर यस्यां सोमो अधिपो मृडिता च ।
तस्यां श्रयेथा सुकृतः सचेथामधा पक्वान्मिथुरा स भवाथः ।९

उत्तरं राष्ट्रं प्रजयोत्तरावद् दिशामुदीधी कृणवन्नो अग्रम ।
पाङक्तं छन्दः पुरुषो बभूव विशवैर्शिवाङ्गैः सह स भवेम ।१०

हे पुंसत्ववान ! तू इस पशु-चर्म पर चढ़ और अपने प्रिय व्यक्तियों कोभी बुलाले । पहिले जितने दम्पत्तियों ने इसे किया उनका तुम्हारा एक सा फल हो ।१। स्वर्ग में तुम्हारे शरीरों को यह अग्नि ही रचेगा, उस समय तुम पक्व ओदनके प्रभाव से उसी रूपमें स्वर्गमें होगे । तुममें उत्पन्न शिशु की सी दर्शन शक्ति और वैसाही तेज होगा और शब्दात्मक यज्ञ को भी इसी प्रकार करने के योग्य होगे ।२। ओदन के प्रभाव से इस लोक में तुम दोनों साथ रहो,देवयान-मार्ग में तथा यम के राज्य में भी साथ ही रहो । इन पवित्र यज्ञो से तुम पवित्र हो चुके हो । तुमने जिस-जिस कार्य के लिये सिंचन किया, उन-उन कार्यों के फलों को प्राप्त करो ।३। हे दम्पत्तियों वीर्य रूपी जल के ही तुम पुत्र हो । तुम इस जीवनमें धन्य होते हुये प्रविष्ट होओ । तुम्हारा उत्पादक जलही ओदन को पकाता है, उसी जल के अमृत मय अंश का तुम सेवन करो ।४। माता-पिता यदि वाणी जन्य पाप से या अन्य पाप से निवृत्त होने के लिये ओदन को पकाते हैं तो वह अपनी महिमा से स्वर्ग और द्यावा पृथिवी में व्याप्त होता है ।५। हे पति-पत्नी ! आकाश पृथिवीमें यजमान जिन लोकों पर अधिकार पाते हैं, उनमें जो प्रकाशित और मधुमय लोक हैं, उस लोक या स्वर्ग और पृथिवी दोनों लोक में तुम सन्तान से सम्पन्न हुये वृद्धावस्था तक जीवित रहो ।६। हे दम्पत्ति ।

तुम पूर्व की ओर बढ़ो उस स्वर्ग पर श्रद्धावान ही चढ़ पाते हैं। तुमने जो पका हुआ ओदन अग्नि में रखा है उसकी रक्षा के निमित्त स्थित रहो।७। हे दम्पत्ति ! तुम दक्षिण की ओर जाकर इस पात्र की प्रदक्षिणा करते हुए आओ। उस समय पितरों से सहमत हुये यमराज तुम्हारे ओदन के लिये अनेक प्रकार के कल्याण प्रदान करें।८। पश्चिम दिशा में स्वामी और सुख देने वाले सोम हैं इसलिए यह दिशा श्रेष्ठ है। इसमें तुम पके हुये ओदन को रख कर पुण्य कर्मों का फल प्राप्त करो। फिर इस पके ओदन के प्रभाव से पृथिवी और स्वर्ग में तुम दोनों प्रकट होओ।९। उत्तर दिशा प्रजाओं से युक्त है, यह श्रेष्ठ दिशा हमको श्रेष्ठता प्रदान करे। पंक्ति छन्द ओदन के रूप में प्रकट होता है। हम भी पृथिवी और स्वर्ग में अपने सभी अङ्गों सहित प्रकट हों।१०।

ध्रुवेय विराण्नमो अस्त्वस्यै शिवा पुत्रेभ्या उप मह्यमस्तु।
सा ना देव्यदि विश्चितेवार इर्यइव गोपा अभि रक्ष पक्वम्।११
पितेव पुत्रानभि सं स्वजस्व नः शिवा नो वाता इह वान्तु भूमौ।
यमादेन पचतो देवेते इह तन्नस्तप उत सत्य च वेत्तु।१२
यद्यत् कृष्णः शकुन इह गत्वान्सरन् विषक्तं बिल आमसाद।
यद्वा दास्यार्द्र हस्ता समडक्त उलूखल मुसल शम्भतापः।१३
अयं ग्रावा पृथुबुध्नो वयोधाः पूतः प्रतित्रैरप हन्तु रक्षः।
आ रोह चर्म महि चर्म यच्छ मा दम्पती षौत्रमध निगाताम्।१४
वनस्पतिः सह देवैर्न आगन् रक्षः पिशाचां अपबाधमानः।
स उच्छ्यातै प्र वदाति वाचं तेद लोकां अभि सर्वाञ्जयेम्।१५
सप्त मेधास् पशवः पर्यगृह्णन् य एषां ज्योतिष्मां उत यश्चकर्श।
त्रयस्त्रिंशद् देवतास्तान्त्सचन्ते स नः स्वर्गमभि नेष लोकम्।१६
स्वर्ग लोकमभि नो नयासि स जायया मह पुत्रै स्याम।
गृह्णमि ह तमनु भेत्वत्र मा नस्तारीन्तिर्ऋतिर्मो अरातिः।१७
ग्राहिं माष्मानमति तां अयाम तमौ व्यस्य प्र वदासि वल्गु।
वानस्पत्य उद्यतो मां जिहिंसीर्मा तण्डुलं वि शरीर्देवयन्तम्।१८

विश्वव्यचा धृतपृष्टो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमूप याह्येतम् ।
वर्षवृद्धमुप यच्छ शूर्पं तुष पलावानप तद् विनक्तु ।१९
त्रयो लोकाः संमिता ब्राह्मणेन द्यौरेवासौ पृथिव्यन्तरिक्षम् ।
अंशून् गृभीत्वान्वारभेथामा प्यायन्तां पुनरा यन्तु शूर्पम् ।२०

यह वरणीय, अखण्डनीया पृथिवी अटल है, विराट् है, यह हमारे लिये सुख देने वाली हो। हमारे पुत्रों का मंगल करे और नियुक्त रक्षक के समान यह इस पके हुये ओदन की रक्षा करे ।११। हे ! पृथिवी जैसे पिता अपने पुत्रों का आलिंगन करता है वैसे ही तुम इस ओदन का आलिंगन करो ।यहाँ मंगलमय वायु प्रवाहित हो। तुम हमारे ओदन को तपाओ और हमारे यथार्थ संकल्प को जानो ।१२। काक ने कपट पूर्वक इसमें बिल बनाया हो अथवा दासी ने भीगे हुये हाथ से मूसल उलूखल का स्पर्श किया हो तो यह जल मंगल करने वाला हो ।१३। यह दृढ़ पाषाण हवि धारण है, यह पवित्री द्वारा शुद्ध होकर राक्षसों को नष्ट करे। हे ओदन ! तू चर्म पर आता हुआ कल्याणप्रद ही इन दम्पतिको इनके पौत्र सहित पाप न छू पावे ।१४। वह राक्षसों और पिशाचों को रोकता हुआ वनस्पति देवताओं सहित हमको प्राप्त हुआ। वह उच्च स्वर वाला हमको सब लोकों पर विजय प्राप्त करने वाला बनावे ।१५। इन धान्योंमें जो पतला परन्तु अधिक दमकता हुआहै, ऐसे सात चावलों को पशु के समान लोकों ने ग्रहण किया। यह तेंतीस देवताओं द्वारा सेवनीय है। यह ओदन हमको स्वर्ग में पहुँचावे ।१६। हे ओदन ! तू हमें स्वर्ग लिये जा रहा है, वहाँ हम स्त्री-पुरुष सहित प्रकट हों। पाप देवता निर्ऋति और शत्रु वहां हमको वशीभूत न करें इसलिये तू मेरा अनुगमन कर मैं तेरे हाथ को पकड़ रहा हूँ ।१७। हे वनस्पते ! पाप से उत्पन्न शोक रूप तुम को दूर करता हुआ तू मधुर शब्द कहता है। हम अपने पापोंसे पार हों। यह वानस्पत्य मेरी, और मुझे देवमार्ग प्राप्त कराने वाले चावल की भी हिंसा न करे ।१८। हे ओदन ! तू घृत पृष्ठ न आ परलोक में हमारे साथ प्रकट होने को हमारे पास आ और

वर्षा ऋतु में प्रवृद्ध उपकरण वाले सूप को प्राप्त हो। वह तुझ से तुष को पृथक करे। तू सबके द्वारा सत्कार करने योग्य है ।१९। आकाश, अन्तरिक्ष और पृथिवी इन तीनों लोकों को ब्राह्मण प्राप्त करता है। हे दम्पति! तुम चावलों को फटकना प्रारम्भ करो। यह घास भी उछलते हुये सूप को प्राप्त हो ।२०।

पृथग् रूपाणि बहुधा पशनामेकरूपो भवसि सं समृद्ध् या ।
एतां त्वचं मोहिनीं ताँ नुदस्व ग्रावा शुम्भाति मलगइव वस्त्रा।२१
पृथिवीं त्वा पृथिव्यामि तनूः समानी विकृता त एषा ।
यद्यद् द्यु त्तं लिखितमर्पणेनतनेमा सुस्रोर्ब्र ह्मणापितद्बपामि।२२
जनित्रोब प्रति हर्यासि सूनुं स त्वा दधामि पृथिवीं पृथिव्या ।
उख कुम्भो वेद्याँमा व्यथिष्ठा व्यथिष्ठायज्ञायुधैराज्येनातिषक्ता२३
अग्निः पचन् रक्षतु त्वा पुरस्तादिन्द्रो रक्षतु दक्षिणतो मरुवान् ।
वरुणस्त्वा इं हाद्धरुणे प्रतीच्या उतरात् त्वा सोमः सं ददातै ।२४
पूताः पवित्रैः पवन्ते अभ्राद् दिवं च यन्ति पृथिवीं च लौकान् ।
ता जीवन जीवन्याः प्रतिष्ठाः पात्र आसिक्ता पर्यग्निरिन्धाम् ।
।२५
आ यन्ति दिव पृथिवी सचन्ते भूम्याः सचग्ते अघ्यन्तरिक्षम् ।
शुद्धाः सतीस्ता उशुम्भन्त एव ता नः स्वर्गमभि लोक नयन्तु ।२६
उतेव प्रभ्वीरुत संमितास उत शुकाःशुचयश्चामृतासः ।
ता ओदनं दपतिभ्या प्रशिष्टा आप शिक्षत्ती पचता सुनाथाः ।२७
संख्याता स्तोकाः पृथिवीं सचन्ते प्राणापनैः संमिता ओषधीभि ।
अस ख्याता ओप्यमानाः सुवर्णा सर्वं व्यापुः शुचयः शुचित्वम् ।२८
उद्योधन्यभि वलगन्ति तप्ताः फैनमस्यन्ति बहुलाश्च विन्दून् ।
प्रोषव दृष्टवा पतिमृत्विमयैतैस्तण्डुलैर्भवता समापः ।२९
उत्थापयः सोदती बुध्न एनानभिद्रात्मानमभि स स्पृशन्ताम् ।
अमासि पात्रैरुदक यदेतन्मितास्तण्डुलाः प्रदिशो यदीमाः ।३०

पशु विभिन्न रूप वाले होते हैं परन्तु तू एक ही रूप वाला है। तू पाषाण के द्वारा अपनी भूमी का त्याग कर ।२१। हे मूसल! तू पृथिवी का बना है इसलिये पृथिवी ही है । पृथिवी का और तेरा देह एक सा ही है । इसलिये मैं पृथिवी को ही पृथिवी पर मार रहा हूँ । हे ओदन ! मूसल को प्राप्त होने से तेरे अङ्ग में जो पीड़ा हो रही है, उससे तू तुष से पृथक होकर छुट जा। मैं तुझे मंत्र द्वारा अग्नि में अर्पित करता हूँ ।२२। माता जैसे अपने पुत्र को प्राप्त करती है वैसे ही में तुझे मूसल रुप पृथिवी को पृथिवीं से मिलाता हूं। वेदी में भी ओखली रुप कुम्भी है, इसलिये व्यथित न हो । तू यज्ञ के आयुधों द्वारा घृत से युक्त की जा चुकी है ।२३। अग्नि पचन कर्म में तेरे रक्षक हों। इन्द्र पूर्व से, मरुद्गण दक्षिण से, वरुण पश्चिम से और सोम उत्तर दिशा की ओर तेरी रक्षा करने वाले हों ।२४। पुण्य कर्मों द्वारा शुद्ध हुये जल शुद्ध करने वाले हैं, वे मेघ द्वारा द्यौ में जाते और फिर पृथिवी में आकर मनुष्यों को प्राप्त होते हैं । प्राणी को सुखी करने बाले पात्र में स्थित होते हैं । अग्नि इन असिक्त होने वाले जलों को सब ओर दीप्त करे ।२५। द्यौ से आने वाले यह जल पृथिवी की सेवा करते हैं और पृथिवीसे पुनः अन्तरिक्ष में पहुँचते हैं । यह पवित्र जल पवित्रताप्रद हैं, यह हमको भी स्वर्ग की प्राप्ति करावें ।२६। यह श्वेत रंग वाले, दमकते हुये, अमृत के समान, प्रभू रूप हैं। हे जलो! इस दम्पति द्वारा वाले जाने पर ओदन को पृथिवी का सेवन करते हैं और शोभन वर्ण वाले जीव में प्रविष्ट असंख्य जल शुद्धता देते हुये सब में व्याप्त होते हैं ।२८। ताप देने पर यह जल शब्द करते, फेन और बूंदों को उड़ाते हुये युद्ध सा करते हैं । हे जलो ! जैसे पति को देखकर स्त्री उससे युक्त होती है वैसेही तुम ऋतु में होने वाले यज्ञ के निमित्त चावलों में मिश्रित होओ ।२६। हे ओदन की अधिष्ठात्री देवि ! मूसल की जड़ में व्यथित होते इन चावलों को उठाओ । यह जलसे मिलें । हे यजमान ! तू जल को पात्रों द्वारा नाप रहा है इधर यह चावल भी नप गये हैं, इन्हें जल में डालने की अनुज्ञा प्रदान कर ।३०।

प्र यच्छ पर्शुं त्वरया हरोषमहिंसन्त ओषधीर्दान्तु पर्वन् ।
यासां सोमः परि सज्यं बभूवामन्युता नो वीरुधो भवन्तु ।३१

नवं बर्हिरोदनाय स्तृणोत प्रियं हृदयश्चक्षुषो वल्गवतु ।
तस्मिन् देवाः सह दवीर्विशन्त्विम प्राश्नन्त्ववृतुभिनिषद्य ।३२

वनस्पते स्तीर्णमा सीद बर्हिरग्निष्टोमैः संमितो देवताभिः ।
त्वष्ट्रेव रूपं सुकृतं स्वधित्यैना एहाः परि पात्र ददृश्राम ।३३

षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् स्वः पक्वेनाभ्यश्नवातै ।
उपैनं जीवान् पितरश्च पुत्रा एत स्वर्गं गमया तमग्नेः ।३४

धर्ता ध्रियस्व धरुणे पृथिव्या अच्युतं त्वा देवताश्च्यावयन्तु ।
तं त्वा दम्पती जीवन्तौ जीवपुत्रावद् वासयातः पर्यग्निघानात् ।३५

सर्वान्त्सामागा अभिजित्य लोकान यावन्तः कामाः समतोतृपस्तान्
वि गाहेथामायवनं च तविरेकस्मिन पात्रै अध्युद्धरैनम् ।३६

उप स्तृणीहि प्रथय पुरस्ताद घृतेन पात्रमभि घारयेमन् ।
वाश्रे वोस्रा तरुणं स्तन युमिमँ देवासो अभिहिङ्कृणेत ।३७

उपास्तरीरकरो लोकमेतमुरु प्रथतामसमः स्वगः ।
यस्मिञ्छ्रयातै महिष सुपर्णोदेवा परि एनं देवताभ्यःप्रयच्छान्।३८

यद्यज्जाया पचति त्वत् परः परः पतिर्वा जायेत्वत्व तिरः ।
स तत् सृजेथां सह वाँ तदस्तु संपादयन्तौ सह लोकमेकम् ।३९

यावन्तौः अस्वाः पृथिवीं सचन्ते अम्मत् पुत्राः परि ये सबभूवः ।
सर्वास्ता उप पात्रे ह्वतेथां नाभि जानानाः शिशवः समायन् ।४०

कलुछे को चलाओ जो पक चुके हैं उन्हें ले लो । यह किसी हिंसा न करते हुये प्रत्येक पर्व में औषधि रूप फलको करें । जिन लताओं का राजा सोम है, वे लतायें मोक्ष करने वाली न हों ।३१। ओदन के लिए नई कुशाऐं फैला दो। वह कुशा का आसन हृदय और नेत्रों को

सुन्दर लगे। देवता उस पर अपनी पक्तियों सहित विराजमान होते हुये इस ओदन का सेवन करें।३२। हे वनस्पते ! कुशा बिछा दी है, तुम बैठो। देवताओं ने तुम्हें अग्निष्टोम के सदृश समझा है। स्वधिति ने त्वष्टा के समान इसे शोभन रूप दिया है, वह अब पात्रोंमें दिखाई देता है।३३। इस निधि का रक्षक यजमान इस पक्व ओदन भक्षण का फल स्वर्ग में साठ वर्ष पश्चात् पावे। हे यज्ञ के अभिमानी देवता ! इस यज्ञ मान को स्वर्ग प्राप्त कराते हुये इसके पितर, पुत्र आदिको भी इसके पान धारण स्थान में प्रतिष्ठित हो। तुम अच्युत को देवता च्युत न करें।३५। तू सब लोकों पर विजय प्राप्त करता हुआ सभी इच्छाओं को भले प्रकार तृप्त कर। दम्पत्ति कलछी को घुमाते हुये ओदन को निकाल कर पात्र में स्थित करें।३६। तुम इसे परस कर फैलाया-सा करो, इसमें घृत डालो। हे देवगण ! दूध पीने वाले बछड़ेको देखकर पयस्वती गौयें उसकी ओर शब्द करती हैं, से वैही इस तैयार ओदन की ओर शब्द करो।३७। हे यजमान ! ओदन परोस कर तूने इस लोक को फल युक्त कर लिया। इसके प्रभाव से स्वर्ग में यही ओदन अधिक बढ़ा हुआ प्राप्त हो। हे दम्पति ! यह सुन्दर महिमा वाला गमनशील ओदन तुम्हें स्वर्ग में वास दिलावे देता इस यजमान को देवताओं के पास पहुँचावे।३८। हे जाये ! तू इस ओदन को पकाती है। तू अपने पति से पहले चली जाय तो स्वर्ग में तुम दोनों मिल जाना। तुम एक ही लोकमें रहो और वहाँ यह ओदन भी तुम्हारे साथ रहे।१६। इस स्त्री के सब पुत्रों को इस पात्र के पास बुलावो वे बालक अपनी नाभि को जानते हुए यहाँ आवें।४०।

वसोर्या धारामधुना प्रपीना घृतेन मिश्रा अमृतस्य नाभयः।
सर्वास्ता अव रुन्धे स्वर्गःपष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात्।४१
निधि निधिपा अभ्येनमिच्छानीश्चरा अभितः सन्तु येन्ये।
अस्माभिर्दत्तो निहितः स्वर्ग स्त्रिभः काण्डैस्त्रोन्त्स्वर्गानरुक्षत्।४२

अग्नी रक्षस्तपतु यद् विदेवं क्रव्यात् पिशाच इह मा प्र पास्त ।
नुदाम एनमप रुध्मो अस्मदादित्या एनमङ्गिरसः सचन्ताम् ।३
आदित्येभ्यो अङ्गिरौभ्यो मध्विदं घृतेन मिश्रं प्रति वेदयामि ।
शुद्धहस्तौ ब्राह्मणस्यानिहत्यैतं स्वर्गं सुकृतावपीतम् ।४४
इदं प्रापनुत्तं काण्डमस्य यस्माल्लोकात् परमेष्ठी समाप ।
या सिञ्च सर्पिर्घृतवत् समङ्ध्येष भागो अङ्गिरसो नो अत्र।४५
सत्याय च तपसे देवताभ्यो निधिं शेवधिं परि दद्म एतम् ।
मा नो द्यूतेऽव गान्मा समित्याँ मा स्मान्यस्मा उत्सृज्ञता पुरा
मत् ।४६
अहं पचाम्यहं ददामि कर्मन करुणेऽधि जाया ।
कौमारो लोको अजनिष्ट पुत्रोन्वारधेथाँ वय उत्तरावत् ।४७
न किल्विषमत्र नाधारो अति न यन्मित्रैः सममान एति ।
अनून पात्र निहित न एतत् पक्तारं पक्व पुनरा विशाति ।४८
प्रियं प्रियाणा कृणवाम तमस्ते यन्तु यतमे द्विषन्ति ।
घेनुरनड्वान् वयोवय आयदेय पौरुषेयमप मृत्युं नुदन्तु ।४९
समग्नयो विदुरन्यो अन्यं य ओषधीः सचते यश्च सिन्धून् ।
यावन्ता देवा तिव्यातपन्ति हिरण्यः ज्योति बभूव ।५०

वासक ओदन की मधु द्वारा मोटी हुई धारें घृत से भी युक्त हैं । वे अमृत की थाती रूप हैं, स्वर्ग में वे रुकी रहती हैं निधि का रक्षक उसकी साठ वर्ष पश्चात् इच्छा करे।४१। यजमान इस निधि की कामना करे । हमारे द्वारा प्रदत्त धरोहर रूप वाला ओदन स्वर्गगामी होता हुआ अपने तीनों काडों सहित स्वर्गारोही हो ।४२। मेरे कर्ण-फल में बाधक राक्षसों से अग्निदेव व्यथित करे । क्रव्याद और पिशाच हमको न चूसें । हम इस राक्षसको यहाँ आने से रोकते हुये भागते हैं। आंगिरस और सूर्य इसे वश करें ।४३। अङ्गिराओं और आदित्यों के लिए इस घृत युक्त मधु को प्रस्तुत करता हूं। ब्राह्मणके पवित्र हाथ स्वर्गमें फल रूपसे जाने वाले

इसे स्वर्ग में पहुँचावें ।४४। प्रजापति ने जिस हृष्यमान काण्ड द्वारा फल प्राप्त किया था, मैंने भी उस उत्तम काण्ड को पा लिया है। इसे घृत से सींचो यह घृत युक्त भाग हम अङ्गिरा ऋषियों का ही है ।४५। सत्य के निमित्त उसे ओदन रूप धरोहर को हम देवताओं को सौंपते हैं । परस्पर कर्म के आदान-प्रदान रूप द्यूत में और समिति में यह हमसे पृथक न हो। इसे अन्य पुरुषों के लिये मत करो ।४६। पाक क्रिया करने वाला मैं ही इसे दानादि रूप में कर रहा हूँ। हे यज्ञात्मक कर्म ! इस कार्य में मेरी पत्नी लगी है। हमारे यहाँ सुन्दर कुमारावस्था वाला पुत्र है। हम इस उत्तम यज्ञान्न का पाक और दान आदि कर्मों को करते हैं। ।४७। इस कर्म में कोई हेर फेर नहीं है, इसका कोई अन्य आधार नहीं है, यह अपने मित्रों सहित नापता हुआ भी नहीं आता। यह जो पूर्ण पात्र रखा गया है वही पकाने वाले को फिर मिल जाता है ।४८। हे यजमान ! प्रिय से भी प्रिय फल वाले कर्म को हम तेरे निमित्त करते हैं। तेरे द्वेषी पुरुष नर्क रूप तम को पावे। गौ वृषभ अन्न आयु और पुरुषार्थ यह हमारे पास आते हुए, अपमृत्यु आदि को दूर भगावें ।४९। औषधियों का भक्षक अग्नि और जलों का सेवनकर्त्ता अग्नि अन्योन्यको जानने वाले हैं। यह और अन्य अग्नि भी इस कर्म के ज्ञाता हैं। देवताओं के तप और सुवर्ण तथा अन्य चमचमाते हुये पदार्थ पाककर्त्ता को मिलते हैं ।५०।

एषा त्वचां पुरुषे सं वभूवानग्नाः सर्वे पशयो ये अन्ये ।
क्षत्रणात्मानं परि धापयाथोऽमोतं वासो मुखमोदनस्य ।५१
यदक्षेषु वदा यत् समित्यां यद्वा वदा अनृत वित्तकाम्या ।
समान तन्तुमभि संवसानौ तस्मिन्त्सर्वं शमलं सादयाथः ।५२
वर्षं वनुष्वापि गच्छ देवांस्त्वचो धूम पर्युत्पातयासि ।
विश्वव्याचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्येतम् ।५३
तन्वं स्वर्गो बहुधा विचक्रे यथा विद आत्मन्नन्यदवर्णाम् ।
अपाजैत् कृष्णां रुशतीं पुनानो य लोहितीतां ते अग्नौ जुहोमि।५४

प्रच्यै त्वा दिशेग्नयेऽधितयेऽसिताय रक्षित्र आदित्यायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्त नो गोपायतास्माकमैतोः ।

दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ
पक्वेन सह स भवेम् ।५५

दक्षिणायै त्वा दिश इन्द्रायाधिपतये तिश्चिराजये रक्षित्रे
यमायेषुमते ।

एतं परि दद्मस्त नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ
पक्वेन सह स भवेम् ।५६

प्रतीच्यै त्वा दिशे वरुणयाधिपतये पृदाकवे रक्षित्रेऽत्रायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।

दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ
पक्वेन सह स भवेम् ।५७

उदीच्यै त्वा दिशे सोमायाधिपये श्वजाय रक्षित्रऽशन्या इषुमत्यै ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।

दिष्टं नो अत्र जरसे ति नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ
पक्वेन सह सं भवेम् ।५८

ध्रुवाये त्वा दिशे विष्णवेऽधिपतये कल्माषग्रीवाय रक्षिभ
ओषधीभ्य इषुमतोभ्यः ।

एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।

दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ
पक्वेन सह सं भवेम् ।५९

उध्वार्यै त्वा दिशे वृहस्पतयेऽधिपतये श्वित्राय रवित्रे वर्षायेषुमते । एतं परि दद्मात नो गोपायतास्माकमैतोः ।

दिष्टनो जरसे नि अत्रन षज्जरा मृत्युवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम् ।६०

यह पशु चर्म में आच्छादित दिखाई पड़ते है इनकी त्वचा पहले पुरुष में थी। हे दम्पति! क्षात्र शक्तिसे तुम अपनेको सम्पन्न करो और इस ओदन के मुख को वस्त्र से ढक दो।५१। द्यूत कर्म में अथवा युद्ध में धन की अभिलाषा से जो तुमने मिथ्या भाषण किया है, अत: समान तन्तुओं से निर्मित वस्त्र को ढकते हुये अपने दोष को उसमें प्रविष्ट करो ।५२। तू फल की वर्षा करने वाला हो। तू देवताओं के पास जाकर अपनी त्वचा को धुँए के समान उछाल। तू घृतापृष्ट होता अनेक प्रकार से पूजित होता हुआ, समान उत्पत्ति वाला बन कर इस पुरुषको स्वर्ग में प्राप्त हो।५३। यह ओदन स्वर्ग में अपने को अनेक आकार का बना लेनी में समर्थ होता है। जैसे आत्मा ज्ञानीको अनेक प्रकृतिका बना लेता है और कृष्णा रुशती को शुद्ध करता जाता है वैसे ही मैं तेरे रूप का अग्नि में होम करता हूँ ।५४। हम तुझे पर्व, दिशा, अग्नि, असित सर्प और आदित्य को देते हैं। तुम हमारे यहाँ से जाने तक इसकी रक्षा करो। इसे वृद्धावस्था तक हम को भाग्य रूपमें प्राप्त कराओ। हमारी वृद्धावस्था ही इसे मृत्यु दे। हम इस पके हुये ओदन सहित स्वर्गवासी तिरश्चिसर्प और यम की देते हैं। तुम हमारे यहाँ से जाने तक इस की रक्षा करो। इसे वृद्धावस्था तक भाग्य रूप में हमें प्राप्त कराओ। हमारी वृद्धावस्था ही इसे मृत्यु दे। इस पके हुये ओदन सहित हम स्वर्ग के आनन्द प्राप्त करें ।५६। हम तुझे पश्चिम दिशा वरुण पृदाकु सर्प और अन्न को देते हैं। तुम हमारे यहाँसे प्रस्थान करने तक इसकी रक्षा करो। इसे वृद्धावस्था तक भाग्य रूप में हमें प्राप्त कराओ । हमारा बुढ़ापा ही इसे मृत्यु दे और मरने पर पके हुये इस ओदन सहित स्वर्गमें जाकर हम आनन्द प्राप्त करें ।५७। हम तुझे उत्तर दिशा, सोम, स्वज नामक सर्प और अशनिको देते हैं तुम हमारे यहाँ से प्रस्थान करने तक इसकीरक्षाकरो। इसेवृद्धावस्था तक सो भाग्य रूपमें हमें प्राप्त कराओ।

हमारा बुढ़ापाही इसे मृत्यु दे। मरने पर हम इस पके हुये ओदनके साथ स्वर्ग में जाकर आनन्द प्राप्त करें ।५८। हम इसे ध्रुव, विष्णु, दिशा, कल्माष ग्रीव सर्प और इमतषुमती औषधियोंको देतेहैं । तुम हमारे यहाँ प्रस्थान करने तक इसकी रक्षा करो । इसे वृद्धावस्था तक सौभाग्य रूप में हमें प्राप्त कराओ हमारा बुढ़ापा इसे मृत्यु प्रदान करे । मरने पर हम इस सुपक्व ओदन सहित स्वर्गमें पहुँच कर आनन्द प्राप्त करें ।५९। हम तुझे उर्ध्व दिशा बृहस्पति श्वित्र सर्प और इषुमान् वर्ष को देते हैं । हमारे यहां से प्रस्थात करने तक तुम इसकी रक्षा करो। इसे बृद्धा-वस्था तक सौभाग्य रूप में प्राप्त कराओ । हमारी वृद्धावस्था ही इसे मृत्यु दे । मरने पर हम इस सुपक्व ओदन सहित स्वर्गगामीहों और वहाँ आनन्द भोगें ।६०।

सूक्त–४ [चौथा अनुवाक]

(ऋषि—कश्यपः । देवता—वशा । छन्द–अनुष्टुप्)

ददामीत्येव ब्र्यादनु चैनामभुत्सत ।
वशां ब्रह्मभ्यो याचदूभ्यस्तत् प्रजावदपत्यवत् ।१
प्रजया स बिं क्रीणीते पशुभिश्चोप दस्यति ।
य आर्षेयेभ्यो याचदम्यो देवानां गां न दित्सति ।२
कूटय स्य सं शीर्यन्ते श्लोणया काटमर्दति ।
वण्डमा दह्यन्ते गृहा काणया दीयते स्वम् ।३
तिलोहितो अधिष्ठानाच्छक्नो विन्दति गोपतिम् ।
तथा वशायाः सविद्यं दुरदम्ना ह्य च्यसे ।४
पदोरस्या अधिष्ठानाद् बिक्लिन्दुर्नाम विन्दति ।
अनामनात् सं शीर्यन्ते या मुखेनोपजिघ्रति ।५
ओ अस्या कर्णीवास्कुनोत्या स देवेषु बृश्चते ।
लक्ष्ल कुर्व इति मन्यते कनीयः कृष्णुते स्वम् ।६
यदस्याः कस्मैं चिद् भोगाय बालाद्व कश्चित् प्रकृन्तिति ।

ततः किशारा म्रियन्ते वत्सांश्च धातुको वृकः ।७
यदस्या गोपती सत्या लोम ध्वाङ्क्षो अजीहिडत् ।
ततः कुमारः म्रियन्ते यक्ष्मो विन्दत्यनामनात् ।८
यदस्याः पल्पूलनं शकृद दासी समस्यति ।
ततोऽपरुपं जायते तस्मादव्येनसः ।९
जायमानाभि जायते देवान्सब्राह्मणान् वशा ।
तस्माद् ब्रह्मभ्यो देयैषा तदाहुः स्वस्य गोपनाम् ।१०

माँगने वाले ब्राह्मणों को देता हूं कह कर उत्तर दे, फिर वह ब्राह्मण कहते हैं कि यह कर्म यजमान को सन्तानादि सें सम्पन्न करने वाला हो ।१। जो पुरुष ऋत्वि आदि युक्त मांगने वाले ब्राह्मणों को देवताओं के निमित्त गोदन नहीं करता वह अपनी सन्तान का विक्रय करने वाला होता हुआ शुद्धरहित हो जाता है ।२। वशा के कूटा (सींग रहित) नामक अङ्ग से अदानी के परार्थ अशेष हो जातेहैं अदानी श्लोणा (लंगड़ी से 'काट'को पीड़ित करता है। बण्डा (विकल) से इसके गृह का दाह होता और काणा (एक आंख वाला से धन चला जाता है ।३। हे वशे। तू दुरबभ्ना कहाती है। गौ के स्वामी को वर्षा के अधिष्ठान से विलोहित शक्त और सम्विद्य मिलता है ।४। गौ के स्वामी का वशा के पांवों के अधिष्ठान से विक्लिन्दु नाम की विपत्ति मिलती है उसकें सूँघने मात्र से बिना जाने ही इसके पदार्थ नष्ट हो जाते हैं ।५। इसके कानों का आप्रवण (दुख देना करने वाला देवताओंमें काटा जाता है। जो अपने को लक्ष्म (चिह्ना) करने वाला मानता है वह अपने को छोटा बना लेता है ।६। किसी भोग के निमित्त इसके बालों को काटता तो इसके युवा पुत्र मृत्य को प्राप्त होते हैं और शृगाल इसके वत्सों का संहार करता है ।७। गौ के स्वामी की उपस्थिति में यदि गो के लोम को कौआ अपमानित करता है तो इसके पुत्र नष्ट होतेहैं और क्षय रोग प्राप्त होता है ।८। यदि इसके गोबर आदिको दासी फेंकती है तो पुरुष उस पाप से नहीं छूटता और कुरूप हो जाता है।९। वशा देवताओं और

ब्राह्मणों के लिए ही प्रकट होती है इसलिये ब्राह्मणों को दान देना ही अपना रक्षण करना है ऐसा विद्वज्जन कहते हैं ।१०

य एनां वनिमायन्ति तेषां देवकृता वशा ।
ब्रह्मज्येयं तदब्रुवन् य एनाँ निप्रियायते ।।

य आर्षेयेभ्यो याचभ्दयो देवानां गा न दित्सति ।
आ स देवेषु वृश्चते ब्राह्मणानां च मन्यवे ।१२

यो अस्य स्याद् वशाभौगो अन्यामिच्छेत तर्हि सः ।
हिंस्ते अदत्ता पुरुषं याचितां च न दित्सति ।१३
यथा शेवधिर्निहितो ब्राह्मणानां तथा वशा ।
तामेतदच्छायति यस्मिन् कस्मिश्च जायते ।१४
स्वमेतदच्छायन्ति यद् वशाँ ब्राह्मणा अभि ।
यथैनानन्यस्मिन् जिनीयादेवास्या निरोधनम् ।१५

चरेदेवा त्रैहायणादविज्ञातमदा सतीं ।
वशां च विद्यान्नारद ब्राह्मणास्तर्ह्यैष्भ ।१६

य एतामवशामाह देवानां निहित निधिम् ।
उभौ तस्मै भशवो परिक्रम्येषुमस्यतः ।१७

यो अस्या ऊधौ न वेदाथो अस्या स्तोन नुत ।
उभयेनंवास्मै दुहे दातुं चेदशकद् वशनभ ।१८

दुरदम्नैनमा शये याचिता च न दित्सति ।
नास्मै कामाः समध्यन्ते यामदत्वा किकीर्षति ।१९

देवा वशामयाचन् मुख कृत्वा ब्राह्मणम् ।
तेषां सर्वेषामददद्धेड न्येति मानुषः ।२०

जो इसे परमप्रिय समझते हुये इसकी सेवा करते हैं उनके लिए यह ब्रह्मज्या होती है, यह विद्वानों का कथन है ।११। जो पुरुष देवताओंकी

गाय को ऋषि प्रवर युक्त ब्राह्मणों को नहीं देना चाहता, वह ब्रह्मकोष के कारण देवताओं द्वारा नाश को प्राप्त होता है ।१२। यदि वशा इसके लिये उपभोग्य हो तो वह अन्य की कामना करे । जो पुरुष याचक को वशा नहीं देता तो यह अप्रदत्त वशा उसे नष्ट कर देती है ।१३। धरोहर के समान ही वशा ब्राह्मणों की होती है । वह चाहे जिसके घर प्रकट हो जाय, यह ब्राह्मण उसके सामने जाकर उसे माँगते हैं ।१४। वशा के सामने आने वाले ब्राह्मण अपने ही धन के समान आते हैं । इन्हें वर्जित करना अपने ही को हानि पहुँचाने वाला है ।१५। हे नारद ! यह धेनु अविज्ञात गदा रूप में तीन वर्ष तक भक्षण करे फिर इस धेनु को वशा मानता हुआ ब्राह्मणों की खोज करे ।१६। इन देवताओं की धरोहर रूप वशा को जो अवशा कहता है, वह भव और सर्व के बाणों का लक्ष्य होता है ।१७। जो इसके स्तनों और एनों को जानता हुआ वशा का दान करता है तो यह उसे दोनों के फल देने वाली होती है ।१८। जो इसे माँगने पर भी नहीं देता है तो दुरदम्न दशा उसे जकड़ती है । इसे अपने पास ही रखना चाहता है उसके अभीष्ट पूर्ण नहीं होते ।१९। ब्राह्मण का मुख बनाकर देवता वशा माँगते हैं, न देने वाला मनुष्य उनके क्रोध का लक्ष्य होता है ।२०।

हेडं पशूनां न्योति ब्राह्मणेभ्योऽददत् वशाम् ।
देवानां निहित भाग मर्त्यश्चेन्निप्रियायसे ।२१
यदन्ते शतं याचेयुर्ब्राह्मणा गोपतिं वशाम् ।
अथैनां देवा अब्रवन्नेवं ह विदुषो वशा ।२२
य एवं विदुषेऽदत्वाथान्येभ्यो ददद् वशाम् ।
दुर्गा तस्मा अधिष्ठाने पृथिवी सहदेवता ।२३
देवा वशामयाचन् यस्मिन्नग्रे अजायत ।
तामेतां विद्यान्नारदः सह देवैरुदाजत ।२४
अनपत्यमल्पशुं वशा कृणोति पुरुषम् ।
ब्राह्मणैश्च याचितामथैनां निप्रियायते ।२५

अग्नीषोमाभ्यां कामाय मित्राय वरुणाय च ।
तेभ्यो याचन्ति ब्राह्मणास्तेष्वा वृश्चतेऽददत् ।२६
यावदस्या गोपतिर्नोपशृणुयादृचः स्वयम् ।
चरेदस्य तावत् गोषु नास्य श्रुत्वा गृहे वसेत् ।२७
यो अस्या ऋच उपश्रुत्याथ गोष्वीचीचरत् ।
आयुश्च तस्य भूतिं च देवा वृश्चन्तिः हीडिताः ।२८
वशा चरन्ती वहुधा देवानां निहितो निधिः ।
आविष्कृणुष्व रुपाणि यदा स्थाम जिघांसति । २९
आविरात्मानं कृणुते यदा स्थाम छिघांसति ।
अथो ह व्रह्मयो वशा याच्ञ्वाय कृणुते मनः ।३०

जो पुरुष देवताओं के धरोहर रूप भाग को अपना अत्यन्त प्रिय समझता है, वह ब्राह्मणों को वशादान न करने के कारण पशुओंका क्रोध प्राप्त करता है ।२१। गौ के स्वामी से अन्य चाहे सैकडों ब्राह्मण वशा मांगे, परन्तु वशा विद्वान की होती है ऐसी देवोक्ति है ।२२। जो पुरुष विद्वान को गौ न देता हुआ अन्य को देता है उसके लिये पृथिवी देवताओं सहित दुर्गम होती है ।२३। जिसके सामने वशा प्रकट होती हैं, देवता उससे वशा मांगतेहैं । यह जानकर नारद भी देवताओं सहित वहाँ पहुँच गये ।२४। ब्राह्मणों द्वारा मांगी गई वशा को जो पुरुष अत्यन्त प्रिय मानता हुआ नहीं देतातो वही वशा उसे सन्तान-हीन और अल्प पशुओं वाला कर देती है ।२५। ब्राह्मण अग्नि के लिये सोम, काम और मित्रा-वरुण के लिये मांगते हैं । वशा न देने पर ये उसे ही काटतेहैं ।२६ । गौ का स्वामी जब तक गौ के सम्बन्ध में कोई संकल्प न करे तब तक उसकी गौओं में विचरे, फिर उसके घर में वास न करे ।२७। जो सकल्प रूप वाणों के पश्चात्भी अपनी गौओं में विचरण करता है, वह देवताओं का अपमान करने वाला उनकेही द्वारा अपनी वायु और अपने ऐश्वर्य को नष्ट करता है ।२८। देवताओं की निधि रूप वशा अनेक प्रकार विचार करती हुई जब स्थान को नष्ट करना चाहती है तब

विभिन्न रूपों को प्रकट करती है ।२६। जब वह अपने स्थान का नाश करने की इच्छा करती है तब वह ब्राह्मणों द्वारा मांगे जाने की इच्छा करती हुई अनेक रूप प्रकट करती हैं ।३०।

मनसा सं कल्पयति तद् देदां अपि गच्छति ।
ततो ह ब्रह्माणो वशामुपवयन्ति याचितुम् ।३१
स्वधाकारेण पितृभ्यो यज्ञेनं देवताभ्यः ।
दानेन राजन्यो वशाया मातुर्हेड न गच्छन्ति ।३२
वशा माता राजन्यस्य वथा संमूममहणः ।
तस्या आहुरनपणं यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीतते ।३३
यथाज्यं प्रगृहीतमालुम्पेत् स्रुचो अग्नये ।
एवा ह ब्रह्मभ्य वशामग्न आ बृश्चतेऽददत् ।३४
युरोडाशवत्सा सुदुधा लोकेऽस्मा उप तिष्ठति ।
सास्मै सर्वान् कामान् वशा प्रददुते दुहे ।३५
सर्वान् कामान् यमराज्ये वशा प्रददुषे दुहे ।
अथाहुनरिकं लोकं निरुन्धामस्य याचिताम् ।३६
प्रवोयमाना चरति क्रुद्धा गोपतये वशा ।
वेहतं मा मन्यमानो मृत्योः पाशेषु बध्यताम् ।३७
यो वेहतं मन्यमानोऽमा च पचते वशाम् ।
अप्यस्य पुत्रान् पौत्रांश्च याचयते वृहस्पतिः ।३८
महदेषाव तपति चरन्तो गोषु गौरपि ।
अथो ह गोपतये वशाददुषे बिषं दुहे ।३९
प्रिय पशूनां भवति यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीपते ।
अथो वशायास्तत् प्रिय यद् देवत्रा हविः स्यात् ।४०

वह जब इच्छा करती है तो उसकी इच्छा देवताओं के पास जाती

है, तब ब्राह्मण को मांगने के लिये उसके पास आते हैं ।३१। पितरों के लिये, स्वधा करने से देवताओं के लिये यज्ञ करने से और वशा दान से क्षत्रिव माता का क्रोध नहीं पाता ।३२। राजन्य की माता वशा है, इनका समूह पहले प्रकट हुआ था। ब्राह्मणों को दान करनेसे पहले उसे अनर्पण कहते हैं ।३३। ग्रहण किया घृत जैसा स्रु वा से अग्नि के लिए पृथक् होता है वैसे ही ब्राह्मण को वशा न देने वाला, अग्नि के लिए पृथक् होता है ।३४। इस लोक में सुन्दरता से दुहाने वाली वशा इस यजमान के पास रहती है और दाता के सब अभीष्टों को प्रदान करती है ।३५। यम के राज्य में यह वशा दावा की सब कामनाओं को देने वाली हैं और याचित वशा के न देने पर विद्वज्जन नरक प्राप्तिकी बात कहते हैं ।३६। क्रोध में भरी हुई वशा गोपति को खाती हुई-सा धूमती है। वह कहती है कि मुझ गर्भघातिनी को अपनी जानने वाला मूर्ख मृत्यु के बन्धनों में पड़े ।३७। गर्भघातिनी वशा को अपनी मानता या उसका पचन करता है, बृहस्पति उसके पुत्र, पौत्रादि को लेने की इच्छा करते हैं ।३८। यह वशा अन्य गौओं में ताप बढ़ाती हुई धूमती है यदि स्वामी इसका दान नहीं करता तो यह इसके लिये विष का दोहन करती है ।३९। ब्राह्मणों को वशा दे देने पर पशुओं का प्रिय होता है। वशा का भी वह प्रिय होता है। देवताओं में हवि रूप से प्रदान की जाती है ।४०।

वा वशा उदकल्पयन् देबा यज्ञादुदेत्य।
तासां लिलिप्त्यं भीमामुदाकुरुत नारदः ।४१
तां देवा अमीमांसन्त वशेयामवशेति ।
तामब्रवीन्नारद एषा वशानां वशतमेति ।४२
कति नु वशा नारद या त्वं वेत्थ मनुष्यजाः ।
तास्त्वा पृच्छासि विद्वांसं कस्या नाशनीयाद ब्रह्मणः ।४३
विलिप्त्या बृहस्पते या च सूतवशा वशा ।
तस्या नाश्नीयाश ब्राह्मणो य आशसेत भूत्याम् ।४

नमस्ते अस्तु नारदानुष्ठु विदुषे वशा ।
कतमासां भीमतमा यामदत्त्वा पराभवेत् ।४५

विलिप्ती या वृहस्पतेऽथो सूतवशा वशा ।
मस्या नाश्नोयादब्राह्मणो य काशसेत भूत्याम् ।४६

त्रीणि वै वशाजातानि विलिप्ती सूतवशा वशा ।
ताः प्र यच्छेद ब्रह्मभ्यः सोऽनाव्रस्कः प्रजापतौ ।४७
एतद् वो ब्राह्मणा हविरित मन्वीत याचितः ।
देवां चेदेन या याचेयुर्या भीमाददुषो गृहहे ।४८

देवा वशां पर्यवदन न नोऽदादिति हीडिताः ।
एताभिऋर्ग्भिर्भेद तस्माद् वै स पराभवत ।४९
उत्तैरांभेदो नाददाद वशामिन्द्रेण याचितः ।
तस्मात् तं देवा आगसोऽवश्चन्नहमुत्तरे ।५०
ये वशाया अदानाय वदन्ति परिरापिणः ।

इन्द्रस्य मन्यवे जाल्मा आ वृश्चन्ते अचित्या ।५१
ये गोपतिं पराणीयाथाथाहुर्मा ददा इति ।
रुद्रस्यास्तां ते हेति परि यन्त्यचित्या ।५२
यदि हुया यद्यहुयाममा च पचते वशाम् ।
देवान्त्सब्राह्मणानृत्वा जिह्मो लोकान्निर्ऋच्छति ।५३

यज्ञ से आकर देवताओंने वशा को बनाया । नारदने तब बिलप्ती भीमा को स्वीकार किया ।४१। उस समय देवताओं ने यह कहा कि यह वशा अवशा है परन्तु नारद ने उसे वशाओं में परम वशा बताया ।४२। हे नारद ! तुम ऐसी कितनी वशाओं के ज्ञाता हो जो मनुष्यों में प्रकट होती हैं ? विद्वान होने के कारण ही तुमसे पूछता हूँ अब्राह्मण उसके प्राशन से बचे ? ।३४। हे वृहस्पति ! जो आब्रह्मण ऐश्वर्य चाहे वह विलिप्त, तूलवशा और वशा का प्रदान न करे ।४४। हे नारद !

तुम्हें नमस्कार है। विद्वान् की स्तुतिके अनुकूलही बशा है। इनमें भय-के क्रोध से स्वयं को नष्ट करते हैं । ५ । जो लोग गौ के स्वामी से न कर वशा कौन सी है। जिसका दान न करने पर पराज्य प्राप्त होती है ।४५। हे बृहस्पते ! एश्वर्य की प्रार्थना वाला अब्राह्मण विलिप्ती, सूर्यवशा और वशा का प्राशन न करे ।४६। वशाओं के तीन भेद हैं विलिप्ती, सूतवशा और वशा । इन्हे ब्राह्मणों को दे दे तो वह प्रजापति के लिये क्षोभजनक नहीं होता ।४७। दान न करने वाले के घर में यदि भीमा वशा है जो उस वशा की याचना करने पर यह मानें कि 'हे ब्राह्मणो ! तुम्हारे लिये यह हवि रूप हैं ।४८। क्रोधित देवताओं ने वशा से कहाकि इसने हमको दान नहीं किया इसलिये यह दान न करने वाला पराजित होता है ।४६। इन्द्र की प्रार्थना करने पर भी यदि वशा को न दे तो उसके इस पाप के कारण देवता उसे अहंकार में व्याप्त कर मिटा देते हैं ।५०। जो वशा का दान न कहने को करते हैं वे मूर्ख इन्द्र देने को कहते हैं वे मूर्ख रुद्र के आयुध के लक्ष्य होते हैं ।५२। हत या अहुत वशा का पचन करने वाला देवता और ब्राह्मणोंका अपमान करने वाला होता है। वह इस लोक में बुरी गति को पाता है ।५३।

सूक्त--५ [१] [पांचवा अनुवाक]

(ऋषि—कश्यपः । देवता–व्रह्मगवी छन्द—अनुष्टुप्ः, पंक्तिः, उष्णिक्)

श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्तऋते श्रिता ।१
सत्येनावृत्ता श्रिया प्रावृता यशसा परीवृता ।२
स्वधया परिहिता श्राद्धया पृयूढा दीक्षया गुप्ता यक्षे-
प्रतिष्ठिता लोको निधनम् ।३
ब्रह्म पदवाय व्राह्मणोऽधिपति ।४
तामाददानस्य ब्रह्मगवी जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्व ।५
अप क्रामति सूनता वीर्यं पुण्या लक्ष्मः ।६

तप के द्वारा रची हुई परब्रह्म में आश्रित इस धेनु को ब्राह्मण ने श्रम से प्राप्त किया ।१। यह सत्य, सम्पत्ति और यश से परिपूर्ण रहती है ।२। यह श्रद्धा से 'पर्यूढ़' स्वधा से रहित, दीक्षा द्वारा रक्षित तथा यज्ञ से प्रतिष्ठित रहती है । इसकी ओर क्षत्रिय का दृष्टिपात करना मृत्यु के समान है ।३। इसके द्वारा ब्रह्म पद मिलता है । इस गो का स्वामी ब्राह्मण ही हैं ।४। ब्राह्मण की ऐसी गो के अपहरणकर्त्ता और ब्राह्मण को व्यथित करने वाले क्षत्रिय की लक्ष्मी, वीर्य और प्रिय वाणी पलायन कर जाती है ।५।

सूक्त–५ [२]

(ऋषि—कश्यपः । देवता—ब्रह्मगवी । छन्द–त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् उष्णिक्, पंक्ति)

ओजश्च तेजश्च सहश्च बलं च वाक चेन्द्रियं च श्रीश्च धर्मश्च ।७

ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च त्विषिश्च यशश्च वर्कश्च-द्रविणं च ।८

आयुश्च रुपं च नाम च कीर्तिश्च प्राणाश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रं च ।९

पयश्च रसचान्नं चान्नाद्य च ऋतं च सत्यं चेष्टं च पूर्तं च प्रजा च पशवश्च ।१०

तानि सर्वाण्यप क्रामन्ति ब्रह्मगवीमादादनस्य जिनतो ब्राह्मण क्षत्रियस्य ।११

ओज, तेज, बल, वाणी, इन्द्रियाँ लक्ष्मी और धर्म ।७। वेद, क्षात्र-शक्ति, राष्ट्र, दीप्ति यश, वर्च और धन ।८। रूप, नाम, कीर्ति प्राणापान, नेत्र और कान ।९। दूध, रस, अन्न, अग्नि, ऋत, सत्य, इष्ट, पूर्त और प्रजा ।१०। उस क्षत्रिय के यह सभी छिन जाते हैं जो ब्राह्मण की गो का अपहरण कर उसकी आयु को क्षीण करता है ।११।

सूक्त–५ [३]

(ऋषि—कश्यपः। देवता—ब्राह्मगवी। छन्द—गायत्री, अनुष्टुप् उष्णिक्, जगती, बृहती)

सैषा भ मा ब्रह्मगव्यघविषा साक्षात् कृत्या कूल्बजमावृता ।१२
सर्वाण्यस्यां घोराणि सर्वे च मृत्यवः ।१३
सर्वाण्यस्याँ क्रूराणि सर्वे पुरुषवधाः ।१४

सा ब्रह्मज्यं देवपीयुं ब्रह्मगव्या दीयमाना मृत्योः
षड्वीश आ द्याति ।१५
मेनिः शतवधा हि सा ब्रह्मज्जस्य क्षितिर्हि सा ।१६
तस्माद वै ब्राह्मणानां गौर्दु राधर्षा विजानताः ।१७

वज्रो धावन्ती वैश्वानर उद्धीता ।१८
हेतिः शफानुत्खिदन्ती महादेवोपेक्षमाणाः ।१९
क्षुरपबिरीक्षमाणा वाश्यमामाभि स्फुर्जति ।२०
मृत्युर्हिङ् कृणवत्युग्रो देवः पुच्छं पर्यस्यन्तो ।२१
सर्वज्यानिः कर्णौ वरीर्जयन्त राज्यक्ष्मो मेहन्ती ।२२
मेनिर्दुं ह्यमाना शीर्षक्तिदुग्धा ।२३
सेदिरुपतिष्ठन्ती मिथोयोधः परामृष्टा ।२४

शरव्या मुखेऽपिन ह्यमान ऋतिर्हन्यमाना ।२५
अघविषा निपतन्तो तमो निपतिता ।२६
अनुगच्छन्ती प्राणानुप दासयति ब्रह्मगवी ब्रह्मजस्य ।२७

ब्राह्मण की यह धेनु विकराल होती है। कूल्वजसे ढके हुये हिंसात्मक पाप के विष से युक्त होती हुई यह कृत्या रूप हो जाती है ।१२। उनमें सभी विकराल कर्म और मृत्युदायक कारण व्याप्त रहते हैं ।१३। इसमें सब प्रकार के फल कर्म और पुरुषों के सब प्रकार से बध व्याप्त

रहते हैं ।१४। ब्राह्मण से छीनी हुई ऐसी यह गौ ब्राह्मणत्व को अपमानित करने वाले व्यक्ति को मृत्यु के बन्धन में बांध देती है ।१५। जो ब्राह्मण की आयु को न्यून करने वाले के लिए क्षीणताप्रद वह गौ सैकड़ों प्रकारसे सहारात्मक अस्त्र होती है ।१६। इसलिये विद्वान पुरुष ब्राह्मणों को धेनु के रूप में जाने ।१७। वह अग्नि के समान ऊपर उठती और वज्र के समान दौड़ती है ।१८। वह खुरों का शब्द करती हुई महादेव की आयुद्ध रूप हो जाती है ।१९। वह रभाती हुई धेनु कड़कतीहै और तीक्ष्ण वज्र के समान हो जाती है ।२०। हिं शब्द करती हुई धेनु मृत्यु के समान होती है और सब ओर पूँछ को घुमाती हुई उग्र रूपमें हो जाती है ।२१। सब प्रकार से आयु को क्षीग करने वाली यह गौ कानों को हिलाती है। वह अपने मूत्र को त्यागती हुई क्षय की उत्पादिका हो जाती है ।२२। जब दुही जाती है तब मारक अस्त्र के समान होती है और दुही जाने पर शिर रोग रूप वाली हो जाती है ।२३। परामृष्ट होने पर परस्पर युद्ध कराती और पास खड़ी होनेपर विशीर्ण करती है ।२४। पीटने पर दुर्गतिप्रद तथा ढकने पर निशान करने वाली होती है।२५। बैठती हुई वह गौ अघविषा होती है और बैठी हुई मृत्यु दायक ब्याधि उत्पन्न करती है ।२६। यह ब्राह्मण की गाय ब्राह्मण की हानि करने वालेका अनुगमन करती हुई उसके प्राणोंका क्षय करती है ।२६।

सूक्त—५ [४]

(ऋषि-कश्यपः । देवता —ब्रह्मगवी । छन्द-गायत्री, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप् वृहती, उष्णिक्)

वैरं विकृत्यमाना पौत्राद्यं विभाज्यताना ।२८
देवहेतिर्ह्रियमाणा व्यृद्धिर्हृता ।२९
पाप्माधिधीयमाना पारुष्यमवधीयमाना ।३०
विषं प्रयस्यन्ती तक्मा प्रयस्ता ।३१
अघं पच्यमाना दुःष्वप्न्यं पक्वा ।३२

मूलबर्हणी पर्याक्रियमाणा क्षितिः पर्याकृता ।३३
असंज्ञा गन्धेन शुगुद्ध्रियमाणाशीविष उद्धृता ।३४
अभूतिरुपह्रियमाण पराभूतरुपह्रिता ।३५
शर्वः क्रुद्धः पिश्यमाना शिमिदा पिशिता ।३६
अवर्तिरश्यमाना निर्ऋतिरशिता ।३७
अशिता लोकाच्छिनत्ति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यगस्माञ्चमुष्माच्च ।३८

यह ब्राह्मण की अपहृत गौ पुत्र पौत्रादि का बँटवारा कराती हुई छेदन करने वाली है ।४८। हरण करते समय यह अस्त्र रूप तथा हरण किये जाने पर क्षीण करने वाली होती है ।२६। पाप रूप होने वाली यह धेनु कठोरता उत्पन्न करती है ।३०। प्रयस्यंती विष के समान और प्रयस्ता जीवन को संकट में डालने वाली होती है ।३१। पचन काल में व्यसनप्रद और पकने पर दुस्वप्न वाली होती है ।३२। पर्याक्रियमाणा मूल उखाड़ देती है और पराकृता क्षीण करती है ।३३। उदघ्रियमाणा शोक देने वाली होती है, उद्घृता सर्प के समान विष वाली होती है, गन्ध से चैतन्यता को हर लेती है ।३४। उपहृता पराभूति होती है और उपह्रियमाणा अभूति होती है ।३५। पिश्यमाना क्रोधित सर्प के समान होती है और पिशिता शिमिदा होती है ।३३। प्राशन की जाती हुई धेनु दरिद्रदा औरप्राशन किये जाने पर बुरी गति देनेवाली पापदेवी निर्ऋति बन जाती है ।३७। ब्राह्मण को हानि पहुँचाने पर ब्राह्मण की धेनु इहलोक और परलोक दोनों से हीन कर देती है ।३७।

सूक्त—५ [५]

(ऋषि—कश्यपः । देवता—ब्रह्मगवी । छन्द—पंक्ति,अनुष्टुप्ः, वृहती)

यस्या आहननं कृत्या मेनिराशसनं वलग उवध्यम् ।३९
अस्वगता परिहणुता ।४०
अग्निः क्रव्यात् भूत्वा ब्रह्मगवी ब्रह्मज्य प्रविश्यात्ति ।४१

सर्वास्यांगा पर्वा मूलानि वृश्चति ।४२
छिनत्त्यस्य पितृबन्धु परा भावयति मातृबन्धु ।४३
विवाहां ज्ञातीन्त्सर्वानपि मापयति ब्रह्मगवी ब्रह्मजस्य
क्षत्रियेणापुनर्दीयमाना ।४४
अवास्तुयेनमस्वगमजसं करोत्यपरापरणो भवति क्षीयते ।४५
य एवं विदुषो ब्राह्मणस्य क्षत्रियो गमादत्ते ।४६

इस धेनु का आशसन मारणास्त्र है, इसका आहनन कृत्या है और गोबर युक्त आधा पका हुआ चारा शपथ के समान है ।३६। यह अपहृत धेनु अपने वशामें नहीं रहती ।४०। ब्राह्मण की धेनु क्रव्याद् अग्नि बनकर ब्रह्मज्य में प्रविष्ट हो उसे खाती है ।४१। उसके सब अङ्ग और जोड़ों को छिन्न करती है ।४२। इसके पिता के बांधवों का भी छेदन करती और माता के वांधवों को अपमानित कराती है ।४३। ब्राह्मण की गाय, क्षत्रिय द्वारा न लौटाई जाने पर ब्रह्मज्य के सब विवाहित वन्धुओं को नष्ट करती है ।४४। वह उसे सन्तानहीत गृह-हीन करती है वह अपरापरण होकर क्षय को प्राप्त हो जाती है ।४५। उपरोक्त दशा उस क्षत्रिय की होती है जो विद्वान की गौ का अपहरण कर लेता है ।४६।

सूक्त—५ [६]

(ऋषि—कश्यप । देवता—ब्रह्मगवी । छन्द-अनुष्टुप्, बृहती:, उष्णिक् गायत्री)

क्षिप्रं वै तस्यादहनने गृध्राः कुर्वत ऐलवम् ।४७
क्षिप्रं वै तस्यादहन परि नृत्यन्ति केशिनीराघ्नानाः ।
पाणिनो सि कुर्वाणाः पापमैलबम् ।४८
क्षिप्रं वै तस्य बास्तुषु वृकाः कुर्वत ऐलबम् ।४६
क्षिप्रं वै तस्य पृच्छन्ति यत् तदासी दिदं नु तादिति ।५०
छिन्ध्याच्छिन्धि प्राच्छिन्ध्पति क्षापय क्षापय ।५१

आददानमाङ्गिरसि ब्रह्मज्यमुप दासय ।५२
वैश्वदेवी ह्युच्यसे कृत्वा कल्बजमावृता ।५३
ओषन्ती समोषन्ती ब्रह्मणो वज्रः ।५४
क्षुरपविमृत्युर्भूत्वा वि धाव त्वम् ।५५
आ दत्से जिनतां वर्च इष्टं पूर्तं चाशिषः ।५
आदाय जीतं जीताय लोकेऽमुष्मिन् प्र यच्छसि ।५७
अघ्न्ये पदवीर्भव ब्राह्मणस्याभिशस्त्या ।५८
मेनिःशरव्या भवाघादघबिषा भव ।५९
अघ्न्ये प्र शिरो जहि ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवीपीयोरराधसः ।६०
त्वया प्रमूर्णं मृदितमग्निर्दहतु दुश्चितम् ।६१

जो क्षत्रिय उस गाय को ले जाता है, उसकी नेत्रापति शुद्ध करते हैं ।४७। उसे भस्म करने वाली चिता के पास केश वाली स्त्रियाँ पहुँच कर वक्ष को कूटती और अश्रुपात करती हैं ।४८। उसके घरों में शीघ्र ही शृगाध अपने नेत्रों को घुमाते हैं ।४६। उसके सम्बन्ध में यह कहा जाने लगता है कि उसका यह घर था ।५०। तू उस अपहरणकर्त्ता का छेदन कर और उसे नष्ट कर डाल ।५१। हे आँगिरिस ! तू इस अपह-रणकर्त्ता ब्रह्मज्य का नाश कर ।५२। तू कूब्बज से ढकी हुई विश्वदेवी कृत्या कही जाती है ।३२। तू मन्त्र रूपी बज्र से भले प्रकार नष्ट करने वाली है ।५४। तू मृत्यु रूप होती हुई दौड़ ।५५। तू अपहरणकर्त्ता के तेज, कामना, पूर्त और आशीर्वात्मिक शब्दों का हरण करती है ।५६। उस ब्राह्मणकी हानि करनेवालेको शून्यम्यूनआयु करनेके लिए पकड़कर परलोकगामी करती है ।५७। हे अघ्नये ! ब्राह्मण से शाप के कारण तू ब्रह्मज्य के पैरों के लिए बेड़ी रूपी हो ।५८। तू अस्त्र रूप बाणों के समूह को प्राप्त होती हुई उसके पाप के कारण अघिविषा होजा ।५९। हे अघ्न्ये ! तू उस देवहिंसक अपराधी के कार्य को बिफल करने के लिए

उसके सिर को काट डाल ।६०। तेरे प्रमूर्ण और मर्दन किये हुये उन पाप चित्त वाले को अग्नि भस्म कर डालें ।६१।

सूक्त—५ [७]

(ऋषि—कश्यपः । देवता—ब्रह्मगवी । छन्दः—अनुष्टुप्ः, गायत्री, पङ्क्तिः, त्रिष्टुप्, उष्णिक्)

वृश्च प्र वृश्च सं वृश्च दह प्र दह सं दह ।६२
ब्रह्मज्यं देव्यघ्न्नये आ मूलादनुसंदह ।६३
यथायाद् यमसादनात् पापलोकान् परावतः ।६४
एवा त्वा देव्यघ्न्ये ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयो राधसः ।६५
वज्रेण शतपर्वणा तीक्ष्णेन क्षुरभृष्टिना ।६६
प्र स्कन्धान् प्र शिरो जहि ।६७
लोकमान्यस्य सं छिन्धि त्वचमस्य वि वेष्टय ।६८
मांसान्यस्य शातय स्नावान्यस्य सं वृह ।६९
अस्थीन्यस्य पीडय तज्जानमस्त निर्जहि ।७०
सर्वास्याङ्गा पर्वाणि वि श्रथय ।७१
अग्निरेनं क्रव्यात् पृथिव्या नुदतामुदीषतु वायुरन्तरिक्षान्महतो वरिम्णः ।७२
सूर्य एनं दिवः प्रणुदतां न्योषतु ।७३

हे अघ्न्ये ! ब्रह्मज्य को काट, भस्म कर, उसे समूल भस्म कर ।६२-६३। हे अघ्न्ये ! उस अपराधी, देवहिंसक, कार्य में बाधा रूप ब्रह्मज्य के कन्धों को और सिर को भी तीक्ष्ण धार वाले वज्र से काट डाल जिससे वह अत्यन्त दूर के पाप लोकों में गमन करे ।६४-६५-६६-६७। इसके लोमों को काट कर चर्म उधेड़ ! ।६८। इसके मांस को काट कर नसों को सुखा दे ।६९। इसकी हड्डियों में दाह और मज्जा

में क्षय व्याप्त कर ।७०। इसके अवयवों और जोड़ों को ढीला कर दे ।७१। वायु इसे अन्तरिक्ष और पृथिवी से भी खदेड़ दे और क्रव्याद् अग्नि इसे भस्म कर दे ।७२। सूर्य भी इसे स्वर्ग से ढकेल दें और भस्म कर डालें ।७३।

।। द्वादश काण्ड समाप्तम् ।।

=×=

त्रयोदश काण्ड

सूक्त–१ [प्रथम अनुवाक]

(ऋषि–ब्रह्मा । देवता—अध्यात्मम् रोहितः, आदित्यः, मरुतः, अग्निः, अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः । छन्द–त्रिष्टुप्, जगती, पंक्तिः, गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, वृहती)

उदेहि वाजिन् यो अपस्वन्तरिदं राष्ट्रं प्र विश सूनृतावत् ।
यो रोहित विश्वमिद जजान म त्वा राष्ट्राय सुभृतं बिभर्तु ।१
उद्वाज आ गन यो अप्स्वन्तर्विश आ रोह त्वद्योनया याः
सोमं दधानोऽप ओषधीर्गाश्चतुष्पदो द्विपद आ वेशयेह ।२
यूतमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून् ।
आ बो रोहितः श्रृणवत् सुदानवस्त्रिषप्तासो मरुतः स्वादुसंमुदः ।३
रुहो रुरोह रोहित आ रुरोह गर्भो जनीनां जनुषामुप थम् ।
ताभिः संरब्धमन्वविन्दन् षडुर्वीर्गातुं प्रपश्यन्ति राष्ट्रमाहाः ।४

आ ते राष्ट्रमिह रोहितोऽहार्षीद् व्यास्थन्मृघो अभयं ते अभूत् ।
तस्मै ते द्यावाँ पृथिव्री रेवतीभिः काम दुहाथा मिह शक्वीभिः।५
रोहितो द्यावापृथिवी जजान तत्र तन्तु परमेष्ठी ततान ।
तत्र शिश्र्ये येऽज एकापादाऽद्द हद् द्यावापृथिवी बलेन् ।६
रोहितोद्यावापृथिवी अद्द्ंसद् तेन स्व स्वभितं तेन नाकः ।
तेनान्तरिक्ष विमिता रजांसि तेन देवा अमृतमन्वविन्दन ।७
वि रोहितो अमृशद् विश्वरुपं समाकुर्वाणः प्ररुहो रुहश्च ।
दिव रूढ् वा महता महिम्ना सं ते राष्ट्रमनवतु पयसा घतेन ।८
यास्ते रुहः प्ररुहो यास्त आरुहो याभिरापृणाभि दिवमन्तरिक्षम्।
तासां ब्रह्मणापयसा वाधृधानो विशि राष्ट्रे जागृहि रोहितस्य।६
यास्ते विशस्तपसः सवभवर्वत्सं गायत्रीमनु ता इहागुः ।
तास्त्वा विशन्तु णनसा शिवेन संमाता वत्सो अभ्येतु रोहितः।१०

हे सूर्य ! तुम अन्तरिक्ष में छुपे हो, उदय होओ। प्रिय और सत्य बाणी से युक्त होकर उस राष्ट्र में आओ। ऐसे इन सूर्य ने संसार को प्रकाशित किया वह तुम्हें राष्ट्र के भरणकर्त्ता के रूप में पुष्ट करें ।१। जल में रहने वालीजो प्रजायें और वलप्रद अन्नहैं,वे तुम्हारे पास आवे । तुम उन पर चढ़ो और सोम को धारण करते हुये, जल, औषधि और दुपायों, चौपायों को इस राष्ट्र में विप्रष्ट करो ।२। हे मरुद्गण ! तुम इन्द्र के सखा हो । तुम शत्रुओं का नाश करो । तुम सुस्वादु पदार्थो से प्रसन्न होने वालेहो और सुन्दर वृष्टि का प्रदान करते हो । सूर्य तुम्हारी बात सुनें ।३। सूर्य उदय होते हुए चढ़ रहे हैं । यह उत्पादकों के शरीरांग में पत्नियों के गर्भ रूप से उत्पन्न होते हैं । छः उर्वियोंकी प्राप्ति के लिये नित्य प्रति राष्ट्र को देखते हुये वे उर्वियों को प्राप्त करते हैं ।४। तेरे राष्ट्र पर सूर्य आगये इसलिये तू युद्धका भय न कर । आकाश पृथिवी धन देने वाली ऋचाओं द्वारा तेरे निमित्त कामनाओं का दोहन करें ।५। सूर्य ने आकाश पृथिवी को प्रकट किया, प्रजापति ने उसमें तन्तु को बढ़ाया । वहाँ एक पाद अज ने आश्रय लेकर आकाश, पृथिवी को बल से युक्त किया ।६। सूर्य ने आकाश पृथिवी को दृढ़ किया उसने

दुःख रहित स्वर्गको स्थिर किया, उसीने अन्तरिक्ष तथा अन्य सब लोकों को बनाया और देवताओं ने उसी से अमृतत्व प्राप्त किया ।७। रुह और प्ररुह को भले प्रकार प्रकट करने वाले सूर्य ने सब शरीरों को छूआ। वह सूर्य अपने महत्व से तेरे राष्ट्र का घृत दूध से सम्पन्न करें ।८। जो तुम्हारी रोहण, प्ररोहण और आरोहण शील प्रजा और लता आदि हैं, जिनके द्वारा तुम अन्तरिक्ष के प्राणियों का भरण पोषण करतेहो उसके दूध के समान सार युक्त कर्म द्वारा मित्र बल से बृद्धि को प्राप्त हुये तुम सूर्य के राष्ट्र में सचेत रहो ।९। जो प्रजायें तपोबल से प्रकट हुई है जो गायत्री रूप वत्स द्वारा यहाँ आई हैं, वह कल्याण करने वाले चित्त से तुममें रमें, इनका वत्स सूर्य तुम्हारे पास आगमन करे ।१०।

ऊध्वों रोहितो अधि नाके अस्थादि विश्वा रुपाणि जनयन् युवा कविः ।
तिग्मेनाग्निर्ज्योतिषा वि भाति तृतीये चक्रे रजसि प्रयाणि ।११
सहस्रश्रृङ्गों वृशभो जातवेदा घृताहुतः सोमपृष्टः सुबीरः ।
मा मा हासीन्नाथितो नेत् त्वा जहानि गोपाषं
च मे वीरपोषं च धेहि ।१२

रोहितो यज्ञस्या जनिता मुखं च रोहिताया वाचा
श्रोत्रेणा मनसा जुहोमि ।
हित देवा यन्ति सुमनस्यमानाः स मा रोहैः
सामित्यै रोहयतु ।१३

रोहितो यज्ञ व्य दधाद् विश्वकर्मणे तस्मात् ।
तेजांस्युप मेमान्यागुः ।
वोचेय नामि वनस्याधि भुमज्मनि ।१४
आ त्वा रुरोह बृहत्यूत पङ्क्तिरा ककुब वर्चसा जातवेदः ।
आ त्वा रुरोहोष्णिहाक्षरो वषटकार आत्वारुरोह रोहितोरेतसा सह ।१५

अयं वस्ते गर्भ पृथिव्या दिवं वस्तेऽयमन्तरिक्षम् ।
अयं बध्मस्य विष्टपि स्व लोकान् व्या नशे ।।१६
वाचस्पते पृथिवी नः स्योना स्थोना योनिस्तल्पा नः मुशेवा ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिम् ।
पर्यग्निरायुषा वर्चसा दधातु ।।१७
वाचस्पते ऋतवः पञ्च ये नो वेश्वकर्मणाः परि ये संबभूवुः ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परिमेष्ठिन् परि
रोसिता आयुषा वर्चसा दधातु ।।१८
वाचस्पते सौमनसं मनश्च गोष्ठे नो या जनय योनिषु प्रजाः ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु त त्वा परमेष्ठिन्
पर्यहमायुषा वर्चसा दधामि ।।१९
परि त्वा धात् सविता देवो अग्निर्वर्चसा मित्रावरुणावभि त्वा ।
सर्वा अरातीरवक्रामन्नेहीद् राष्ट्रमकरः सूनृतावत् ।।२०

जब वे सूर्य ऊँचा होकर स्वर्ग में प्रतिष्ठित होते हैं तब वे सब रूपों को प्रकट करते हैं । उनको ही तीक्ष्ण ज्योतिसे अग्नि ज्योतिमीन है । वे तृतीय लोक से प्रिय फलों को प्रकट करते हैं ।११। सहस्रों सींग वाले घृत से आहुत, इष्टों की पूर्ति वाले, सोमपृष्ठा, सुवीर, जातवेदा अग्नि मेरा त्याग न करें । मुझे गौओं और पुत्र पौत्रादि की पुष्टि में प्रतिष्ठित करें ।१२। सूर्य, यज्ञ, के प्रकट करने वाले और यज्ञ के मुख रूप हैं, बाणी श्रोत्र और मन से में उन सूर्य के लिए आहुति देता हूँ । प्रसन्न होते हुए सब देवता सूर्य के समीप जाते हैं । वे मुझे संग्राम के निमित्त ऊँचा उठावें ।१३। सूर्य ने विश्वकर्मा के लिए यज्ञ का पोषण किया, उस यज्ञके द्वारा वह तेजमुझे प्राप्त हो रहेहैं । मैं तुम्हारी नाभि को लोक की मज्जा पर बताता हूँ ।१४। हे अग्ने ! बृहती, पंक्ति और ककुप् छन्दों ने तथा उष्णाहा जोर अक्षर ने तुम में प्रवेश किया है

और वषट् कार भी तुम में प्रविष्ट होगया । सूर्य भी तुममें अपने तेज से प्रविष्ट होते हैं ।१५। सूर्य पृथिवी के गर्भकी, आकाश और अन्तरिक्ष को भी ढक लेतेहैं । यह सब संसार के बंधक सभी स्वर्गोंमें व्याप्त होते हैं ।१६ हे वाचस्पते ! हमको पृथिवी, योनि, शय्या सुखदेने वालीहो । प्राण हमसे मित्रता करता हुआ रमे ! हे प्रजापते ! अग्नि तुम्हें वायु और तेज से धारण करने वाले हों ।१७। हे वाचस्पते! हमारे कर्मद्वारा जो पाँच ऋतुयें प्रादुर्भूतहुई उनमें हमारा प्राण मित्र भाव से स्थित रहें । हे प्रजापते ! तुम्हें सूर्य अपने तेज और आयुसे धारण करें।१८।हे वाचस्पते! हमारा मन प्रसन्नता से युक्त रहे । तुम हमारे गोष्ठ में गोओं को प्रकट करो और हमारी योनियों में सन्तानों को उत्पन्न करो । हमारे साथ प्राण मित्र भाव से रहें । मैं वायु और तेज से तुम्हें धारण करता हूँ ।१९। हे राजन् ! सविता तुम्हें सब ओर से पोषण दे । अग्नि मित्र वरुण तुम्हें पुष्ट करें । तुम सब शत्रुओंको वशीभूत करते हुए इस राष्ट्र में आकर सत्य प्रिय वाली को पुष्ट करो ।२०।

यं त्वा पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहित ।
शुभा यासि रिणन्नप. ।।२१

अनुव्रता रोहिणी रोहितस्य सुरिः सुवर्णा बृहती सुवर्चाः ।
तया वाजान् विश्वरूपां जघेम तया विश्वाः पृतना अभि ष्याम ।।२२

इदं सदो रोहिणी रोहितन्यासौ पन्थाः पृषमी येन याति
तां गन्धर्वाः कश्यपा उन्नयन्ति तां रक्षन्ति कवयोऽप्रमादम् ।।२३

सूर्यत्याश्वा हरयः केतुमन्तः सदा वहन्त्यमृताः मुखं रथम् ।
घृतपःवा रोहितीं भ्राजमाना दिव देव पृषतीमा विवेश ।।२४

यो रोहितो बृषभस्तिग्मश्रृंगः पर्यग्नि परि सूर्य बभूव ।
यो विष्टभ्नाति पृथिवी दिध च तस्माद् देवा अधि सृष्टी सृजन्ते ।।२५

रोहितो दिव मारुहन्महतः पर्यर्णवात् ।
सर्वा रुरोह रोहितो रुहः ॥२६

वि मिमीष्व पयस्वती घृताची देवानां धेनुरनपस्पृरोषा ।
इन्द्र सोम पिबतु क्षेमो अस्त्वग्निः प्रस्तौतु वि मृधा नुदस्व ॥२७

समिद्धो अग्निः सनिधानो घृतमृद्धा घृताहुतः ।
अभीषाड् विश्वाषाडग्निः सपत्नान् हन्तु ये मम ॥२८

हन्त्वेनान् प दहत्वरिर्यो नः पृतन्यात ।
कव्यादाग्निना वय सपत्नान् प्र दहामसि ॥२९

अवाचीनानव जहीन्द्र वज्रेण बाहुमान ।
अधा सपत्नान् मामकानग्नेस्तेजोऽभिरादिषि ॥३०

हे सूर्य ! तुम्हें पृषती प्रष्टि रथ में धारण करती है, जलों चलते हुए कल्याण के निमित्त गमन करते हो ।२१। चढ़ते हुए रोहित की रोहिणी अनुव्रताहै वह सुन्दर वर्णवाली बृहती और सुन्दर तेज वालीहै, उसीसे हम विभिन्नरूपों वाले प्राणियों पर विजय प्राप्त करते हैं । उसी से हम सब सेनाओं को वशीभूत करें ।२२। यह रोहिणी और रोहित का धाम है । इसी मार्ग से पृथवी गमन करती है उसे गन्धर्व ऊपर ले जाते हैं । चतुर व्यक्ति इसकी सावधानी से रक्षा करते हैं ।२३। सूर्य के घोड़े वेगवान और ज्ञान युक्त हैं वे अमरत्व वाले रथ को सुगमता से खींचते हैं । उन फल से सम्पन्न करने वाले सूर्य पृथवी स्वर्ग में प्रविष्ट हुए ।२४। वे रोहित अभीष्ट वर्षक हैं, तीक्ष्ण रश्मियों से युक्त है । जो अग्निदेव सूर्य की ओर रहते और पृथिवी आकाश को स्थिर रखते हैं उन्हीं केवल से देवता सृष्टि को रखते हैं ।२५। वे सूर्य समुद्र से आकाश पर चढ़ते रोहणशील वस्तुओं पर भी चड़ते हैं ।२६। तू देवताओं की पयस्वती पजिता गौका मान करने से अनयस्पृक्हैं । अग्नि कुशल मंगल करें और इन्द्र सोम को पीवें । तब तू शत्रुओं को रणक्षेत्र में खदेड़ डाल ।२७। यह अग्नि प्रदीप्त होकर घृत से प्रवृद्ध हुए हैं, इनमें घृताहुति दी गई हैं । वे शत्रुओं को हराने वाले हैं अतः मेरे शत्रुओं का संहार करें ।२८। इन सब शत्रुओं का अग्निदेव करें । जो शत्रु सेना

के सहित आकर हमको मारना चाहे उसे अग्निदेव भस्म कर दें। हम क्रव्याद् अग्नि के द्वारा शत्रुओंको जलाते हैं।२९। हे इन्द्र! तुम भुजबल से युक्त हो इसलिये हमारे शत्रुओं को मारो और अग्ने, तू अपनी ज्वालाओं से उसे भस्म कर डालो।३०।

अग्नेसपत्नानधरान् पादयास्मद् व्यथया सजातमुत्पिपानंबृहस्पते
इन्द्राग्नी मित्रावरुणावधरे पद्मन्तामप्रतिमन्यूयमाना: ॥३१
उद्यं स्त्वं देव सूर्य सपन्नानव मे जहि ।
अवैंत्रानश्मना जहि ते यन्त्वधमं तम: ॥३२
वत्सो विराजो वृषभा मतीनामा रुरोह शुक्रपृष्ठोऽन्तरिक्षम् ।
ज्रतेनार्कतभ्यर्चन्ति वत्स ब्रह्म सन्त ब्रह्मणा वर्धयन्ति ॥३३
दिवं च रोह पृथिवीं च रोह राष्ट्रं च रोह द्रविण च रोह ।
प्रजां च रोहाभृतं च रोहितेन तन्वं स स्पृशस्व ॥३४
ये देवा राष्ट्रभृतोऽभितो यन्ति सूर्यम् ।
तैप्ते रोहित: सविदानो राष्ट्र दधातु सुमनत्यमान: ॥३५
उत् त्ना यज्ञ ब्रह्मपूता वहन्त्यश्वातो हरयस्त्वा वहन्ति ।
तिर: समुद्रमति रोचसे अर्णवम् ॥३६
रोहिते द्यावापृथिवी अधि श्रिते वसुजिति गोजिति सधनाजिति।
सहस्र यस्य जनिमानि सप्त वोचेय ते नाभि भुवनस्याधि मज्मनि ॥३७
यशा यासि प्रदिशो दिशश्च यशा: पशूनामुत चर्षणीनाम् ।
यशा: पृथिव्या आदित्या उपस्तेऽहं भूयासं सविते चारु: ॥३८
अमुत्र सन्निह वेत्थेत: सस्तानि पश्यसि ।
इत: पश्यन्ति रोचनं दिवि सूर्यं विपश्चितम् ॥३९
देवो देवान् मर्चयत्यन्तश्चरस्यर्णवे ।
समानमग्यिमिन्धते त विदु: कवय: परे ॥४०

हे अग्ने, तुम हमारे शत्रुओं को पतित करो। हे बृहस्पते, तुम उन्नत होते समान जन्म वाले शत्रुओं को संतापमय करो। हे इन्द्राग्नि

और मित्रावरुण देवताओं जो शत्रु हमसे विरोधकरें, वे पतित हो जाँय ।३१। हे उदय होते हुये सूर्य, तुम मेरे शत्रु को मारो। इन्हें पत्थरों से मार डालो। यह मृत्यु के समान घोर अन्धेरे को प्राप्त हों।३२। विराट् के वत्स सूर्य अन्तरिक्ष पर चढ़ते हैं। सूर्यरूप वत्स जब ब्रह्म हो जाते हैं तब भी वे मन्त्र में प्रवृद्ध किये जाते हैं।३३। हे राजन, तुम पृथिवी पर अधिष्ठित रहो, राष्ट्र और धन पर भी अधिष्ठित रहो। प्रजाओं के लिये छत्रके समान छाया करते रहो। तुम अमृत पर अधिष्ठित होते हुए, सूर्य से स्पर्श करने वाले होओ स्वर्ग पर आरोहण करो ।३४। राष्ट्र का धारण करने वाले जो देवता सूर्य के चारों ओर घूमते है, उनके समान मति रखते हुए रोहितदेव तुम्हारे राष्ट्र को सुपुष्ट करें ।३५। हे सूर्य, यह मन्त्रपूत यज्ञ तुम्हारा वहन करते हैं और मार्ग में गमन करनेवाले अश्व भी तुम्हें वहन करते हैं। तुम तिरछे होकर समुद्र को अत्यन्त शोभायमान करते हो।३६। वसुजित, गोजित् सधनजित् नामक रोहित में आकाश पृथिवी आश्रित है। मैं उनके साथ सहस्र प्रादुर्भावों का वर्णन करता हुआ उन्हें लोककी मज्जाका बन्धन मानता हूं।३७। तुम अपने यश के द्वारा दिशा प्रदिशाओं में गमन करते हो। यश के द्वारा ही मनुष्यों और पशुओं में घूमते हो। मैं भी सवितादेव के समान ही अखण्डनीया पृथिवी के अङ्कमें यशसे ही समृद्ध होऊँ।३८ तुम लोक परलोक में रहते हुए भी यहाँ की सब बातों के ज्ञाता हो। तुम यहाँ और वहाँ के सब प्राणियों को देखते हो और सभी प्राणी द्यौ में प्रतिष्ठित सूर्य को यहाँ से देख हैं।३९। देवता होकर भी तुम देवताओं को कर्म में प्रेरित करते और अन्तरिक्ष में घूमते हो। समान अग्नि को प्रदीप्त करने वाले उत्कृष्ट विद्वान उनको जानते हैं।४।६।

अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात्।
सा कद्रीची कस्विदध परागात् क्वस्वित् सूतंनहियूथेअस्मिन्।४१
एकपदी द्विपदी सा चतुस्पद्यष्टापदी बभूबुषी।
सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति।४२

आरोहन् द्यामममृत प्राव मे वच ।
उत्त्वा यज्ञ ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हृषयस्त्वा वहन्ति ॥४३
वेद तत् ते अमर्त्य यत् त आक्रमण दिवि ।
यत् ते सधरथं परमे व्योमन ॥४४
सूर्यो द्यां सूर्यः पृथिवी सूर्य आपोऽति पश्यति ।
सूर्यो भूतस्यैक चक्षुरा रुरोह दिवं महीम् ॥४५
उर्वीरासन् परिधयो वेदिर्भू मिरकल्पत ।
तत्रैतावग्नी आधत्त हिम घ्रं सं च रोहितः ॥४६
ह्मिं घ्रंस चाधाय यूपान्कृत्वा पर्वतान् ।
वर्षाज्यावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥४७
स्वर्विदो रहिस्य ब्रह्मणाग्नि जमिध्यते ।
यस्माद् घ्रंसरतस्माद्धिमरतस्माद् यज्ञोऽजायत् ॥४८
ब्रह्माग्नीं वावृधानो ब्रह्मवृद्धौ ब्रह्ममाहुतौ ।
ब्रह्ममेद्धावग्नो ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥४९
सत्ये अन्यः समाहितोऽप्वन्यः समिध्यते ।
ब्रह्मद्धावग्नो ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥५०

एक गांव से अन्न और दूसरे से बछड़े को धारण करती हुई शुभ्र वर्णा गौ उठती है । वह किसी अर्द्ध भागमें जातीहै और पृथक रहतीहै, यूथ में जाकर नहीं रहती ।४१। वह मध्यम से एकाकार हुई एक पदी होती है, मध्यम आदित्य के साथ दो पदी, चारों दिशाओं में मिलकर चतुष्पदी, अवान्तर दिशाओं से मिलकर अष्टपदी और दिशा-विदिशा और सूर्य से मिलकर नौपदी हो जाती हैं वह मेघ का क्षरण करनेवाली अत्यन्त जल वाली, लोक की पंक्ति रूप है ।४२। हे सूर्य ! तुम अमृत हो, सूर्य लोक में चढ़ते हुए मेरे वचन की रक्षा करो मन्त्रमय यज्ञ और मार्गगामी अश्व तुम्हारा वहन करते हैं ।४३। हे अविनाशी सूर्य मण्डल में विचरण करने का और

आकाश में उपासकों सहित जो तुम्हारा निवास स्थान है उसे मैं भले प्रकार जानता हूँ ।४४। सूर्य, आकाश, पृथिवी और जल के साक्षी रूपहैं वे सब प्राणियोंके दर्शनात्मक शक्तिहैं। वही आकाश और पृथिवी पर चढ़ते हैं ।४५। उर्वियाँ परिधि बन गई, वेदों के रूप में पृथिवी की कल्पना हुई । वहाँ इन अग्नियों, हिमको और दिनों को सूर्य प्रतिष्ठित किया।४६। सूर्यात्मक स्वर्गकी प्राप्ति हिमको और दिन सूर्यमें प्रतिष्ठित का आधान कर, पर्वतोंको यूप बधाते हुए वर्षाग्ष अग्निका पूजनकिया करते थे।४७। रोहितके स्वर्ग प्राप्त कराने वाले मन्त्रसे अग्निको प्रज्व-लित करते हैं । उसी के द्वारा हिम, दिवस और यज्ञ का प्रादुर्भाव हुआ ।४८। सूर्यात्मक स्वर्ग की कामना वाले पुरुष मन्त्राहुत और मन्त्र प्रवृद्ध अग्नियों को मन्त्रसे बढ़ाते हुए उन प्रदीप्त अग्नियों का पूजन करतेहैं । ।४९। **अन्त** में अन्य अग्नि है जल में भिन्न अग्नि प्रदीप्त होती है । सूर्यात्मक स्वर्ग की प्राप्ति चाहने वाले पुरुषों ने मन्त्रों द्वारा प्रवृद्ध उन अग्नियों का पूजन किया था ।५०।

य वातः पर शुम्भति यन्वेन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः ।
ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ।।५१
वेदिं भूमि कल्पयित्वा दिव कृत्वा दक्षिणाम् ।
घ्रंस तदग्निं कृत्वाचकार विश्वमात्मन्वद् वर्षेणाज्येनरोहित।५२
वर्षमाज्यं घ्रसो अग्निर्वेदिर्भूमिरकल्पद ।
तत्रैतान् पर्वताग्निर्गीर्भिरूर्ध्वा अकल्पयत् ।।५३
गीर्भिरूर्ध्वान् कल्पयित्वा रोहिता भूमिब्रवीत् ।
त्वदीय सर्व जायता यत् भुत यच्च भाव्यम् ।।५४
स यज्ञः प्रथमो भूतो भव्यो अजायत ।
तस्माभद् जज्ञ इदं सर्व यत् कि चेद विरोचते रोपितेने ऋषिणा-नृतम् ।।५५
यश्च द्वां सदा स्फुरति प्रत्यङ् सुर्यं च मेहति ।
तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ।।५६

यो माभिच्छायमत्येषि मां चाग्नि चान्तरा ।
तस्य वृश्चामि ते मूल नच्छायां करवोऽपरम् ॥५७
यो अद्य देव सूर्य त्वां च मां चान्तरायची ।
दुःस्वप्न्यं तस्मिञ्छभभं दुरतानि च मृज्यहे ॥५८
मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः ।
मान्तस्थुर्नो अरातयः ।५९।
यो यज्ञस्य द्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः । तमाहुतमशीमहि ॥६०

जिसे वायुइन्द्र और ब्रह्मणस्पतिसुशोभित करनाचाहतेहैं, ऐसे पुरुष ही सूर्यात्मककी प्राप्ति कामरा करते हुए मन्त्र प्रवृद्ध अग्नियों को पूजते हैं ।५१। पृथिवी को वेदी, बनाकर, आकाशको दक्षिणा रूप देकर और दिन को ही अग्नि मानकर रोहित ने वर्षारूपी घृतसे जगत को आत्मा के समान बना लिया है ।५२। पृथिवी को वेदी दिनको आत्माके समान बना लिया है ।५३। पृथिवो को वेदी, दिन की अग्नि और वर्षा को घृत वनाया गया । स्तुतियों से समुद्र हुए अग्नि ने ही इन पर्वतों को उन्नत किया ।५३। स्तुतियों से उन्नत करते हुए रोहितने कहा कि भूत और भविष्य जो कुछ हो तुझ में ही प्रादुर्भूत हो ।४४। यह पहिले भूत और भवितव्य के रूपमें ही हुआ जो कुछ रोचमान है वह उसीसे प्रकट हुआ जो कुछ रोचमान है वह सब उसीसे प्रकट हुआ और रोहितने ही उसे पुष्ट किया ।५५। जो सूर्यकी ओर मूत्र त्याग करता है और गौ को अपने पाँवसे छूता है, मैं उसके मूलको छिन्न करताहूँ उसके ऊपर कभी छाया नहीं कर सकता ।५६। जो मेरे और अग्नि के मध्य में होकर निकलता है या जो मेरी छाया को लाँघता है,मैं उसकी जड़ काट दूँगा उसके ऊपर छाया नहीं कर सकता ।५७। हे सूर्य! हमारे तुम्हारे मध्यमें जो बाधक होना चाहता है, उसमें पाप, दुःस्वप्न और दुष्कर्मोंमें स्थापित करता हूँ ।५८। हे.इन्द्र ! जिस यज्ञ विधिमें सोम प्रयुक्त होता है, हम उस पद्धतिसे पृथक् न जाँय और हमारे देशमें शत्रु न रहें।५९। जो यज्ञ देवताओंमें सुविस्तीर्ण हैं, हम उस यज्ञकी वृद्धि करने वाले हों।६०।

सूक्त २ (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि–ब्रह्मा । देवता–अध्यात्मम् रोहितः, आदित्यः । छन्द–त्रिष्टुप्
अनुष्टुप्, जगती, गायत्री)

उदस्य केनवो दिवि शुक्रा भ्राजन्त ईरते ।
आदित्यस्य नृयक्षसो महिव्रतस्य मीढुषः ।।१
दिशा प्रज्ञानां स्वपयन्तमर्चिस बुपक्षमाशु पतयन्तमर्णवे ।
स्तवाम सूर्य भुवनस्य गोपां रश्मिभिर्दिश आभाति सर्वाः ।।२
यत् प्राङ् प्रत्यङ स्वधया यासि शीभं नानारूपेअहनीऋर्षिमायया
तदादित्य महि तत् भे महि ध्रवो यदेको विश्वंपरि भूमजायसे।३
यत् प्राङ् प्रत्यङ स्वधया यासि शीभं नानारूपेअहनीकर्षिमायया।
तदादित्य महि तत् भे महि श्रवो यदेको विश्ववपरिभमजायसे।४
मा त्वा दिभन परयान्तमाजि स्वस्ति दुर्गा अति याहि शोभम् ।
दिवं च सूर्य पृथिवी च देवीमपारात्रे विभिमामो यदेषि ।।५
स्वन्ति ते सूर्य चरमे रथाय येनोभवन्तौ परियासि सद्या ।
य ते बहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त वहीः ।६
सुख सूर्यरुथमशुमन्तं स्योनं सुवह्निमधि तिष्ठ वाजिनम् ।
य ते वहन्ति हरतो वहिष्ठाः शतमश्वा गदि वा सप्त वह्वीः।७
सप्त सूर्यो हरितो यातवे रथे हिरण्यत्वचसो वृदतीरयुक्त ।
अमोचि शुक्रो रजसः परन्ताद विधूय देवन्यमो दिवमारुहत् ।।८
उत केतुना बृहता देव आगन्नपाबृक् तमोऽभि ज्योतिरश्रैत् ।
दिव्य सुपर्णः सवीरो व्यख्यददितेः पुत्रो भुवनानि विश्वा ।।९
उद्यन् रश्मीना तनुषे विश्वा रूपाणि पुष्यसि ।
उभा समुद्रो क्तुना बिभासि सर्वाल्लोमान् परिभूर्भ्राजमानः।१०

महान् कर्म वाले, सेचस समर्थ, साक्षि रूप सूर्यकी निर्मल रश्मियाँ आकाश में चमकती हुई सूर्यको ऊँचा करती हैं ।१। ज्ञानमयी दिशाओं में अपने तेज से शब्द कराने वाले, सुन्दर पक्ष वाले, रश्मियों से प्रकाश

देने वाले, लोकों के रक्षक सूर्य का स्तवन करते हैं ।२। हे सूर्य ! तुम अन्नमय हवियों से पूर्व पश्चिम दिशाओंमें गमन करते हो । अपने तेज से दिन और रात्रि को विभिन्न रूपों वाले बनाते हो । तुम संसार भर में अकेले ही सबके समान हो यह तुम्हारा अत्यन्त प्रशंसनीय यश है ।३। जिन तेजस्वी और भवसिन्धु के तरणिरूप सूर्यको सप्त रश्मियां वहन करती हैं जिन्हें ब्रह्म समुद्र से ऊपर को सूर्य लोकमें लाता है । हे सूर्य ऐसे तुम्हें हम 'आज' में प्रविष्ट होता हुआ देखते हैं ।४। हे सूर्य ! तुम आकाश और पृथिवी में दिन रात्रिका मान करते हुए विचरते हो, तुम शीघ्रता से सुख पूर्वक दुर्गम स्थलों का उल्लंघन करो। तुम्हारे 'आजि' में प्रविष्ट होने पर कोई तुम्हें वश न करे ।५। हे सूर्य ! तुम जिस रथ से दोनों छोरों की शीघ्र पाते हो उस रथ का मङ्गल हो तुम्हारे सी सात या अनेक हयण्व तुम्हें वहन करते हैं उनकाभी कल्याण हो ।३। हे सूर्य ! तुम अग्निके समान ज्योति वाले वेगवान रथपर चढ़ो तुम्हारे उस रथ को ही सात या अनेक हर्यश्व वहन करते हैं ।७। सूर्य अपने गमन के लिए स्वर्णिम त्वचा वाले सात विशाल हरे घोड़ों को जोड़ते और अन्धकारको मिटातेहुए लोकसे दूर उन्हें छोड़कर सूर्यलोक में चले जाते हैं ।८। सूर्य महान्केतु द्वारा आते हैं वे ज्योति करके आश्रय से अन्धकार को दूर करतेहैं । वे सुन्दर वर्ण वाले अदितिके पुत्र सब भुवनों में विख्यात है ।९। हे सूर्य ! प्रकट होते ही रश्मियों को विस्तृत करके सभी रूपवान पदार्थोंका तुम पोषण करतेहो । तुम गमन करते हुए दोनों समुद्रों और सभी लोकों को प्रकाशित करते हो ।३०।

पूर्वापर चरतो मांययेतौ शिशू क्रीडान्तौ पपि यातो अर्णवम् ।
विश्वान्यो भुवना विचष्टे हैरणयैरन्य परितो वहन्ति ॥११

दिवि त्वात्त्रिरधारवत् सूर्या मासाय कर्तवे ।
स एषि सुधृतस्तपन् विश्वा भूतावचाकशत् ॥१२

उभावंतौ समर्षसि वत्सः संमातराविव ।
नन्वेतदितः पुरा ब्रह्म देवा अभी विदुः ॥१३

यत् समुद्रमनु श्रितं निषासति सूर्यः ।

अष्वा य विततो महान् पूर्वंशचापरश्च यः ॥१४
ब्र ं समाप्नोति जूतिभितस्तो नाप चिकित्सति ।
तेनामृतस्य भक्षं देवानां नव रुन्धते ॥१५
उदु त्यं जातवेदस देवं वहृन्वि केत्वः । ट्टशे विश्वाय सूर्यम्॥१६
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिःसूराय विश्व चक्षसे।१७
अष्टभ्रन्नत्य केतवो वि रश्मयो जनां अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥१८
तरणिविश्वदर्शतो ज्योतिष्कुदसि सूर्यं। विश्वमाभासि रोचन।१६
प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ् ड़ुदेप्रि मानुषीः । प्रत्यङ् विश्व त्वर्ह्शे ॥२०

अपनी माया के द्वारा बालकोंके समान क्रीडा करते हुए यह दोनों समुद्र की ओर गमन करते हैं । इनमेंसे एक सब लोकोंमें प्रकाश भरता है और स्वर्णिम अश्व वहन करते हैं ।११। हे सूर्य ! तीन तापोंसे मुक्त अत्रि ने तुम्हें मास समूह के निमित्त दिव्यलोक में प्रतिष्ठित किया, तुम वही हो । तुम तपते हुए आते और सब भूतों को प्रकाशित करते हो । ।१२। बालक जैसे माता-पिता के पास सरलता से पहुँचता है, वैसे ही तुम दोनों समुद्रों के पास पहुँचे हो । तभी देवता पुरातन ब्रह्मको समझते हैं ।१३। जो मार्ग समुद्र तक गया है उसका सूर्य दान करते हैं । इनका पर्व अन्य मार्ग है, वह अत्यन्त विस्यारमय और महान है ।१४। हे सूर्य ! तुम उस मार्ग को द्रुतवेग वाले अश्वों से प्राप्त करते हो तुम उससे सावधान रहते हुए देवताओं के अमृत-सेवन को नहीं रोकते ।१५ तभी उत्पन्न जीवों के जानने वाले सूर्य को सभी के दर्शन के निमित्त राशियाँ ऊपर उठती हैं रात्रि की समाप्ति पर जैसे चोर भाग जाते हैं वैसे ही नक्षत्र भी सबको देखने वाले सूर्य के कारण रात्रि के साथ ही चले हैं ।१६। सूर्य को ज्ञान को ज्ञान देने वाली अग्नि के समान दमकती हुई हरेक व्यक्ति के पीछे दिखाई देती हैं ।१८। हे सूर्य ! तुम नौका के समान हो । तुम सबको देखते,ज्योति प्रदान करते और विश्व को प्रकाशमय करते हो ।१६। हे सूर्य ! तुम प्रत्येक मानवी और दिव्य

प्रजाओं के समक्ष प्रकट होते । सभी को देखने के लिए प्रत्यक्ष उदय होते हो ।२०।
येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनां अनु । त्वं वरु॥ पश्यसि।२१
वि द्यामेपि रजस्पृथ्वहर्भिमानो अक्तुभिःपश्यन जमननि सूर्य।२२
सप्तत्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य। शोचिष्वेर्श विचक्षणम्।२३
अयुक्त सप्त शुन्ध्युवसूरो रथन्यनप्त्यः।ताभिर्यातिस्वयुक्तिभिः।२४
रोहितो दिवमारुहत् तपसा तपस्वी ।
सयोनिमैति स उ जायते पुनः स देवानामधिपतिर्दभूव ।।२५
यो विश्वचर्षणिरुत विश्वतमुखोयोविश्वतस्पाणिरुतविश्चतस्पृथः
सं बाहुभ्यां भरंति सं पतत्रेर्द्यावापृथिवी जनयन् देवः एकः ।।२६
एकपाद् द्विपदा भयो विचक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।
द्विपाद्व षटपदो भूयो वि चक्रमे एक्रपदस्तन्व समासते ।।२७
अतन्द्रो यास्यन् हरितो यदास्थाद् द्वै रूपे कृणुते रोचमानः ।
कैतमानुद्यतसहमानो रजांसि विश्वा आदित्यप्रवतो बिभासि।२८
वण्महां असिसूर्य बडादित्य महां असि ।
महाग्ने महतो महिमा त्वमादित्य महां असि ।।२९
रोचसे दिवि रोचसे अन्तरिक्षे पतङ्ग पृथिव्यां रोचस रोचसे अप्सवन्तः ।
उभा समुद्रौरुच्या व्यापिथ देवो देवाहि महिषः स्वर्जित् ।।३०

हे पाप नाशक सूर्य ! तुम पूर्वोत्पन्न पुण्य कर्म वाले पुरुषों के मार्ग में जाने वाले पुण्यकर्म वालोंको अपनी कृपा पूर्णदृष्टिसे देखते हो ।२१। हे सूर्य! सब जीवोंपर करनेके लिए तुम उन्हें देखते हुए और रात्रि दिनको बनातेहुए आकाश पृथिवी और अन्तरिक्षमें अनेक प्रकार घूमते हो ।२२। हे सूर्य ! तेजस्वी राशियों वाले रथमें सात हर्यश्व तुम्हें वहन करते हैं ।२३। सूक्त ने पवित्रताप्रद सात अश्वों को अपने रथ में युक्त किया है वह उनके द्वारा अपनी युक्तियों से गमन करते हैं ।२४। सूर्य अपने तेज से स्वर्गमें चढ़ते हैं, वे योनि को प्राप्त होते और प्रकट होते

हैं। वही देवताओं के स्वामी हैं।२५। अनेक मुख वाले सबके देखने वाले सब ओर भुजा वाले, असाधारण देवता सूर्य अपनी गिरती हुई किरणों के द्वारा आकाश, पृथिवी को प्रकट करते हुए अपनी भुजाओंमें सबका भरणपोषण करते हैं।२६। एकपाद् द्विपादों में प्राप्त होता है फिर द्विपाद् षट्पादों में विक्रमण करता है। वह एकपाद् ब्रह्मको इष्ट मानते हैं।३७। अज्ञान-रहित सूर्य चलते हुए जब विश्राम लेते हैं, तब अपने दो रूप बनाते हैं। हे सूर्य तुम उदय होकर सब लोकों को वश करते हुए प्रकाशित होते हो।२८। हे सूर्य ! तुम महान् हो, तुम्हारी महिमा भी महान् है, यह सब सत्य है।२९। हे सूर्य ! तुम स्वर्ग में, अन्तरिक्ष पृथिवी में और जल में भी दमकते हो। तुम अपने तेज से दोनों समुद्रों को व्याप्त करते हो। तुम स्वर्ग पर विजय प्राप्त करने वाले पूज्य देवता हो।३०।

अर्वाङ पपस्तात प्रयतो व्यध्व आशुर्विपश्चित् पसयन पतङ्गः।
विष्णुर्विचित्तः शवरा धितष्ठन् प्र केतुना सहते दिव्यमेजत्॥३१
चित्रश्चिकित्वान् महिषः सुपर्ण आरोचयन् पोयसी अन्तरिक्षम्।
अहोरात्रे परि सूर्य वसाने प्रास्य विश्वा तिरतो वीर्याणि ॥३२
तिग्मो विभ्राजन् तन्वं शिशानोऽङ्गमास प्रवतो रराणाः।
ज्योतिष्मान् पक्षी महिषो वयोधा विश्वा आ धाते प्रदिशः कल्पमान ॥३३
चित्रं देवानां केतु रनीक ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य उद्यन्।
दिवाकरोऽति द्यु म्नैस्तमांसि विश्वातारीद दुरितानि शुक्रः।३४
चित्रं देवानां मुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणास्याग्नेः।
आप्राद द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्माजगतस्तस्थुषश्च॥३५
उच्चा पतन्तमरुणं सुपणं मध्ये दिवस्तरशिं भ्राजमानम्।
पश्याप त्वा सवितारं यमाहुरजस्रं ज्योतिर्यदविन्ददत्रिः॥३६
दिवस्पृष्ठे धावमानं सुपर्णमदित्याःपुत्रं नाक्राम उपयामि भीतः।
स नः सूर्य प्रतिर दीर्घमायुर्मा रिषाम सुमता ते स्याम॥३७

सहस्राह्ल्य वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्सर्वानुरस्युपदद्य सम्पश्यन् याति भुवनानि विश्वाः ।३८
रोहितः कालो अभवद रोहितोऽग्रे प्रजापति ।
रोहितो यज्ञानां मुखं रोहितः स्वराभरत ।।३९
रोहितो लोको अभवद् रोहितोऽत्वतपद् दिवम् ।
रोहितो रश्मिनिर्भूमि समुद्रमनु सं चरत ।।४०

सूर्य दक्षिण की ओर जाते हुए शीघ्र ही मार्ग को पार करते हैं। यह व्यापक देव अत्यन्त ज्ञानी हैं। यह अपनी शक्ति से अधिष्ठित होते हुए अपने ज्ञान के बल से ही सचेष्ट विश्व को वश में करते हैं।३१। महिमामय सूर्य ज्ञानवान और पूज्य हैं, वे शोभनमार्ग से गमन करते हैं। आकाशपृथिवी अन्तरिक्षको दमकातेहुए दिन और रात्रिका आश्रय देते हैं। इन्हीं के बल से सब पार होते हैं।३२। यह सूर्य तिरछे दमकते हैं,यह शरीरको तपाते हैं,यह सुन्दर गमनवाले, ज्योतिर्मान महिमावान और अन्न को पुष्ट करने वाले हैं। यह दिशाओं को प्रकट करते दिशाओंको प्रकाशित करते हैं। यह सब अन्धकारोंको मिटाते हुए अपने प्रकाश से ही दिन प्रकट करते हैं। यह पापों को हटाने वाले हैं।३४। रश्मियों का प्रशंसनीय समूह मित्रावरुण का चक्षु रूप है। सूर्य सब प्राणियों की आतमा रूप है। यह सभी भूतों में प्रविष्ट सूर्य आकाश अन्तरिक्ष और पृथिवी को व्याप्त किये हुए हैं।३५। ऊर्ध्वगामी, अरुण वर्ण वाले, शोभागमन वाले सूर्य के हम आकाश के मध्य गमन करते हुए सदा दर्शन करे। हे सूर्य ! तुम ज्योतिर्मान को दुःखोंसे रहित अत्रि प्राप्त करते हैं।३६। वे भयभीत होकर आकाश में द्रुत गमनवाले सूर्य की स्तुति करता हुआ उनके आश्रय को प्राप्त होता हूँ। हे सूर्य ! हम तुम्हारी सुन्दर कृपा बुद्धि में रहें, हम हिंसा को प्राप्त न हों हमें दीर्घजीवन प्रदान करो।३७। इन पापों के नाशक, सुन्दर गमन वाले स्वर्गगामी सूर्य को दोनों अयन सहस्रों दिनों तक भी नियम में रहते

हैं। यह सूर्य सब देवताओं को अपने में लीन कर, भूतपात्र को देखते हुए चलते हैं।३८। रोहित काल थे, वही प्रजापति थे, वही यज्ञों मुख रूपहैं और वही रोहित अब स्वर्ग का पोषण करते हैं।३९। वे स्वर्गमें तपने वाले रोहित अपनी रश्मियों के द्वारा समुद्र में और पृथिवी में विचरते हैं, वे दर्शन के योग्य हैं।४०।

सर्वा दिशा समचरद् रोहितोऽधिपतिर्दिव: ।
दिवं समुद्रमाद् भूमिं सर्वभूतं वि रक्षति ॥४१
आरोहञ्छक्रो बृहतीरतन्द्रो द्वे रूपे कृणुते रोचमान: ।
चित्रिश्चकित्वान् महिषो वीत माया यावतो लोकानभि यद् ।
विभाति ॥४२
अभ्यन्यदेति पर्यन्यदस्यतेऽहोरात्राभ्या महिष: कल्पमान ।
सूर्यं वयं रजसि क्षियन्तं गातुविद हवामहे नाधामाना: ॥४३
पृथिवीप्रो महिषो नाधमानस्य गातुरदब्धचक्ष:परि विश्व बभूव।
विश्वं सपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इद श्रृणोतु यदहं ब्रवीमि ॥४४
पयस्य महिमा पृथिवी समुद्र ज्योतिषा बिभ्राजन परि
द्याशन्तरिक्षम् ।
सर्वं सपश्यन्त्सविदत्रो यजत्र इद श्रृणोतु ब्रवीमि ॥४५
अबोध्यग्नि समिधा जनानाँ प्रति धेनुमिवायतीमुषासम ।
यह्वाइव प्र वयामुज्जिहाना: प्र भानव सिस्रते नाकमच्छ ॥४६

वे स्वर्ग के अधिपति हैं वे दिशाओं में घूमते और स्वर्ग से समुद्रमें जाते हैं। यह सब जीवों की और पृथिवी की रक्षा करते हैं।४१। यह सूर्य और अश्वोंपर अपने दो रूप बनाते हैं। यह पुरुष महत्ववान और रोचमान है। यह सुनकर गमन वाले सभी लोकों को प्रकाशित करने वाले हैं।१२। दिन रात्रियों के द्वारा सूर्य का एक रूप सामने आता और दूसरा गमनशील है। स्वर्ग मार्ग में चलने वाले अन्तरिक्ष-वासी सूर्य का हम आह्वान करते हैं।४३। जिनकी दृष्टि कभी हीन होती, पृथिवी के पालनकर्त्ता और महिमावान् सूर्य संसार के सब ओर

व्याप्त हैं। वे जगत को देखते हैं, अत्यन्त ज्ञानी और पूज्य हैं। वे मेरे वचन को सुनें ।४४। पृथिवी, समुद्र और अन्तरिक्ष में अपनी ज्योति द्वारा व्याप्त सूर्य सबके कर्मों को देखने वाले हैं। उनकी महिमा सब ओर फैली हुई है। वे सुन्दर विद्या वाले और पूज्य हैं वे मेरे वचनों को सुनें ।४५। गौ के समान आने वाली उषाके समय यह अग्नि मनुष्य की समिधाओं द्वारा जाने जाते हैं। इनकी उर्ध्वगामी रश्मियों से जानी जाती है। मैं उन्हीं सूर्य का आश्रय ग्रहण करता हूँ ।४६।

सूक्त ३ (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि–ब्रह्मा। देवता-अध्यात्मम्, रोहित, आदित्यः। छन्द– कृति, अष्टित्रिष्टुप्)

य दमे द्यावा पृथिवी जजान यो द्रपिं कृत्वा भुवनानि वस्ते।
यस्मिन् क्षियन्ति प्रदिशः षडुर्वोर्याः पतङ्गो अन विचाकशीति।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एव विद्वास ब्राह्मण जिनाति।
उदवेपय रोहित प्र क्षिणीसि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१
यस्माद् वाता ऋतु था पवन्ते यस्मात् समुद्रा अधि विक्षरन्ति।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्रह्मणं जिनाति।
उदवेरय रौहत प्रक्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२
यो मारयति प्राणयति यस्मात् प्राणन्ति भुवनानि विश्वा।
तस्य देवस्य क्रद्धस्यैतदागो य एव विद्वांस ब्रह्मणं जिनाति।
उववेपय रोहित प्रक्षिणीहि ब्रह्मञ्जस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥३
यः प्राणेन द्यावा पृथिवी तपयत्यपानन समुद्रस्य जठरं यःपिपर्ति
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदाघो य एवं विद्वांस ब्राह्मणै जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्रक्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥४
यस्मिन् विराट् परमेष्ठी प्रजापतिरग्निर्वैश्वानरः सह पङ्क्त्या श्रितः।
यः परस्ष प्राणं परमस्य तेज अदादे।

तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वा ब्राह्मणं जिनाति ।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ।५

यस्मित् पड़ुर्वीः पञ्च दिशा अधि श्रिताश्चतस्त्र आपो यज्ञस्य त्रयोऽक्षराः ।
यो अन्तरा रोदसी क्रुद्धश्चक्षुषैक्षत ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वासं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ।६

यो अन्नादो अन्नपतिर्वभूब ब्रह्मणस्पतिरुत यः ।
भूतो भविष्यद् भुवनस्य यस्पतिः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्येतदागो य एवं विद्वाँस ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ।७

अपोरात्रै विर्मितं त्रिंशदङ्गं त्रयोदश मासं यो निर्मिमाते ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वास ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ।८

कृष्ण निय न हरयः सुपर्णा अपां वसाना दिवमुत् पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्मदनाद्दतस्य ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांस ब्राह्मण जिनानि ।
उद् वेपय रोहत प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ।९
यत ते चन्द्रं कश्यप रोचनावद यत् सहित पुष्कल चित्रभानु ।
यस्मिन्त्सूर्या आर्पिताः सप्त साकम् ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एव विद्धाँसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेषय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ।१०

इस आकाश पृथिवी को जिन्होंने प्रकट किया जो सब लोकों को आच्छादित करते हैं, जिसमें छः ऊर्वियाँ और दिशायें रहती हैं जिन दिशाओं को वे ही प्रकाशित करते हैं, उन क्रोधमय सूर्य का जो अपमान

करना है या विद्वान् ब्राह्मण की हिंसा करता है, उस ब्राह्मण को हे रोहितदेव ! तुम कम्पायमान करो, उसे क्षीण करते हुये बन्धन में बांध लो ।१। जिस देवता के प्रभाव से ऋतु अनुसार वायु चलती और समुद्र प्रभावित होता है ऐसे क्रोध में भरे हुए सूर्य का जो अपमान करता या विद्वान ब्राह्मण को हिंसित करता है, उस ब्रह्मस्य को ही रोहितदेव ! कम्पायमान करते हुए क्षीण करो और बन्धनमें बांध लो ।२। जो मनुष्य में प्राण भरते हैं, जो मनुष्य की हिंसा करते हैं उनके द्वारा सब प्राणी श्वास, प्रश्वास लेते हैं, उन क्रोध में भरे देवताका जो अपराध करता है, जो विद्वान् ब्राह्मण को हिंसित करता है; उस ब्राह्मस्य को रोहितदेव ! कम्पायमान करो और क्षीण करते हुए बंधन में डालो ।३। जो देवता प्राण आकाश पृथिवी को तृप्त करता और अपमान से समुद्र के पेट को पालता है, उन क्रोध में भरे देवता के अपराधों और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मस्य को हे रोहितदेव ! कम्पायमान करो और क्षीण करते हुए बन्धन में बांध लो ।४। जिसमें विराट परमेष्टी वैश्वानर-पंक्ति, प्रजा और अग्नि सहित निवास करते हैं, जिसने उत्कृष्ट प्राण और महान तेजको धारण किया है, उन क्रोधवन्त रोहितदेवके अपराधी और विद्वान् ब्राह्मणद्व हिंसक ब्राह्मज्यको हे रोहितदेव ! कम्पित करते हुए क्षीण करो और अपने पाश में बांध लो।५। पांच दिशायें, छः रश्मियां, चार जल, और यज्ञके तीन अक्षर जिसमें आश्रित हैं जो आकाश पृथिवी के मध्य अपने को धत नेत्र से देखता है, उन क्रोधवन्त देवता के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को ही रोहितदेव ! कम्पित करते हुए क्षीण करो और अपने पास में बांध लो ।६। जो ब्रह्मणस्पति है, जो अन्न के पालक और भक्षक भी हैं, जो भूत भविष्यत और लोक के स्वामी हैं, उन क्रोधयुक्त देव के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव ! कम्पायमान करते हुए क्षीण करो और पाशों से बांध लो ।७। जिन्होंने तीस दिन-रात्रि का समूह बनाकर तेरहवें

अधिक मास को बनावा, ऐसे क्रोधयुक्त देव के अपराधी और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव ! कम्पित करो और उसे क्षीण करते हुए अपने पाशों में बाँध लो।८। सूर्य की सुन्दर रश्मियाँ जल को सोखकर स्वर्ग में जाती और दक्षिणायन में जल स्थान से लौटती है। उन क्रोधवन्त देव के अपराधी और विद्वान ब्राह्मण में हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव, कम्पित करो और क्षीण करते हुए अपने पाशों में बाँध लो।९। हे कश्यप, तुम्हारे रोचमान चित्रभानु में सात सूर्य साथ रहते हैं। ऐसे क्रोधवन्त देवके अपराधी और विद्वान ब्राह्मणके हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव, कम्पायमान करो और उसे क्षीण करते हुए अपने पाशों में बाँध लो।१०।

बृहदेनमनु वस्ते पुरस्ताद् रथन्तरं प्रति गृह्णाति पश्चात्
थ्योतिवस ने सदमप्रमादम् ।
तस्य देवस्य कुद्धस्यैतदागो च एवं विद्वांस जिनाति ।
उद वेषय रोहित प्रक्षिणोहि ब्रह्मज्यस्य प्रतिमुञ्च पाशान्।११
बृहदन्यतः पक्ष आसीद् रथन्तरमन्यतः सबले सध्रीची।
यद् रोहितमजनयन्त देवाः।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्येतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मण जिनाति।
उद् वेषय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुवच पाशान्।१२
स वरुणः सायमग्निर्भवति स मित्रो भवनि प्रातरुद्यन्।
स सविता भूत्वान्तरिक्षेण याति स इन्द्रो भूत्वा तपति मध्यतो
दिवम्।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यंतदागौं य एव विद्वांसे ब्राह्मण जिनति।
उद् वेषय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति पाशान्।१३
सहस्राहण्यं वियतावस्य पक्षो तरेर्हसस्य पततः स्वर्गम्।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य सम्पश्यन् याति भुवनानि विश्वा।
त य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांस ब्राह्मण जिनाति।
उद् वेषय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुंच पाशान्।१४

अयं स देवो अप्स्वन्तः सहस्रमूलः पुरुशाको अत्रिः।
य इदं विश्वं भुवनं जनान।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुंच पाशान् ।१५
शुक्रं वहन्ति हरयो रघुष्यदो देवं दिवि वर्चसा भ्राजमानम्।
येन्योर्ध्वा दिवं तम्बस्तपन्त्यर्वाङ् सुवर्णैः पदरवि भाति।
तस्य देव य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मण जिनाति
उद् वेपय रोहित प्रक्षिणोहि ब्रह्मज्यस्य ति मुञ्च पाशान् ।१६
येनादित्यान् हरितः सम्वहन्ति येन यज्ञेन बहवो यन्ति प्रजानन्त
यदेकं ज्योतिर्बहुधा विभांति।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो व एवं विद्वांस ब्राह्मण जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्यं प्रति मुञ्च पाशान् ।१७
सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहित सप्तनामा।
त्रिनाभि चक्रमजरमनवं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्युः
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैसदागो य एवं विद्वांसं व्राह्मण जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि व्रह्मज्य प्रति मुञ्च पाशान् ।१८
अष्टधा युक्तो वहति वह्निरुग्र पिता देवानां जनिता मतीनाम्।
ऋतस्य तन्तुं यनसा मिभानः सर्वा दिशः पवते मातरिश्वा।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांस ब्राह्मण जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्रक्षिणाहि ब्राह्मज्वस्य प्रति मुञ्च पाशान ।१९
सन्यञ्चं तन्तु प्रतिशोऽनु सर्वा अन्तगयित्र्याममृतस्य गर्भे।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांस ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुंच पाशान् ।२०

जिसके अनुकूल रहकर वृहत आच्छाद करता और रथन्तर उसे धारण करता है,यह दोनों ही ज्योतियों से सदैव ढके रहते है। ऐसे क्रोधवन्त देब के अपराधी और विद्वान ब्राह्मन के हिंसक व्रह्मज्यको हे रोहित देव! तुम कम्पायमान करो और उसे क्षीण करते हुए अपने पाशोंमें बांध

लो ।११। देवताओं द्वारा रोहित को उत्पन्न करने के समय बृहत् एक ओर रथन्तर और दूसरी ओर से पक्ष हुआ। यह दोनों ही बलवान और सध्रीची हैं। इन क्रोधवन्त देव के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव ! कम्पित करो और क्षीण करते हुए अपने बन्धन में बाँध लो ।१२। वह वरुण सायं समय अग्नि होता और प्रातः समय उदित होता मित्र हो जाता है । वह सविता रूप से अन्तरिक्ष में और इन्द्र रूपसे स्वर्ग में स्थित रहता है। ऐसे क्रोधमय देव का जो अपराध करता है और विज्ञ ब्राह्मण की हिंसा करता है उसे हे रोहित ! तुम कँपाते हुए क्षीर करके पाशों मे बाँध लो ।१३। इस पाप-नाशक स्वर्गगामी सूर्य के दोनों अयन सहस्रों दिन तक नियम में रहते हैं। यह सब देवताओं को स्वयं मे लीन करके सब जीवों को देखते हुए चलते हैं। ऐसे क्रोधवन्त देव के अपराधी और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक को हे रोहित ! तुम कँपाते हुये क्षीण करके अपने पाशोंमें बाँधलो ।१४। सब लोकों को जिन्होंने प्रकाशित किया, वे देव जल में वास करते हैं। वही सहस्रों के मूल रूप और त्रिताप-रहित अत्रि है। इन क्रोधित देव के अपराधी और विज्ञा ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव! तुम कम्पित करो और क्षीण करके पाशों में बाँध लो ।१५। स्वर्ग में अपने तेज से दमकते हुये सूर्य को उनकी द्रुतगामिनी रश्मियाँ निर्मल रस प्राप्त कराती हैं, उनके ऊर्ध्व देह-भाग रूप रश्मियाँ स्वर्ग को तपाती हैं और जो स्वर्णिम रश्मियों द्वारा प्रकाश फैलाते हैं। उन क्रोधमय देवके अपराधी और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव ! तुम कम्पित करो और क्षीण करते हुए पाशों में बाँध लो ।१६। जिनके प्रभाव से सूर्य के अश्व सूर्य का वहन करते हैं और जिनके प्रभाव से विज्ञ पुरुष यज्ञादि कर्मों को प्राप्त होते हैं जो एक ज्योति होते हुए भी अनेक रूप से प्रकाशमान हैं। ऐसे क्रोधवन्त देवके अपराधी और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को रोहितदेव ! कँपाते हुए क्षीण करो और

पाशों में बांध लो ।१७। सरकने वाली रश्मियाँ अन्य ज्योतिषों को निस्तेज करके रथ चक्र वाले सूर्य के रथ में युक्त होती है । यह सूर्य सप्तर्षियों द्वारा नमस्कार प्राप्त करते हुए घूमते हैं । यह ग्रीष्म, वर्षा, हेमन्त इन तीन ऋतु वाले वर्ष को करते हैं । सब लोक इसी काल के आश्रित हैं ऐसे इन क्रोधित देवता के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव, कम्पित करते हुए क्षीण करो और उसे पाशों में बांध लो ।१८। आठ प्रकार से बहने वाले वह्ल रूप हैं, वे देवताओं के पालनकर्ता और बुद्धियों को उत्पन्न करते हैं और जल का परिणाम करते हुये वायु सब दिशाओं को शुद्ध करते हैं । ऐसे क्रोधित उन देवता के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव कम्पित करते हुए क्षीण करो और पाशों से बांधों ।१९। गायत्री में अमृत के गर्भ में और सब दिशाओं में पूजनीय जल तन्तु को वायु पवित्र करते हैं । उन क्रोधवन्त देवके अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव, तुम कम्पित करते हुए क्षीण करो और पाशों में बांध लो ।२०।

निस्रु चस्तिस्रो व्युषो ह् तिस्रस्त्रीणि रजांसि दिवो अंग तिस्रः ।
विद्मा ते अग्ने त्रेधा जानत्रत्रेधा देवानां जनि मानि विद्म ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्दांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणे हि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुंच पाशान् २१
वि य और्णोत् पृथिवीं जायमान आ समुद्रमदधान्तरिक्षे ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एदं विव्दास ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति नुंच पाशान् ।२२
त्वमग्ने ऋतुभिः केतुभिर्हितोर्कः समव्दि ज्दरोचथा दिवि ।
किमगृयार्चन्परुतः पृश्निमातरो यद् रोहितमजनयंत देवाः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धज्षैतदागो य एवं विव्दाँसं ब्राह्मण जिनाति ।
इद् वेपय रोहित प्रक्षिणीहि ब्रह्मज्यऽय प्रति मुंच पाशान् ।२३
य आत्मदा बलदा यत्य विश्व उपासते प्रशिष यस्य देवाः ।

योस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदाग य एवं विद्वांस ब्रह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाणान् ।२४
एकंपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।
चतुष्पाच्चक्रे द्विपदामभिस्वरे सम्पश्यन् पङ्‌क्ति मुपतिष्ठमानः ।
तन्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एव विद्वांस ब्राह्मण जिनाति ।
उद वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ।२५
कृष्णायाः पुत्रो अर्जुनो रात्र्या वत्सोऽजायत ।
स ह द्यामाध रोहित रुहो रुरोह रोहिताः ।२६

हे अग्ने ! तुम्हारी तीनों उत्पत्तियों को हम जानते हैं । तुम्हारी तीन गतियाँ भस्म करने वाली हैं । हम तीनों लोक और स्वर्ग के तीन भेदों के भी ज्ञाता हैं । ऐसे उन क्रोधवन्त देवता के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मणके हिंसक के ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव! तुम कम्पित करते हुए क्षीण करो और उसे पाशों में बाँध लो ।२१। जो उत्पन्न होकर भूमि को अच्छादित करता और जल को अन्तरिक्ष में स्थित करता है, ऐसे उन क्रोधवन्त देव के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव ! तुम कम्पित करो और क्षीण करते हुए पाशों में बांध लो ।२२। हे अग्ने ! तुम ज्ञान यज्ञों में प्रदीप्त किये जाते हो और स्वर्ग में अर्चन साधन रूप होते हो । क्या अग्निमातृक मरुदगणने तुम्हारी पूजा की थी जो देवता रोहित से मिले थे ? उन क्रोधवन्त देव के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव ! तुम कम्पायमान करते क्षीण करो पाशों में बांध लो ।२३। बलप्रदाता, आत्मबल प्रेरक, जिनसे बलकी देवता आराधना करते हैं और जो प्राणिमात्र के ईश्वर हैं ऐसे क्रोधवन्त देवके अपराधी और विद्वान् ब्राह्मणके हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव ! तुम कम्पित करो और क्षीण करते हुए अपने पाशों में बांधों ।२४। एक पाद द्विपदों में, द्विपादों त्रिपादों में और फिर

द्विपाद् षट्पादों में विक्रमण करता है वे एक पादात्मक ब्रह्म को पूजते हैं, ऐसे उन क्रोधवन्त देव के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव ! तुम कम्पित करो और उसे क्षीण करते हुए अपने दृढ़ पाशों में बाँध लो ।२५। काली रात्रि का पुत्र अर्जुन सूर्य हुआ, वह आकाश में चढ़ता है और वही रोहित रोहणशील पदार्थों पर चढ़ता है ।१६।

सूक्त-४ [१] [चौथा अनुवाक]

(ऋषि-ब्रह्मा । देवता—अध्यात्मम् । छन्द-अनुष्टुप्, गायत्री, उष्णिक्)

स एति सविता स्वर्दिवस्पृष्ठेऽवचाकशत् ।१
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ।२
स धाता स विधर्ता स वायुर्नभ उच्छ्रितम ।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ।३
सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः महादेवः ।
रश्मिमिर्नभ अभृत महेन्द्र एत्यावृतः ।४
सो अग्नि स उ सूर्यः स उ एव महायमः ।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ।५
तं वत्सा उप तिष्ठन्त्येकशीर्षाणो युता दश ।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ।६
पश्चात् प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदति वि भासति ।
रश्मिभिर्नभ अ भृत महेन्द्र एत्यावृतः ।७
तस्यैव मारुतो गणः स एति शिक्याकृतः ।८
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एतावृतः ।९
तस्येमे नव कोशा बिष्टम्भा नवधा हिताः ।१०
स प्रजाभ्यो वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ।११
तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ।१२
एते अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति ।१३

यही सूर्य आकाश की पीठ पर दमकते हुपे आगमन करते हैं ।१। इन्होंने अपनी रश्मियों से आकाश को ढक लिया और वे रश्मियों से मुक्त हुये आ रहे हैं ।२। वही धाता,विधाता, वायु और उच्छ्रित आकाशहै।३। वही अर्यमा, वही वरुण, वही रुद्र और वही महादेव हैं।४। वही अग्नि, वही सूर्य और वही महान, यम हैं ।५। एक शिर वाले दश वत्स उन्हीं की आराधना करते हैं।६। वह उदय होते ही दमकने लगते हैं और पीछे से उनकी पूजनीय रश्मियाँ उनके चारों ओर छा जाती है ।७। छींके के आकार वाला उनका ही एक गण आरुत आ रहा है ।७। इन्होंने अपनी रश्मियों से आकाश को ढक लिया है, यह महान् इन्द्र के द्वारा किरणोंसे आवृत हुये चले आ रहे हैं ।६। उनके विष्टभ नौ कोश नौ प्रकार से ही अवस्थित हैं ।१०। यह स्थावर जङ्गम सब प्रजाओं के द्दष्टा और सभीके साक्षी हैं ।११। यह सब उसे ही प्राप्त होता है, वह एक-वृत केवल एक है ।१२। सब देवता इन एक को ही वरण करते हैं ।१३।

सूक्त–४ [२]

(ऋषि·–ब्रह्मा । देवता–अध्यात्मम् । छन्द—त्रिष्टुप्, पक्ति, अनुष्टुप्, गायत्री, उष्णिक्)

कीर्तिश्च यशाश्चान्भश्च नभश्ज ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च ।१४

य एतं देवमेकवृतं वेद ।१५

न द्वितीया न तृतोयश्तुर्थो न ष्युच्यते । य एतं देवमेकवृतं वेद ।१६

न पञ्चभो न षष्ठ सप्तमो नाप्युच्यते । य एतं देवमेकवृतं वेद ।१७

नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते । एतं देवमेकवृत वेद ।१८

स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ।

य एतं देवमेकवृतं वेद ।१९
तमिद निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ।
य एतं देवमेकवृत वेद ।२०
सर्वे अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति । य एतं देवमेकवृतं वेद ।२१

कीर्ति, यश, आकाश, जल, ब्रह्मवर्च,अन्न और अन्नकी पचाने की क्रिया उसे प्राप्त होती है जो इन एकवृतका ज्ञाताहै ।१४-१५। इन एक वृत का ज्ञाता द्वितीय, तृतीय या चतुर्थ नहीं कहाता ।१६। इन एक वृत का ज्ञाता पञ्चम, षष्ठ या सप्तम नहीं कहलाता ।१७। जो इन एक वृत का ज्ञाता है वह अष्टम, नवम नहीं कहलाता ।१८। इन एक वृत का ज्ञाता स्थावर जङ्गम सभी को देखने वाला होता है ।१९। वह असाधारण एकवृत ही है, यह सब उसे ही प्राप्त होते हैं ।२०। इनमें सभी देवता एकवृत कहाते हैं ।२१।

सूक्त–४ [३]

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—अध्यात्मम् । छन्द—त्रिष्टुप्, गायत्री, पंक्ति, अनुष्टुप्)

ब्रह्म च तपश्च कीर्तिश्च यशा चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं चान्नचान्वद्यं च त एतं देवमेकवृतं ।२२
भूत च भव्य च श्रद्धा च रुचिश्च स्वर्गश्च स्वधा च ।२३
य एतं देवमेकहृतं वेद ।२४
स एव मृत्युः सोमृतं सोम्व स रक्षः ।२५
स रुदो बसुवनिवसुदेवे नमोवाके वषटकारोऽनु संहितः ।२६
तस्येमे सर्वे यातव उप प्रशिषमासते ।२७
तस्यामू सुर्वा नक्षत्रा वशे चन्द्रमसा सह ।२८
स वा अह्नोऽजायत तस्मादहरजायत ।२९

ब्रह्म, तप, कीर्ति, यश, जल, आकाश, ब्रह्मवर्च, अन्न और अन्नपाचन की शक्ति ।२२। भूत, भविष्य, श्रद्धा, रुचि, स्वर्ग और स्वधा

।२३। एकवृत् के ज्ञाता को उक्त सब प्राप्त होता है ।२४। वही मृत्यु, अमृत, अम्व और वही राक्षस हैं ।२५। वही रुद्र, वसुओंमें वसुवनि और नमस्कार युक्त वाणी में वही वषकार है ।२६। सभी यातनाओं को देने वाले भी उन्हीं की अनुशा में चलते हैं ।२७। चन्द्रमा सहित यह सब नक्षत्र भी उसी के वशीभूत रहते हैं ।२८।

सूक्त–४ [४]

(ऋषि-ब्रह्मा । देवता-अध्यातमम् । छन्द-गायत्री, अनुष्टुप्, उष्णिक् बृहती)

स वै रात्र्या अजायत तस्माद् रात्रिरजायता ।३०
स वा अन्तरिक्षादजायत तस्मादन्तरिक्षमजायत ।३१
स वै वायोरजायत तस्माद् वायुरजायत ।३२
स वै दिवोऽजायत तस्माद् द्यौरध्यजायत ।३३
स वै दिग्भ्योऽजायत तस्माद् दिशोऽजायन्त ।३४
स वै भमेरजायत तस्माद् भमिरजायत ।३५
स वा अग्नेरजायत तस्मादग्निरजायत ।३६
स वा अद्भयोऽजायत तस्मादापोऽज यत ।३७
स वा ऋग्भ्योऽजायत तस्मदृचोऽजायन्त ।३८
स वै यज्ञादजायत तस्माद् यज्ञोऽजायतः ।३९
स यज्ञस्तस्य यज्ञः स यज्ञस्य शिरस्कृतम् ।४०
स स्तनयति स वि द्योतते स उ अश्मानमस्यति ।४१
पापाय वा भद्राय वा पुरुषायासराय वा ।४२
यद्वा कृणोष्योषधीयद्वा वर्षसि भद्रया यद्वा जन्यमवीवृधः ।४३
तावांस्ते मघवन् महिमोपो ते तन्वः शतम् ।४४
उपो ते वद्धे वद्धानि यदि वासि न्यर्बुदम् ।४५

उनसे दिन प्रकट हुआ और वह दिन से प्रकट हुए ।३०। रात्रि उन्हीं से प्रकट हुई और वह रात्रि से उत्पन्न हुए ।३१। वायु उनसे प्रकट हुआ और वे वायु से प्रकट हुए ।३२। आकाश उनसे प्रकट हुआ

और मैं आकाश से प्रकट हुए ।३३। दिशायें उनसे प्रकट हुए और वह दिशाओं से प्रकट हुए ।३४। पृथिवी उनसे प्रकट हुई और वे पृथिवी से प्रकट हुए ।३५। अग्नि उनसे प्रकट हुए और वे अग्नि से प्रकट हुए ।३६। जल उनसे प्रकट हुए, वे जल से प्रकट हुए ।३७। ऋचायें उनसे उत्पन्न हुई वे ऋचाओं से उत्पन्न हुए ।३८। यज्ञ उनसे प्रकट हुआ, वे यज्ञ से हुये ।३६। यज्ञ उनका है वे यज्ञ एवं यज्ञके शीर्ष रुप हैं ।४०। वही दमकते और कड़कते हैं वही उपल गिराते हैं ।४१। तुम पापियों को कल्याणकारी पुरुष को असुर को और औषधियों को उत्पन्न करते हो, कल्याणमयी वृष्टि रूप में बरसते और उत्पन्न हुओं को बढ़ाते हो ।४२-४३। तुम मघवन हो, तुम सैंकड़ों देहों से युक्त हो और महिमा द्वारा महान हो ।४४ तुम सैकड़ों बंधे हुओं के लांघने वाले तथा अन्त रहित हो ।४५।

सूक्त–४ [५]

(ऋषि–ब्रह्म: । देवता – अध्यातमम । छन्द–गायत्री, उष्णिक, बृहती, अनुष्टुप्)

मूयानिन्द्रो नमुराद भूयानिन्द्रासि मृत्युभ्य: ।४६
भूयानण्य: शच्या पतिस्त्वमिन्द्रासि बिभू: प्रभूरिति-
त्वोपास्महेवयम ।४७
नमस्ते अस्यु पश्यत पश्य मा पश्यत ।४८
अन्नाद्ये न यशसा तेजसा ब्राह्मणवचसेन ।६
अम्मो अमो महः स इति त्वोपास्महे वयम् ।
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य सा पश्यत ।
अन्नाद्ये न यशसा तेसजा ब्राह्मणवर्चसेन ।५०
अम्भो अरुणं रजतं रज सह इति त्वोपास्महे वयम् ।
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ।
अन्नाद्ये न यद्यसा तेजसा ब्राह्मणर्चसेन ।५१

वे इन्द्र असुर से श्रेष्ठ हैं। हे इन्द्र ! तुम मृत्यु के कारणों से भी उत्कृष्ट हो ।४६। हे इन्द्र ! तुम दान प्रतिबन्धिका अक्ति से भी श्रेष्ठ हो, तुम वैभववन्त और स्वामी हो। हम तुम्हारी आराधना करते हैं ।४७। हे इन्द्र ! मुझे यश तेज और ब्रह्मचर्य से देखो। तुमको नमस्कार है ।४८-४९। जल पौरुष महत्ता और सम्पन्नता के रूप से हम तुम्हारी आराधना करते हैं ।५०। जल, अरुण, रजत, रज और सह रूप में हम तुम्हारी आराधना करते हैं। तुम हमको अन्नवाम होकर देवो हम तुम्हें नमस्कार करते हैं ।५१।

सूक्त–४ [६]

(ऋषि-ब्रह्मा। देवता-अध्यातमम्। छन्द-अनुष्टुप्, गायत्री, उष्णिक्, बृहती)

उरुः पृथुः सुभूर्भुव इति त्वोपास्महे वयम् ।
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ।
अग्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ।५२
प्रथो वरो व्यचो जोक इति त्वोपास्महे वयम्
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ।
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ।५३
भवद्वसुरिद्वसु संवद्वसुरायद्वसुरिति त्वोपास्महे वयम् ।५४
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ।५५
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ।५६

अरु, वृथु, सुभूः भव इस रूप में हम तुम्हारी आराधना करते हैं ।५३। प्रथ, वर व्यच, लोक इस रूप में हम तुम्हारी आराधना करते हैं ।५३। भवद्वसु, इदद्वसु संयदवसु और आयद्वसु के रूप में हम तुम्हारी आराधना करते हैं ।५४। हे इन्द्र ! मुझे अन्न, यश, तेज और ब्रह्मवर्च से देखो तुम्हारे लिए मैं नमस्कार करता हूँ ।५५-५६।

* त्रयोदश काण्ड समाप्तम् *

चतुर्दश काण्ड

सूक्त–१ [प्रथम अनुवाक]

(ऋषि—सावित्री सूर्या। देवता—आत्मा: सोम:, विवाह: वधूवास: संस्पर्शमोचनम्, विवाहमन्त्राशिष। छन्द–अनुष्टुप्:, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती:, बृहती:, उष्णिक्)

सत्येनोत्तभिता भूमि: सूर्येणोत्तभिता द्यौ:।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रित:।१
सोमेनादित्या बलिन: सोमेन पृथिवी मही।
यथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहित:।२
सोमं मन्यते पपिवान् यत् सपिषन्त्योषधिम्।
सोमं यं ब्राह्मणो विदुर्न तस्याश्नाति पार्थिव:।३
यत् त्वा सोम प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुन:।
वायु: सोमस्य रक्षिता समनां मास आकृति:।४
आच्छाद्विधानैर्गुपितो बार्हतै: सोम रक्षित:।
ग्राव्णामिच्चण्वन् तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिव:।५
चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम्।
द्यौर्भूमि: कोश आसीद् यदयात् सूर्यं पतिम्।६
रैभ्यासादनुदेयी नाराशसी न्योचनी।
सूर्याया भद्रमिद वासो गाथयैति परिष्कृता।७
स्तोमा आसन् प्रतिधय: कुरीरं छन्द आपश:।
सूर्यया अश्विनी वराग्निरासीत् पुरोगव:।८
सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा।
सूर्यां यत् पत्ये शसन्ती मनसा सवितादद्दात्।९

मनो अस्या अन आसीद् द्यौरसीदुतच्छतिः ।
शुक्रावनड्वाहावास्तः यदयात् सूर्या पतिम् ।१०

सत्य से ही पृथिवी, सूर्य और आकाश में चन्द्रमा स्थित हैं । सूर्य से आकाश स्थित है ।१। सोम से यह पृथिवी पूजित है, उन्हीं से सूर्य बल युक्त है इसलिये यह सोम नक्षत्रों के पास रहते हैं । २ । जो सोम रूप औषधि को पीसकर पीते हैं वे अपने को सोम पीने वाला समझते हैं । यह सोमयाग ही सोम नहीं है । ज्ञानी जन जिस सोमको जानते हैं उसे साधारण प्राणी भक्षण नहीं कर सकता ।३। हे सोम ! पुरुष तुम्हें पीते हैं फिर भी तुम वृद्धि को प्राप्त होते रहते हो । सम्वत्सरों से मास रूप वायु इन सोम की रक्षा करता है ।४। हे सोम ! बृहती छन्दात्मक कर्मों से और आच्छद् विधानों से तुम रक्षित हो और सोम कूटने के पाषाण के शब्द से ठहरते हो । पार्थिव जीव तुम्हारा सेवन नहीं कर सकते ।५। जब सूर्य्या पति के पास गए तब ज्ञान उपबर्हण, चक्षु अभ्यंजन और आकाश-पृथिवी कोश बने ।६। न्योचिनी रैभ्या सूर्या के साथ गई वह गाथाओं ने सजकर सूर्या के परिधान को लेकर चलती थी ।७। उस समय छन्द स्त्री के लक्षण केश जाल हुए स्तुतियां प्रतिनिधि हुए अग्नि पुरोगव अश्विनी कुमार सूर्या के वर हुये ।८। पति की कामना वाली सूर्या को जब सूर्य ने दिया तब सोम बध्रयुहुये,अश्विनी-कुमार वर हुए ।९। जब सूर्या पतिको मिली तब मनरथ हुआ, शुभ्रता वृषभ हुए और द्यौ गृह हो गया ।१०।

ऋक्सामाभ्यामभिहितो गावौ ते सामनावैताम् ।
श्रोत्र ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचर ।११
शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः ।
अनो मन मयं सूर्यारोहत् प्रयती पतिम् ।१२

सूर्याया वसतुः प्रागात् सविता यमसासृजत् ।
मधासु हन्यन्ते गावः फल्गुनीय व्युह्यते ।१३

यदश्विना पृच्छमानायवातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः ।
क्वैक चक्रं तामासीत क्वदेष्टाय तस्थथुः ।१४
यदवातं शुभ पती वरेय सूर्यामुप ।
विश्वे देवा अनु मद वामजनाव पुत्रः पितरमवृणीत पूषा ।१५
द्व ते चक्रे सूर्ये ब्राह्मण ऋतुथा विदुः ।
अथैकं चक्र यद् गुहा तदद्धातय इद विदुः ।१६
अर्यमणं यजामहे सुवन्धुं पतिवेदनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनात् प्रतो मुञ्चामि तामुतः ।१७
प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम् ।
यथेयानिन्द्र मोढवः सुपुत्रा सुभगासति । १८
प्रत्वा मुञ्च मि वरुणस्य पाशाद येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः
ऋतस्य यौनौ सुकृतस्य लोके स्योनं ते अस्तु सहसंभलाये ।१९
भगस्वेतो नयत हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन ।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो व शिनी त्व विदथभा वदासि ।२०

ऋक् साम के अभिहित दो गौ-साम प्राप्त हुये आकाश के मार्ग ने उन्हें तेर कानों के रूप में किया ।११। हे सूर्य ! ज्योतिर्मान सूर्य और चन्द्रमा चक्र बने, व्यान अक्ष बना और तब तू मनस्मय रथ पर आरूढ होकर पतिगृह को जाने लगी ।१२। सविता ने सूर्या को दहेज दिया । फाल्गुनी नक्षत्र में बैलोंसे रथ खिचवाया जाता और तथा नक्षत्र में उन्हें चलाया जाता है ।१३। हे अश्विनीकुमारो ! जब तुम सूर्य का वहन करने के लिए अपने तीन पहिये वाले रथ से आये थे, जब तुम से पूछा गया था कि तुम्हारा एक चक्र कहाँ गया ? तुम अपने अपने-कर्मों में लगे हुओं में से किसके पास ठहरे थे ।१४। हे अश्विनी कुमारो ! सूर्या को श्रेष्ठ समझ कर जब तुम उसे वरण करने को आये तब विश्वेदेवों ने तुम्हें जाना और नरक से बचाने वाले सूर्य ने पातक का वरण किया ।१५। हे सूर्य ! तेरे दोनों चक्र ऋतु के

अनुसार ब्राह्मणों द्वारा जाने जाते हैं। तेरे एक गूढ़ चक्र के ज्ञाता भी विद्वान ही है सुन्दर बन्धुओंसे युक्त रखने वाले और पति को प्राप्त कराने वाले देवता अर्यमा का हम पूजन करते हैं। ककड़ी के डंठल से पृथक् होने के समान मैं इस कन्या को यहाँ पृथक् करता हूँ, परन्तु इसे पति-कुल पृथक् नहीं करता ।१७। मैं इसे पृथक् करता हूँ, पतिकुल से भले प्रकार युक्त करता हूँ। हे सिचन शक्ति वाले इन्द्र ! यह कन्या सौभाग्य-वती और सुपुत्री हो ।१८। सूर्यने जिस वरुणपाश से मुझे बांध रखा था मैं तुझे उससे मुक्त करता हूँ। तू मधुरभाषिणी, सव्य रूप, श्रेष्ठ,कर्मोंके फल वाले लोकमें सुखी हो ।१९। सौभाग्य प्रदान करने वाले भग देवता तुझे हाथ पकड़कर और अश्विनीकुमार तुझे रण में ले जाय। तू अपने घर को प्राप्त होती हुई पालन करने वाली तथा सब को वश करने वाली हो और सुन्दर वाणी कहती रहे ।२०।

इह प्रियं प्र जायै ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गाहपत्याय जागृहि।
एना पत्या तन्वं स स्पृशस्वाथ जिर्विर्विदथमा वदासि ।२१
इहैव स्तं मा वि यौष्टं विष्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ ।२२
पूर्वापर चरतो माययैतो शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम्।
विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतूँ रन्यो विदधज्जायसे नवः ।२३
नवोनवो भवसि जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेष्यग्रम्।
भाग देवेभ्यो वि दधास्यन् प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः ।२४
परादेहि शामुल्य ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु।
कृत्यैशा पद्धतो भूत्वा जाया विशते पतिम् ।२५
नीललोहित भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते।
एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्वन्धेषु वध्यते ।२६
दुमश्लीला तनुर्भवति रुशती पापयामुया।
पतिर्वद बध्वो वाससः खमङ्गमभ्यूर्णुते ।२७

आशमनं विशसनमथो अधिविकर्तनम् ।
सूर्यायाः पश्य रूपाणि तामि ब्रह्मोति शुम्भति ।२८
तृष्टमेतत् कटुकमपाष्ठवद् विषवन्नैतंदत्तवे।
सर्या यो ब्रह्मा वेद स इद् बाधूयमर्हति ।२९
स इत् स्योनं हरति वासः सुमंगलम् ।
प्रायश्चित्तिं यो मध्येति नजापे या न रिष्यति।३०

तू अपने घर में गार्हपत्य अग्नि के लिए सचेत रह इस पति से अपने को स्पर्श करने वाली हो । तेरी सन्तान के लिए वस्तुयें बढ़े तू आयु से पूर्ण होने पर बोलने वाली हो ।२१। तुम दोनों साथ रहो पृथक् न होओ, जीवन पर्यन्त अनेक प्रकार के भोजन करो, पुत्रादि के साथ क्रीड़ा करो और मङ्गल से युक्त होते हुए सदा प्रसन्न करो ।२२। यह सूर्य और चन्द्रमा शिशु के समान खेलते हुए पूर्व पश्चिम में गमन करते हैं। इनमें से एक लोकों को देखता हुआ ऋतुओंको उत्पन्न करता और नये रूपमें प्रकट होता है ।२३। हे चन्द्र, तुम मास में स्थिति हुये सदा नवीन रहते हो । अपनी कलाको घटाते बढ़ाते हुए प्रतिपदा आदि दिनोंको करते हो। तुम उषाकालमें आगे आकर देवताओं को भाग देते और दीर्घ जीवन करते हो ।२४। यह कृत्यासी पति में प्रविष्ट होती है । हे वर, तुम शामुल्य देते हुए ब्राह्मणों को धनदो ।२५। इस नीले लाल वस्त्र में कृत्या की आसक्ति उद्भूत होती है (इसके न देने पर) इस वधु के बांधव वृद्धि को प्राप्त होते हैं परन्तु पति अवरुद्ध हो जाता है ।२६। वधु के वस्त्र से अपने अंग को ढकने वाले पतिको पाप दोष लगता है और उसका शरीर घृणित हो जाता है ।२७। आशसन, विशपन, और अधीविकर्तन सूर्याके इन रूपों को देखो, इन्हें ब्रह्माही सजाता है !२८। यह वस्त्र प्यास लगाता है, कड़वा है,अपाष्ठद हैं और विष के समान हैं । सूर्या का ज्ञाता ब्रह्मा ही वधु के वस्त्र के योग्य है ।२९। जिस वस्त्र से प्रायश्चित होता है, जिससे पत्नी मरण को प्राप्त नहीं होती, उस कल्याणकारी वस्त्र को ब्रह्मा धारण करता है ।३०।

युव भग सं भरत समृद्धसृतं वदन्तावृतोद्येषु ।
ब्रह्मणस्पते पतिमस्मै रोचय चारु सभलो बदतु वाचमेताम् ।३१
इहेदसाथ न परो गमाथेमं गावः प्रजया वर्धयाथ ।
शुभ यतीरुस्त्रिया:सोमवर्चसो विश्वे देवा:कन्निह वो मनांसि ।३२
इमं गावः ब्रजयाः स विशाथायं देवानां न मिनाति भागम् ।
अस्मै वः पूषा मरुयश्च सर्वे अस्मै वा धाता सविता सुवाति ।३३
अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थानो थेभिः सखायो यन्ति नो वरेयम् ।
सं भगेन समर्यन्णा सं धाता सृजतु वर्चसा ।३४
यच्च वर्चो अक्षपु सुरायाँ च यदाहितम् ।
यद् गोखश्विना वचस्तेनेमां वचसावतम् ।३५
येन महानध्न्या जघनमश्विना येन व सुरा ।
येनाक्षा अभ्यषिच्यन्त तेनेमां वर्चसावतम् ।३६
यो अनिष्मो दीदयदप्स्वन्तर्य विप्रास ईडते अध्वरेषु ।
अपां नपान्मधुमतीरपो दा याभिरिन्द्रो वीर्यावान ।३७
इदमहं रुशन्त ग्राभं तनूदूषिमपोहामि ।
यो भद्रो रोचनस्तमुदचामि ।३८
आस्यै ब्राह्मणाः स्नपनीर्हरन्त्ववीरघ्नोरुदजन्त्वापः ।
अर्यन्णे अग्नि पर्येतु पूषन् प्रतीक्षन्ते श्वसुरो देवरश्च ।३९
श ते हिरण्यं शसु सन्त्वापः शं मेथिभवतु शं युगस्य तद्मं ।
शं त आप शतपवित्रा भवन्तु शमु पत्या तन्वं सं स्पृशस्व ।४०

तुम दोनों सत्य बोलते हुए सौभाग्यको प्राप्त होओ । हे ब्रह्मणस्ते ! तुम इसके लिए पति को स्त्रीकार करो और वह भी स्वीकृत रूपवाणी को कहे ।३१। तुम मत जाओ, यहाँ बैठो, यह कल्याणमयी धेनु हैं । तुम दोनों ही सन्तान से बुद्धि को प्राप्त होओ, विश्वे देवता तुम्हारे मनों को उज्ज्वल बनावें ।३२। यह गौयें इसे मिलें । इस देव-भाग का विभाजन नहीं होता । तुम्हें पूषा, मरुद्गण, धाता और सविता देव भी

मार्ग कष्टक रहित और सुगम हों। धाता तुम्हें तेजस्वी और सौभाग्य वान बनावे। जो वर्च गौओं में, पाशोंमें और सूरामें है उस वर्च से हे अश्विद्वय ! तुम इसकी रक्षा करने वाले होओ ।३५। हे अश्विद्वय जिस वर्च से सुरा और पाशों का अभिसिचन हुआ और जिस वर्च से जघन महासघ्न्याका, उस वर्च से मेरी रक्षा करो।३३। और ज्वलित न होकर भी जलों में हिंसन कर्म से सम्पन्न है जिसकी यज्ञों में ब्राह्मण स्तुति करते हैं और जो जलों के पोषक हैं,ऐसे तुम मधुर जलोंको प्रदान करो, इसी के द्वारा इन्द्र प्रवृद्ध होते हैं ।३७। शरीर के दूषित करने वाले मलको मैं पृथक् करता हूँ और कल्याण को देने वाले शोभन पदार्थों को ग्रहण करता हूँ ।३८। ब्राह्मण इसके लिये स्नान करने वाले जलों को लावें वीरों को मारने वाले जल इसे प्राप्त हों। हे पूषन् ! अर्यमा से यह अग्नि को प्राप्त करे। इसके स्वसुर और देवर इसकी प्रतीक्षा में हैं।३९। हे वधू ! तेरे लिए जल कल्याणमय हों, सुवर्ण सुख देने वाला हो, आक्रश सुखदायी हों, तू कल्याण को प्राप्त करती हुई अपने पति-देह का स्पर्श कर ।४०।

खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो।
अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्वाकृणोः सूर्यत्वचम् ।४१
आशासाना सौ मनसं प्रजां सौभाग्य रयिम् ।
पत्युरनुब्रता भूत्वा सं नह्यस्वामृताय कम् ।४२
यथा सिन्धुर्नदीनाँ साम्राज्यं सषुवे वृषा ।
एवा त्व सम्राज्ञयेधि पत्युरस्त परेत्य ।४३
सम्राज्ञेधि श्वशुरेषु सम्राज्ञयुत देवेषु ।
ननादुः सम्राज्ञयेधि सम्राज्ञ्युत श्वश्रवाः ।४४
या अकृन्तन्नवयन् ताश्च तत्निरे या देवीरन्तां अभितोऽददन्त ।
तास्त्वा जरसे स व्ययन्त्वायुष्मतीद अरि धत्स्व वासः ।४५
जीव रुदन्ति वि नयन्त्यध्वर दर्घामनु प्रसिति दीध्युर्नरः ।

वामं पितृभ्यो य इदं सभीरिरे मय: पतिभ्यो जनये परिष्वजे ।४६
स्योन ध्रुवं प्रजायै धारयामि तेऽश्यामं देव्या: पृथिव्या उपस्थे।
तमा तिष्ठातुमाद्या मुवर्चा दीर्घं त आयु:हविता कृणेतु ।४७
येनग्निन्स्या भून्या हस्तं जग्राह दक्षिणम् ।
तेन गृहामि ते हस्तं मा व्यथिष्ठा मया सह प्रजया धनेन च ।४८
देवस्ते सविता हस्तं गृह्णातु सोमो राजा सुप्रसर्सं कृणेतु ।
अग्नि: सुभगाँ जातवेदा पत्नी जरदष्टिं कृणेतु ।४९
गृह्णमि ते सौभगत्वाय हस्तन्मया पत्या जददर्ष्यिथास: ।
भगोअर्यमा सविता पुरन्धिर्भह्यं त्वादुर्गार्हिपत्याय: देव: ।५०

हे सैंकड़ों कर्म वाले इन्द्र ! रथाकाश में तीन बार पवित्र करके मैंने अपाला को सूर्य के समान दमकती हुई त्वचा से युक्त किया है ।४१। तू सन्तान धन, सौभाग्य और प्रसन्नता की कामना वाली होकर पति के अनुकूल रह और इस अमृतमय सुख को अपने वश में कर ।४२। अमृतवर्षक समुद्र नदियों के राज्य को पाता है, वैसे ही तू पतिगृह को प्राप्त होकर साम्राज्ञी के समान हो ।४३। तू श्वसुर, देवर, ननद और सास सभी में साम्राज्ञी बनकर रह ।४४। जिन स्त्रियों ने इस वस्त्र को कात थुनकर वितृत किया है, वे देवियाँ तुझे वृद्धावस्था वाली बनावें । हे आयुष्मती ! तू इस वस्त्र को धारण कर ।४५। कन्या रूप यज्ञ को जब पुरुष ले जाते हैं, सन्तानात्मक तन्तु वाला पुरुष कन्या का शोक करता है, और कन्यापक्ष के प्राणी उसके लिये रोते हैं । हे वधू ! इसे करने वाले पितरों का वास करते हैं । इसलिये तू श्वसुर आदि वरपक्ष और उत्पादनकर्त्ता मातृपक्ष का आलिंगन कर ।४६। मैं इस पाषाण को पृथिवी पर प्रतिष्ठित करता हूँ तू शोभन रूप वाली सबको प्रसन्न करने वाली इस पाषाण पर बैठ । सविता तेरी आयु वृद्धि करें ।४७। हे वाये ! जिस लिये अग्नि ने इस भूमि के दायें हाथ को पकड़ा है, उसी प्रकार मैं तेरा हाथ ग्रहण करता हूँ । तू दु:खी न हो मेरे साथ सन्तान और धन सहित निवास कर ।४८। सविता तेरे हाथ को ग्रहण

करे, सोम तुझे सन्तानवती बनावें, अग्नि तुझे सौभाग्यवती करते हुए वृद्धावस्था तक पति के साथ रहने वाली बनावें ।४६। हे वधु ! तू मेरे साथ वृद्धावस्था तक रहे, इसलिये तेरे हाथ को ग्रहण करता हूं । तू भाग्यवती रहे, भग, अर्यमा, सविता और लक्ष्मी ने तुझे गृहस्थ धर्म के लिये मुझे प्रदान की है ।५०।

भगस्ते हस्तमग्रहीत् सविता हस्तमग्रहीत् ।
पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गहपतिस्तव ।५१
ममेयमस्तु पोष्या मह्य त्वादाद वृहस्पति ।
मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम् ।५२
त्वाष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं वृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम् ।
तेनेमां नारी सविता भगश्च सुर्यामिव परि धत्तां प्रजया ।५३
इन्द्राग्नी द्यावापृथिवीं मातरिश्वा मित्रवरुण भगो अश्विनोभा ।
वृहस्पतिर्भरतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु ।५४
वृहस्पतिः प्रथमः सूर्यायाः शीर्षे केशां अकल्पयत् ।
तेनेमामश्विना नारी पत्ये स शोभयामसि ।५५
इदं तद्रूपं यदवस्त योषा जायां जिज्ञासे मनसा चरन्तीम् ।
तामन्वर्तिष्ये सखिभिर्नवग्वैः क इमान् विद्वान् वि चचर्त पाथान् ।५६
तहं वि स्यामि मयि रुपमस्या वेददित् पश्यन् मनसः कुलायम् ।
न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्य त्वय श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान् ।५७
प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः ।
उरुं लोकं सुगमत्र पन्थां कृणेमि तुभ्य सहपत्न्यै वधु ।५८
उद्यच्छध्वमप रक्षो हनाथेमां नारी सुकृते दधात ।
धाता विपश्चित् पतिमस्यै विवेद भगो राजा पुर एतु प्रजानन ।५९
भगस्ततक्ष चतुर पादान् भगस्ततक्ष चत्वार्युष्पलानि ।
त्वष्टा पिपेश मध्यतोऽनु वर्ध्रान्त्सा नो अस्तु सुमगलो ।६०

सुकिंशुकं वहतुं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृत मुचक्रम् ।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पतिभ्यो वहतुं कृणु त्वम् ।६१
अभ्रातृघ्नी वरुणशुघ्नीं वृहस्पते ।
इन्द्रापतिघ्नीं युत्रिणीमान्मभ्य सवितर्वह ।६२
मा हिंसिष्टं कुमार्यं स्थूणे देवकृते पथि ।
शालाया देव्या द्वारं स्यं न कृण्मो वधूपथम् ।६३
ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः
अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य शिवा स्योना पतिलोके वि राज ।६४

भग ने और सूर्य ने तेरा हाथ पकडा है, इसलिये तू धर्मपूर्वक मेरी भार्या है और मैं तेरा पति हूँ ।५१। वृहस्पति ने तुझे मेरे लिए दिया है तू मुझ पति के साथ रहती हुई सन्तानवती हो और सौ वर्ष तक की आयु भोगती हुई मेरी पोष्या रह ।५२। हे शुभे, त्वष्टा ने इस कल्याण-कारी वस्त्र को वृहस्पति की आज्ञा से निर्मित किया है सविता और भग देवता सूर्या के समान ही इस स्त्री को इस वस्त्र द्वारा संतानादि से सम्पन्न करें ।५३। अश्विद्वय, इन्द्राग्नि, मित्रावरुण, आकाश—पृथिवी, वृहस्पति, वायु मरुद्गण, ब्रह्म और सोम देवता इस स्त्री की सन्तान से वृद्धि करे ।५४। हे अश्विद्वय, वृहस्पति ने सूर्या में शिर का केश-विन्यास किया था, उसी के अनुसार हम वस्त्रादि द्वारा इस स्त्री को पति के निमित्त सजाते हैं ।५५। इस रूप को योषा धारण करती हैं । मैं योषाको जानता हूँ । मैं इनकी नवीन चाल वाली सखियों के अनुसार चलूँगा । यह केशविन्यास किस विद्वान ने किया है ।५६। मैं इसके मन रूप हृदय को जानता हुआ और इसके रूप को देखता हुआ, अपने से आवद्ध करता हूँ । मैं चौर्य कर्म नहीं करता । स्वयं मन लगा कर केशों को गूँथता हुआ वरुण-पाशों से मुक्त करता हूँ ।५७। जिस सविता ने तुझे वरुण-पास में बाँधा है, उससे मैं तुझे मुक्त करता हूँ । हे पत्नी, मैं तेरे साथ लोक के इस विस्तृत मार्ग को सरल बनाता हूँ ।५८। जल प्रदान करो, राक्षसों को मारो, इस को पुण्य में

प्रतिष्ठित करो। धाता ने इसे पति दिया है, विद्वान् भग इसके सामने हों।५९। भय ने इसके चारों पद और चारों ऊखलों को रचा, मध्य में वर्घ्रों को बनाया, वह हमको सुन्दर कल्याण के देने वाली हो।६०। हे वधू, तू वरणीय दमकने वाले, मुदीप्तत दहेज पर चढ़ और इसे पति और उसके पक्ष के सब पालकों के लिये कल्याणकारी बना।६१। हे वृहस्पते, हे इन्द्र, हे सवितादेव, इस वधूको भ्राता, पति, पशु आदिकी क्षय करने वाली मत बनाओ। इसे पुत्र धन आदि से सम्पन्न रूप में हमें प्राप्त कराओ।६२। हे देव, इस वध को वहन करने वाले रथ को हानि मत पहुँचाओ, हम शाला के द्वार पर इस वधू के मार्ग को कल्याण-मय बनाते हैं।६३। आगे, पीछे, भीतर, बाहर, मध्य में सब ओर ब्राह्मण रहें। तू देवताओं के निवास वाली रोग-रहित शाला को प्राप्त हो और पति गृह में मङ्गलमयी होती हुई प्रसन्न रह ६४।

सूक्त–२ [दूसरा अनुवाक]

(ऋषि-सावित्री, सूर्या। देवता—आत्मा। यक्ष्मनाशनी, दम्पत्याः परिषन्थिनाशनीः देवाः। छन्द—अनुष्टुप्। जगती, अष्टिः त्रिष्टुप् वृहती, गायत्री, पंक्ति, उष्णिक् शक्वरी)

तुभ्यमग्रे पर्य बहन्त्सूर्या वहतुना सह।
स नः पतिभ्यो जायाँ दा अग्ने प्रजया सह।१
पुनः पत्नीभग्निरदादायषा सह वर्चसा।
दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम्।२
सौमस्य जाया प्रथमं गन्धर्वस्तेऽपः पति।
ततीयो अग्निष्ठे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः।३
सोमो ददद् गन्धर्वाय गन्धर्वो दददग्नये।
रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्ह्यमथो इमाम।४
जा वामगन्त्समतिर्वानीवस न्यशिवना हृत्सु कामा अरंसत।
अभूत गोपा मिथुना शुभस्पती प्रिया अर्यम्णो दुर्यां अशीमहि।५
सां मन्दसाना मनसा शिवेन रयिं धेहि सर्ववीरं वचस्यम्।

सुगं तीर्थं सुप्रपाणं सभस्पती स्थाणुं पथिष्ठामप दुर्मति हतम् ।६
या ओषधयो या नद्यो यानि क्षेत्राणि या वना ।
तास्त्वा वधु प्रजावतीं पत्थ रक्षन्तु रक्षन्तु रक्षसः ।७
एमं पन्थामरुक्षाम सुगं स्वस्तिवाहनम् ।
यस्मिन वीरो न रिष्यत्यन्येषाँ विन्दते वसु ।८
इदं सु मे नरः श्रृणूत ययाशिषा दम्पती वाममश्नुतः ।
ये गन्धर्वा अप्सरश्च देवीरेषु बानम्यत्येष येऽधि तस्थुः ।
स्योनास्ये अस्यै वण्वै भवन्तु मा हिंस्षिर्वहतु युद्यमानम् ।९
ये वध्वश्चन्द्रं वहतं यक्षमा शन्ति जनां अनु ।
तुनस्तान् यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः ।१०

हे अग्ने ! दहेज के साथ सूर्या को तुम्हारे लिये लाये थे। तुम हमको सन्तानवती पत्नी दो ।१। अग्नि ने आयु और तेज के सहित हमें पत्नी प्रदान की है इसका पति भी दीर्घजीवी हो वह सौ वर्ष की आयु पावे ।२। तू पहले सोम की पत्नी हुई फिर गन्धर्व की और अग्नि तेरा तृतीया पति हुआ। मैं मनुज तेरा चतुर्थ पति हूँ ।३। सोम ने तुझे गन्धर्व को दी, गन्धर्व ने अग्नि को और अग्नि ने तुझे मेरे लिये दे दी और धन तथा पुत्रों से सम्पन्न किया ।४। हे उषाकालीन ऐश्वर्य वाले अश्विद्वय, तुम्हारे हृदय में जो अभीष्ट रहते हैं, वह तुम्हारी कृष्पापूर्ण बुद्धि द्वारा हमको मिले। तुम हमारे प्रिय तथा रक्षा करने वाले होओ। हम सूर्य की कृपा से ग्रहों में भोग करने वाले हों ।५। तुम कल्याणकारी मन से वीरों से युक्त धन का पोषण करो। हे अश्विद्वय तुम इस तीर्थ को सुफल करते हुए मार्ग में प्रात दुर्मति आदि को दूर कर दो ।६। हे वध, औषधि, नदी, क्षेत्र और वन तुझे सन्तानवती बनावें और तेरे पति की दुष्टों से रक्षा करें ।७। हम इस सुखमय वाहन वाले मार्ग पर चलते हैं, इसमें वीरों को हानि नहीं होती और अन्यों का धन प्राप्त होता है ।८। मनुष्यो- मेरी बात सुनो, वनस्पतियों में गन्धर्व हैं अप्सरायें हैं, वे इसे सुख देने वाली हों और इस दहेज रूप

धनको नष्ट करें। इन आशीर्वादात्मक वाणी से वह दोनों उत्तम पदार्थों का उपभोग करें।६। चन्द्रमा के समान प्रसन्नताप्रद दहेज की ओर जो विनाशक साधन आते हैं, वे जहाँ से आते ही वहीं उन्हें यज्ञीय देवता पहुँचावे.।१०।

मा विदन् परिपन्थिनो य आसोदन्ति दम्पति ।
सुगेन दुर्गमतीतामप प्रान्त्वरातयः ।११
स काशयामि वपतु ब्रह्मणा गृहैरघोरेण चक्षषा मित्रियेण ।
पर्याणद्धं विश्वरुपं यदस्ति स्योन पतिभ्यः सविता तत् कृणोतु।१२
शिवा नारीयमस्तमागन्निमं धाता लोकमस्यै दिदेश ।
तामयंमा भगो अश्विनोभा प्रजापतिः प्रजया वधेबस्तु ।१३
आत्मन्वत्थुर्वरा नारीयमारुन यस्यां नरो वपते बोजमस्याम् ।
सा वः प्रजा जनतद् वक्षणाभ्यो बिभ्रती दुग्धमृषभस्य रेतः ।१४
प्रति तिष्ठ विराडसि विष्णुरिवेह सरस्वति ।
सिनोवालि प्र जायतां भगस्य समतावसत् ।१५
उद् व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योयत्राणि मुञ्चत ।
मादुष्कृतौ व्येनसावघ्न्यावशुनमारताम् ।१६
अघोरचक्षरपतिघ्नी स्योना शग्मा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यः ।
वीरसूर्देवृकामा सं त्वयैधिषीमहि सु मनस्यमाना ।१७
अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः ।
प्रजावती वीरसूर्देवृकामा स्योनेममग्नि गार्हपत्य सपर्यं ।१८
उत्तिष्ठेतः किमिच्छन्तीदमागा महं त्वेडे अभिभूः स्वाद गृहात् ।
शून्यषी निर्ऋते याजगन्धोत्तिष्ठाराते प्र पत मेह रस्थाः ।१९
यदा गार्ह पत्यमसपर्येत पुर्वं मग्नि वधूरियम् ।
अधा सरस्वत्यै नारि पितृभ्यश्च नमस्कुरु ।२०

दम्पतिके समीपजो दस्यु आना चाहते हैं, वे इन्हें प्राप्त न कर सकें

हम इस दुर्गम मार्ग को सुगमता से पार करें और हमारे शत्रु दुर्गति में पडे ।११। मैं दहेज को मन्त्रों, नेत्रों और नक्षत्रों द्वारा दीप्त करता हूं। इसमें विभिन्न प्रकार के जो पदार्थ है, उन्हें सवितादेव प्राप्त करने वालों को मुख देने वाले बनावें ।१२। इस स्त्री के लिए धाता ने घर रूप लोक बनाया है यह कल्याणी इसे प्राप्त हो गई है। इस वधू को आश्विद्वय, अर्यमा, भग और प्रजापति सन्तान से प्रबृद्ध करे ।१३। हे पुरुष ! तू उस उर्वरा नारी में वीज वपन कर। ऋषभ के समान तेरे वीर्य और दूधको धारण करने वाली यह तेरे निमित्त सन्तानोत्पत्ति करे ।१४। हे सरस्वती ! तू विष्णु के समान विराट् है, इसलिये तू प्रतिष्ठित हो। हे सिनीवालि ! तू भग देवता की सुन्दर मति में रहती हुई सन्तान उत्पन्न कर ।१५। हे जलो ! अपनी कर्म की तरङ्गों को शान्त करो, लगामों को ढीला करो। यह श्रेष्ठ कर्म वाले, न मारने योग्य बाहन 'अशुन' न करने लगें ।१६। हे वधू ! तू स्निग्ध रखती हुई, पति को क्षीण न करने वाली है। तू ! वीर पुत्रों का प्रसव करती हुई और मनमें प्रसन्न होती हुई सबको सुख देने वाली होती हुई इस घरको प्राप्त हो। हम भी तेरे द्वारा बढ़ें ।१७। हे वधू ! पति और देवर को हानि न पहुँचाने वाली, पशुओं का हित करने वाली, प्रजावती, शोभन काँति वाली सुख देने वाली होती हुई, देवर का अहित चिन्तन न करने वाली होती हुई तू अग्नि का पूजन कर ।१८। हे निऋते ! यहाँ से उठकर भाग। तू किस वस्तु की इच्छा से यहाँ उपस्थित हुई है ? मैं तुझे अपने घर से भागता हुआ तेरा सत्कार करता हूँ। तू शत्रु रूपिणी शून्य की कामना से यहाँ आई, परन्तु तू विहार न कर।१६। गृहस्थ रूप आश्रम में प्रविष्ट होनेसे पूर्व यह वधू अग्नि-पूजन कर रही है। हे स्त्री, अब तू सरस्वती को और पितरों को नमस्कार कर ।२०।

शर्म वर्मैतदा हर स्यै नार्या उपस्तरे।
सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ।२१
य बल्वजं न्यस्यथ चर्म चोपस्तृणीथन।

मदा रोहनु सुप्रजा या कन्या विन्दते पतिम् ।२२
उप स्तृणीहि बल्बजमधि चर्मणि रोहिते।
तत्रोपाविश्य सुप्रजा इममग्निं सपर्यतु ।२३
आ रोह चर्मोप सीदाग्निमेष देवो हन्ति रक्षांसि सर्वा।
इह प्रजय पत्ये अस्मै सुज्यैष्ठयो भवत् पुत्रस्त एषः ।२४
वि तिष्ठन्तां मातुरभ्या उपस्थान्नानारूपाः पशवो जायमानाः।
सुमङ्गल्युप मोदेममग्निं सपन्ना सपत्नी प्रति भूषेह देवान् ।२५
सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणाँ सशेवा पत्ये श्वशुराय शभूः ।
स्योना श्वश्वै प्र गृहान् विशेसान ।२६
स्योना भव श्वशूरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः ।
स्योनास्ये सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टार्थैपाँ भव ।२७
समङ्गलीरिय बधरिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्मै दत्वा दौर्भाग्यैर्विपरेयन ।२८
या दुर्हार्दो युवतयो याश्चेह जरतीरपि ।
वर्चो न्वस्यै सं दत्ताथास्त विपरेतन ।२९
रुकमप्रस्तरण वह्य विश्वा रूपाणि विभ्रतम् ।
आरोहत् सूर्या सावित्री वृहते सौभागाय कम् ।३०

इस स्त्री के लिये मृगचर्म रूप आसन में मंगल और रक्षा को व्याप्त कर। यह भग देवता प्रसन्न रहे। सिनीवाली यह स्त्री सन्तानोत्पत्ति करती रहे ।२१। तुम्हारे द्वारा रखे गये तृण और मृगचर्म पर यह प्रजावती और पति–कामा कन्ये चढ़े ।२२। रोहित मृग के चर्म पर 'बल्वज' को विस्तृत करो, उस पर प्रतिष्ठित होकर यह प्रजावती स्त्री अग्निका पूजन करे ।२३। हे स्त्री, इस मृगचर्म पर चढ़कर अग्निदेव के पास बैठ। यह देवता सब राक्षसों को मारने में समर्थ हैं। तू इस गृह में अपनी प्रथम सन्तान को उत्पन्न कर। यह तेरा ज्येष्ठ पुत्र कहायेगा ।२४। इस माता से अनेक पुत्र प्रकट होकर गोद में बैठें। हे सुन्दर कल्याण वाली स्त्री ! तू अग्नि के पास बैठकर इन सब देवताओं को

सुशोभित कर ।२५। तू कल्याणमयी पतिको सुख देने वाली, घरका कार्य चलाने वाले, श्वसुर और सास के लिये सुखमयी होती हुई गृह-प्रवेश कर ।२६। तू पति को सुख देने वाली हो, घर के लिये मंगलमयी हो, श्वसुर के लिए कल्याण करने वाली हो, तू सब सन्तानों को सुख दे और उनका पोषण, करती रह ।२७। यह वधू कल्याणमयी है, सब मिलकर इसे देखो । इसके दुर्भाग्य को दूर करते हुए सौभाग्य प्रदान करो ।२८। दूषित हृदयवाली स्त्रियाँ तथा वृद्धायें इसे तेज प्रदान करती हुई चली जाँय ।२६। मन को अच्छा लगने वाले विछाने युक्त इस सुन्दर पर्यंक पर सूर्या सुख की प्राप्ति के लिये चढ़ी थी ।३०।

आरोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै ।
इन्द्राणीव सुबधा बुध्यमान ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि।३१
देवा अग्रे न्यपद्यन्त पत्नीः समस्पृशन्त तन्व स्तनूभिः ।
सूर्येव नारि विश्वरूपा महित्वा प्रजापती पत्या सं भवेहः ।३२
उत्तिष्ठेतो विश्वावसो नमसेडामहे त्वा ।
जामिमिच्छ पितृषदं न्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि ।३३
अप्मतसः सधमाधमदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च ।
तास्ते जनित्रमभि ताः परेहि नमस्ते गन्धवर्तुना कृणोमि ।३४
नमो गन्धर्वस्य नमसे नमो भामाय चक्षुष च कृण्मः ।
विश्वावसो व्रह्मणा ते नमोऽभि जाया अप्सरसः परेहि ।३५
राया वय सुमनसः स्यामोदितो गन्धर्वंमावीवृताम् ।
अगन्त्स देवा परमं सधस्थमगन्भ यत्र प्रतिरन्त आयुः ।३६
स पितरावृत्विये सृजेथां माता पिता च रेतसा भवाथः ।
मर्यइव योषामधि रोहयैनां प्रजां कृण्वाथामिह पुष्यत रयिम् ।३७
ताँ पूषञ्छिवतमामेरयत्व यस्यां बीजं मनुष्या वपन्ति ।
या न ऊरु उशती विश्र ताति यस्यामुशन्तः प्रहरेन शेपः ।३८
आ रोहीरुमुप धत्स्व हस्तं परि ष्वजस्व जायाँ सुमनस्यमानः ।
प्रजां कृण्वाथामिह मोदमानौ दीर्घं वामातुः सविताः कृणोतु ।३९

आ वां प्रजां जनयतु प्रजापतिरहोरात्रयाभ्यां समनक्त्वर्यमा ।
अदुमङ्गली षतिलोकमा विशेमं शं नो भव द्विपदे मं चतष्पदे ।४०

हे स्त्री ! तू प्रसन्नता से इस पर्यंक पर चढ़ और पति के लिये सन्तानोत्पत्ति कर । तू समान बुद्धिसे सम्पन्न रह और नित्य उषाकालमें जागने वाली हो ।३१। देवताओं ने भी पूर्व काल में पर्यंक पर आरोहण कर अपने अङ्गों को पत्नी के अङ्गोंसे युक्त किया था । हे स्त्री ! तू सूर्या के समान ही पतिके सङ्ग रहती हुई सन्तानवती हो ।३२।हे विश्वावसो! यहाँ से उठ हम तुझे नमस्कार करते हैं । पितृगृहं जाती हुई 'जामिम' ही तेरा भाग उसी की उत्पत्ति को तू जान ।३३। प्राणियों के प्रसन्न होने वाले स्थान में हविर्धान और सूर्य को देखकर अप्सरायें हर्षित होती हैं, वही तेरी उत्पत्ति का स्थान है इसलिये वहीं जा । मैं तुझे नमस्कार पूर्वक गन्धर्वों के गमन के साथ ही प्रेरित करता हूँ ।३४। गन्धर्व के क्रोध-मय नेत्रको नमस्कार ! हे विश्वावसो, हमारे मन्त्र और नमस्कार को स्वीकार करते हुए तुम अप्सराओं से इस नारी को दूर रखो ।३५। हम हर्ष प्रदायक हों । हम गन्धर्वों को ऊर्ध्वगामी करते हैं । वह देवता परम जंघस्यको प्राप्त होगयेहैं।३६।तुम दोनों माता-पिताबननेकेनिमित्त ऋतु-काल में मिलो । वीर्य द्वारा माता-पिता बनो । मानवी विधि से आरो-हण करो और सन्तानोत्पत्ति करो ।३७। हे पूषन् ! जिसमें बीज वपन होता है, उस कल्याणी स्त्रीको प्रेरित करो । वह प्रेम करती हुई अङ्ग विस्तृत करके सन्तानोत्पादन के कर्म में संलग्न हो ।३८। तू जाया का स्पर्श कर । प्रसन्न होते हुये तुम दोनों प्रजोत्पत्ति कर्म करो । सविता तुम्हारी आयु वृद्धिकरें ।३९। अर्यमा तुम्हें दिन रात्रि से मिलावें, प्रजा-पति तुम्हारे लिये प्रजोत्पत्ति करें । हे वधू ! तू अमङ्गलों से पृथक् रहती हुई इस गृह में प्रविष्ट हो और दुपाये, चौपाये सभीको सुख देने वाली बन ।४०।

देवैर्दत्त तनुना साकमेतद् वाधूर्य वासो वध्वश्च वस्त्रम् ।
यो ब्रह्मणे चिकितुषे ददाति स इद् रक्षांसि तल्पानि हन्ति ।४१
य मे दत्तो ब्रह्मभाग वधूयोवधि यवासो वध्वश्च वस्त्रम् ।
युव ब्रह्मणेऽनुमन्यमानौ बृहस्पते साकमिन्द्रश्च दत्तम् ।४२
स्योनाद्योनेरधि बूध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदतानौ ।
सुगूसुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः ।४३
नव वसानाः सुरभिः सुवासा उदागां जीव उषसो बिभाती ।
आण्डात पतत्रीवामुक्षि विश्वस्मादेनसस्परि ।४४
शुम्मना द्यावापृथिवी अन्तिसुन्ने महिव्रते ।
आपः सप्त सुस्त्रुवुर्देवस्ता नो मुञ्चन्वहसः ।४५
सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुथाय च ।
ये भूतस्य प्रचेतसस्तेभ्य इदमकर नमः ।४६
य ऋते चिदभिशिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
संधाता सधि मघवा तुरुवसुर्निष्कर्ता विह्ल तपुनः ।४७
अताष्मत् तम उच्छतु नील पिशङ्गमुतं लोहित योहित यत् ।
निर्दहनी या पृषातक्यस्मिन तां स्थाणावध्या सजामि ।४८
यावतीः कृत्मा उपवापने यावन्तो राज्ञो वरुणस्य पाशाः ।
व्यृद्धयो या असमृद्धयो या अस्मिन् ता स्थाणावधि सादयामि।४९
या मे प्रियतमा तनूः सा मे विभाव वससः ।
तस्याग्रे त्वं वनस्पते नीवि कृणुष्व मा वयं रिषाम ।५०

देवताओं ने मनु सहित इस वधु के वस्त्र को दिया था । जो इस वाधुय वस्त्र को विद्वान बाह्मणके लिये प्रदान करता है वह राक्षसों का नाश करने में समर्थ होता है ।४१। जो वर का वस्त्र और वाधूय वस्त्र ब्रह्मभाग मानकर मुझे दिया गाया है,हे वृहस्पति तुम इन्द्र और ब्रह्मा की सहमति से इसे मुझे प्रदान कर चुके हो ।४२। हम दोनों हास्य से प्रसन्नता को और सुख से बोध को प्राप्त हों । हम सुन्दर गति वाले

हों और पुत्रादि से सम्पन्न रहते हुए उषाओं को पार करते रहे ।४३। नवीन सुन्दर और सुरभित परिधान धारण कर उषाकालों को जीवित रहता हुआ पाऊँ। अंड से पक्षी के मुक्त होने के समान मैं भी सब पापों से छूट जाऊँ ।४४। सुशोभित आकाश पृथिवी के मध्य चेतन अचेतन प्राणी वास करते हैं, यह विशाल कर्म वाले आकाशपृथिवी और यह सात प्रकार के प्रवाहित जल हमको पापसे छुड़ावें ।४५। सूर्या, देवगण, मित्र, वरुण सभी भूतों के जो जानने वाले हैं उन सबको मैं नमस्कार करता हूँ ।४६। 'शत्रुओं' के निमित्त जो 'अभिश्रिष' के बिना आतर्दन, करता है, जो पुरूवसु विह्रुत का निकालने वाला है और मधवा सन्धि' को मिलाता है ।४७। नीला, पीला, लाल धुँआ हमारे पास से दूर हो। भस्म करने वाली पृषातकी को स्थाणु में रखता हूँ ।४८। उपवासन की समस्त कृत्यायें और वरुण के समस्त पाश, वृद्धि और असमृद्धि को स्थाणु में रखता हूँ ।४९। हे वनस्पते, मेरा वस्त्र से सजा हुआ देह दमकता रहे। तू उसके आगे नीची कर, हम नाश को प्राप्त न हों ।५०।

ये अन्ता यावतीः सिचो व ओतवो य च तन्तवः ।
वासो यत् पत्नीभिरुतं तन्नः स्योनमुप स्पृशात् ।५१
उशतीः कन्यला इमाः पितृलोकात तति यतीः ।
अब दीक्षामसृक्षत स्वाहा ।५२
बृहस्पतिनाव सृष्टां विश्वे देवा अधारयन ।
वर्चो योषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सृजामसि ।५३
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन ।
तेजो गोषु प्रविष्टं यत तेनेमां सृजामसि ।५४
वृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
भगो गोषु प्रविष्ट यत्तेनेमां सं सृजामसि ।५५
वृहस्पतिनावसृष्टं विश्वे देवा अधारयन ।
यशो गोषु प्रविष्टा यत तेनेमां सं सृजामसि ।५६

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
पयो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥५७
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारेयन् ।
रसो गोषु प्रविष्टो यन्तेनेमाँ सृजामसि ॥५८
यदीमे केशिनो जना गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वन्तोधम् ।
अग्निष्टवा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥५९
यदीय दुहिता तव विकेश्यरुदद् गृहे रोदेन कृण्वत्यधम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥६०

किनारे, चित् तन्तु, ओतु और पत्नियों द्वारा बुना हुआ वस्त्र हम को सुख देनेवाला और कोमल स्पर्श वाला हो।५१। पितृगृह से पतिगृह को गमन करने वाली यह कन्यायें कामना करती हुई दीक्षा को छोड़ती हैं।५२। बृहस्पति की यह ओषधि विश्वेदेवाओं द्वारा पुष्ट की गई है, हम उसे गौओं के वर्च से मिलाते हैं।५३। बृहस्पति की रची हुई यह ओषधि विश्वेदेवताओं द्वारा पुष्ट की गई है, हम इसे गौओं के तेज से सम्पन्न करते हैं।५४। बृहस्पति द्वारा रचित यह ओषधि विश्वेदेवाओं द्वारा पुष्ट की गई है, हम इसे गौओं के सौभाग्य से युक्त करते हैं।५५ बृहस्पति द्वारा रचित यह ओषधि विश्वेदेवाओं द्वारा पुष्ट की गई है, हम इसे गौओं में वर्तमान यशसे जोडते हैं।५६। बृहस्पति द्वारा रचित यह ओषधि विश्वेदेवाओं द्वारा घोषित हुईहैं, हम इसे गौओंमें वर्तमान दुग्ध से मिश्रित करते हैं।५७। बृहस्पति द्वारा प्रयुक्त यह ओषधि विश्वेदेवाओं द्वारा पुष्ट हुई है, हम इमे गोरस से मिलाते हैं।५८। कन्या के जाने से दुःखी हुए केश वाले पुरुष तेरे घर में रोते हुए घूमे हैं। उस पाप से अग्निदेव तुझे छुडावें।५९। तेरी पुत्री अपने केशों को फैलाकर रोई है, उस पाप से सविता और अग्नि तुझे छुड़ावें।६०।

यज्जामयो यद्यु वतयो गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वंतीरघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥६१

यत् ते प्रजायां पशुषु यद्वा गृहेषु निष्ठितमघकृद्भिरघ कृतम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥६२
इयं नार्युप ब्रूते पूल्यान्यावपन्तिका ।
दीर्घायुरस्तु मे पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥६३
इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दम्पती ।
प्रजयनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम् ॥६४
यदासन्द्यामुपधाने यद् वोपवासने कृतम् ।
विवाहे कृत्यां यां चक्रु रास्नाने तां नि दध्मसि ॥६५
यद् दुष्कृत यच्छमल विवाहे वहतौ च यत् ।
तत् भभलस्य कम्बले मृज्महे दुरित वयम् ॥६६
संभले मलं सादयित्वा कम्बले दुरितं वयम् ।
अभूम याज्ञयाः शुद्धाः प्राण आयूंषि तारिषत् ॥६७
कृत्रिमः कण्टकः शतदन् य एषः ।
अपास्याः कश्यं मलमप शीर्षण्यं लिखात् ॥६८
अङ्गादङ्गाद वयमस्या अप यक्ष्मं नि दध्मसि ।
तन्मा प्रापत् पृथिवी मोत देवान् दिवं मा प्रापदुर्वन्तरिक्षम् ।
अपो मा प्रापन्मलमेतदग्ने यम मा प्रापत् पितृश्च सर्वात् ॥६९
स त्वा नह्यामि पयसा पृथिव्य। स त्वा नह्यामि पयसौषधीनाम्।
स त्वा नह्यामि प्रजया धनेन सा संनद्धा सनुहि ब्राजमेमम् ॥७०

तेरी भगनियाँ अथवा अन्य युवतियाँ दुःखित हुई, रोती हुई तेरे घर में घूमी हैं, उस पाप से सविता और अग्नि तुझे छुड़ावें ।६१। तेरे घर, सन्तान और पशुओं में दुःख फैलाने वालों ने जो दुःख फैलाया है, उस पाप से अग्नि और सविता तुझे छुड़ावें ।४२। खीलों की आहुति देती हुई यह वधु कामना करती है कि मेरा पति दीर्घजीवी और सौ वर्ष की आयु वाला हो ।६३। हे इन्द्र ! इन पति-पत्नी को चकवी—

चकवे के समान प्रीति दो । इन्हें सुन्दर गृह और सन्तानसे युक्त रखो । यह जीवन-भर विभिन्न भोगोंको भोगते रहें ।६४। सन्धान उपधान या उपवासन जो दोष लगाहै और विवाह कर्ममें जिन्होंने कृत्या की है,इन सब पापों को स्नान करने के स्नान में स्थित करते हैं ।६५। विवाह के समय या दहेज में जो जो दोष बना है, उसे हम मधुर बोलने वाले के कम्बल में स्थित करते हैं ।६६। कम्बलमें दुरित और सम्भल में मलको स्थित करके यह यज्ञीय पुरुष शुद्ध हो गये । अब देव हमें पूर्ण आयुकरें ।६७। यह कृत्रिम रूप से बनाया गया सैकड़ों दांतों, वाला कंघा इसके शीर्ष स्थान पर पहुँचता हुआ सिर के मैल को हटावे ।६८। इसके अङ्ग अङ्ग से संहारक दोष को दूर करता हूँ, परन्तु वह दोष मुझे न लगे । पृथिवी, आकाश, अन्तरिक्ष, देवगण और जलको भी वह दोष न लगे । हे अग्ने ! यह दोष पितरों और उनके अधिष्ठात्री देवता यमराज को भी न लगे ।६९। हे जाये ! पृथिवी से दूध के समान सारतत्व से और औषधियों के सार तत्व से मैं तुझे आवद्ध करता हूँ । तू प्रजा और धन से कम्पन होती हुई धन प्रदायिनी बन ।७०।

अमोऽइमस्मि सा त्वं सामाहमस्न्यृक् द्यौरह पृथिवी त्वम् ।
ताविह स भवाव प्रजामा जनयावहै ।।७१
लनियन्ति नावयव: पुत्रियन्ति सुदानव: ।
अरिष्टासु सचेवहि वृहते वाजसातये ।।७२
ये पितरो वधूदर्शा इमं वहतुमागममन् ।
ते अस्यै वध्वे संपत्न्यै प्रजावच्छर्मं यच्छन्तु ।।७३
येदं पूर्वागन् रशनायमाना प्रजामस्मै द्रविण चेह दत्वा ।
तां वहन्त्वमतस्यानु पन्थां बिराडियं सुप्रजा अत्यजषीत् ।।७४
प्र बुध्यस्व सुवुधा बुध्यमन्ना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।
गृहात् गच्छ गृहपत्नी बधासो दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ।।७५

हे जाये ! मैं साम हूं तू ऋक् है, मैं आकाश हूँ तू पृथिवी है, मैं विष्णुरूप और तू लक्ष्मी रूपहै । हम यहां साथ-साथ निवास करते हुए सन्तानोत्पत्ति करें।७१। हम दोनोंको नदियां प्रकट रखे । हम मंगलमय दान के दाता पुत्र को पावें । हम विस्तृत अन्न प्राप्ति के लिए दोनों संयुक्त रहते हुए प्राणों से अहिंसित रहें ।७२। वधू को देखने की इच्छा से इस दहेज के समीप, आने वाले पितर इस शीलवती वधू को सन्तान युक्त कल्याण प्रदान करने वाले हो।७३। पहिले रस्सी के समान बांधने को जो नारी इस मार्गको प्राप्त हुई थी, उस पहले न चलेहुए मार्गमें इस वधू को सन्तान और धन के द्वारा ले जाये । यह महिमावती वृद्धि को प्राप्त होती रहे ।७४। हे सुबुद्धे ! जगाई जाने पर तू सौ वर्ष को दीर्घायु प्राप्त करने के लिए जाग । गृह-पत्नी बनने के लिए घर चल । सविता देव तुझें दीर्घ जीवन दे ।७५।

।। इति चतुर्दशं काण्डं समाप्तम् ।।

—=—

पंचदश काण्ड

सूक्त १ (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि–अथर्वा । देवता–अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्द–पंक्ति, बृहती, अनुष्टुप्, गायत्री)

वात्य आसीदीयमान एव स प्रजापति समैरयत ।।१

स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्नपत्यत तत प्राजनयत् ।।२

तदेकमभवत् त तल्लाभभवत् तन्महदभवत् तज्ज्येष्टमभवत् । तद् ब्रह्माभवत् तत् तपोऽभवत् तत् सत्यतभवत् तेन प्राजायत ।।३

सोऽवर्धत स महानभवत् स महादेवोऽभवत् ।।४
स द्वेवानामीशां पर्यैत् स ईशानोऽभवत् ।।५
स एकव्रात्योऽभवत् स धनुरादत्त तदेवेन्द्रधनुः ।।६
न लमस्यादरं लोहितं पृष्ठम् ।।७
नीलेनैवाप्रिय भ्रातृव्यं प्रोणाति लोहितेन द्विषन्तं ।
विध्यतीति ब्रह्मवादिनो वदन्ति ।।८

चलते हुए ही व्रात्य समहपति ने प्रजापति को प्रेरणा दी ।१। प्रजापति ने अपने में सुवर्ण (आत्मा) को देखा और तब उसने सबको उत्पन्न किया ।२। प्रजापति ही ज्येष्ठ महत्, ललाम, ब्रह्मा, तप और सत्य हुआ । उसी से यह उत्पन्न हुआ।३। वह वृद्धिको प्राप्त हुआ, वही महान् और महादेब हुआ।४। वह देवताओंका स्वामी हुआ, वही ईशान हुआ ।५। वह सब समूहों का स्वामी एक 'व्रात्य' हुआ, उसने जो धनुष उठाया, वही इन्द्र धनुष कहलाया।६। उसका पेट नीला और पीठ लाल रङ्ग की है ।७। अप्रिय शत्रु यह नीले से घेरता और द्वेष करने वाले को लाल से विदीर्ण करता है, ब्रह्मनादी यह बताते हैं ।८।

सूक्त २

(ऋषि–अथर्वा । देवता–अध्यात्मम्, व्रात्य । छन्द–अनुष्टुप् त्रिष्टुप्–पंक्ति, गायत्री, बृहती, उष्णिक्)

स उदतिष्ठत् स प्राची दिशमनु व्यचलत् ।।१
तं वृहच्च रथन्तरं चादित्याञ्च विश्वे च देवा अनु व्यचलन् ।२
वृहते च वै स रथन्तरात चावित्येभ्यश्च देवेभ्य ।
आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ।।३
बृहतश्च वै स रथन्तरस्य चादित्यानां च विश्वेषां च देवानां
प्रियं धाम भवनि त्तस्य प्राच्यां दिशि ।।४
श्रद्धा पुंश्चली मित्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री ।
केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ।।५

भूतं च भविष्यच्च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ॥६
मातरिश्वा च पावमानश्च विपथवाहौ वातः ।
सारथी रेष्मा प्रतोदः ॥७
कीर्तिश्च यशश्च पुरः सरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या
यशो गच्छति य एवं वेद ॥८

वह उठकर पूर्व दिशा की ओर चल दिया ।१। वृहत् साम, रथन्तर साम, सूर्य और सब देवता उसके पीछे चले ।२। ऐसे विद्वान् हिंसा करता है ।३। (उसका सत्कार करने वाला) वृहत्साम, रथन्तर, सूर्य और सब देवताओं की प्रिय, पूर्व दिशामें अपना प्रिय धाम बनाता हैं ।४। श्रद्धा पुंश्चली, विज्ञान वस्त्र, दिन पाप, रात्रि केश, मित्र मागध हरित प्रवर्त, कल्मलि उसकी मणि होती है।५। भूत भविष्यत् परिष्कन्द और मन विपथ होता है।६। मातरिश्वा और पवमान विपथवाह रेष्मा क्रीड़ा और वायु सारणी होता है ।६। कीर्ति और यश पुर सर होते हैं । इस प्रकार जानने वालेको कीर्ति और यश मिलता है ।८।

स उदतिष्ठत् स दक्षिणं दिशमनु व्यचलत् ॥९
तं यक्षायज्ञियं च वामदेव्यं च यज्ञश्च यजमानश्च
पशवश्चानुव्यचलन् ॥१०
यज्ञायज्ञियस्य च वै स वामदेव्ययाय च यज्ञस्य यजमानाय च
पशुभ्यश्च वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥११
यज्ञायज्ञियस्य च वै स वामदेव्यस्य च यज्ञस्य च यजमानस्य ।
च पशूनां च प्रियं धात भवति तस्य दक्षिणार्या दिशि ॥१२
उषाः पुश्चली मन्त्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीयं रात्री ।
कशा हरितो प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥१३

अमावास्या च पौर्णमासी च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ।
सामरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी
रेष्मा प्रतोदः ।
कीर्तिश्च यशश्च पुरः सरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या
यशो गच्छति य एवं वेद ॥१४

वह उठकर दक्षिण दिशा की ओर चला ।९। यज्ञायज्ञिय, साम यज्ञ यजमान, पशु और वामदेव्य उसके पीछे-पीछे चले ।१०। ऐसे व्रात्य का निन्दक यज्ञायज्ञिय, साम, यज्ञ, यजमान, पशु और वामदेव्य का अपराधी होता है ।११।(उसका सत्कार करता है तो) यज्ञायज्ञिय,साम यज्ञ, यजमान, पशु और वामदेव्य की प्रिय दक्षिण दिशा में उसका भी प्रिय धाम होता है ।१२। विज्ञान वस्त्र, दिन पगड़ी, रात्रि केश, उषा पुञ्चली मन्त्र मागधं और हरित प्रवर्त, कल्माणि मणि होती है ।१३। अमावस्या, पूर्णिमा उसके परिष्कन्द होते हैं ।१४।

सः उदतिष्ठत् स प्रतीची दिशमनु व्यचलत ॥१५
त वैरूप च वैराज चापश्च वरुणश्च राजानुव्यचलम् ॥१६
वैरूपाय च वै स वैराजाय चद्भवश्च वरुणाय च राज्ञ आ ।
वृश्चते य एवं विद्वाँसं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥१७
वैरूपस्य वै स वै स वैराजस्य चापां च वरुणात्य च राज्ञः
प्रिय धाम भवति तस्य प्रतीच्यां दिशि ॥१८
इरा पुंश्चली हसो मागधो विज्ञान वासोऽहरुष्णीषं रात्रीकेशा
हरितौ प्रवतौ कल्मलिर्मणिः ॥१६
अहश्च रात्री च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ।
मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातःसारथीरेष्माप्रतोदः।
कैतिश्च यशश्च पुरः शयावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति-
य एवं वेद ॥२०

वह उठा और पश्चिम दिशा में गमन किया।१५। जल, वरुण, वैरूप, वैराज उसके पीछे चले।१६। ऐसे व्रात्य का निन्दक जल, वरुण वैरूप, वैराज का अपराधी होता है।१७। (सत्कार करने वाला) जल, वरुण, वैरूप, वैराज का प्रिय और उसका दक्षिण में प्रियधाम होता है।१८।पृथिवी पञ्चली, विज्ञान वस्त्र दिन पगडी, रात्रिकेश,हास्य मागध हरित् प्रवर्त, कल्मणि मणि होती है।१९। रात्रि और दिवस परिष्कन्द होते हैं।२०।

स उदतिष्ठत् स उदीची दिसमणु व्यचलत् ॥२१

तं श्यैत च नैधसं च सप्तर्षिभ्यश्च सोमश्च राजानुव्यछलन्॥२२

श्यैताय च वै स नौधसाय च सप्तर्षिभ्यश्चसौमाय च राज्ञ आ बृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥२३

श्यैतस्य च वं स नौधसस्य च सप्तर्षीणं च सोमाय च राज्ञः प्रियं धाम भवति तस्योदीच्यां दिशि ॥२४

विद्युत पुश्चली स्तनयित्नुर्मागधो विज्ञानं वासोऽहसुष्णीव रात्रा केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥२५

श्रतं च विश्रतं च परिष्क्रन्दो मनो विपथम् ॥२६

मातारिश्वा चपवमानश्च विपणवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः ॥२७

कीर्तिश्च यशश्चपुरः सरावैनं कीर्तिगच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥२८

वह उठा और उत्तर की ओर गमन किया।२१। सप्तऋषि सोम श्यैत, और नोधस उसके अनुगत हुए।२२। ऐसे व्रात्य का निन्दक सप्तर्षि, सोम, श्यैत, नोधस का ही अपराधी होता है।२३। व्रात्य का प्रशसक) उत्तर में सप्तर्षि सोम, श्यैत और नोधसका प्रिय धाम उसका होता है।२४। विद्युत पुंश्चली, विज्ञान वस्त्र, दिन पगड़ी, रात्रिकेश, स्तनयित्नु मागध, हरित प्रवर्त और कल्मणि मणि होती है।२४। श्रुत विश्रुत परिष्कन्द और मन विपथ होता है।२६। वात सारथी, रेष्मा क्रीडा, मातरिश्वा और पवमान विपथवाह होते हैं।२७। कीर्ति और

यश पुरेःसर होते हैं, ऐसा जानने वाला कीर्ति और यशको प्राप्त होता है ।२८।

सूक्त ३

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्द—गायत्री, उष्णिक्, जगती, बृहती, अनुष्टुप्, पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

स संवत्सरमूर्ध्वोऽतिष्ठत् त देवा अब्रुवन् व्रात्त
किं नु तिष्ठसीति ।।१
सोऽब्रवीदासन्दीं म सं भरन्त्विति ।।२
तस्मै व्रात्यायासन्दी समभरन् ।।३
तस्या ग्रीष्मश्च वसन्तश्च द्वौ पादावास्ता शरच्च वर्षाश्चद्वौ।४
बृहच्च रथन्तरं चानूस्ये आस्तां तज्ञायज्ञिय च ।
वामदेव्य च तिरश्च्ये ।।५
ऋचः प्राञ्यस्तन्तवो यजूंषि तिर्यञ्चः ।।६
वद आस्तरणं ब्रह्मोपबहृणम् ।।७
सामासाद उद् गीथोऽपश्रयः ।।८
तामासन्दी व्रात्य आरोहत् ।।९
तस्य देवजनाः परिष्कन्दा आसन्त्संकल्पा प्रहाय्या
विश्वानि भूतान्युपसदः ।।१०
विश्वान्येवास्य भूतान्युपसदो भवन्ति य एव वेद ।।११

वह वर्ष भर तक खड़ा रहा, तब देवताओं ने पूछा कि हे व्रात्य ! यह तप क्यों कर रहे हो ।१। उसने उत्तर दिया—मेरे निमित्त आसन्दी (चौकी) बनाओ । तब देवताओं ने उसके लिए आसन्दी को बनाया ।३ उसके ग्रीष्म और बसन्त दो पाद हुए और शरद् वर्षा नामक भी दो पाद हुए ।४। बृहत् और रथन्तर बो अनुच्य तथा यज्ञायज्ञिय और

वामदेव्य तिरश्च्य हुए ।५। ऋचा और प्रांचा तन्तु हुए यजु तिर्यंक् हुए ।६। वेद आस्तरण और ब्रह्म उपबर्हण हुआ ।७। साम आसाद और उद्गीथ उपश्रय हुआ ।८। उस आसन्दी पर व्रात्य चढ़ा ।९। देवता परिष्कन्द हुए, सत्य संकल्प प्रहाय्य और सब भूत उपसद हुए ।१०। इसके बात के जानने वाले के सकल भूत उपसद होते हैं ।११।

सूक्त ४

(ऋषि–अथर्वा । देवता–अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्द–जगती अनुष्टुप्, गायत्री, पंक्ति, त्रिष्टुप्, बृहती, उष्णिक्)

तस्मै प्राच्या दिशः ॥१
वासन्तौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् वृहच्च रथन्तरंचानुष्ठातारौ॥२
वासन्तोवेनं मासौ प्राच्या दिशो गोपायतो वृहच्च रथन्तरं ।
चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥३

बसन्त ऋतुके दो महीनों को देवताओंने पूर्व दिशासे रक्षक नियुक्त किया और बृहत्साम तथा रथन्तर सास को अनुष्ठाता किया ।१-२। ऐसे जानने वाले को पूर्वकी ओर से बसन्त ऋतु दो महीने रक्षा करते तथा वृहत् और रथन्तर उसके अनुकूल होते हैं ।३।

तस्मै दक्षिणाया दिशः ॥४
प्रैष्मों मासौ गोप्तारावकुर्वन् यज्ञायज्ञिय च ।
वामदेव्यं चानुष्ठातारौ ॥५
ग्रैष्मावेनं मासौ दक्षिणाया दिशो गोपायतो यज्ञायज्ञियं च ।
मादेव्यं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥६

दक्षिण दिशा की ओर से ग्रीष्म ऋतु के दो महीनों को देवताओंने रक्षक बनाया और यज्ञायज्ञिय तथा वामदेव्यको अनुष्ठाता किया।४-५। ऐसा जानने वाले की दक्षिण दिशा की ओर से ग्रीष्म ऋतुके दो महीने रक्षा करते हैं और यज्ञायज्ञिय वामदेव्य उसके अनुकूल होते हैं ।६।

तस्मै प्रतीच्या दिशः ।।७

वार्षिकौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् वैरूपं च वैराजं चानुष्ठातारौ।।८

वार्षिकाँवेनं मासौ प्रतीच्या दिशो गोपायतो वैरूपं च वैराज चानु तिष्ठतो य एव वेद ।।९

पश्चिम दिशा की ओर से वर्षा ऋतु के दो महीनों को देवताओं ने रक्षक नियुक्त किया और वैरूप-वैराज को उसका अनुष्ठाता बनाया ।७-८। ऐसा जानने वाला पश्चिम की ओर से वर्षा ऋतु के दो मासों द्वारा रक्षित होता है और वैराज उनके अनुकूल रहते हैं ।९।

तास्मा उदीच्या दिशः ।।१०

शारदौ मासी गोप्तारावृकुर्वञ्छ्यैत च नौधसं चानुष्ठातारौ ।।११

शारदावेनं मासाबुदीच्या दिशो गोपायतः श्यैतं च नौधस चानु तिष्ठतो य एवं वेद ।।१२

उत्तर दिशा की ओर से शरद् ऋतु के दो मासों को देवताओं ने रक्षक नियुक्त किया और नौधस तथा श्वेतको उसका अनुष्ठाता बनाया ।१०-११। ऐसा जानने वाला पुरुष उत्तर दिशा की ओर से शरद्ऋतु के दो महीनों द्वारा रक्षित होता है और नौधस तथा श्यैत उसके अनुकूल होते हैं ।१२।

तस्मै ध्रुवाया दिशः ।।१३

हैमनो मासौ गोप्तारावकुर्वन् भूमि गाग्नि चानुष्ठातारौ ।।१४

हैमनावेन मासौ ध्रुवाया दिशो गोपायतो भूमिश्चाग्निश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ।।१५

ध्रुव दिशा की ओर से हेमन्त ऋतु के दो महीनों को देवताओंने रक्षक नियुक्त किया और पृथिवी तथा अग्नि को उसका अनुष्ठाता बनाया ।१४। ऐसा जानने वाला पुरुष ध्रुव दिशा की ओर से हेमन्तके दो मासों द्वारा रक्षित रहताहै और पृथिवी अग्नि उसके अनुकूल रहते हैं ।१५।

तस्मा ऊर्ध्वाया दिशः ॥१६
शैशिरौ माजौ गोप्तारावकुर्वन् दिवं चादित्यं चानुष्ठातारौ॥१७
शैशिरावेनं मासावूर्ध्वाया दिशो गोपायतो द्यौश्चादित्य-
श्चानुतिष्ठतो य एवं वेद ॥१८

देवताओं ने शिशिर ऋतु के दो मासों का ऊर्ध्व दिशा की ओर से रक्षक नियुक्त किया और आकाश तथा सूर्यको उसका अनुष्ठाता बनाया।१६-१७। ऐसा जानने वाला पुरुष शिशिर ऋतु के दो महीनों द्वारा रक्षित रहता है तथा आदित्य और आकाश दोनों उसके अनुकूल रहते हैं।१८।

सूक्त ५

(ऋषि—अथर्वा। देवता—रुद्र। छन्द—गायत्री, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, पंक्ति, बृहती)

तस्मै प्राच्या दिशा अन्तर्देशाद भवभिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वंम्॥१
भव एनमिष्वास प्राच्या दिशो अन्तर्देशादनु ष्ठातानु तिष्ठति
नैनं शर्वा न भवौ णेशानः ॥२
नास्य पशून् न समानान्हिनस्ति य एवं वेद ॥३

उसके लिए पूर्व दिशाके कोने से बाण का सन्धान करने वाले भव को देवताओं ने उसका अनुष्ठाता बनाया।१। पूर्व दिशा के कोने भव इसके अनुकूल रहते और भव, शर्व, ईशान भी अनुकूल रहते हैं।२। ऐसा जानने वालेके समान पुरुषों और पशुओं को वे हिंसित नहीं करते।३।

तस्मै दक्षिणाया द्विशो अंदर्देशाच्छर्वाभिष्वासमनुष्ठातारम
कुर्वन् ॥४
शर्वं एनमिष्वासो दक्षिणाया दिशो अंतर्देशादनुष्ठातानृतिष्ठति
नैनं शर्वो न भवो नेशानः। नास्य पशन न समानान् हिनस्ति
य एवं वेद ॥५

उसके निमित्त दक्षिण दिशा के कोणसे वाण प्रक्षेप करने वाले शर्व को देवताओं ने अनुष्ठाता बनाया ।४। इस प्रकार जानने वाले पुरुष के लिये शर्व दक्षिण कोण में अनुकूल रहते हैं और उसके समान पुरुषों तथा पशुओं को हिंसित नहीं करना ।५।

तस्मै प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशात् पशुपतिमिष्वासमनुष्ठातारम-कुर्वम् ॥६

पशुपतिरेनमिष्वास: प्रतीच्या दिशो अंतर्देशादनृष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भर्वो नेशानः । नास्य पशून् न समानान हिनन्ति य एव वेद ॥७

उसके लिए पश्चिम दिशा के होने से बाण प्रक्षेप करने वाले पशु-पतिको देवताओं ने अनुष्ठाता नियुक्त किया।६। इस प्रकार जानने वाले के लिए पशुपति पश्चिम दिशा के कोने में अनुकूल रहते हैं और इसके समान पुरुषों तथा पशुओं को हिंसित नहीं करते हैं ।७।

तस्मा उदीच्या दिशो अंतर्देशादुग्रं देवमिप्वासमनुष्ठातारम-कुर्वन् ॥८

उग्र एनं इष्वास उदीच्या दिशो अंतर्देशादनुष्ठन्तानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः । नास्यं पशून् न समानान् हिनस्ति य एव वेद ॥९

उत्तर दिशा के कोणसे देवताओं से बाण प्रक्षेप करने वाले उग्रदेव को अनुष्ठाता बनाया।७। इस प्रकार जानने वाले पुरुष के उग्रदेव उत्तर दिशाके कोणमें अनुकूल रहते हैं और उसके समान पुरुषों तथा पशुओं को हिंसित नहीं करते ।९।

तस्मै ध्रुवाया दिशो अंतर्देशाद् रुद्रमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ।१०।

रुद्र एनमिष्वासो ध्रुवाय दिशो अंतर्देशादनुष्ठातानु

तिष्ठति नैनं अर्वो न भव नेशानः। नास्य पशून न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥११

ध्रुव दिशा के अन्तर्देशसे वाण प्रक्षेप करने वाले रुद्र को देवताओं ने अनुष्ठाता नियुक्त किया।१०। इस प्रकार जानने वाले पुरुष के रुद्र-देव ध्रुव अन्तर्देश में अनुकूल रहते हैं और इसके समान पुरुषों तथा पशुओं को हिंसित नहीं करते हैं।११।

तस्मा ऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशान्महादेवमिष्वासमनुष्ठातारम-कुर्वन् ॥१२

महादेव एनमिष्वासऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु-तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः नास्य पशू न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥१३

उर्ध्वदिशा के कोणसे बाण प्रक्षेप करने वाले महादेव को देवताओं ने अनुष्ठाता किया।१२। वे महादेव, इस प्रकार जानने वाले पुरुष के लिए उर्ध्वकोणमें अनुष्टुप् रहतेहैं और इसके समान पुरुषों तथा पशुओं को हिंसित नहीं करते हैं।१३।

तस्मै सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्य ई ातभिष्वासरनुष्ठातारम् कुर्वन ।१४।

ईशान एनमिष्वासः सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्योऽनुष्टानुतिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः एवं वेद ॥१५

नास्य पशून् न हिनस्ति य ॥१६

सब विशाओं के कोणों में वाण प्रक्षेप करने वाले ईशान को देव-ताओं ने अनुष्ठाता बनाया।१४। सब दिशाजों के कोणों में ईशान इस प्रकार जानने वाले के अनुकूल रहते और इसके समान वयस्क पुरुषों तथा पशुओं की हिंसा न करते। सवर्ण भी इसे [illegible] नहीं करते।१५।

सूक्त ६

(ऋषि–अथर्वा । देवता––अध्यात्मम् व्रात्यः । छन्द––पंक्तिः, त्रिष्टुप्,
बृहती, जगती, उष्णिक्, अनुष्टुप्)

स ध्रुवां दिशमनु व्यचलत् ।।1
तं भूमिश्चाग्निश्चौषधयश्च वनस्पतयश्च वानस्पत्याश्च वीरुध
श्चानुव्य जलन् ।।२
भूमेश्च वै सोग्नेश्चौषधीनां च च वनस्पतीनां वानस्पष्यानां
च वीरुधां च प्रिय धाम भवति य एवं वेद ।।३

वह प्रात्य ध्रुव दिशाकी ओर चल पड़ा।१। पृथिवी,अग्नि,औषधि, वनस्पति और वनस्पतियों में जो ओषधि हैं, वे सब उसके अनुगत हुए ।२। इस प्रकार जानने वाला पृथिवी, अग्नि, ओषधि वनस्पति और वनस्पत्यात्मक ओषधि का प्रिय धाम होता है ।३।

स ऊर्ध्वा दिशमनु व्यचलत् ।।४
तमृत च सत्य च सूर्यश्च नक्षत्राणि चानुव्यचलन् ।।५
ऋतस्य च वै स सत्यस्य च सूर्यस्य च चन्द्रस्य च
नक्षत्रार्णा च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ।।६

वह उर्ध्व दिशा की ओर चल पड़ा ।४। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ऋति, सत्य उसके अनुगत हुए ।५। इस प्रकार जानने वाला सूर्य, चन्द्र,नक्षत्र, ऋति, सत्य का प्रिय-धाम होता है ।६।

स उत्तमां दिशमनु व्यचलत् ।।७
तमचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रह्म चानुव्यचवम् ।।८
ऋचां च वै स साम्ना च यजूषां च ब्रह्मणश्च प्रियं धाम
भवति एवं वेद ।।९

उसने उत्तम दिशा की ओर गमन किया ।७। साम, यजु, ऋचायें और ब्रह्म उसके पीछे चले ।८। इस प्रकार जानने वाला साम यजु, ऋचा और ब्रह्म का प्रिय धाम होता है ।९।

स बृहती दिशमनु व्यचलत् ।।१०
तमियिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीण्चानव्यचलन्
।११।
इतिहासत्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशसीनांच
प्रियं धाम भवति य एवं वेद् ।।१२

उसने बृहती दिशा में गमन किया ।१०। तब पुराण, इतिहास, मनुष्यों की प्रशंसात्मक गाथायें उसके पीछे-पीछे चले ।११। इस बात के जानने वाला पुराण, इतिहास और गाथाओं का प्रियधाम होता है। ।१२।

स परमां दिशमनु व्यचलत् ।।१३
तमाहवनीयश्च गार्हपत्यश्च दक्षिणाग्नेश्च यज्ञस्य च
यजमानस्य च पशूनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ।।१४-१५

उसने परम दिशा को प्रस्थान किया ।१३। आह्वानीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि उसके अनुगामी हुये और यज्ञ, यजमान, पशु भी पीछे पीछे चले ।१४। इस बातके जानने वाला आह्वानीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, यज्ञ, यजमान और पशुओं का भी प्रिय धाम होता है ।१५।

सोऽनार्दिष्टां दिशमनु व्यचलत् ।।१६
तमृतवश्चार्तवाश्च लोकाश्च लोक्याश्च मासाश्चार्धमासाश्चाहोरात्रे चानव्यचलम् ।।१७
ऋतूनां च वै स आर्तवानाँ च लोकानां च लौक्यानां च
मासानां चार्धमासानां चाहोरात्रयोश्च प्रियं धाम भवति य
एवं वेद ।।१८

वह अनादिष्ट दिशा की ओर चल पड़ा ।६ ऋतुयें, पदार्थ, लोक, मास, पक्ष, दिवस और रात्रि उसके पीछे चले ।१७। इसे जानने वाला पुरुष ऋतु, पदार्थ, लोक, मास, पक्ष, दिन-रात्रि का प्रिय धाम होता है ।१८।

सोऽनावृत्तां दिशमनु व्यचलत् ततो नावत्स्यर्न्नमन्यत ।।१९
तं दितिश्चादितश्चेडा चेन्द्राणी चान व्यचलन् ।२०
दितेश्च वै सोऽदितेश्चेडायाश्चेन्द्रा रामाश्च प्रियंधाम भवति य।
एवं वेद ।२१। (७)

उसने अनावृत दिशा की ओर गमन किया और वहां रहना ठीक नहीं माना ।१९। उसके पीछे इडा, इन्द्राणी, दिति और अदिति चलीं ।२०। इसे जानने वाला पुरुष, इडा, इन्द्राणी दिति, अदिति का प्रिय धाम होता है ।२१।

स दिशोऽनु व्यचन् तं विराडनु व्यचलन् सर्वोच देवा:
सर्वाश्च देवता· ।२२।
विराजश्च वै स सर्वेषां च देवानां सर्वासां च देवतानां प्रियंधाम
भवति य एवं वेद ।२३। (८)

उसने दिशाओंकी ओर गमन किया और विराट् आदि सब देवता उसके अनुगामी हुए ।२२। इस प्रकार जानने वाला विराट् आदि सब देवताओं का प्रियधाम होता है ।२३।

स सर्वानन्तर्देशाननु व्यचलत् ।।२४
तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चानुव्यचलन।२५
प्रजापतेश्च वै स परमेष्ठिनश्च पितुश्च पितामहस्य च प्रियं
धाम भवति य एव वेद । २६ ९--६ ।

वह सभी अन्तर्देशों की ओर चला ।२४। प्रजापति परमेष्ठी, पिता और पितामह भी उसके पीछे चले ।२५। इस प्रकार जानने वाला प्रजा पति परमेष्ठी, पिता और पितामह का प्रियधाम होता है ।।२६

सूक्त ७

(ऋषि–अथर्वा । देवता--अध्यात्मम्, व्रात्य: । छन्द–गायत्री, बृहती, उष्णिक्, पंक्ति:)

समहिमा सद्र र्भत्वान्तं पृथिव्या अवच्छत् स समुद्रोऽभवत् ।।१

तं प्रजापतिश्च परमेष्टी च पितामहश्चापश्च श्रद्धा च वर्षं भूत्वानुव्य वर्तयन्त ॥२
ऐनमापो गच्छत्यैन श्रद्धा गच्छन्त्यैनं वष गच्छति य एव वेद ।३
तं श्रद्धा च यज्ञश्च लोकश्चान्न च भूत्वाभिपर्यावर्तन्त ॥४
ऐनं श्रद्धा गच्छत्यैनं लोको गच्छत्यैन लोको गच्छत्यैनमन्नं गच्छत्येनमन्नाद्मं गच्छति य एव वेद ॥५

वह पृथिवी के अन्त पर सद्र् महिमा होकर गया और समुद्र बन गया ।१। प्रजापति परमेष्ठी पिता, पितामह, जल और श्रद्धा यह सभी वर्षा रूप होकर उसके अनुकूश बर्तने लगे ।२। इस प्रकार जानने वाले को जल, और श्रद्धा यह सभी वर्षा रूप होकर उसके अनुकूल बर्तने लगे। इस प्रकार जानने वाले को जल, श्रद्धा वर्षा प्राप्त होती है ।३। लोक, यज्ञ, अन्न, अन्नाद्यि और श्रद्धा अपनी सत्ता में प्रादुर्भूत होकर उसके चारों ओर अवस्थित हुये।४। इस प्रकार जानने वाले को लोक, यज्ञ, अन्न, अन्नाद्य और श्रद्धा प्राप्त होती है ।५।

सूक्त ८ (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्द—उष्णिक्, अनुष्टुप्, पंक्ति)

सोऽरज्यत ततो राजन्योऽजायत ॥१
स विशः सबन्धूनन्नामन्नाद्यमभ्युदतिष्ठत् ॥२
शिवाँ च वै स सबन्धूनाँ चाग्नस्य चान्नाद्यस्य च
प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥३

वह रञ्जन करता हुआ राजा बना ।१। वह प्रजाओं के बन्धुओंके अन्न और अन्नाद्य के अनुकूल बर्तने लगा ।२। इस प्रकार जानने वाला प्रजाओं का, अन्न अनाद्य का प्रिय धाम होता है ।३।

सूक्त ९

(ऋषि–अथर्वा । देवता–अध्यात्मम् व्रात्यः । छन्द–जगती, गायत्री, पंक्ति)

स विशोऽनु व्यचलत् ।।१
तं सभा च समितिश्च सेना च सुरा चानुव्यचलन् ।।२
सभायाश्च वै स समितेश्च सेनायाश्च सुरायाश्च प्रिय धाम भवति य एव वेद ।।३

उसने प्रजाओं के अनुकूल व्यवहार किया ।१। सभा, समिति,सेना और सुरा उसके अनुकूल हुये।२। इस प्रकार जानने वाला, सभा,समिति सेना और सुरा का प्रिय धाम हो जाता है ।३।

सूक्त १०

(ऋषि–अथर्वा । देवता–अध्यात्मम् व्रात्यः । छन्द-बृहती, पंक्ति, उष्णिक्)

तद् यस्यैचं विद्वान् व्रात्यो राज्ञोऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ।।१
श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत् तथा क्षत्राय ना वृश्चते-तथा राष्ट्राय ना वृश्चते ।।२
अतो वै ब्रह्म च क्षत्र चोदतिष्ठतां ते अब्रूतां क प्रविशातिधे ।३
बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्र विशत्विन्द्रं क्षत्रं तथा वा इति ।।४
अतौ वै वृहस्पतिमेव ब्रह्म प्राविशदिन्द्रं क्षत्रम ।।५
इयं वा उ पृथिवी बृहस्पतिद्यौरेवेन्द्रः ।।६
अय वा उ अग्निर्ब्रह्मासाबादित्यः क्षत्रम् ।।७
ऐनं ब्रह्मा गच्छति ब्रह्मवर्चसी भवति ।।८
यः पृथिवीं बृहस्पतिमग्निं ब्रह्मवेद ।।९
ऐनमिन्द्रियं गच्छतीन्द्रियवानभवति ।।१०
य आदित्य क्षेत्रं दिवमिन्द्र वेद ।।११

ऐसी विज्ञ व्रात्य जिस राजा का अतिथि हो ।१। तो उसका सम्मान करे। ऐसा करने से राष्ट्र और क्षात्र शक्तिको वह नष्ट नहीं करता।२ फिर ब्राह्मबल और क्षात्र शक्ति कहने लगे कि हम किसमें प्रविष्ट हों? ।३। ब्राह्मबल-बृहस्पति में और क्षात्र शक्ति इन्द्रमें प्रविष्ट हो ।४। तब ब्राह्मबल-बृहस्पति में और क्षात्र बल इन्द्र में प्रविष्ट हो गया ।५। आकाश ही इन्द्र है, पृथिवीही बृहस्पति है।६। आदित्य क्षात्र बल और अग्नि ब्राह्मबल है ।७। जो पृथिवी को बृहस्पति और अग्नि को ब्रह्म जानता है वह ब्राह्म बल और ब्रह्मवर्च को प्राप्त होता है ।८-९। जो आदित्य को क्षत्र और द्यौ को इन्द्र जानता है उसे इन्द्रियाँ प्राप्त होती है ।१०-११।

सूक्त ११

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम् व्रात्य । छन्द-पंक्ति, शक्वरी, बृहती, अनुष्टुप्)

तद् यस्येवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ।।१
स्वयमेनमम्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्य क्वाऽवात्सीर्व्रात्योदक ब्रात्य-पयन्तु ब्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु ब्रात्य यधा ते वशस्त-थास्तु ब्रात्य यथा ते निकामस्तथास्तित्वित ।।२
यदेन माह ब्रात्य क्वाऽवात्सोरिति पथएवंतेनदेवयानानवरुद्धे ।।३
यदेनमाह ब्रात्योदकमित्यप एव तेनाव रुन्द्धे ।।४
यदेनमाह ब्रात्य तर्पयन्त्विवति प्राणामेव तेन वर्षीयांस कुरुते ।।५
यदेनमाह ब्रात्य यथा ते प्रियं तथास्त्विवति प्रियमेवतेनावरुन्द्धे।६
ऐन प्रियं गच्छति प्रियः प्रियस्य भवति य एव वेद ।
यदेनमाह ब्रात्य यथा ते वशस्तथास्त्विवति वशमेव तेनावरुन्द्धे।८
ऐनं वशो गच्छति वशो वशिनाँ भवति य एव वेद ।।९

यदेनमाह व्रात्य था ते निकामस्तथास्त्वति निकाममेव-
तेनाव रुन्द्धे ।।१०
ऐनं निकामो गच्छति निकामे निकामस्य भवति य एवं वेद।।११

ऐसा विज्ञ व्रात्य जिसके घर में अतिथि हो ।१। तब इसे स्वयं आसन देकर कहे–'हे व्रात्य ! तुम कहां निवास करते हो ? यह जल है ! हमारे घर के व्यक्ति तुम्हें संतुष्ट करे। तुम्हें जो प्रिय हो, जैसा तुम्हारा वश हो, जैसा तुम्हारा निकाम हो, वैसा ही हो ।२। यह कहने पर कि हे व्रात्य ! तुम कहाँ रहोगे ? देवयान मार्ग ही खुल जाता है।३ इससे यह कहने वाला कि हे व्रात्य ! यह जल है। अपने लिए जल को ही खोल लेता है ।४। यह कहने वाला कि हमारे व्यक्ति तुम्हें तृप्त करें अपने ही प्राणों को सींचता है ।५। यह कहने वाला कि जो तुम्हें प्रिय होगा वही होगा अपने ही प्रिय कार्यों का उद्‌घाटन करता है ।६। ऐसा जानने वाला प्रिय पुरुषको प्राप्त होता हुआ प्रियको भी प्रिय हो जाता है ।७। यह कहने वाला कि तुम्हारा वश है वैसा ही हो, अपने लिये उसने वश को ही खोल लेता है ।८। इस प्रकार जानने वाले को वश प्राप्त होता है वह वश करने वालोंको भी वश में कर लेता है ।९। यह कहने वाला कि तुम्हारा निकाम हो वैसाही हो, अपने लिए कामनाओं को खोल लेता है ।१०। इस प्रकार जानने वाले को अभीष्ट प्राप्त होते हैं ।११।

सूक्त १२

(ऋषि–अथर्वा। देवता––अध्यात्मम्, व्रात्यः। छन्द––गायत्री, बृहती, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्)

तद् यस्यैवं विद्वान व्रात्य उद्ध तेष्वग्निष्वधिश्रितेऽग्नि-
होत्रेऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ।।१
स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्यात्ति सृज होष्यामीति ।।२
स चाति सृजेज्जुहुयात्र चातिसृजेन्न जुहुयात् ।।३
स य एवं विदुषा व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति ।।४

प्र पितृयाणां पन्थां जानाति प्र देवयानम् ॥५
न देवेष्वा वृश्चते हुतमस्य भवति ॥६
पर्यस्यास्मिँल्लोक आयतनं शिष्यते य एव विदुषा
व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति ॥७
अथ य एवं विदषा व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ॥८
अ पितृयाणं पन्थाँ जानाति न देवयानम् ॥९
आ देवेषु वृश्चते अहुतमस्य भवति ॥१०
नास्यास्मिँल्लोक आय नं शिष्यते य एवं विदुषा
व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ॥११

अग्निहोत्रके अधिश्रित होने और अग्नियोंके उद्धृत होने पर यदि विज्ञ व्रात्य घर पर आवे ।१। तब उसे स्वयं अभ्युत्थान देता हुआ कहे कि हे व्रात्य ! मुझे होम करने की आज्ञा दो !।२। उसके आज्ञा देनेपर आहुति दे, अन्यथा न दे।३। ऐसे विद्वान व्रात्यकी आज्ञा पर जो आहुति देता है, वह पितृयान मार्ग और देवयान मार्ग को जान लेता है।४-५। इसकी आहुति देवताओं को ही पहुंचती है ।६। ऐसे विद्वान् व्रात्य की आज्ञा पर आहुति देताहै तो लोकसे सब ओर इसका आयतन अवशिष्ट रहता है।७। ऐसे विद्वान व्रात्य की आज्ञा न होने पर भी यदि आहुति देता है ।८। तो वह पितृयानु मार्ग या देवयान मार्ग किसी को भी नहीं जान पाता ।९। जो ऐसे विद्वान् व्रात्य की आज्ञा बिना आहुति देता है तो वह आहुति व्यर्थ हो जाती है और वह देवताओं द्वारा नष्ट कर दिया जाता है ।१०।

सूक्त १३

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यातमन्, व्रात्यः । छन्द—उष्णिक्, अनुष्टुप्, गायत्री, बृहती, पंक्तिः, जगती)

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्य एकां रात्रिमतिथिगृहे वसति ॥१

ये पृथिव्यां पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥२

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो द्वितीयां रात्रिमतिथिगृहे वसति ।१३
येन्तरिक्षे पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥४

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यस्तृतीयां रात्रिमतिथिगृहे वसति ॥५
ये दिवि पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥६

तद यस्यैव विद्वान् व्रात्यश्चतुर्थी रात्रिमतिथिगृहे वसति ॥७
ये पुण्यानां पुण्या लोकास्तानेन रुन्द्धे ॥८
तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽपरिमिता रात्रिरतिथिगृहे वसति ॥९

य एवापरिमिता: पुण्या लोकास्तत्नेन तेनाव रुन्द्धे ॥१०
अथ यस्याव्रात्यो व्रात्यब्रुवोनामाविभ्रत्यतिथिगृंहानागच्छेत्।११
कर्षेदेनं न चैनं कर्षेत ॥१२

अस्य देवताया उदक याचामीनां देवतां वासय इमामिमां
देवता परि परि वेवष्मीत्येन परिवेवेष्यात् ॥१३
तास्यामेवास्य तद देवतायाँ हुत भवति य एव वेद ॥१४

जिनके घरमें ऐसा विद्वान व्रात्य रात्रि में अतिथि होता है।१। वह उसके फल से पृथिवीके सभी पुण्य लोकों को जीतता है।२। जिसके घर में ऐसा विद्वान् व्रात्य द्वितीय रात्रि में भी रहता है ।३। तो उसके फल द्वारा वह अन्तरिक्ष के सब पुण्य लोकों को जीत लेता है।४। यदि ऐसा विद्वान् व्रात्य तीसरी रातभी रहता है।५। तो उसके फलसे वह आकाश के समस्त पुण्य लोकों को अपने लिये खोल लेता है ।६। जिसके घर में ऐसा व्रात्य चौथी रात रहता है ।७। तो उसके वह पुण्य आत्मा पुरुषों के पुण्य लोकों को खोल लेता है ।८। जिसके घर में ऐसा विज्ञ व्रात्य अनेक रात्रियों तक निवास करता है ।९। उसके फलसे यह असंख्यपुण्य लोकों को खोल लेता है ।१०। जिसके घर व्रात्य बनने वाला अव्रात्य आवे ।११। तो क्या उसे भगा दे ?

उसको भी भगाना उचित नहीं ।१२। मैं इस देवता को बसाता हूँ मैं देवता से जल की याचना करता हूँ मैं इस देवता को परोसता हूँ, यह मानता हुआ परोसना आदि कार्य करे ।१३। (अर्थात् यदि कोई अज्ञानी अथवा अविद्वान अतिथि आ जाय तो भी परम्परा की रक्षा के विचार उसका साधार रूप से सम्मान करो) जो इस बात को जानता है उसकी आहुति इस देवता में स्वाहुत होती है ।१४।

सूक्त १४

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्य: । छन्द-अनुष्टुप्, गायत्री, उष्णिक्, पंक्ति, त्रिष्टुप्)

स यत् प्राची दिशमनु व्यचलन्मारुतं शर्धो भूत्वानुव्य-
चलन्मनोऽन्न दं कृत्वा ॥१
मनसान्नादेनान्नमत्ति य एव वेद ॥२
स यद् दक्षिणां दिशमनु व्यचलदिन्द्रो भूत्वानुब्यचलद्
बलमन्नाद कृत्वा ॥३
बलनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥४
स यत् प्रतीचीं दिशमनु व्यचलद वरुणो राजा ।
भूत्वानुब्यचलदपोऽन्नादी: कृत्वा ॥५
अद्भिरन्नादीभिरन्नमत्ति य य एव वेद ॥६
स य दुदीचीं दिशमनु व्यचलत् सोमो राजा भूत्वानुव्यचलत
सप्तार्षिभिर्हु त आहुतिमन्नादी कृत्वा ॥७
आहुत्यान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ॥८
स यद् ध्रुवां दिशमनु व्यचलद विष्णाभूं त्वानुव्यचलद
विराजमन्नादीं कृत्वा ॥९
विराजान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ॥१०

जब वह पूर्व दिशा के लिये चला, तब बली होकर आयुके अनुकूल चलते हुए अपने मन को अन्नाद बनाया ।१। जो इसे जानता है वह अन्नाद मन से अन्न को खाता है ।२। जब वह दक्षिण दिशा की ओर चला तब बल को अन्नाद बनाता हुआ स्वयं इन्द्र बनकर गमनशील हुआ ।३। इस प्रकार जाने वाला अन्नाद बल से अन्न का सेवन करता है।४। जब वह पश्चिम दिशाकी ओर चला तब जल को अन्नाद बनाता हुआ वरुण बनकर चला ।५ इस बात का ज्ञाता अन्नाद जलसे अन्नको खाता है ।६। जब वह उत्तर दिशा की ओर चला तब सप्तर्षियों द्वारा दी गई आहुति से अन्न का भक्षण करता है ।८। जब वह ध्रुव दिशा की ओर चला तब विराट् को अन्नाद बनाकर स्वयं विष्णु रूपमें चला ।९। इसका ज्ञाता आनन्द विराट् से अन्न को खाता है ।१०।

स यत् पशूननु व्यचलद् रुद्रो भूत्वानु व्यचलदोषधीरन्नादोः ।
कृत्वा ।।११

ओषधीभिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद ।।१२

स यत् पितृनन व्यचलद् यमो रारा भूत्वानु व्यचलत्
स्वधाकापमन्नादं कृत्वा ।।१३

स्वधाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ।।१४

स यन्मनुष्याननु व्यचलदग्निर्भूत्वानुव्यचलत
स्वाहाकारमन्नाद कृत्वा ।।१५

स्वाहाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ।।१६

स यदूर्ध्वा दिशमनु व्यचलद् बृहस्पतिर्भूत्वान व्यचलद्
वषट्कारमन्नादं कृत्वा ।।१७

वषट्कारेणान्नादेनान्मति य एवं वेद ।।१८

स यद् देवाननु व्यचलदीशानो
भूत्वानुव्यचलन्मन्युमन्नादं कृत्वा ॥१९
मन्यनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥२०
स यत् प्रजा अनू व्यचलत् प्रजाप्रतिभूत्वान व्यचलत्
प्राणामन्नाद कृत्वा ॥२१
प्राणोनान्नादेनामत्ति य एवं वेद ॥२२
स यत् सर्वानन्तर्देशाननु व्यचत् परमेष्ठी
भूत्वानुव्यचलद् ब्रह्मान्नदं कृत्वा ॥२३
ब्रह्मणान्नादेनान्नमत्ति एवं वेद ॥२४

जब वह पशुओं की ओर चला तब औषधियों को अन्नाद बनाकर रुद्र बनता हुआ चला ।११। इस प्रकार जानने वाला अन्नाद औषधियों से अन्न को खाता है ।१२। जब वह पितरोंकी ओर चला तब स्वधाको अन्नाद बनाता हुआ यम होकर चला।१३। इस प्रकारका ज्ञाता स्वधा-कार अन्नाद से अन्न खाता है।१४। जब वह मनुष्योंकी ओर चला तब स्वाहा को अन्नाद बनाकर अग्नि होता हुआ चला ।१५। इसे जागने वाला स्वाहाकार अन्नादि के द्वारा अन्न सेवन करता है।१६। जब वह ऊर्ध्व दिशा की ओर चला तब वषटकारको अन्नाद बनाकर बृहस्पति होता हुआ चला ।१७। उस बात का वषट्कार रूप के अन्नाद द्वारा अन्न भक्षण करता है ।१८। जब देवता की ओर चला तब यज्ञ को अन्नाद बनाकर ईशान बनाता हुआ चला।१९। इस प्रकार जाननेवाला अन्नाद यज्ञ के द्वारा अन्न को खाता है।२०। जब वह प्रजाओं की ओर चला तब प्राण को अन्नाद बनाकर प्रजापति रूप में चला ।२१। इस प्रकार जानने वाला अन्नाद से अन्न भोजन करता है ।२२। जब वह सब अन्तर्देशों की ओर चला तब ब्रह्म को अन्नाद बनाकर प्रजापति होता हुआ चला ।२३। इस प्रकार जानने वाला पुरुष अन्नाद ब्रह्म के द्वारा अन्न भोजन करता है ।२४।

सूक्त १५

(ऋषि–अथर्वा । देवता–अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्द–पंक्तिः बृहती, अनुष्टुप्, गायत्री)

तस्य व्रात्यस्य ।।1
सप्त प्राणाः सप्तापनाः सप्त व्यानाः ।।२
तस्य व्रात्यस्य । याऽस्य प्रथमःप्राणो ऊर्ध्वो नामाय सो अग्निः।।३
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयःप्राणाःप्रौढो नामासौ स आदित्यः ।।४
यस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयः प्राणोम्यूढो नामासौ स चन्द्रमाः ।।५
तस्य व्रात्स्य योऽस्य चतुर्थः प्राणो विभुर्नामाय स पवमान ।।६
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमःप्राणो योनिर्नाम ता इमा आपः ।।७
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठः प्राणा प्रियो नाम त इमे पशवः।८
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमः प्राणोऽपरिमितो
नाम ता इमा प्रजाः ।।९

उस व्रात्य के सात प्राण, सात अपान और सात ही व्यान हैं ।१। ।२। इसका प्रथम ऊर्ध्व प्राण अग्नि है ।३। इसका द्वितीय प्रौढ़ प्राण आदित्य हैं ।४। इसका तृतीय प्राण अभ्युदय चन्द्रमा है।५। इसका चतुर्थ प्राण विभू पवमान है ।६। इसका पञ्चम प्राण योनि जल है।७। इसका षष्ठ प्राण प्रिय नामक है यह पशु हैं ।८। इसके सप्तम प्राण का नामहै अपरिमित यह प्रजा है ।९।

सूक्त १६

(ऋषि–अथर्वा । देवता–अध्यात्मम व्रात्यः । छन्द–उष्णिकः, त्रिष्टुप्, गायत्री)

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमोऽपानः सा पोर्णमासी ।।1
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयोऽपानः साष्टका ।।२

तस्य ब्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयोऽपानः सामावास्या ।।३
तस्य ब्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थोऽपानः सा श्रद्धा ।।४
तस्य ब्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमोऽपानः सा दीक्षा ।।५
तस्य ब्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठोऽपानः स यज्ञः ।।६
तस्य ब्रात्यस्य । योऽस्य सप्तभोऽपानस्ताइमा दक्षिणाः ।।७

इस ब्रात्य का प्रथम अपान पौर्णमासी हैं।१। इसका द्वितीय अपान अष्टक है ।२। इसका तृतीय अपान अमावस्या है ।३। इसका चतुर्थ अपान श्रद्धा है ।४। इसका पंचम अपान दीक्षा है ।५। इसका षष्टम्, अपान यज्ञ है ।६। इसका सप्तमअपान दक्षिण है ।७।

सूक्त १७

(ऋषि–अथर्वा । देवता–आध्यात्मभम: व्रात्यः । छन्द-उष्णिक्, अनुष्टुप्, पंक्ति, त्रिष्टुप्)

तस्य ब्रात्यस्य। योऽस्य प्रथमो व्यानः सेयं भूमिः ।१
तस्य ब्रात्यस्य। योऽस्य द्वितीयो व्यानस्तदन्तरिक्षम्।२
तस्य ब्रात्यस्य। योऽस्य तृतीयो व्यानः सा द्यौः ।।३
तस्य ब्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थो व्यानस्तानि नक्षत्राणि ।।४
तस्य ब्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमो व्यानस्त ऋतवः ।।५
तस्य ब्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठा व्यानरत आर्तवाः ।।६
तस्य ब्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमो व्यानः स संवत्सरः ।।७
तस्य ब्रात्यस्य । समानमर्थं परि यन्ति देवाः सबत्सर वा एत-द्दतवाऽनुपरियन्ति ब्रात्य च ।।८
तस्य ब्रात्यस्य । यदादित्यमभिसंविशन्त्यमावास्यां चैव तत् पोर्णमासी च ।।९
तस्य ब्रात्यस्य । एक तदेष समृतत्वमित्याहुतिरेब ।।१०

इन व्रात्य का प्रथम व्यान भूमि है ।१। इसका द्वितीय व्यान अन्तरिक्ष है ।२ः इसका तृतीय व्यान द्यौ है ।३। इसका चतुर्थ व्यान नक्षत्र हैं ।४। इसका पंचम व्यान ऋतुयें है ।५। उसका षष्ठ व्यान आतव है ।६। इसका सप्तम व्यान संम्वत्सर है ।७। देवगण इसके समान अर्थ को प्राप्त होते तथा सम्वत्सर और ऋतु भी इसका अनुमान करते हैं ।८। अमावस और पूर्णिमा जो आदित्य में प्रवेश करती हैं, एक आहुति ही इकका अधिनाशत्व है ।९-१०।

सूक्त १८

(ऋषि—अथर्वा । देवता–अध्यात्मम् व्रात्यः । छन्द–पंक्तिः,
बहृती, अनुष्टुप्, पंक्ति, त्रिष्टुप्)

तस्य व्रात्यस्य ।।१
यदस्य दक्षिणामक्ष्यसो स आदित्यो यदस्य सव्यमक्ष्यसौ स चन्द्रमा ।२
यऽस्य दक्षिणः कर्णोऽयं सो अग्निर्योऽस्य सध्य: कर्णोऽयं स पवमानः ।।३
अहोरात्रे नासिके दितिश्चादितिश्च शीर्षशपाले सवत्सरःशिर।४
अह्ना प्रत्यङ ब्रात्यो राज्या प्राङ्नमो व्रात्य य ।५।

इस व्रात्य का दक्षिण चक्षु आदित्य है और वाम चक्षु चन्द्रमा है ।१-२। इसका दक्षिण श्रोत्रअग्नि और वाम श्रोत्र पवमान है।३। इसकी नासिका दिवस और रात्रि हैं, शीर्ष कपाल दिति और अदिति है तथा सिर संम्वत्सर हैं ।४। यह व्रात्य दिन में सबको पूजने योग्य होता है, रात्रि में भी प्रकष्ट रूप से पूजनीय होता है । ऐसे व्रात्य को नमस्कार है ।५।

।। इति पंचदशं काण्ड समाप्त ।।

षोडश काण्ड

सूक्त १ (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—प्रजापतिः । छन्द—बृहती: त्रिष्टुप्, गायत्री, पंक्ति, अनुष्टुप्, उष्णिक्)

अतिसृष्टो अपां वृषभोऽतिसृष्टा अग्नयो दिव्याः ॥१
रुजन् परिरुजन् मृणान् प्रमृणान् ॥२
म्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषिः ॥३
इद तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ॥४
तेन तमभ्यतिसृजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥५
अपामग्रमसि समेद्रं वोऽभ्यवसृजामि ॥६
योप्स्वग्निरति तं सृजामि म्रोकं खनि तनूदूषिम ॥७
यो व आपोऽग्निराविवेश स एष यद् वो धोरं तदेतत् ॥८
इन्द्रस्य व इन्द्रियेणाभि षिञ्चेत् ॥९
अरिप्रा अपो अप रिप्रमस्मत् ॥१०
प्रास्मदेनो वहन्तु प्र दुःस्वप्न्यं वहन्तु ॥११
शिवेन मा चक्षुषा पश्यताप शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ।१२
शिवानग्न नप्सुषदो हवामहे मयि क्षत्रं वर्च आ धत्त देवौः ॥१३

जलोंमें जो वृषभके समान जलहै वह अति सृष्टा हुआ और दिव्य अग्नियां अति सृष्ट हुई ।१। भंग करने वाला, नाशक, पलायनशील, मन को दबाने वाला, दाशोत्पादक, खोदने से प्राप्य आत्मा और देह को दूषित करने वाला जो जलहै उससे अपने वैरियों को संयुक्त करताहुआ

मैं उसका अतिमर्जन करता हूँ, मैं उसे स्पर्श नहीं करूँगा।२-३-४-५।मैं तुम जलों के श्रेष्ठ भाग को समुद्र की ओर प्रेरित करता हूँ।६। शरीर के बल को अपहृत कर जलों के भीतर ले जाने वाले अग्नि का भी मैं अपसृजन करता हूँ।७। हे जलो ! अग्नि तुम में प्रविष्ट हुआ है, वह तुम्हारा भीषण अंश हैं।८। जो तुम्हारा अन्यन्त ऐश्वर्ययुक्त अंशहै उसे इन्द्रियों के द्वारा खींचें।९। जल हमारे पाप को दूर करे पाप हमसे पृथक हो।१०। यह जल हमारे पाप और दुःस्वप्नको बहा ले जाय।११। हे जलो ! कृपा की दृष्टि से मुझे देखो और कल्याण करने वाले अपने अंश से मेरी त्वचा को छुओ।१२। हम जल में व्याप्त मंगल करने वाले अग्नियों को आहुत करते हैं। यह दिव्य जल मुझ में क्षात्रबली शक्ति को सम्पन्न करें।१३।

सूक्त २

(ऋषि—अथर्वा। देवता—वाक्। छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक,बृहती,गायत्री)

निर्दुरमणय ऊर्जा मधुमती वाक् ॥१
मधुमती स्थ मधुमती वाचमुदेयम् ॥२
उपहूतो मे गोपा उपहूतो गोपीथः ॥३
सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ भद्रं श्लोकं श्रूयासम् ॥४
सुश्रुतिश्च मोपश्रुतिश्च माहासिष्टां सौपर्णंचक्षुरजस्रं ज्योति।५
ऋषीणां प्रस्तरोऽसि नमोऽस्तु दैवाय प्रस्तराय ॥६

मैं दूषित चर्म रोग से मुक्त रहूँ मेरी वाणी बलवती और मधुमती रहे।१। औषधियो ! तुम मधुर रस से पूर्ण रहो, मेरी वाणी भी मधुर रस से पूर्ण हो।२। मैं इन्द्रियों के पालक मन और मुख का आह्वान करता हूँ।३। मेरे कान कल्याणकारी बातों को सुनें, मैं मंगलमयी प्रशंसात्मक बातों को सुनूं।४। मेरे श्रोत्र उत्तम प्रकार से सुनाना और निकट से सुनरातम छोड़े, मेरे नेत्र गरुण के नेत्रके समान होते हुए दर्शन शक्ति से युक्त रहें।५। तू ऋषियों का प्रस्तर है देवरूप प्रस्तर को नमस्कार हो।६।

सूक्त ३

(ऋषि–अथर्वा । देवता–ब्रह्मादित्यो । छन्द–गायत्री, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, उष्णिक्)

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा सामानाना भूयासम् ।।१

रजश्च मा तेनश्च मा हासिष्टां मूर्धा च मा विधर्मा च म हासिष्टाम् ।।२

उर्वश्च मा चभसश्च मा हासिष्टां मूर्धा च मा वरुणाच मा हासिष्टाम् ।।३

विमोकश्च मार्द्र पविश्च मा हासिष्टाभाद्रादानश्च मा मातरिश्वा च मा हासिष्टाम् ।।४

बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम हृद्यः ।।५

असंतापं मे हृदयमुर्वी गव्यूतिः समुद्रो अस्मि विधर्मणा ।।६

मैं धनों का मूर्धा, रूप रहूँ । अपने समान व्यक्तिमों में मस्तक रूप होऊँ ।१। रज, यज्ञ, मूर्धा विधर्मा मेरा त्याग न करें ।२। उर्व चमल धरुण और धर्ता मुझसे वियुक्त न हों।३। विमोक, आर्द्र पवि, आर्द्र दानु और मातरिश्वा मुझसे पृथक न हो।४। हर्षद, अनुग्रहप्रद, मनको लगाने वाले बृहस्पति मेरी आत्मा है ।५। दो कोश तककी भूमि मेरी हो,मेरी हृदय संतप्त न हो । मैं धारक शक्ति द्वारा समुद्र के समान गहन होऊँ ।६।

सूक्त ४

(ऋषि–अथर्वा । देवता–ब्रह्मादित्यो । छन्द–अनुष्टुप्, उष्णिक,गायत्री)

नाभिरहं रयोणां नाभिः समानानां भूयासम् ।।१

स्वासदसि सूपा अमृतो मर्त्येष्वा ।।२

मा मां प्राणो दासीन्मो अपाऽवहाय परां गोत् ।।३

सूर्यो माह्नः पात्वग्निः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षाद् यमो मनुष्येभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः ।।४

प्राणपानौ मा मा हासिष्ट मा जने प्रमेषि ।५।
स्वस्त्यद्योषसो दोषसश्च सर्व आप: सर्वगणे अशीय ।६।
शक्वरी स्य पशवो माप स्येषुर्मित्रावरुणौ मे प्राणापानावग्नि में दक्षं दधातु ।७।

मैं धनों का नाभि रूप होऊँ अपने समान पुरुषों में भी मैं नाभि समान रहूँ ।१। मरणधर्मी मनुष्यों में श्रेष्ठ उषा अमृतत्व वाली और सुन्दरतापूर्वक प्रतिष्ठित होने वाली है ।२। प्राण मुझे न छोड़ें अपान भी मुझे छोड़कर न जाय ।३। सूर्य दिन से रक्षा करें, अग्नि पृथिवी से रक्षा करें, वायु अन्तरिक्ष से, यम मनुष्यों से और सरस्वति पार्थिव पदार्थोंसे रक्षा करने वाले हों ।४। प्राणापान मुझे न छोड़ें, मैं प्रकट रहूँ ।४। उषाकाल से और रात्रिसे मेरा मंगल हो । मैं सर्व गणों और जलों का उपभोग करने वाला होऊँ।५। पशुओ ! तुम भुजाओंसे युक्त होओ, मेरे निकट होओ । वरुण मेरे प्राणापान को योजित करें और अग्नि मेरे बल को दृढ़ करें ।७।

सूक्त ५ (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—यम: । देवता—दु:स्वप्ननाशनम् । छन्द—गायत्री, बृहती)

विद्यते स्वप्न जनित्रं ग्राह्या पुत्रोऽसि यमस्य करण: ।१।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ।२।
तं त्वा स्वप्न तसा स विद्म स न: स्वप्न दु:स्वप्न्यात् पाहि ।३।
विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्ऋत्या: पुत्रोऽसि यमस्य करण: ।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ।
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स न: स्वप्न दु:ष्वप्न्यात् पाहि ।४।
विद्यते स्वप्न जनित्रमभूत्वा: पुत्रोऽसि यमस्य करण: ।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ।
तं त्वा स्वप्न तथा स विद्म स न स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ।५।

विद्यते स्वप्न जनित्रं निर्भूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ।
त त्वा स्वप्न तथा स विद्म स नः स्वप्न दुष्वन्यप्न्यात् पाहि ॥६
विद्य ते स्वप्न जनित्रं पराभूत्या, पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ।
तं त्वा स्वप्न तथा स विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥७
विद्य ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥८
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥९
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्य स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यान्न पाहि ॥१०

हे स्वप्न ! तू ग्राह्य पिशाची से उत्पन्न हुआ यमको प्राप्त कराने वाला है । मैं तेरी उत्पत्ति का जानने वाला हूँ ।१। हे स्वप्न ! तू अन्त करने वाला मृत्यु है ।१। हे स्वप्न ! हम तुझे जानते हैं, तू दुःस्वप्न से हमको बचा ।३। हे स्वप्न के अधिष्ठात्री देवते ! हम तुम्हारे जन्म के ज्ञाता हैं, तुम निर्ऋति के पुत्र हो और यम प्राप्त कराने वाले हो ।४। हे स्वप्न के अधिष्ठात्री देवते ! हम तुम्हारे जन्म के ज्ञाता हैं । तुम भवति के पुत्र और यम के कारण रूप हो ।५। हे स्वप्न के अधिष्ठात्री देव! हम तुम्हारे जन्म को जानते हैं । तुम निर्भूति के पुत्र और यमके कारण रूप हो ।६। हे स्वप्न के अधिष्ठात्री देब ! हम तुम्हारे जन्म को जानते हैं । तुम पराभूति के पुत्र और यम के कारण हो ।७। हे स्वप्न के अधिष्ठात्री देव ! हम तुम्हारे जन्म को जानते हैं, तुम देवजामियों के पुत्र और यम के कारण रूप हो ।८। हे स्वप्न ! तुम अन्त करने वाली मृत्यु हो ।९। तुमको हम अच्छे प्रकार जानते हैं, दुःस्वप्न से तुम हमारी रक्षा करो ।१०।

सूक्त ६

(ऋषि—यमः । देवता—दुस्वप्ननाशनम्, उषा । छन्द——अनुष्टुप्, पंक्ति बृहती, जगती, उष्णिक् गायत्री)

अजैष्माद्यासनामाद्या भूमानागसो वयम् ।।१

उषो यस्माद् दु:ष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छतु ।।२
द्विषते तत् परा शपते तत् परा वह ।।३
य द्विष्मा यश्च नो देष्टि तस्मा एनद् गमयाम: ।।४
उषा देवी वाचा संविदानो वाग देव्युषसा संविदाना ।।५
उषस्पतिर्वाचस्पतिना सविदानो वाचस्पतिरुषस्पतिना संविदान: ।।६
तेमुष्मं परा वपन्त्वरायान् दुर्णम्न: सदान्वा: ।।७
कुम्भीका दूषीका: पीयकान् ।।८
जाग्र:द्दुष्वप्न्य स्वप्नेदु ष्वप्न्यम् ।।९
अनागमिष्यतो वरानवित्ते: संकल्पानमुच्या द्रुह: पाशान् ।।१०
तदमुष्मा अग्ने देवा: परा वहन्तु व्राध्रिर्यथासद्
विथुरो न साधु: ।।११

हम विजय प्राप्त करें, भूमि प्राप्त करें और पाप रहित हों ।१। हम दु:स्वप्न से भयभीत हुए हैं, उसका भय मिट जाय ।२। हे मन्त्र शक्ति के अधिष्ठाता देव ! हमसे द्वेष करने वाले के समीप इस भय को ले जाओ । हम कोसने वाले को यह भय प्राप्त कराओ ।३। हम अपने बैरी के पास इस भय की प्रेरणा करते हैं ।४। उषा वाणी से समान मत वाली हो और वाणी उषा से समान मत रखे ।५। उषा के पति वाचस्पति से समान मत रखें और वाचस्पति उषस्पति से एक मत हों ।६। वे दूषित नाम वाली कुम्भी को, पीयकों, को शत्रु पर प्रेरित करें ।७-८। सोते समय दु:ष्वप्नों से प्राप्त होने वाले फलों को, जागते हुए दुस्वप्नों से प्राप्त होने वाले फलों से भूतकालीन उत्तम संकल्पों को और शत्रु के पाशों को खोलता हूं ।९-१०। हे अग्ने ! देवगण इन सबको शत्रु के पास ले जांय । वह भयभीत होता हुआ पुंसत्वहीन हो और सज्जन न रह पाये ।११।

सूक्त ७

(ऋषि—यमः। देवता–दुःस्वप्नाशनम् । छन्द—पंक्ति, अनुष्टुप्, उष्णिक्, गायत्री, बृहती, त्रिष्टुप्)

तेनैनं विध्याभ्यभूत्यैनं विध्यामि निर्भूत्यैनं विध्यामि ।
पराभूत्यैनं विध्यामि ग्राह्यैनं विध्यामि तमसैनं विध्यामि ।१।
देवानामेनं घोरैः क्रूरैः प्रैषैभिप्रेष्यामि ।२।
वैश्वानरस्यैनं दंष्ट्रयोरपि दधामि ।३।
एवानेवाव सा गरत् ।४।
योस्मान् द्वेष्टि तमात्मा द्वेष्ट यं वय द्विष्मःस आत्मान द्वेष्टु।५
निर्द्विषन्तं दिवो निः पृथिव्या निरन्तरिक्षाद् भजाम् ।६।
सुयामश्चाक्षुष ।७।
इदमहमामुष्यायणमुष्याः पुत्रे दुःष्वप्न्यं मृजे ।८।
यददोअदो अभ्यगच्छन् यद् दोषा यत् पूर्वा रात्रिम् ।९।
यज्जाग्रद यद् सुप्तो यद् दिवा यन्नक्तम् ।१०।
यदहरहरभिगच्छामि तस्तादेनमव दये ।११।
तं जहि तेन मन्दस्व तस्य पृष्टीरपि शृणीहि ।१२।
स मा जीवीत् प्राणा जहातु ।१३।

मैं इसे अभिचार कर्म से अभूति से, विभूति, पराभूति से, ग्राह्या से और मृत्यु रूप अन्धकार से विदीर्ण करता हूं ।१। मैं इसे देवताओं की भयंकर आज्ञाओं के समक्ष उपस्थित करता हूँ ।२। मैं इसे वैश्वानर के दाढ़ों में डालता हूँ ।३। वह इसे निगल जाँय ।४। हमारे द्वेषी से आत्मा द्वेष करे और जिससे हम द्वेष करते हैं वह आत्मा से द्वेष करे ।५। उस द्वेष करने वाले को सप्त आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष से दूर करते हैं ।६। हे चाक्षुष! दुःस्वप्न से प्राप्त होने वाले फलको अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र में भेजता हूँ ।८। ... पूर्व रात्रि में अमुक-अमुक

कर्म को मैं कर चुका हूँ। जाग्रतावस्था, सुषुप्तावस्था, दिन रात्रि या नित्य प्रति मैं जिस पाप-दोष को प्राप्त होता हूँ, उसी के द्वारा इसे नष्ट करता हूँ।६-१०-११। हे देव ! उस शत्रु को हिंसित करो फिर हर्ष युक्त होते हुए उसकी पसलियों को भी तोड़ दो।१२। वह प्राण-हीन हो, जीवित न रहे।१३।

सूक्त ८

(ऋषि—यमः। देवता— दुःस्वप्नाशनम्। छन्द— अनुष्टूप्, गायत्री, त्रिष्टूप्, जगती, पंक्ति, बृहती)

जितमस्माकमुभ्दिन्नमस्माकमृतमस्माक तेजोऽस्माक-
ब्रह्मास्माक स्वरस्माक यज्ञोऽस्माकं पशवोऽमक-
प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्।१।
तस्मादमुनिभजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः कुत्रमसौ यः।२।
सग्राह्याः पाशान्मा मोचि।३।
तस्येद वर्चस्तेजःप्राथमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि।४।
जितमस्माकनुभ्दिन्नमस्माक मृतमस्माकं तेजोऽस्माकंब्रह्मास्माकं स्वरस्माक यज्ञोऽस्मक पशवोऽस्माक प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्।
तस्मादमुं निभजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः।
स निर्ऋत्याः पाशान्मा मोचि। तस्येद वर्चस्तेजः-
प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्च पादयामि।।५

शत्रूओं को मार कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सब तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे ही हैं।१। अमुक गोत्रिय अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से हटाते हैं।२। वह ग्राह्य के पाश से मुक्त न हो पावे।३। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर और औधा मुख करके नीचे गिराता हूँ।४। शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म,स्वर्ग

पशु, प्रजा और सब हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकों के पुत्रको हम इस लोक से हटाते हैं, वह निर्ऋति के पाश से मुक्त न हों। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण, आयु को लपेट कर औंधे मुख डालता हूँ।५।

जितस्माकमुद्भिन्नम माकमृतमस्माकं तेजोस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माक प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः।
सोऽभत्याः पाशान्मा मोचि। तस्येदं बर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्च पादयामि ।।६

जितमस्माकमुभ्दिन्नमस्माकमृतमस्माक तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः।
स निर्भूंत्याः पाशान्मा मोचि। तस्येद वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्च पादयामि ।।७

जितमस्माकमुभ्दिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकप शवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममु याः पुत्रमसौ यः।
स पराभूत्याः पाशान्मा मोचि तस्येद वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्च पादयामि ।।८

जितमस्माकमुभ्दिग्नमास्मकमृतमस्माकं तेजोऽस्माक ब्रह्मास्माक स्वरस्माक यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माक प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्।
तस्मादमे निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः।
स देवजामीनां पाशान्मा मोचि। तस्येद वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्च पादयामि ।।९

जितमस्माकमुभ्दिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं

स्वरस्माक यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीराअस्माकम् तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमाष्ययाणमुष्याः पुत्रमसौ यः। स बृहस्पतेः पाशान्मा मोचि। तस्येद वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्च पादयामि ।१०।

शत्रुओं को विदीर्णकर लाये हुए, जीते हुए, पदार्थ हमारेहैं। सत्य तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु प्रजा और सब वीर हमारे हैं अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं, अभूति के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण. आयु को लपेटकर औंधे मुख डालता हूँ ।६। शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारेहैं। अमुक गोत्र वाले, अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं।वह निर्भूति के पाश से मुक्त न हो। मैं उनसे तेज, वर्च, प्राण, आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख डालता हूँ ।७। शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुई और जीते हुये पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु,प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले, अमुकीके पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह पराभूति के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधा मुख करके डालता हूँ ।८। शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए सब पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारेहैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोकसे दूर करते हैं। वह देवजामि के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेटकर उसे औंधा करके गिराता हूँ ।९। शत्रुओं कों विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए सब पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुकी गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोकसे दूर करते हैं। बृहस्पतिके बन्धनसे मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और वायु को लपेटकर उसे औंधे मुख गिराता

जितमस्माकमभ्दिन्नमस्माकमृतमस्माक तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माक पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माक वीराअस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमानुष्यायणममुष्या पुत्रमसौ यः ।
स प्रजापतेः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेमनधराञ्चं पादयामि ।११।

जितमस्माकमुद्धिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माक ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माक पशवोऽस्माक प्रजा अस्माक वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमु निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्या पुत्रमसौ यः ।
स ऋषीणां पाशान्मा मोचि । तस्येद वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्च पादयामि ।१२।

जितमस्माकमुभ्दिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माक ब्रह्मास्माकं स्चरस्माक यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजो अस्माकं वीराअस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्यः पुत्रमसो यः
स आर्षेयाणां पाशान्मां मोचि । तस्येद वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ।।१३

जितमस्माकमुभ्दिन्नमस्ताकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्स्रस्माकं यज्ञोऽस्माक पशवोऽस्माक प्रजा अस्माक वीर अस्माकम् ।
तस्मादमु निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
सोऽगिरसां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वचंस्तजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्च पादयामि ।।१४

जितमस्माकमुभ्दिन्ननस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्मक स्वरस्माक यज्ञोऽस्माक पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माक वीरा अस्माकम् ।

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणयमुष्याः पुत्रमसौ यः आंगिरसामां पाशान्मा मोचि । तस्येद वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेऽटयामीदमेनमधराञ्च पादयामि ।१५।

शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए सब पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोकसे दूर करते हैं। वह प्रजा-पति के बन्धन से मुक्त न हो। मैं उसके तेज प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूँ।११। शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए सब पदार्थ हमारेहैं, सत्य, तेज, ब्रह्म पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। वह ऋषियों के हैं बँधन से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूँ ।१२। शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीतेहुए सब पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारेहैं। अमुक गोत्र वाले, अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर भेजते हैं। वह आर्षेयों के बन्धन से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूं ।१३। शत्रुओं को विदीर्णकर लाये हुए और जीते हुए सब पदार्थ हमारे हैं सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमूक गोत्र वाले अमुकीके पुत्रको हम इस लोकसे दूर करते हैं। वह अङ्गिराओं के बँधनसे मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और को लपेट कर उसें औंधे मुख गिराता हूँ, सत्य तेज, ब्रह्म स्वर्ग, पशु, प्रजा और जब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं, वह आंगिरसों के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण, आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख डालता हूँ ।१५।

जितमस्मामुभ्दिन्नमस्माकमृतस्माकं तेजोस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माक यज्ञोऽस्माक पशवोऽस्माक प्रजा अस्माक वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमु निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः

सोऽथर्वणां पाशान्मा मोचि तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि
वेष्ठयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१६
जितमस्माकमभ्दिन्नमस्माकमृतमस्माकतेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकंयज्ञोस्माकपशवोऽस्माक प्रजा अस्माक वीराअस्माकम्
तस्मादमु निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्या पुत्रमसौ य ।
स आथर्वणानाँ पाशान्मा मोचि । तस्येद वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयमि ॥१७
जितमस्माकमुभ्दिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माक
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा
अस्माकम् ।
तस्मादमु निर्भजामोऽमुनामुष्यायणमनुष्या पुत्रमसौ यः
स वनस्पतीनां पाशान्मा मोचि । तस्येद वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि
वेष्टयामीदमेनमधराञ्च पादयामि ॥१८
जितमस्माकमभ्दिन्नमाकमृतमस्माक तेजोऽस्माक ब्रह्मास्माक
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माक पशवोऽस्माक प्रजा अस्माकं वीरा
अस्माकम् ।
तस्मादमु निर्भजामोऽममामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स
वानस्पत्यानाँ पाशान्मा मोचि । तस्येद वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि
वेष्टयामीदमेनमधराञ्च पादयामि ॥१९
जितमस्माकमुभ्दिन्नमस्माकयुतमस्माक तेजोऽस्माक ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माक पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माक वीरा
अस्माकम् ।
तस्मादमु निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्यः पुत्रमसौ यः
स ऋतूनां पाशात्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ।२०।

शत्रुओं को मारकर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं ।

सत्य, तेज, ब्रह्म स्वर्ग पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। लमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम लोक से दूर करते हैं। वह अथर्वाओं के पाश से मुक्त न हो मैं उसके तेज, वर्च, प्राण, आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख डालता हूँ।१६॰ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं, सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु प्रजा और सर्थ वीर हमारे हैं अमुक गोत्र वाले अमुकीके पुत्रको हम इस्र लोक से दुर करते हैं। वह अथार्वणों के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण आयु को लपेटकर उसे औधे मुख डालता हूँ।१७। शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य तेज, ब्रह्म, स्वर्ग पशु प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्रको तुम इस लोक से दूर करतेहैं। वह वनस्पतियों के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च। प्राण, आयु को लपेटकर उसे औंधे मुख डालता हूँ।१८। शत्रुओं को विदीर्ण कर लाते हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म,स्वर्ग, पशु, प्रजा और स्व वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम उस लोकसे दुर करते हैं। वह वान सपत्यों के पाश मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेटकर उसे औंधे मुख डालता हूं।१९। शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुये पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु,प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अभुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह ऋतुओं के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च प्राण और आयु को लपेट कर उसे औधे मुख गिराता हूँ।२०।

जितमस्माकमुभ्दिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माक स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा
अस्माकम्।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणमुष्याः पुत्रमुसौ यः।
स आर्तवानां पाशान्मा मोचि।
तस्येद वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चंपादयामि।२१।

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माक ब्रह्मास्माक स्वरस्माक यज्ञोऽस्माक पशवोऽस्माक प्रजा अस्माक वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽममामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः
स मासानां पाशान्मामोचि ।
तस्येद वर्चस्तेजःप्राणमूयुर्नि वेष्टवामोदमेनमधराञ्च पादयामि ।२२।
जितमस्माकमुभ्दिन्नमस्माकमृतम स्माक तेजोऽष्माकंतेजोऽस्माक स्वरमाकं यज्ञोऽस्माकपश्वोऽस्माकं वीराअस्माकं वीर।अस्माकम्
तस्मादेमुं निर्भजामोऽमामातष्यायणममुष्या पुत्रमसौ यः ।
सोऽर्धमासानाँ पाशान्मा मोंचि ।
यस्येदं वर्चस्तेजःप्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्च पादयामि ।२३।
जितमस्माकमुभ्दिन्नतस्माकमृतमस्माक तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माक स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माक पशवोऽस्माक प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्माष्मुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्या पुत्रमसौ यः ।
सोऽपोरात्रयोः पाशान्मा मोंचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजःप्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्च पादयामि ।२४।
जितमस्माकमुभ्हिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माक स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माक प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादम निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्या पुत्रमसौ यः
सोऽह्नोः संवतो पाशान्मा मोचि ।
तस्येद वर्चस्तेजः प्राणमयुर्नि वेष्टयामीदमेनधराञ्चँ पादयामि ।२५।

शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं । सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारेहैं । अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह ऋतुओं के पदार्थों के पाशसे मुक्त न हो । मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु

को लपेट कर उसे औंधे मुख डालता हूँ ।२१। शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं । सत्य तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं । अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्रको हम इस लोक से दूर करते हैं । वह मासों से मुक्त न हो । मैं उसके तेज, वर्च,प्राण, आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख डालता हूं ।२२। शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं । सत्य, तेज ब्रह्म, स्बर्ग, पशु प्रजा और सब वीर हमारे हैं । अमुकीके पुत्र को हम इस लोकसे दूर करते हैं । वह अर्धमासों के पाससे मुक्त न हो । मैं उस के तेज वर्च, प्राण और आयुको लपेट कर उसे औंधेमुख डालता हूं।२३ शत्रुओंको बिदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं । सत्य तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा, और सब वीर हगारेहैं । अमुक गोत्रवाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं । वह दिन-रात्रियों के पाश से मुक्त न हो । मैं उसके तेज, वर्च, प्राण, और आयुको लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूं ।२४। शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए हमारे हैं । सत्य, ब्रह्म.स्वर्ग, पशु, प्रजा और हम और सब वीर हमारे हैं । अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं । अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं । वह रातदिन के संयत भागों के पाश से मुक्त न हो । मैं उसके तेज, वचँ, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूँ ।२०।

जितमस्माकमुभ्दिन्नमस्माक्तमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मस्माकं
स्वरस्माक यज्ञोऽस्माकं पशवोस्ऽमाकप्रजा अस्मकंवीरअस्माकम्
तस्मादमु निर्भजामोऽमुमामुष्यातणममुष्याः पुत्रमसो सः
स द्यावापृथिव्योः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजःप्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमभराञ्च पादयादि
।२६।

जितमस्माकमुद्‌भिन्नमस्माकमृतमस्माकंतेजोऽस्माकंब्रह्मास्माक
स्वर स्माक यज्ञोस्माकं पशवोऽमाक प्रजास्माकं वीरा
अस्माकम् ।

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्या. पुत्रमसौ यः
स इन्द्राग्न्योः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमे मधराञ्च पादयादि ।२७।
जितमस्ताकमुद्भिदन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकब्रह्मास्माक स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माक पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माक वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽममामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स मित्रावरुणयोः पाशान्मा मोचि ।
तस्येद वर्चस्तेजःप्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ।२८।
जितमस्माक मुभ्दिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकंब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुमाष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
ह राज्ञो वरुणस्य पाशान्मा मोचि ।
तस्येद वर्चस्तेजःप्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधाराञ्च पादयामि ।२६।
जितगस्माकमुभ्दिन्नमस्माकमृतमस्माकंतेजोऽस्ममाकंब्रह्मास्माक स्वरस्माक पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माक वीरा अस्माकम् ।३०
तस्मादमु निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुसमत्रौ यः ।।३१
स मृत्योः षडबीशात् पाशान्मा मोचि ।।३२
तस्येद वर्चस्तेजःप्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ।३३।

शत्रुओं की विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोकसे दूर करते हैं। वह द्यावापृथिवी के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज,वर्च,प्राण और वायु को लपेटकर

उसे औंधे मुख गिराता हूँ ।२६। शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए सब पदार्थ हमारे हैं । सत्य, तेज, ब्रह्म, पशु प्रजा और सब वीर हमारे हैं अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं । वह इन्द्राग्नि के पाश से मुक्त न हो । मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूं ।२७। शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये और जीते हुए सब पदार्थ हमारे हैं । सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग पशु प्रजा और सब वीर हमारे हैं । अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोकसे दूर करते हैं । वह मित्रावरुण के पाश से मुक्त न हों । मैं उसके तेज वर्च प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूं ।२८। शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ समारे हैं । सत्य, तेज, ब्रह्म स्वर्ग पशु प्रजा और सब वीर हमारे हैं । अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्रको हम इस लोक से दूर करते हैं । वह राजा वरुण के पाशसे मुक्त न हो । मैं उसके तेज वर्च प्राण और आयु को लपेटकर उसे औंधे मुख गिराता हूँ ।२०। शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुये पदार्थ हमारे हैं ।३०। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्रको हम इस लोकसे पृथक करते हैं।३१। वह मृत्यु के पाद धक के पाशों से मुक्त न हो ।३२। उसके वर्च तेज प्राण और आयु का लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूँ ।३३।

सूक्त ९

(ऋषि–यमः । देवता––प्रजापतिः, मन्त्रोक्ताः, सूर्यः । छन्द––अनुष्टुप् उष्णिक्, पंक्ति)

जितमस्माकमुद्भिदन्नमस्माकमभ्यष्ठांविश्वाःपृतना अरातीः ।१
तदग्निराह तदु सोम पूषा मा धात् सुकृतस्य लोके ।।२
अगत्म स्वः स्वरगन्म स सूर्यस्य ज्योतिषागन्म ।।३
तस्योभूयाय वसुमान् यज्ञो वसु वंशिषीय वसुमान्
भयासं वसु मयि धेहि ।।४

शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए तथा जीते हुए सब पदार्थ हमारे हैं। मैं शत्रुओं की सेना पर अधिष्ठित होऊँ ।१। अग्नि और भी इसी बात को कह रहे हैं, पूषा, पुण्यलोक में प्रतिष्ठित करें ।२। होम स्वर्ग को प्राप्त हों, सूर्य की ज्योति से उत्तम प्रकार से स्वर्ग लोक कम प्राप्त हो ।३। मैं धनी एवं सत्कार पाने के योग्य हूँ मैं परम धनी होने के लिए धन पर अधिकार करूँ। हे देव ! मुझे धन को प्रदान करो। ।४।

।। इति षोडश काण्ड समाप्तम् ।।

सप्तदश काण्ड

सूक्त १ (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि–ब्रह्मा। देवता––आदित्यः। छन्द––जगती, अष्टि, धृति, शक्वरी, कृति, प्रकृति, ककुप, बृहती, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्)

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्।
सहमानं सहोजितं स्वजिन ग्रोजितं सधनाजितम्।
ईडच्यं नाम ह्वइन्द्रमायुमात् भूयासम् ।।1
विषासहि सहमानं सासहानं सहायांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गो जतं सधनाजितम्।
ईडच्य नाम ह्व इन्द्र प्रियो देवानां भूयासम् ।।२
विषासहिंस सहमानं सासहानं सहीयांसम्।
सहमानं सहोजित स्वर्जितं गोजित संघनाजितम्।
ईड्य नाम ह्व इन्द्रं प्रियाप्रजानां भूयासम् ।।३

विषासहिं सहमान सासहानं सहीयासम् ।
सहमान सहोजित स्वर्जित गोजित सधनाजितम् ।
ईड्य न म ह्व इन्द्रं प्रियं पशूनां भूयासम् ।।४
विषासहिं सहमान सासहान सहीयांसम् ।
सहमान सहोजितं गोजित संधानाजितम् ।
ईडच्य नाम ह्व इन्द्र प्रिय: समानानां भूयासम् ।।५
उदि ह्य दिहि सूर्यं वर्चस: माभ्युदिहि ।
द्विषश्च मह्य रध्यतु मा चाह द्वियते रध तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
स्व न: पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपै:सुधायां मा धेहि परम व्योमन।६
उदिह्य दिहि सूर्यं वर्चसा माभ्युदिहि ।
यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि तवेद विष्णोबहुधा वीर्याणि त्व न: पृणीहि पशुर्भिर्विश्वरूपै: सुधायां मां धेहि परमे व्योमान् ।।७
मा त्वा दभन्त्सलिले अप्स्वन्तये पादिन उपतिष्ठन्त्य ।
हित्वाशस्ति दिवमारुक्ष एतां स नो मृड सुमतौ से स्याम तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्व न: पृणीहि पशुर्विश्वरूपै: सुधायां मा धेहि परमे व्योमान् ।८
त्वं न इन्द्र महते सौभगाय:दब्धभि:परि पाह्यक्तुभिस्तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्व न पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपै: सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्।९
त्वं न इन्दोतिमि: शिवाभि: शतमो भव ।
आरोह स्त्रदिव दिवो गृणान: सोमपीतये प्रियधामा स्वस्तये तवेद् विष्णौ बहुधा वीर्याणि ।
त्व न:पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपै:सुधायां मा धेहि परमेव्योमन्।१०

सहमान (अन्य को दबाने वाले तेज से युक्त), शत्रुओं में से उस तेज को जीतने वाले स्वर्गके विजेता शत्रुओंके गवादि पशुओं को जीतने

वाले जलों को जीतने वाले इन्द्र (रूप सूर्य को) त्रिकाल कर्मों द्वारा आहूत करता हूं, उनको कृपा से मैं आयु से सम्पन्न होऊँ।१। विषासहि, सहमान, सासहात, सहीवान् तेज के विजेता, स्वर्ग और गौओंके विजेता, जलों के विजेता इन्द्र (सूर्य) को मैं आहूत करता हूँ मैं उनकी कृपा से देवताओं का प्रिय होऊँ।२। विषासहि, सहमान, सासहान, सहीयान् तेज के विजेता, स्वर्ग, गौ और जलों के विजेता इन्द्रात्मक सूर्य को मैं आहूत करता हूँ। उनकी कृपा से मैं सनातनादि का प्रिय होऊँ।३। विषासहि, सासहान, सहीवान, तेज के विजेता, स्वर्ग, गौ और जलों के विजेता इन्द्रात्मक सूर्य को मैं आहूत करता हूँ। उनकी कृपा से मैं पशुओं का प्रिय होऊँ।४। विषसहि, सहमान, सहीवान तेज के विजेता, स्वर्ग, गौ और जलों के जीतने वाले इन्द्रात्मक सूर्य को आहूत करता हूँ। उनकी कृपासे मैं समान पुरुषों का प्रिय होऊँ।५ उदय होने पर सब प्राणियों को अपने-अपने कर्म में लगाने वाले सूर्य ! तुम उदय होओ तुम सबके दबाने वाले ही, मुझे वर्च प्राप्त कराने को उदय होओ। तुम्हारी कृपा के मुझके द्वेष रखने वाले मेरे आधीन हों। मैं तुम्हारा उपासक शत्रुओं के वश में कभी न होऊँ। हे विष्णु रूप सूर्य ! तुम अपनी किरणों से विश्वको व्याप्त करने वाले हो। तुम हमें अनेक प्रकार के पशुओंसे पूर्ण करो और देहके अन्त होने पर हमें परम व्योम में स्थापित करो।६। हे सूर्य ! उदय होओ, सबके दबाने वाले तेज से मुझे युक्त करो। जो प्राणी मेरे सामने दिखाई देतेहैं अथवा जो नहीं दिखाई देते हैं, उन दोनों प्रकार के प्राणियों में मुझे उत्कृष्ट बुद्धि वाला करो। हे विष्णु रूप सूर्य ! ऐसा तुम्हारा हो प्रभाव है अन्य का नहीं। मुझे अनेक प्रकार के पशुओं से पूर्ण करते हुए अन्तमें परमव्योम और सुधा में स्थापित करो।७। हे सूर्य ! जलों में पाशधारी राक्षस तुम्हें अन्तरिक्ष के जलों में न रोकें। तुग अपने यश में अन्तरिक्ष पर चढ़ हो। तुम हमें सुख दो। हम तुम्हारी कृपा पूर्ण बुद्धि में रहें। हे विष्णु रूप सूर्य ! तुम अत्यन्त पराक्रमी हो। मुझे अनेक प्रकार के

पशुओं से सम्पन्न करते हुये देहान्तमें परम व्योम और सुधामें स्थापित करो।८। हे अत्यन्त ऐश्वर्यवान् सूर्य! ऐश्वर्य सिद्धि के लिये तुम सूर्यादि की हिंसा रहित रात्रि और दिवस द्वारा हमें रक्षितकरो। तुम अन्यन्त पराक्रम वाज हो मुझे अनेक प्रकार के पशुओं से सम्पन्न करते हुए देहान्त में परम व्योम ओर सुधामें स्थापित करो।९। हे ऐश्वर्य सम्पन्न सूर्य! हमको महान सुखदो अपने कल्याणमय रक्षा-साधनों से हमें सुखी करो। तुम्हारे द्वारा रक्षित मनुष्य बारम्वार आवागमन का क्लेश नहीं पाता। तुम्हें अपना स्थान प्रिय है। हमारे द्वारा स्तुत होते और सोम पान करते हुए हमारी रक्षा करो। हे सूर्य! तुम अपरिमित प्रभाववाले हो। मुझे अनेक प्रकार पशुओं से सम्पन्न करते हुए देहान्त में परम व्योम और सुधा में स्थापित करो।१०।

स्वमिन्द्रासि विश्वेजित् सर्ववित् पुरुहूतस्वमिन्द् ।
त्वामिद्रेम सूहवं स्तोममेरंयस्व स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद् विष्णो वहुधा बीर्याणि ।
त्वं नःपृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैःसुधायां मा धेहि परमे व्योयम्।११
अदब्धो दिवि पृथिव्यामतासिन न आपुर्महिमानमन्तारिक्षे।
अदब्धेन ब्रह्मणां वावृधानः स त्वं न इन्द्र दिवि षञ्छर्म यच्छ तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्व नःपृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैःसुधायां मा धेहि परमे व्योमन्।१२
या ता इन्द्र तनरप्सु या पृथिव्यां यतरग्नौ या त इन्द्र पवमाने स्वर्विदि। ययेन्द्र तन्वान्तरिक्ष व्यापिथ तया न इन्द्र तन्वा शर्म यच्छ् तवेद विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं ःपृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैःसुधाया मा धेहि परमे व्योमन्।१३
स्वामिन्द्र ब्रह्मणा वर्धयन्तःसत्र नि षेदुॠषय नवमान स्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं न पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपंःसुधायां मा धेहि परमेव्योमत्।१४

तवं तृत त्वं पर्येष्युत्सं सहस्राधार विदथं स्वर्विद तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।

त्व नःपृहीणि पशुभिविश्वरूपैःसुधाया मा देहि परमे व्योमन्।१५

त्व रक्षसे प्रदिदश्चतस्रस्त्व शोचिषा नभसो वि भासि त्वमिमा विश्वा भुवरानु तिष्ठस ऋतस्य पन्थामन्वेषि विद्वांस्तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याणि ।

त्वं नःपृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्।१६

पञ्चभिःपराङ्तपस्येकयार्वाड़शस्तिमेषि सुदिने बाधामानस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।

त्वं नःपृणीहि पशुर्भिर्विश्वरूपै सुधायां मा धेहि परमेव्योमन्।१७

त्वमिन्द्रस्त्व महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्व प्रजापतिः । तुभ्य यज्ञो वि तायते तुभ्यं जुह्वतस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।

त्वां नःपृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहिपरमेव्योमन्।१८

अति सत् प्रतिष्ठित सति भूत प्रतिष्ठितम्। भूत ह भव्य आहित भव्यं भूते प्रतिष्ठित तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।

त्वं नःपृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैःसुधायां मा धेहि परमे व्योमन्।१९

शुक्रोऽस भ्राजोऽसि ।

स यथा त्वं भ्राजता भ्राजोऽस्येवाह भ्राजता भ्राजताभ्राज्यासम् ।२०।

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रात्मक सूर्य ! तुम संसार को जीतने वाले हो । तुम पुरुहूत हो । इस समय सुन्दर आह्वान वाले इस स्तोत्रके स्वीकार करने वाले हमको सुख दो । हम तुम्हारी कृपामयी बुद्धि में रहें । तुम अपरिमित प्रभाव वाले हो । मुझे अनेक प्रकार के पशुओं से सम्पन्न करते हुए देहान्त पर परम व्योम और सुधा में स्थापित करो ।११। हे इन्द्रात्मक सूर्य ! तुम आकाश, अन्तरिक्ष और पृथिवी में किसी से भी नहीं दबते हो क्योंकि तुम असीम शक्ति से सम्पन्न गायत्री मन्त्र द्वारा वृद्धि को प्राप्त होते रहते हो । तुम्हारे अपरिमित पराक्रम है । मुझे

अनेक प्रकार के पशुओंने पूर्ण करो और मरने पर परम व्योम में, सुधा में स्थापित करो ।१२। हे इन्द्रात्मक सूर्य ! तुम अपनी जलों में स्थित आभा से हमें सुख दो, जलों में विद्यमान औषधि आदि के सार रूपों से भी हमें सुखी करो । पृथिवी में जो तुम्हारा रूप है, उसके द्वारा हमें अन्नादि का सुख दो और अन्तरिक्ष में व्याप्त अपने रूप से हमें वृष्टि आदि सुख दो । तुम अपरिमित प्रभाव वाले हो । हमें अनेक प्रकार के पशुओं से पूर्ण करो और देह के अन्त होने पर परम व्योम में, अमृत धाम में अन्त स्थापित करो ।१३। हे इन्द्रात्मक सूर्य ! अभीष्ट फलोंकी इच्छा करते हुए पुरातन कालीन ऋषि तुम्हें स्तोत्रादि से प्रवृद्ध करते रहते थे । तुम अपिरिमित प्रभाव वाले हो । हमें अनेक प्रकार के पशु आदि से पुर्ण करो और मरने पर दुःखादि क्लेकों से रहित परम व्योम के अमृतमय स्थान में प्रतिष्ठित करो ।१४। हे इन्द्रात्मक सूर्य ! तुम अन्तरिक्ष में व्याप्त होकर अपरिमित धाराओं वाले मेघको प्राप्त होते हो । यह मेघ औषधि आदि को बढ़ाने वाला और यज्ञ का साधनरूप होने से साक्षात यज्ञ ही है । तुम्हारे अपरिमित प्रभाव है । हसे अनेक प्रकार के पशुओं से सम्पन्न करो और मरने पर परम व्योम के अमृत में प्रतिष्ठित करो ।१५। हे सूर्य ! तुम चारों दिशाओं के रक्षक हो । तुम अपने प्रकाश से आकाश और पृथिवी को प्रकाशित करते हो । तुम जल को जानते हुए उसके मार्ग में व्याप्त हो । तुम अपरिमित प्रभाव वाले हो । मुझे अनेक प्रकार के पशुओंसे सम्पन्न करो । मृत्युके पश्चात् परमाकाश के अमृत स्थान में प्रतिष्ठित करो ।१६। ! सूर्य ! तुम पाँच रश्मियों द्वारा ऊपर को मुख करमें ऊर्ध्व लोकोंको प्रकाशित करतेहो । ऐसा करते हुए तुम पृथिवीको एक किरणसे प्रकाशित करने की निन्दाको प्राप्त होते हो । तुम्हारे अपरिमित प्रभावहैं । मुझे अनेक रूप वाले पशुओं से सम्पन्न करो और मरने पर परमाकाश के सुधा में स्थापित करो ।१७। हे इन्द्रात्मक सूर्य ! पुण्यात्माओं को मिलने वाले पुण्यलोक तुम ही हो । तुम्हीं प्राणियोंके रचयिता हो, इसलिये यज्ञमान

तुम्हारे निमित्त ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंको करतेहैं । तुम अनेकप्रभावों से सम्पन्न हो मुझे अनेक प्रकार के पशुओं से सम्पन्न करो और मरने पर परमाकाश के अमृत में प्रतिष्ठित करो ।१८। असत् में सत् स्थापित है अर्थात ब्रह्म में भूत स्थापित है । हे सूर्य ! तुम अपरिमित प्रभाव वाले हो । मुझे अनेक प्रकार के पशु आदि से मुक्त करो और मृत्यु के पश्चात् परमाकाश के अमृत में प्रतिष्ठित करो ।१९। हे सूर्य ! तुम ही शुक हो । सब लोगों को प्रकाशित करने वाले तेज से तुम ज्योतिर्मान् रहते हो । मैं तुम्हारे ऐसे ही रूपकी उपासना करता हूँ । मैं भी उसी प्रकार के तेज से युक्त होऊँ ।

रुचिरसि रोचोऽसि । स यथा त्वं रुच्या रोचोऽस्येवाह पशुभिश्च ब्राह्मणवर्चसेन च रुचिषीय ।।२१
उद्यते नग उदायते नम उदिताय नमः ।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ।।२२
अस्तयते नमोऽयमेष्यते नमोऽस्तमिताय नमः ।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ।।२३
उदायादयमादित्यो विश्वेन तपसा सह ।
सपत्नान् मह्यं रन्धयन मा चाह द्विषते रधं विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपै सुधायां या धेहि परमे व्योमन् ।।२४
आदित्य नावमारुक्ष शतारित्रां स्वस्तये ।
अहर्मात्यपीपरो रात्रि सत्राति पारय ।।२५
सूर्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वन्तये ।
रात्रिं मात्यपीपरोऽहः सत्राति पारय ।।२६
प्रजापतेरावतो ब्राह्मणा वर्मणाहकश्यपश्य ज्योतिषा वर्चसा ।
जरदष्टिः कृतवीर्यो विहाया सहस्रायु सुकृतश्चरेयम् ।।२७

परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपश्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
मा मा प्रापन्निषबो दैव्या या मा मानुषीरवमृष्टा वधाय ।।२८
ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वेभूतेन गुप्तो भव्येन चाहम् ।
मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधऽहं सलिलेन वाचः ।।२९
अग्निर्मा गोप्ता परि पातु विश्वत उद्यन्त्सूर्यो नुदतांमृत्युपाशान्।
व्युच्छन्तीरुषसः पर्वता ध्रुवा:सहस्र प्राणा मय्या यतन्ताम् ।।३०

हे सूर्य ! तुम दीप्त रूप ही जैसे संसार को प्रकाशित करने वाली दीप्ति से चमकते हो, वैसे ही मैं पशुओं से और ब्रह्मवर्च से दमकता रहूँ ।२१। हे सूर्य ! तुम उदयचलको प्राप्त होते हुए को नमस्कार है । अर्द्धोदित और पूर्णोदित को नमस्कार है । एकदेशोदित विराट् अर्द्धोदित स्वराट् और पूर्णोदित सम्राट को नमस्कार है ।२२। अस्त होते हुये (अर्द्धास्त) एवं अस्त की ओर पूर्णरूप से अन्त हुये आदित्य को नमस्कार है । विराट् सम्राट् रूप सूर्यको नमस्कार है ।२३। सब लोकों को पूर्णतया तप्त करने वाले आदित्य अपने रश्मिजाल सहित, मेरे पशुओं को दबाते हुए उदित हो गए । हे सूर्य ! तुम्हारी कृपा से मैं द्वेष करने वालों के वश में पड़ूँ । तुम अपरिमित प्रभाव वाले हो । मैं अनेक प्रकार के पशुओं से सम्पन्न होऊँ मरने पर मुझे सुधायुक्त परम व्योम में प्रतिष्ठित करो ।२४। हे आदित्य ! व्योमरूप समुद्र से पार होने के लिये तुम वायु रूपी पतवार लेकर रथरूपी नौका पर संसार के कल्याण के लिये आरूढ़ हुए हो । तुम मेरी त्रिताप से रक्षा करते हुए दिन के पार उतार चुके हो । ऐसे ही मुझे रात्रि के पार भी पहुँचाओ ।२५। हे सूर्य ! तुम व्योमसिंधु से तरने के लिये वायुरूपी पतवार को लेकर संसार के कल्याणार्थ रथरूप नौका पर आरूढ़ हुए हो । तुमने मुझे कुशल-पूर्वक रात्रि के पार पहुँचा दिया है । उसी प्रकार अब दिन के पार पहुँचाओ ।२६। प्रजापति रूप सूर्य के तेजरूप कवच से मैं ढका हूँ । मैं जीर्ण होकर भी दृढ़ अङ्गों वाला हूँ । रोम रहित रहता हुआ अनेक प्रकार के भागों का उपभोग करता हुआ मैं दीर्घ आयु को पाता हुआ लौकिक और वैदिक कर्मोंको करता हुआ

सूर्य का कृपा-पात्र रहूँ ।२७। मैं कश्यपरूप सूर्य के मन्त्रमय कवच से आच्छादित हूँ मैं तेज से और रक्षात्मक रश्मियों से रक्षित हूँ इसलिए मेरी हिंसा के लिए देवताओं और मनुष्यों द्वारा प्रयुक्त आयुध मेरे पास न आ सके ।२८। मैं सत्य से सूर्यात्मक ब्रह्म से, ऋतुओं से और सब प्राचीन कालीन पदार्थों से रक्षित हूँ, इसलिए नरकका कारण रूप पाप मेरे पास न आवे । मैं मन्त्राभिमन्त्रित जल से जल में छिपे प्राणी के अदृश्य रहने के समान अदृश्य होता हूँ । पाप आदि से बचने को मन्त्र-मय जल द्वारा अपने को रक्षित करता हूँ ।२९। अपने आश्रितके अग्नि-देव रक्षक हैं, वे भय से मेरी रक्षा करें । मारक मृत्यु के पाशों से उदय होते हुए सूर्य मेरी रक्षा करें । उषा मृत्यु के पाशों को दूर करे । प्राण मुझ आयु की कामना वाले में सचेष्ट रहे । इन्द्रियाँ भी चेष्टा करती रहे ।३०।

।। इति सप्तदश काण्ड समाप्तम् ।।

—: :—

अष्टादश काण्ड

सूक्त १ (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि– अथर्वा । देवता– यम:, मन्त्रोक्ता:, रुद्र:, सरस्वती पितर:
छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्ति:, जगती, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती)

चित् सखाय सख्या ववृत्यां तिर: पुरू चिदणवं जगन्वान् ।
पातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतर दीध्य।न: ।।१
सख्यं वष्टयेतत् सलक्ष्मा यद विषुरूपा भवति ।
असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्दिया परिख्यान् ।।२

उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित् त्यजसं मृर्त्यस्य ।
नि ते मनो मनसि धाय्यस्म जन्युः पमिस्तन्वामा विविश्याः ॥३
न यत पुरा चक्रमा कद्ध नूनमृत वदन्वो अनृत रपेम ।
गन्धर्वा अप्स्वप्या च योषा सा नौ नाभिः परमं जामि तन्नौ ॥४
गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः ।
नकिरस्य प्र मिनन्जि व्रनाति वेद नावस्य पृथिवी उत द्योः ॥५
को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणयूत।
आषान्निषूत् हृष्स्वसो मयोभून् यज्ञषां भृत्यामृणघत् सजीवात्।६
को अस्य वेद प्रथमस्याह्न क ईं ददर्श क इह प्र वीचत् ।
वृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु व्रव आहनो वीच्या नृन् ॥७
यमस्य मां यम्य काम आगनसमाने यानौ सहशेय्याय ।
जायेव पत्ये तन्व रिरिच्यां वि चिद बृहव रथ्येव चक्रा ॥८
न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानां स्पर्श इह ये चरन्ति ।
अ येन मदाहनो याहि तूयं तेन विह रथ्येव चक्रा ॥९
रात्रीभिरस्मा अहृभिर्दशस्गेत् सूर्यस्य चक्षु मुंहुरुन्मिमीमतात् ।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य विवपादजामि ॥१०

(यमी वाक्य) समान प्रसिद्धि वाले मित्र यम को संख्यभावानुकूल करती हूँ। समुद्र तटवर्ती द्वीप में गमन करते हुए यम, पुत्र को मुझ में स्थापित करें। हे यम! तुम्हारी ख्याति सब लोकोंमें है तुम सदा तेजसे दीप्त रहो।१। (यम) मैं समान उदरोत्पन्न तेरा मित्रहूँ। परन्तु मैं भाई बहिन के समागमात्मक मित्र भाव की इच्छा नहीं करता। क्योंकि एक उदररूप वाली होकर भी पत्नीत्व की कामना करती हैं, ऐसे मित्रभाव को मैं स्वीकार नहीं करता शत्रुओं को दबाने वाले,महावली रुद्रके पुत्र मरुदगण भी इसकी निन्दा करेंगे ।२। यमी, हे यम ! मरुद्गण मेरे निवेदित मार्ग की इच्छा करतेहैं अतः अपने मनको मेरी ओर लगाओ, फिर सन्तान को उत्पन्न करने वाले पति बनते हुए भ्रातृभावको छोड़कर मुझमें प्रविष्ट होओ।३। हे यमी! असत्य बात को हम सत्य वोलमे

वाले कैसेकहें । जलधारक सूर्यभी अन्तरिक्षमें अपनी भार्यासहित स्थित है। जत: अभिन्न माता-पितावाले हमदोनों उन्हींके सामने तेरा इच्छित पूर्ण करने में समर्थ न होंगे।४०। हेयम ! सन्तानोत्पादक देव ने ही हम दोनों को माता के उदर में ही दाम्पत्य बन्धनमें बांध दिया है, उस देव कर्मफल को निष्फल कौन कर सकता है ? त्वष्टा-देव के गर्भ में ही हमारे दम्पतिकरणरूप कर्मको आकाश और पृथ्वी दोनों जानते हैं। इस लिए यह असत्य नहीं है ।५। हे यमी, सत्य के भार वहन के निमित्त लिए वाणी रूप बृषभ को कौन नियुक्त करता है ? कर्मवान, तेजस्वी, क्रोध और लज्जा से हीन अपने शब्दों से श्रोताओं के हृदय में बैठने वाला जो पुरुष सत्य वचनों की वृद्धि करता है, वह उसके फल से दीर्घ जीवी होता है ।६। हे यम हमारे प्रथम दिनको कौन जान रहा है, कौन जान रहा है, कौन देख रहा ? फिर कौन पुरुष इस बात को दूसरे से कह सकेगा, दिन मित्र देवता का स्थान हैं, यह दोनों ही विशाल हैं । इसलिए मेरे अभिमत के प्रतिकूल मुझे क्लेश देने वाले तुम,अनेक कर्मों वाले मनुष्यों के सम्बन्ध में किस प्रकार कहते हो ? ।७। मेरी इच्छा है कि पति को शरीर अर्पण करने वाली पत्नी के समान यम को अपना देह अर्पित करूं और वे दोनों पहिये जैसे मार्ग में सलिष्ट होते हैं,उसी प्रकार मैं भी होऊँ ।८। हे यमी, देवदूत बराबर विचरण करते रहते हैं, वे सदा सतर्क रहते हैं इसलिए हे मेरी धर्म मति को नष्ट करने की इच्छा वाली, तू मुझे छोड़कर अन्य किसी की पत्नी बन और शीघ्रता से जाकर उसके साथ रथ-चक्र के समान संश्लिष्ट हो।९।यमके निमित्त यजमान दिन रात्रि आहुति दें सूर्य का प्रकाशक तेज नित्यप्रति इसके निमित्त उदय हो । आकाश पृथिवी जैसे परस्पर संश्लिष्ट है, वैसेही मैं इसके भ्रातृत्व से पृथक् होती हुई उससे संश्लिष्ट होऊं ।१०।

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जापय: कृणवन्नजाम ।
उप वर्बृहि बृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पति मत् ।।११
किं भ्रातासद् यदनाथं भवाति किमुस्वसामुन्निर्ऋतिर्निगच्छात्।

काममृता वह्वेतद् रपामि तन्वा मे तन्वं स पिपृग्धि ।।१२
न ते नाथं यम्यत्राहमस्मि न ते तनूं तन्वा सं पपृच्याम् ।
अन्येन मत् प्रमुद कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ।।१३
न वाउपे तनूं तन्वा सं पपृच्या पापमाहूर्यः स्वसार निगच्छात् ।
असयदेतन्मनसो हृदो मे भ्राता स्वसूः शयने यच्छयीय ।।१४
बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदय चाविदाम ।
अन्या किल त्वं कक्ष्ये च युक्तं परिष्वजातै लिबुजेव वृक्षम् ।।१५
अन्यमं षु यम्यन्य उ त्वां परिष्वजातै लिबूजेब वृक्षम् ।
तत्य वा त्वं मन इच्छा स वा तबाधा कृणुष्व सविदसुभद्राम्।१६
त्रीणिच्छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूप दर्शत विश्वचक्षणम् ।
अ पा वाता ओबधयस्तान्येकस्मिन् भुवन आपितान ।।१७
वृषा वृष्णै दुदुहे दोहसा दिवः पयांसि यह्वो अदितेरदाभ्यः ।
विश्व स वेद वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजति यज्ञियांऋतून
।१८।
रपद गन्धर्बोरष्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु नो मनः ।
इष्टस्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो
विवोचति ।।१९
यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतार विदथाय जोजनत् ।।२०

संभवतः आगे चलकर ऐसे ही दिन रात्रि आयें जब बहिन अपने अबन्धुत्व द्वारा भार्यात्व को पाने लगेगी । पर अभी ऐसा नहीं होता, अतः हे यमी, तू सेचन समर्थ अन्य पुरुष के लिये अपना हाथ बड़ा और मुझे छोड़कर उसे ही पति बनाने की कामना कर ।११। वह बन्धु कैसा, जिसके विद्यमान रहते भगिनी इच्छित कामना से विमुक्त रह जाय । वह कैसी भगिनी जिसके समक्ष बन्धु संतप्त हो । इसीलिये तुम मेरी इच्छानुसार आचरण करो।१२। हे यमी, मैं तेरी इस कामना को पूर्ण करने वाला नहीं हो सकता और तेरे देह से स्पर्श नहीं कर सकता । अब तू मुझे छोड़कर अन्य पुरुष से इस प्रकार सम्बन्ध

स्थापित कर। मैं तेरे भार्यात्व की कामना नहीं करता।१३। हे यमी! मैं तेरे शरीर का स्पर्श नहीं कर सकता। धर्मके ज्ञाता, बन्धु-भगिनीके ऐसे सम्बन्ध को पाश करते हैं, मैं ऐसा करूँ तो यह कर्म मेरे हृदय, मन और प्राण का भी नाश कर देगा।१४। हे यम ! तेरी दुर्बलता पर मुझे दुःख है। तेरा मन मुखमें नहीं है, मैं तेरे हृदय को नहीं समझ सकी। अन्य स्त्री से सम्बन्धित होगा।१५। हे यमी ! रस्सी जैसे अश्व से युक्त होती है, लतादि जैसे वृक्षको जकड़ती है, वैसे तू अन्य पुरुषसे मिल। तुमदोनों परस्पर अनुकूल मनवाले होओ और फिर तू अत्यन्त कल्याण वाले सुखको प्राप्त हो।१६। संसार को आच्छादन का देवताओं ने यत्न किया। जल तत्व प्रिय दर्शन वाला और विश्व का द्रष्टा है। वायु तत्वभी दर्शनीय और विश्वद्रष्टा है, औषधि तत्व भी ऐसाही है। इन तीनों को देवताओं ने पृथिवी का भरण करने को प्रतिष्ठित किया।१७। महान् अग्निदेव यजमान के लिए यज्ञ आदि द्वारा आकाशसे जल वृष्टि करते हैं। यह अपनी बुद्धि द्वारा सबको ऐसे ही जान लेतेहैं,जैसे वरुण अपनी बुद्धि से सबको जानते हैं। वही अग्नि यज्ञ में पूजनीय देवताओं को पूजते हैं।१८। जलधारक सूर्य को वाणी और अन्तरिक्षमें विचरणशील सरस्वती मेरे द्वारा अग्नि का स्वप्न करें और मेरे स्तोत्र-रूप नाद में मन की रक्षा करें। फिर देवमाता अदिति मुझे फल में स्थापित करें। बन्धु के समान हितकारी अग्नि मुझे उत्कृष्ट यजमान करें।१९। अध्वर्युओं ने देवताओं का आह्वान करके अग्निको देवताओं के लिए हवि-वहन के लिए प्रकट किया। तभी कल्याणमयी मन्त्ररूप वाणी और सूर्य वाली उषा यज्ञादि की सिद्धिके लिए प्रकट होतीहै।२०

अध त्यं द्रप्सं विचक्षणं विभ्वं विराभरदिषिरः श्येनो अध्वरे।
यद विशो बृणते दस्ममार्या अग्नि होतारमध धीरजायत ॥२१
सदासि रण्वो यवसेव पुष्यते होत्राभिरग्ने मनुषः स्वध्वरः।
विप्रस्य वा यच्छशमान उक्थ्यो वाज ससवां उपयासि भूरिभिः
।२२।

उदीरय पितरा जार आ भगमियक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति ।
विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखस्त्रविष्यते असुरो वपते मती ।२३
यस्ते अग्ने सुमति मर्तो अख्यात सहसः सूनो अति स प्र शृण्वे ।
इषं दधानो वहमानो अश्वेरा स द्यु मां अमवान् भूपति द्यु न्।।२४
श्रु घी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम् ।
आ नो वह रोदसी देवपत्र माकर्देवानामप भूरिह स्याः ।।२५
यदग्न एषा समितिर्भवाति देवी देदेषु यजता यजत्र ।
रत्ना च यद् विभजासि स्वधावो भाग नोअत्रवसुमन्तंवीतात्।२६
अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।
अनु सूर्यं उषसो अनु अश्मीननु द्यावापृथिवी आ पिवेश ।।२७
प्रत्यग्यिरुषसामग्रमख्यत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः ।
प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन् प्रति द्यावापृथिवी आ ततान् ।२८
द्यावा क्षामा प्रथमे ऋतेनाभिश्रावे भवत सत्यवाचा ।
देवो यन्मर्तान् यजथाय कृण्वन्त्सोदध्दोता प्रत्यङ् स्वमसुं यन्।२६
देवो देवान् परभूर्ऋतेन वहा नो हव्य प्रथमश्चिकित्वान् ।
धमकेनुः समिधा भाऋजीका नन्दो होता नित्यो बाचा यजीयान्
।३०।

जब सोम के लाये जाये जाने पर यज्ञ निष्पादक अग्नि का वरण किया जाताहै तब सोम और अग्निके सिद्ध होने पर अग्निष्टोम आदि कर्मभी सम्पूर्ण होते हैं ।२१। हे अग्ने! तुम यज्ञ की सुन्दरता से सम्पन्न करतेहो। जैसे हरी घास आदिको खाने वाला पशु अपने पालकको सुन्दर दिखाई देताहै, वैसेही घृतादिसे अपनेको पुष्ट करने वाले यजमानके लिये तुम दर्शनीय होते हो । क्योंकि तुम स्तुत्य तुल्य होकर यजमान की प्रशंसा करते हुए हवि को देवताओं के पास पहुँचाते हो ।२२। हे अग्ने ! आकाश रूप पिता और पृथिवी माता को यज्ञके लिये प्रेरित करो । जैसे सूर्य अपने प्रकाश को प्रेरित करतेहैं वैसेही तुम अपने तेज को प्रेरित करो । यह यजमान जिन देवताओं की कामना करता है,

उसकी अग्नि स्वयं कामना करतेहैं। वे इच्छित पदार्थ देनेकी बातकहते हुये यज्ञ के लिए यजमान के पास आते हैं ।२३। हे अग्ने, जो यजमान तुम्हारी कृपा का अन्योंसे वर्णन करता है, वह यजमान तुम्हारी कृपासे सर्वत्र प्रसिद्ध होता है । वह यजमान अन्न, अश्वादि संयुक्त होता हुआ चिरकाल तक ऐश्वर्य में प्रतिष्ठित रहता है ।२४। हे अग्ने तुम इस देव-स्थान यज्ञ गृह में हमारे आह्वान को सुनो । जलद्रावक रथ को उन देवताओं के निमित्त जोड़ो । देवताओंकी पलक रूप आकाश पृथिवीको भी लाओ । यहाँ आने से कोई भी देवता न बचे ।२५। हे अग्ने तुस पूजनीय हो । जब स्तोत्रों और हवियों की देवताओं में संगति हो तब तुम स्तुति करने वालोंको रत्न देनेवाले होओ और वहुत सा धन प्रदान करने वाले होओ ।२६। उषाकालके साथही अग्नि प्रकाशित होतेहैं यह दिनों के साथ भी प्रकाशित रहते हैं यही अग्नि सूर्य होकर उषा को और किरणोंको प्रकाशित करतेहैं। यही सूर्यात्मक अग्निआकाश पृथिवी को सब ओर से प्रकाशित करते हैं ।२७। यह अग्नि नित्य उषाकालमें प्रकाशित होते और दिन के साथ भी प्रकाश युक्त रहते हैं । यही सूर्यात्मक अग्नि अनेक प्रकार से प्रवृत रश्मियों में भी प्रकाश भरतेहैं । यह आकाश पृथिवी को भो प्रकाशसे व्याप्त करते हैं।२०। आकाश पृथिवी मुख्य और सत्य वाणी है । जब अग्निदेवत यजमानके पास यज्ञ सम्पन्न करने के लिये बैठे तब वे आकाश पृथिवी स्तुति सुनने के योग्य हो।२९ हे अग्ने, तुम प्रचण्ड ज्वालाओंसे सम्पन्न हो । यज्ञसे पूज्य देवताओंको अपने वश में करते हुए उनके पूजन की इच्छा करते हुये उन्हें हवि पहुँचाओ तुम धूमरूप ध्वजा वाले, समिधाओं से दीप्त होने वाले,देवाह्वाक तथा पूजा के पात्र हो । तुम हमारी हवियों को पहुँचाओ ।३०।

अर्चामि वां वर्धायापो धृतस्नू द्यावाभूमी शृणातुं रोदसी मे ।
अहा यद् देवा असुनीतिमा न मध्वानोमत्रपितरा शिशीताम्।३१
स्वावृग देवस्वामृत यदी गोरतो जातासो धारयन्त उर्वी ।
विश्वे देवा अनु तत् ते यजुर्गुर्दुहे यदेमी दिव्य घृतं वाः ।।३२

किं स्विन्तो राजा जगृहं कंदस्यादि व्रत चक्रमा को वि वेद ।
मि त्रश्चिद्धिष्पा जुहुराणा देवाञ्छलोको न यातामपि वाजो ।
अस्ति ।३३।
दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद विषुरूपा भवाति ।
यनस्य यो मनवतो सुमन्त्वग्ने तमृच्व पाह्यप्रयुच्छन ।।३४
यस्मिन् देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदने धारयन्ते ।
सूर्यं ज्योतिरदधुर्मास्यक्तून् परि द्योतनिं चरतो अजस्रा ।।३५
यस्मिन् देवा मन्मनि सचरन्त्यपोच्ये न वयमस्य विद्म ।
मित्रो नो अत्रादितिरअ गान्त्सविता देवो वरुणाय वोचत् ।।३६
सखाय आ शिपामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।
स्तुष ऊषु नृतमाय धृष्णव ।।३७
शवमा ह्यासि श्रती वृत्रहत्येन बृत्रहा ।
मधैर्मघानो अति शूर दाशसि ।।३८
तेगो न क्षामात्ये ष पृथिवीं मही नो वाता इह वान्तु भूमो ।
मित्रौनो अत्र वारुणो युज्यमानो अग्निर्वने क व्यसृष्टशोकम्।३९
स्तहि श्रुतं गतंसदं राजानं भीपमुपहत्नुमुग्रम् ।
मृडा जरित्रेरुद्र स्तवानो अन्यमस्मत् ते नि वपन्तु सेन्यम् ।।४०

आकाश पृथिवी के अधिष्ठात्री देवताओं, जल कर्म की वृद्धि के लिये तुम्हारा स्तवन करता हूँ । हे आकाश पृथिवी, मेरी स्तुति सुनो और ऋत्विज जब अपने बल को यज्ञ कर्ममें लगादें तब तुम जल प्रदान द्वारा हमारी वृद्धि करो ।३१। अमृत ससान उपकार करने वाला जल जब किरणों से प्रकट होता और औषधियाँ आकाश पृथिवी में व्याप्त होती हैं और जब अग्नि दीप्तियाँ अन्तरिक्ष में क्षरणशील जल का दोहन करती है तब हे अग्ने, तुम्हारे द्वारा प्रकट उस जल का सब अनुगमन करते हैं ।३२। देवताओंमें क्षात्र बल वाला यम हमारे हव्यका कुछ भाग ग्रहणकरे। कहीं हमसे यम,के प्रसन्न करनेवाले कार्यका अति-

क्रमण हो गया हो तो यहाँ देवाह्वाक अग्नि विराजमान है वही हमारे अपराध को दूर करेंगे। हमारे पास स्तुति के समान हवि भी है,उससे अग्नि को सन्तुष्ट करके यम सम्बन्धी अपराध से मुक्त हो सकेंगे।३३। यहाँ यम का नाम लेना उपयुक्त नहीं है क्योंकि इसकी भगिनीने इसके भार्यात्व की कामना की थी। फिर भी जो इन यम की स्तुति करे हे अग्ने! तुम इस निन्दा का विस्मरण कराते हुए उस स्तोता की रक्षा करो।३४। जिन अग्नि के यज्ञ निष्पादक रूप से प्रतिष्ठित होने पर देवता प्रसन्न होते हैं और जिनके कारण मनुष्य सूर्य लोक में निवास करते हैं, जिन अग्नि के ही देवताओं ने प्रकाशमान तेज को लोकत्रेय में प्रतिष्ठित किया है तथा अन्धकार नाशक रश्मियों को जिनसे लेकर चन्द्रमा में स्थापित किया हैं। ऐसे तेजस्वी अग्निकी सूर्य और चन्द्रमा निरन्तर पूजा करते हैं।३५। वरुण के जिस स्थान में देवता घूमते हैं, उस स्थान को हम नहीं जानते। देवगण इस स्थान से हमारे निर्दोष होने की बात कहें। सविता, अदिति, आकाश और मित्र देवता भी अग्नि की कृपा से हमको निर्दोष ही कहें।३६। हम सखा रूप इन्द्र के लिये दृढ़ कर्म करने की इच्छा करते हैं। उन शत्रु का मर्दन करनेवाले परम नेता, वज्रधारी इन्द्र का मैं स्तवन करता हूँ।३७। हे वृत्रनाशक इन्द्र! तुम वृत्र हननकर्त्ता के रूप में जैसे प्रख्यात हो वैसेही अपने बल से भी प्रख्यात हो इसलिये अपने धन को मुझे दो।३८। मेंढ़क वर्षा ऋतु में जैसे पृथिवी को लांघ जाता है। वैसे ही तुम भी पृथिवी को लाँघकर ऊपर जाते हो। अग्निकी कृपा से वायु हमको सुखी करनेवाले होकर रहें। मित्र देवता और वरुण देवता भी इस कर्म में लगाकर, जैसे अग्नि तृणादि को भस्म करता है वैसे ही हमारे लोक को नष्टकरे।३९। हे स्तोता! जिनका श्मशान घर है, पिशाचादि के स्वामी है, जो प्रचण्ड पराक्रमी, भय उत्पन्न करने वाले और पास आकर हिंसित करने वाले हैं, उन रुद्र देवता का स्तवन कर। हे दुःख नाशक इन्द्र! हमारी स्तुतिसे प्रसन्न होकर हमें सुख प्रदानकरो। तुम्हारी सेना हमसे अन्यत्र तुम्हारे प्रति द्वेष रखने वाले पर ही आक्रमण करे।४०।

सरस्वतीं देवयन्तो देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥४१
सरस्वती पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥४२
सरस्वति या सन्ध ययाथोवर्थः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
सहस्र र्घमिडो अत्र मार्ग रायस्पोष यजमानाय धेहि ॥४३
उदीरतामवर उत् परास उन्मध्यमाः पितरा सोभ्यासः ।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥४४
आहं पितृन्त्सुविदत्राँ श्रवित्सि न पातं च विक्रमण च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥४५
इद पितृभ्यो नमो अस्त्वथा ये पूर्वासो ये अपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवजनासु दिक्षु ॥४६
मातलो कव्यैर्यमो अंगरोभिर्बृहस्पतिऋक्वभिर्वावृधानः ।
यांश्च देवा वाबृधुर्ये च देवांस्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥४७
स्वादुष्किलाय माधुमाँ उताय तीबः किलाय रसवाँ उतायम् ।
उतो स्वस्य पपिवांसमिन्द्रे न कश्चन सहत आहवेषु ॥४८
परेयिवांसं प्रवतो महीरिति बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं संगमन जनानां यमं राजानं हविषा सपर्वत ॥४९
यमो नो गातुं प्रथमो वि वेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा ।
यत्रा नः पूर्वं पितरः परेता एना जज्ञानाः पथ्या अनुस्वः ॥५०

मृतक संस्कार करने वाले अग्निकी इच्छा करतेहुए पुरुष सरस्वती का आह्वान करते हैं और ज्योतिष्टोम आदि यज्ञों में भी सरस्वतीको आहूत करते हैं। वह देवी हविदाता यजमान को इच्छित पदार्थ दे।४१ वेदी के दक्षिण और प्रतिष्ठित पितर भी सरस्वती का आह्वान करतेहैं।

हे पितरो! तुम इस यज्ञ में विराजमान होते हुए प्रसन्न होओ। तुम सरस्वतीको तृप्त करो और हवियोंको प्राप्तकर सन्तुष्ट होओ। हे सरस्वती ! तुम पितरों द्वारा आहूत हुई राग-रहित इच्छित अन्नको हममें स्थापित करो।४२।हे सरस्वते! तुम पितरों सहित अपनेको तृप्त करती हुई एक ही रथ पर आतीहो। अनेक व्यक्तियों और प्रजाओंको तृप्त करने वाले भाग और धन के बल को मुझ यजमान को भी प्रदान करो।४३। अवस्था व गुणोंमें श्रेष्ठ अथवा निकृष्ट और मध्यम पितरभी उठें यह पितर सोम भक्षक है। यह प्राणसे उपलक्षित शरीरको प्राप्त होने वाले,अहिंसक और यथार्थके ज्ञाता है। आह्वान कालोंमें यह सब पितर हमारे रक्षक हों।४४। मैं कल्याण सम्पन्न पितरों के समक्ष उपस्थित होता हूँ। यज्ञ रक्षक अग्नि के समक्ष उपस्थित होता हूँ। इसलिए बर्हिषद नामक जो पित स्वधा के साथ सोम–पान करते हैं, उन्हें हे अग्ने ! मेरे समीप बुलाओ।४५। जो पहले पितर लोक को प्राप्त हुए, जो अब गए हैं, जो पृथिवी लोक में ही हैं, जो विभिन्न दिशाओंमें है। उन सब पितरों को नमस्कार है।४६। मालती नामक पितृ देवता यजमान हवि द्वारा कव्य नामक पितरों के साथ बढ़ते हैं, यम नामक पितनेता यजमान प्रदत्त हवि से अंगिरा नामक पितरों सहित बढ़ते हैं। इनमें मालती आदि देवता जिन पितरों को यज्ञ में प्रवृद्ध करते हैं और जो क्रव्यादि की आहुति से प्रवृद्ध करते हैं, वे पितर आह्वान काल में हमारे रक्षक हों ये सुसिद्ध सोम स्वाद चखने के योग्य हैं। यह मधुर है इसलिए सुस्वादु हैं यह तीव्र होने से मद में भरने वाला है। यह रसवान है अतः इसे पीने वाले इन्द्र का संग्राम में कोई भी असुर सामना नहीं कर सकता।४७-४८। पृथिवी को लाँघ कर दूर देश में गमन करने वाले, अनेक पितरों के मार्ग पर चलने वाले विवस्वान् के पुत्र मृतकों के धाम रूप यमराज को पूजते हैं।४९। हमारे मृत सबधियों के मार्ग म जाना होता है। आत्मसाक्षात्कार से वियुक्त पुरुषों का कर्म

फल रूप पितृलोक अवश्य प्राप्त हो । जिन मार्गों से हमारे पूर्व पुरुष गये थे और जिस मार्ग से वे अपने कर्मों के अनुसार इस पृथिवी पर आते हैं, उन सभी मार्गों को यमराज जानते हैं ।५०।

बर्हिषदः पितरः ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आ गतावसा शतमेनाधा नः श योररपो दधात ।।५१
आच्या जानु दक्षिणतो निषद्ये द ना हविरभि गणन्तु विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद् व आगः पुरुषता कराम।५२
त्वष्टा दुहित्र वहतु कृणोति तेनेदं विश्वं धुवनं समेति ।
यमस्य माता पर्यु ह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश ।।५३
प्रे हि प्रे हि पथिभिः पर्याणैना ते पूर्व पितरः परेताः ।
उभा राजानो स्वधया मदन्तौ यम पश्यासि वरुणां चदेवम्।५४
अपेत वात वि च सर्पतातोऽस्मा एत पितरो लोकमाक्रन् ।
अहोभिरभ्दिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानपस्मै ।।५५
उशन्तस्त्वेधोमह्यु शन्तः समिधीमहि ।
उशन्नु शत आ वह पितृन् हविषे अत्तवे ।।५६
द्यू मन्तस्त्वेधीमहि द्यु मन्तः स मिधीमहि ।
द्यु मान् द्यु मत आ वह पितृन हविष अत्तव ।।५७
अगिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
तेषां वव सुमतौ यज्ञियानानपि भद्रे सोमनसे स्याम ।।५८
अगिरोभिर्यज्ञियरा गहीह यम वरूपैरिह मादयस्व ।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन् बर्हिष्या निषद्य ।।५९
इमं यक प्रस्तरमा हि र हाअंगरोभिः पितृभि संविदानः ।
आ त्वा मन्त्राःकविशस्ता वहन्त्वेना राजय हबिषो मादयस्व।६०
इत एत उदारुहन् दीवस्पृष्ठान्यारुहन् ।
प्र भूर्जयो यथा पथां द्यामअंगि मो ययु ।।६१

यज्ञ में आगत बर्हिषद पितरों ! हमारी रक्षाके लिए हमारे सामने आओ । यह हवियाँ तुम्हारे लिए है इन्हें सेवन करो । तुम अपने कल्याणकारी रक्षा-साधनोंसहित आओ और रोग-शमनात्मक तथा पाप नाशक बलको पममें स्थापित करो ।५१। हे पितरो ! त्रानु सकोड़ कर वेदी के दक्षिण ओर बैठे हुए तुम हमारी हवि की प्रशंसा करो । हमारे छोटे या बड़े किसी भी अपराध के कारण हमें हिंसित न करना, क्योंकि मनुष्य-स्वभाव वश हमसे अपराध होना असम्भव नहीं है ।५२। सिंचित वीर्य को पुरुषादि की आकृति में बदलने वाले त्वष्टा ने अपनी पुत्री सरण्यु का विवाह किया, जिसे देखने को अखिल विश्व एकत्रित हुआ । यम की माता सरण्यु जब सूर्य द्वारा विवाही गई तब सूर्य की परम प्रभाव वाली पत्नी उनके पास से अदृश्य हो गई ।५३। हे प्रेत ! जिस अर्थी को मनुष्य उठाते हैं उससे यम मार्ग को गमन कर । इसी मार्ग में तेरे पूर्व पुरुष गए हैं । वहाँ देवताओं में क्षात्र धर्म वाले वरुण और यम दोनों हैं । वे हमारे प्रदत्त हवियों से प्रसन्न हो रहे हैं । उस यम लोक में तू यम और वरुण को देखेगा ।५४। हे राक्षसो ! इस स्थानसे भागो । तुम चाहे पहले से वहाँ रहते हो या नये आकर रहने लगे हो, यहाँ से चले जाओ, क्योंकि यह स्थान इस प्रेत को दिन-दिन और जल के सहित रहने को यम ने दिया है ।५५। हे अग्ने ! इस पितृ यज्ञको सम्पन्न करनेके लिए हम तुम्हारी कामना करते और आह्वान करते हैं । तुम भले प्रकार प्रदीप्त होकर स्वधाकी कामना वाले पितरों के लिए हवि-भक्षणार्थ लाओ ।५६। हे अग्ने ! हम तुम्हारा आह्वान करते हैं । हवि स्वीकार कर उसे भक्षण करनेके लिए पितरों को यहाँ लाओ।५७। प्राचीन ऋषि अङ्गिरा हमारे पितर है, नवीन स्तोत्र वाले अथर्वा और भृगु हमारे पितर हैं, यह सब सोम पीने वाले हैं । इनकी कृपा बुद्धि में हम रहें । यह हमसे प्रसन्न रहें ।५८। हे यम ! अङ्गिरा नामक यज्ञीय पितरों सहित यहाँ आकर तृप्त होओ । मैं तुमको ही नहीं, तुम्हारे पिता सूर्य को भी बुलाता हूँ । वह जिसके कुश के

आसन पर बैठकर हवि ग्रहण करें उस प्रकार उन्हें आहूत करता हूँ ।५९। हे यम! अङ्गिरा नामक पितरों से समान मति वाले होकर इस कुश पर बैठो। महर्षियों के मन्त्र तुम्हें बुलाने में समर्थ हों। तुम हमारी हवि पाकर प्रसन्न होओ ।६०। दाह संस्कार करने वाले पुरुषों ने मृतक को पृथिवी पर से उठाकर अर्थी पर रखा और आकाश के उपभोग्य स्थानों पर चढ़ा दिया। पृथिवी को जीतने वाले आंगिरस जिस मार्ग से गए, उसी मार्ग से इसे भी आकाश में पहुँचा दिया ।६१।

सूक्त २ (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि— अथर्वा। देवता—यमः, मन्त्रोक्ताः, जातवेदाः, पितरः। छन्द—अनुष्टुप्, जगतीः, त्रिष्टुप्, गायत्री)

यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ॥१
यमाय मधुमत्तमं जुहोता प्र च तिष्ठत।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः॥२
यमाय घृतवत् पयो राज्ञे हविर्जुहोतन।
स नो जीवेष्वा यमेद् दीर्घमायुः प्र जीवसे ॥३
मैनमग्ने वि दहो माभि शूशुचो मास्य त्वचं चिक्षिपो माशरीरम्
शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेममेनं प्र हिणतात् पितॄँरुप ॥४
यदा शृतं कृणवो जातवेदोऽथेममेनं परि दत्तात् पितृभ्यः।
यदा गच्छात्यसुनीतिमेतामथ देवानां वशनीर्भवाति ॥५
त्रिकद्रुकेभिः पवते षडुर्वीरेकमिद् बृहत्।
त्रिष्टुब् गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आर्पिता ॥६
सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं चधर्मभिः।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ।७

अजो भगास्तपसस्त तपस्व त ते शोचिस्तपतु त ते अर्चि: ।
यास्ते शिवास्तन्वो जामवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् ॥८
यास्ते शोचयो रहयो जातवेदो याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम् ।
अज यन्तमनु ता: समृण्वतामथेतराभि: शिवतमाभि:शृत कृधि।९
अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चररि स्वधावान् ।
आयुर्वसान उप यातु शेष: स गच्छताँ तन्वा सवर्चा ॥१०

सोमयोग में यजमान के लिये सोम सिद्ध करते हैं । घृतादि हवि उत्पन्न आदि संस्कार द्वारा यम को दी जाती है । स्तोत्र शस्त्र आदि से सुशोभित हविको दूतके समान अग्नि वहन करते हैं वह ज्योतिष्टोम आदि दम यम को प्राप्त होते हैं ।१। हे यजमानो ! यम के लिए सोम घृतादि की आहुति दो । पूर्व पुरुषा मन्त्रद्रष्टा अङ्गिरा आदि ऋषियों को नमस्कार है ।२। हे यजमानो ! घृत सम्पन्न क्षीररूप हविको यमके लिए अर्पित करो । वे हवि पाकर हमको जीवित मनुष्योंमें रखेंगे और सौ वर्ष की आयु देंगे ।३। हे अग्ने ! इन प्रेत को मत भस्म करो इसकी त्वचा को अन्धक मत फेंको और शोक भी मत करो जब तुम इस शरीर को पकालो तब पितरों के पास प्रेषित करो ।४। हे अग्ने! जब तुम इस हवि रूप शरीर को पकालो तब इस रक्षाके लिए पितरों को दो । जब यह असुनीत देवता को प्राप्त हो तब यह देवताओं को यज्ञ करने में समर्थ हो ।५। तीन कद्रुक यज्ञों को करते समय यम के लिये सोम निष्पन्न करते हैं । आकाश, पृथिवी, दिन, रात्रि, जल, औषधि यह छओं उर्वियां यमके लिए ही प्रवृत्त होती है । सब छन्दभी यम में स्थित होते हैं ।६। हे मृतक! तू नेत्र द्वार से सूर्य का प्राप्त हो, सूत्रात्मा रूप से वायु को प्राप्त हो, अन्य इन्द्रियोंसे आकाश पृथिवीको प्राप्त हो तथा अन्तरिक्ष व जलको प्राप्तहो । इन स्थानोंमें तेरी इच्छा हो तो जो अथवा ओषधादि में प्रविष्ट हो ।७। हे अग्ने ! अपने भाग इस 'अज'को तेजसे संतप्त करो । उसे तुम्हारी दीप्ति ज्वाला तपामें ।

जो विराट् स्वराट् आदि शरीरहै उनके द्वारा इस प्रेतको पुण्यात्माओं का लोक प्राप्त कराओ ।८। हे अग्ने ! तुम्हारी वेगवती और शोकप्रद ज्वालाओंसे आकाश और अन्तरिक्ष व्याप्त है । वे ज्वालायें इस अजको प्राप्त हों । अन्य सुखकारी लपटों से तुम इस प्रेत का हवि के समान ही पकाओ ।९। हे अग्ने ! हवि रूपसे जो प्रेत तुम्हें दिया गया है और हमारे प्रदत्त स्वधा सम्पन्न होकर तुममें घूम रहा है उसे तुम पितृलोक के लिए छोड़ो और उसका पुत्र आयु से सम्पन्न होता हुआ घर को लौटे । यह प्रेत सुन्दर बच वाला और पितृलोक में निवास योग्य देह वाला हो ।१०।

अति द्रव श्वानो सारमेयो चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा ।
अधा पितृन्त्सुविदत्रां अपीहि यमेन ये सधमादं मदन्ति ॥११
यौ ते श्वानो यम रक्षति रो चतुरक्षो पथिषदो नृचक्षसा ।
ताभ्यां राजना परि धह्येन स्वस्त्यस्मा अनमीव च धेहि ॥१२
उरूणासावसुतृपावुदुम्बलो यमस्य दूतौ चरतो जनां अनु ।
तावस्मभ्य हृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् ॥१३
सोम एकेभ्यः पचते घृतमेक उपासते ।
येभ्यो मधु प्रधावति तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥१४
ये चित् पूर्व ऋयसाता ऋतजाता ऋतावृधः ।
ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजां अपि गच्छतात् ॥१५
तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः ।
तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥१६
ये यूध्यन्ते प्रघनेषु शूरासो ये तनूत्यजः ।
ये वा सहस्रदक्षिणास्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥१७
सहस्रणीथाः कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम् ।
ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजां अपि गच्छतात् ॥१८
स्योनास्मै भव पृथिव्यनृक्षरा निवेशनी ।

यच्छ्यास्म शर्म सप्रथा: ॥१९

असबाधे पृथिव्या उरौ लोके नि धीयस्व ।

स्वधा याश्चकृषे जीवन् तास्ते सन्तु मधुश्चुत: ॥२०

हे प्रेत ! तू पितृलोक को जाने वाला है । सरमा नामक कुतिया के श्याम शवल नामक दोनों पुत्रों के साथ प्रसन्न चित्त से रहने वाले हव्यसम्पन्न पितरों के पास पहुँच।११। हे पितरों के प्रभो! पितर-मार्ग में स्थित चार नेत्रवाले जो श्वान यमपुरकी रक्षाकरने के लिये तुम्हारे द्वारा नियुक्त हैं उन्हें रक्षार्थ इस प्रेत को सौंपो और तुम्हारे लोक में रहने को आये हुए इसे बाधा हीन स्थान दो ।१२। बड़ी-बड़ी नाकवाले प्राणियों के प्राणों से तृप्ति को प्राप्त प्राणों का अपहरण करने वाले, महाबली यमदूत सर्वत्र घूमते हैं । वे दोनों दूत हमको सूर्य दर्शन के निमित्त पंचेन्द्रिय युक्त प्राण को हमारे शरीर में पुन: स्थापित करे।१३ एक पितरोंको, नदी रूप में सोम प्रवाहितहै, दूसरे पितर वृत-उपयोगी हैं, ब्रह्मयाग में अथर्वके मन्त्रोंका पाठ करने वालों के लिए मधुकी नदी प्रवाहित है । हे मृतावस्था प्राप्त प्रेत ! तू उन सबको प्राप्त हो ।१४। जो पूर्व पुरुषा सत्ययुक्त थे सत्य से उत्पन्न होकर सत्यकी ही वृद्धिकरते हैं, उन तपोधन ऋषियों को हे यम से नियमित पुरुष ! तू प्राप्त हो ।१५। तप के द्वारा, यज्ञादि साधनों द्वारा, दुष्कर कर्म और उपासना द्वारा महातप करते हुए जो पुरुष पुण्य लोकों को पाते हैं । हे पुरुष ! तू भी उन तपस्वियों के लोकों को जा।१६। जो वीर युद्धोंमें शत्रुओंपर प्रहार करते हैं, जो रण क्षेत्र में देह त्याग करते है, जो अन्न दक्षिणा वाले यज्ञों को सम्पन्न करते हैं, प्रेत ! तू उनसे मिलने वाले सब फलों को प्राप्त हो ।१७। जो अनन्तद्रष्टा ऋषि सूर्य की रक्षा करते हैं, हे पुरुष ! तू यम को नीयमान होकर भी उन तपस्वियों के कर्मफल को प्राप्त हो।१८। हे वेदी रूपिणी पृथिवी! तू मुमूर्ष, पुरुष के लिये कण्टक हीन बन और इसे सब प्रकार सुख दे ।१९। हे मुमूर्षो ! तू यज्ञादि के वेदी रूप विस्तृत स्थान में प्रतिष्ठित हो । पहिले तूने जिन सुकर्मयुक्त

हवियों को दिया है, वह तुझे मधु आदि रसों के प्रवाह रूप में प्राप्त हो ।२०।

ह्वयामि ते मनसा मन इहेमान् गृहां उप जुजुषाण एहि ।
सं गच्छस्व मितृभिःसं यमेन स्योन स्त्वा याता उप वान्तुशरमाः ।२१।

उत् त्वा वहन्तु मरुत उदवाहा उदप्रुतः ।
अजेन कृण्वन्तः शीतं वर्षणोभून्तु बालिति ।।२२
उदह्वं मायुरायुषे क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
स्वान् गच्छतु ते मनो अधा पितृँरूप द्रव ।।२३
मा ते मनो मासोर्मागानां मा रसस्य ते ।
मा ते हास्त तन्वः किं चनेह ।।२४
मा त्वा वृक्षः स बाधिष्ट मा देवी पृथिवी महो ।
लोकं पितृषु वि त्वैधस्व यमराजसु ।।२५
यद् ते अङ्गमतिहितं पराचैरपानः प्रणो य उ वा ते परेतः ।
तत ते सगत्यं पितर सनीडा घासाद् घासं पुनरा वेशयन्तु ।।२६
अपेमं जीवा अरुधन् गहेभ्यस्तं मिर्वहत परि ग्रामादितः ।
मृत्युर्यमस्यासीद् दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयां चकार ।।२७
ये दस्यवः पितृषु प्रविष्टा ज्ञातिमुखा अहुतादश्चरन्ति ।
परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टानस्मात् प्र धमाति यज्ञात् ।।२८
स विशन्त्विह पितरः स्वा नः स्योन कृण्वन्त प्रतिरन्त आयुः ।
तेभ्यः शकेम हविषा नक्षमाणा ज्योग जीवन्तः शरदःपुरूचीः।२९
यांते धेनु निपृणामि यमु क्षीरु ओदनम् ।
तेना जनस्यासो भर्ता योऽत्रासदजीवन ।।३०

हे प्रेत पुरुष ! अपने धन के द्वारा तेरे मन में इस लोक में आहूत करता हूँ । जिन घरों में तेरे लिये और्ध्वदेहिक कर्म किया जाता है, तू हमारे उन घरों में आ और संस्कारके पश्चात् पितामह, प्रपितामह

आदि के साथ सपिण्डीकरणमें मिल । यमके पास पहुँचा हुआ तू पितृ-लोंक में जाकर मार्ग श्रमको दूर करने वाले सुखकर वायु को प्राप्त हो ।२१। हे प्रेत मरुद्गण व्योम में धारण करें, वायु ऊर्ध्व लोक में पहुँ-चावें, जलधारक और वर्षक मेघ समीपस्थ अज सहित तुझे वृष्टि जल से सींचे ।२२। हे प्रेत ! प्राणत अपातन व्यापी के लिये मैं तेरी आयु को आह्वान करता हूं । तेरा मन संस्कार से उत्पन्न नवीन शरीर को प्राप्त हो और फिर तू पितरों के पास पहुँच ।२३। हे प्रेत ! तुझे तेरे मन और इन्द्रिय न छोड़े और तेरे प्राण के किसी अंश का क्षय न हो । तेरे देहके अङ्गोंमें कोई विकृत न हो । रुधिर, रस आदिभी पूर्ण मात्रा में रहे । तेरा कोई भी अङ्ग मुझसे पृथक् न हो।२४। हे प्रेत! तू जिस वृक्ष के नीचे बैठें वह तुझे व्यथित न करे ; जिस पृथिवी का आश्रय ले वह तुझे पीड़ित न करे । तू यम के प्रजा रूप पितरों से स्थान पाकर, बढ़ ।२५। हे प्रेत ! तेरा जो अङ्ग शरीर से पृथक् हो गया था, सात प्राण फिर आवृत न होनेके लिए निकल गये थे,उन सबको, एक स्थान में अवस्थित पितर एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रविष्ट करें ।२६। हे जीवित बन्धुओं ! इस प्रेत को घर से ले जाओ । इसे उठाकर ग्राम पितर रूप में प्रविष्ट करने को लिया है ।२७। जो राक्षसों के समान पिता, पितामह आदि पितरोंमें मिल बैठते हैं और मायासे हवि भक्षण करते हैं तथा पिण्डदाह करने वाले पुत्र पौत्रों को हिंसित करते हैं, उन मायावी राक्षसों को पितृयाग से अग्निदेव बाहर निकाल दे।२८। हमारे गोत्र में उत्पन्न पितामह आदि सब पितर भले प्रकार यज्ञ में स्थित हों और हमें सुखी करें, हमारी आयु बृद्धि करें । हम भी आयु पाते ही हवियों से पितरों को पूजते हुए चिरकाल तक जीवित रहें।२९।हे प्रेत! तेरे निमित्त गोदान करता हूँ । तेरे लिए जिसे दूध में बने भात को देता हूं उसके द्वारा तू यमलोक में अपने जीवन को पुष्ट करने वाला हो ।३०।

अश्चवतीं प्र तह या सुशेवाक्षाकिं वा प्रतरं नवीयः ।
यस्त्वा जघान वध्यः सो अन्यद् विदत भागधेयम् ॥३१
यमः परोऽवरो वियस्वान् ततः पर नाति पश्यामि किं चन ।
यमे अध्वरो अधि मे निविष्टो भुवो ववस्वान नन्वाततान ॥३२
अपागहन्नमृता मर्त्यभ्यः कृत्वा सवर्णामदधुर्विवस्वते ।
उताश्विनावभरद् यत् तदासीदजह दुद्वा मिथुना सरण्यूः ॥३३
ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये च द्धिताः ।
सर्वास्तानग्न आ वह पितृन् हविषे अत्तवे ॥३४
ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
त्व तान् वेत्थ यदि ते जातवेद स्वधया यज्ञं स्वधितिजुषन्ताम्।३५
शं तप मा त तपो अग्ने मा तन्व तपः ।
वनेषु शुष्मो अस्तु ते पृथिव्यामस्त यद्धरः ॥३६
दादम्यस्मा अवसानमेतद् य एष आगन् मम चेदभूदिह ।
यमश्चिकिष्त्वान् प्रत्येतदाह ममष राय उप तिष्ठतामिह ॥३७
इमां मात्रां मिमामहे यथापरं न मासातं ।
शते शरत्स नो पुरा ॥३८
प्रेमां मात्रा मिमोमहे यथापरं न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥३९
अपेमां माता मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥४०

हे प्रेत मैं नवीन वन-मार्ग में रीछ आदि दुष्ट जन्तुओं से बचता हुआ पार होऊँ तू हमें अश्वावती नदीके पार उतार । यह नदी हमको सुख प्रदायिनी हो । जिसने तेरा बध कियाहै वह वध योग्य होता हुआ उपभोग्य पदार्थों को न पा सके ।३१। सूर्य के पुत्र यम अपने पिता से भी अधिक तेजस्वी हैं । मैं किसी भी प्राणों को यम से अधिक नहीं पाता । मेरा यज्ञ उन उत्कृष्ट यम में ही व्याप्त हो रहा हैं । यज्ञ की सिद्धि के निमित्त ही सूर्यने भूमण्डलों को विस्तृत किया है।३२। मरण-

धर्म वाले, मनुष्यों से देवताओं ने अपने अविनाशी रूपों को अदृश्य कर लिया। सूर्य को समान वर्ण वाली अन्य स्त्री बनाकर दी। सरण्यु ने घोड़ी का रूप धारण कर अश्विनीकुमारों का पालन किया। त्वष्टाकी पुत्री सरण्यु ने सूर्य का घर छोड़ते समय यमयमी के युग्म को घर पर ही छोड़ा था।३३। जो पितर भूमि में गाड़े जाकर, जो काष्ठ के समान त्यागे जाकर और जो अग्नि दाह संस्कारसे उर्ध्वलोक-पितृलोक को प्राप्त हुए हैं। ऐसे हे पितरो! हवि भक्षणार्थ यहाँ आओ।३४।जो पितर अग्नि से संस्कृत हुए, जो गाढ़ने आदिसे संस्कृत हुए और पिण्ड पितृभाग आदि से तृप्त हुए आकाश के मध्यमें रहते हैं। हे अग्ने! तुम उन्हें भले प्रकार जानते हो। वे अपनी प्रजाओं द्वारा किये जाने वाले पितृ यान आदि का सेवन करें।३५। हे अग्ने! इस प्रेत शरीर को अधिक मत जलाओ। जिस प्रकार इसे सुख मिले, वह करो। तुम्हारी शोषक ज्वालायें जंगलमें जाँय और रसहारक तेज पृथिवी में रहें। तुम हमारे शरीरों को भस्म मत करो।३६। यम वाक्य! यह आगत पुरुष मेरा हो तो मैं इसे स्थान दूँ। क्योंकि अब यह मेरे पास आया है अतः यह मेरा स्तवन करता रहे तो यहाँ रह सकता है।३७। हम इस श्मशान को नापते हैं, क्योंकि ब्रह्मा ने हमें सौ वर्ष की आयु दी है, इसलिए बीच में ही हमें श्मशान कर्म दुबारा प्राप्त न हो।३८। हम इस श्मशान को अच्छे प्रकार नापते हैं जिससे हमें सौ त्रर्ष से पहिले बीचमें ही श्मशान कर्म प्राप्त न हो।३९। हम इस श्मशान के नाप के दोषों को हटाते हुए नापते हैं, जिससे हमें सौ बर्ष से पहले बीचमें ही दूसरा मृतक कर्म प्राप्त न हो।४०।

वीमां मात्रा मिमीमहे यथापरं न मासातै।
शते शरत्सु नो पुरा ॥४१

निरिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै।
श्रूते शरत्स नो पुरा ॥४२

उदिमां मात्रां मिमीमहें यथापरं मासतै।
शते शरत्सु नो पुरा ॥४३

समिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥४४
अमासि मात्रां स्वरगोमायुष्मान् भूयासम् ।
यथापर न मासातै शते शरत्सु नो पुराः ॥४५
प्राणो अपानो व्यान आयुश्चक्षुर्दृशये सूर्याय ।
अपरिपरेण पथा यमराज्ञः पितृन् गच्छ ॥४६
ये अग्रवः शशमानाः परेयुर्हित्वा द्वषांस्यनपत्यवन्त ।
ते द्यामुदित्याविदन्त लोकं नाकस्य पृष्ठ अधि दीध्यानाः ॥४७
उदवती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा ।
तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते ॥४८
ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम् ।
य आक्षियन्ति पृथिवीभूत द्यां तेभ्यः पितृभ्यो नमसा पिधेम् ।४९
इदमिद् वा उ नापरं दिवि पश्यमि सूर्यम् ।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्ये न भूम उर्णु हि ॥५०

हम इस श्मशान भूमि को विशिष्ट प्रकारसे नापते हैं, जिससे हमें सौ वर्ष से पहले बीच में ही दूसरा श्मशान कर्म प्राप्त न हो ।४१। दोषों से शून्य करते हुए हम इस श्मशान नापतेहैं जिससे हमें सौ वर्षसे पहले बीच में दूसरा श्मशान को कर्म प्राप्त न हो।४२। उत्कृष्ण साधन वाले नाप से इस श्मशान को हम नापते हैं जिससे हमें सौ वर्ष से पहले बीच में ही दूसरा श्मशान कर्म न मिले ।४३। इस श्मशान भूमि को हम अच्छे प्रकार नापते हैं जिससे हमें सौ वर्ष पहले, बीच में ही दूसरा श्मशान कर्म न मिले ।४४। मैंने श्मशान भूमि को नाप लिया उसी नाप के द्वारा इस प्रेत को स्वर्ग भेज चुका हूँ । उस कर्मसे ही मैं सौ वर्ष की आयु प्राप्त करूँ और सौ वर्ष से पहले बीच में ही अन्य श्मशान कर्म प्राप्त न हों ।४५। प्राण, अपान, व्यान, आयु चक्षु सब आदित्य का दर्शन करने वाले हो । हे पुरुष ! तू भी यमराज के प्रत्यक्ष मार्ग द्वारा पितरों को प्राप्त हो ।४६। पितर संसार रहित होने पर भी पापों को छोड़ते हुए परलोक में गये वे अन्तरिक्ष

को लाँघ कर स्वर्ग के ऊर्ध्व भाग में रहते हुए पुण्यका फल प्राप्त करते हैं ।४७। नीचे की ओर द्युलोक उदन्वती, द्वितीय भाग पीलुमती है, तृतीय भाग प्रद्यो हैं, उसी तीसरे भाग में पितर निवास करते हैं ।४८। हमारे पिता के जन्मदाता पितर, पितामह के जन्मदाता पितर और वे पितर जो विशाल अन्तरिक्षमें प्रविष्ट हुएहैं जो पितर स्वर्ग या पृथिवी पर रहते हैं इन सब लोकों में वास करने वाले पितरों को नमस्कार द्वारा हम पूजन करते हैं ।४९। हे मृतक ! हम श्रद्धादि में जो कुछ देते हैं, वही तेरा जीवन है । अन्य कोई साधन जीवन का नहीं है । तू इस श्मशान को प्राप्त हुआ सूर्य के दर्शन करताहै । हे पृथिवी ! जैसे माता अपने पुत्र को आँचल से ढकती है वैसे ही तुम इस मृतकको अपने तेज से ढक लो ।५०।

इदमिद वा न नापर जरस्वन्यदितोऽपरम् ।
जाया पतिमिव वाससाभ्ये नं भूम ऊर्णु हि ।।५१
अभि त्वोर्णोमि पृथिव्या मातुर्वस्त्रेण भद्रया ।
जीवेषु भद्र तन्मयि स्वधा पितृषु सा त्वयि ।।५२
अग्नीषोमा पाथकृता स्योन देवेभ्यो रत्न दधथुर्वि लोकम् ।
उप प्रष्यन्त पूषण यो वहात्यञ्जोयानः पथिभिस्तत्र गच्छतम्।५३
पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुभुवनस्य गोपाः ।
सत्वैतेभ्यः परि ददत् पितृभ्योऽग्निदेवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ।।५४
आयुर्बिश्चायः परि पातु त्वा पूष त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।
यत्रासते सुकृतो यत्र त इयुस्तत्र त्वा देवः सविता दध तु ।।५५
इमौ युनज्मि ते वह्नो असुनीताय वोढवे ।
ताभ्यां यमस्य सादन समितीश्चाव गच्छतात् ।।५६
एतत् त्वा वासः प्रथम न्दागन्नपैतदूह यदिहाविभः पुरा ।
इष्टापूर्तमनुसंक्राम विद्वान यत्र ते दत्त बहुधा विबन्धुषु ।।५७

अग्नेर्वर्म परि गोभिव्ययस्व स प्रोर्नुष्व मेदसा प वसा च ।
नेत् त्वा धृष्णुहरसा जर्हृषाणो दधृग विधक्षन् परीङ्खयातै ।५८
दण्ड हस्तादाददानो गतासोः सह क्षोत्रेण वर्चसा बलेन ।
अत्रैव त्व मह वय सुब रा वि वा मृघा अभिमात जयेम ।।५९
धनुर्हस्तादाददानो मृतस्य सह क्षेत्रेण वर्चसा बलेन ।
समाग्रभाय वसु भूरि पूष्णमर्त्राङ्तगमेह्य प जीवलोकम् ।।६०

जीर्ण होते हुए जो भोजन इसने किया था उसने अन्यथा कुछ भी भोक्तव्य नहीं है इसके लिए इस श्मशानके सिवाय अन्य कोई स्थानभी नही है । हे भूमे ! इस श्मशान को प्राप्त हुए मृतक की पत्नी जैसे वस्त्र से पति को ढकती है, वैसे तुम ढक लो ।५१। हे मृतक ! सबकी मँगलमयी माता पृथिवी के वस्त्र से मैं तुझे ढकता हूँ । जीवित अवस्था में जो दान के लिए सुन्दर वस्तु प्राणी के पास होतीहै वह मुझ संस्कार करने वाले में हो और स्वधारक युक्त जो अन्न पितरों में होता है,तुझ में हो।५२। हे अग्ने! हे सोम तुम पुण्यलोकके मार्गको बनातेहो । तुमने सुख देने वाले स्वर्ग लोक की रचना की है । जो लोक सूर्य को अपनेमें रखता है इस प्रेत को सरल मार्गों द्वारा उस लोक को प्राप्त कराओ ।५३। हे प्रेत ! पशुओं को हिंसित न करने वाले पशु पालक पूषा तुझे इस स्थानसे ले जांय । यह प्राणियों की रक्षा करने वाले तुझे पितरोंके अर्पण करें । अग्निदेव तुझे ऐश्वर्यवान देवताओं को सौंपे ।५४। जीवन का अभिमानी देवता आयु तेरा रक्षक हो । पूषा तेरे पूर्वकी ओर जाने वाले मार्ग में रक्षक हो । हे प्रेत! पुण्य आत्माओं के निवास रूप स्वर्ग के नाक पृष्ठ मे तुझे सविता प्रतिष्ठित करे ।५५। हे मृतक ! इन भार ढोने वाले बैलों को मैं तेरे छोड़े हुए प्राणों को वहन करने के लिए जोड़ता हूँ । इस बैल युक्त गाड़ी द्वारा तू यम गृह को प्राप्त हो ।५६। अपने पहिनेहुए मुख्य वस्त्रको त्याग । जिन इच्छा पूर्तियोंमें तूनेबांधवों को धन दिया था उस इष्ट कर्म के फल रूप वाली, कूप, तड़ाग आदि को प्राप्त हो ।५७। हे प्रेत ! इन्द्रियाँ सम्बन्धी अबयवों से अग्नि के

दाह निवारक कवच को पहिन हे प्रेत ! स्थूलमेदमय हो, जिससे वह अग्नि तुझे अधिक भस्म करने की इच्छा करता हुआ इधर-उधर न गिरावे ।५८। मृतक ब्राह्मण के हाथ से बाँस के दण्ड को ग्रहण करता हुआ मैं कानों के तेज और उससे प्राप्त बल से युक्त रहूँ । हे प्रेत ! तू इस चिता में ही रह और हम इस पृथिवी पर सुख से रहते हुए अपने शत्रुओं और उनके उपद्रवों को दबावें ।५९। मृतक क्षत्रिय के हाथ से धनुष को ग्रहण करता हुआ क्षात्र तेज और बलसे युक्त होऊँ हे धनुष! बहुत से धन को हमें देने के लिए लाता हुआ इस जीवन लोक में ही हमारे सामने आ ।६०।

सूक्त ३ (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा । देवता— यमः, मन्त्रोक्ताः, अग्निः, भूमिः, इन्दुः, आप। छन्द-त्रिष्टुप, पंक्ति, गायत्री, अनष्टुप, जगती, शक्वरी, बृहती)

इयं नारी परिलोक व्रणाना नि पद्यत उप त्वा मर्त्य प्रेतम् ।
धर्मं पुराणमनुपालयन्तो तस्यै प्रजां द्रविणां चेह धेहि ॥१
उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुतमेतमुप शेष एहि ।
हस्तग्राभस्य दिधिषोत्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि स बभूथ ॥२
अपश्यं युवतिं नीयमानां जीवां मृतेभ्यः परिणीयमानाम् ।
अन्धेन यत् तमसा प्रावृतासीत् प्राक्तो अपाचीमनयं तदेनाम् ॥३
प्रजानत्यघ्न्ये जीबलोक देवानां पन्थामनुसंचरन्यी ।
अयं ते गोपतिस्त जुषस्व स्वर्ग लोकमधि रोहयैनम ॥४
उप द्यामुप वेतसमत्तरो नमीनाम । अग्ने पित्तमपामसि ॥५
यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः ।
क्याम्बरत्र रोहत शाण्डदर्बा व्यल्कशा ॥६
इदं त एक पर ऊ त एक तृतीयेन् ज्योतिषा सं बिशस्व ।
संवेशने तन्वा चारुरेधि प्रियो देवानां परमे सधस्थे ॥७
उत्तिष्ठ प्रेहि प्र द्रवौकः कृणुष्व सलिले सधस्थ ।
तत्र त्व पितृभिः संविदानः सं सोमेन मदस्व सं स्वधाभिः ॥८

प्र च्यवस्व तन्वं सं भरस्व मा ते गात्रा वि हायि मो शरीरम् ।
मनो निविष्टमनुसंविशस्व यत्र भूमेर्जुषसे तत्र गच्छ ॥९
वर्चसा मां पितरः सोम्यासो अञ्जन्तु देवा मधुना घृतेन ।
चक्षुसे मा प्रतरं तारयन्तो जरसे मा जरदष्टिं वर्धन्तु ॥१०

यह स्त्री, धर्म का पालन करने के लिए तेरे दान आदि के फलकी इच्छा करती हुई तेरे समीप आती है इस प्रकार अनुसरण करने वाली इस स्त्री के लिये दूसरे जन्म में भी तू प्रजावती करना ।१। हे नारी ! तू इस प्राणहीन पति के पास बैठी है, अब तू इसके पास से उठ । तू अपने पति की उत्पत्ति रूप पुत्र पौत्रादि को प्राप्त हो गई है ।२। तरुण अवस्था वाली जीवित गौ को मृतक के पास ले जाई जाती हुई देखता हूँ । यह गौ अज्ञान से ढकी है इसलिए मैं इसे शव के पास से हटाकर अपने सामने लाता हूँ ।३। हे गौ ! तू पृथिवीलोक को भले प्रकार जानती हुई, यज्ञ मार्ग को देखती हुई, क्षीर दधि आदि से युक्त होकर आ । तू अपने इस गोरति स्वामी का सेवन कर और इस मृतक को स्वर्ग प्राप्त करा ।४। सिवार और वेंत में जल का सारभूत एवं रक्षक अंश है । हे अग्ने! तू भी जल का पित्त रूप है, इसलिए मैं तुझे वेंत की शाखा, नदी के फेन और वृहद्दर्वा आदि से शांत करता हूँ ।५। हे अग्ने ! जिस पुरुष को तुमने भस्म किया है, उसे सुखी करो । इस दाह-स्थान पर क्याम्बू नामक औषधि तथा वृहद्दूर्वा यह उगें ।६ हे प्रेत ! यह गार्हपत्य अग्नि तेरे परलोक पहुँचाने वाली ज्योति है । अन्वाहार्य पचन दूसरी और आहवनीय नामक तीसरी ज्योति है । तू आहवनीय से सुसंगत हो । अग्नि संवेशन से संस्कृत देव शरीको प्राप्त होकर बढ़, फिर इन्द्रादि देवताओंका प्रियपात्र हो।७। हे प्रेत ! तू इस स्थाग से उठ और वल शीघ्रतासे चलता हुआ अन्तरिक्ष में अपना घर वना और पितरोंसे मिलकर सोम पीता हुआ हर्षित हो ।८। हे प्रेत ! तू अपने शरीर के सब अङ्गों को एकत्र कर । तेरा कोई अङ्ग यहाँ छूट न जाय । तेरा मन जिस स्वर्गादि स्थान में रमा हो, वहाँ प्रवेश कर । तू जिस भूमि में प्रीति रखती है, उसी भूमिको प्राप्त हो।९। सोम पीने

के योग्य पितर मुझे तेजस्वी बनावें। विश्वेदेवा मुझे मधुर घृतसे युक्त करें और दीर्घकाल तक देखता रहूँ इसलिए रोगों से मुक्त रखते हुए मुझे प्रवृद्ध करें ।१०।

वर्चसा मां सननक्त्वग्निर्मेधां मे विष्णुर्न्यनक्त्वसा । ।
रयिं मे विश्वे नि यच्छन्तु देवाः स्योना मापः पवनैः पुनन्तु ।११
मित्रावरुणा परि मामधातामादित्या मा स्वरवो वर्धयन्तु ।
वर्चो म इन्द्रो न्यनक्तु हस्तयोर्जरदष्टिं मा सविता कृणोतु ।।१२

यो ममार प्रथमो मर्त्यानां य प्रयांथ प्रथमो लोकमेतम् ।
वैवस्वत संगमन जनानां यम रा ानं हविषा सपर्यत ।।१३
परा यात पितर आ च याताय वो यज्ञो मधुना समक्तः ।
दत्तो अस्मभ्यं द्रविणेहि भद्रं रयिं च नः सर्ववीर दधात ।।१४
कण्वः कक्षीवान् पुरुमोढो अगस्त्यः श्यावाश्वः सोभयर्चनानाः ।
विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरत्रिरवन्तु नः कश्यपा वामदेवः ।।१५

विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ भरद्वाज गोतम वामदेवः ।
शर्दिर्नो अत्रिरग्राभीन्नोमोभिः सुशंसासः पितरो मृडता नः ।।१६
कस्ये मृजाना अति यन्ति रिप्रमायुर्दधानाः प्रतर नवीयः ।
आप्यामानाः प्रजया धनेनाध स्याम सुरभयो गृहेषु ।।१७
अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाञ्जते ।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाःपशुमासु गृह्णते।१८

यद् वो मुद्रं पितरः सोम्यं च तेनो सचध्वं स्वयससो हि दूत ।
त अर्वाणः कवय आ शृणोत सुविदत्रा विदथे हूयमानाः ।।१९
ये अत्रयो अङ्गिरसो नवग्वा इष्टावन्तो रातिषाचो दधानाः ।
दक्षिणावन्तः सुकृतो य उ स्थासद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम्।२०

अग्निदेव मुझे तेज युक्त करें विष्णु मेरे मुख को मेधामय करें, विश्वेदेवा मुझे सुखदायक धनमें स्थापित करे और जल अपने शुद्ध साधन वायु के अंशों से मुझे पवित्र करें ।११। दिन के अभिमानी देव मित्र और रात्र्याभिमानी वरुण मुझे वस्त्र आदिमेयुक्त रखें । आदित्य हमारी वृद्धि करते हुए हमारे शत्रुओं को संतृप्त करें । इन्द्र मुझे भुज-बल दें और सविता दीर्घायु प्रदान करें ।१२। मरणधर्मी मनुष्यों में उत्पन्न राजा यम पहिले मृत्युको प्राप्त हुए और फिर वे लोकान्तरको प्राप्त हुए । उन सूर्य पुत्र को प्राणी प्राप्त होते हैं । हे ऋत्विजो ! पाप पुण्यानुसार फल देने वाले उन यम का पूजन करो ।१३। हे पितरो ! हमारे पितृयाग कर्म से संतुष्ट हुए तुम अब अपने स्थानको जाओ और जब फिर तुम्हारा आह्वान करें तब आना हमने तुम्हें मधु-घृतसे युक्त यज्ञ दिया है, उसे स्वीकार कर हमारे घर मङ्गलमय ऐश्वर्य और पुत्र पौत्र, पशु आदि स्थापित करो ।१४। कण्व, कक्षीवान्, पुरुमीढ, अगस्त्य, श्यावाश्व, सोभरि, विश्वामित्र, जमदग्नि, अत्रि, कश्यप और वामदेव नामक अनेक प्रकार के पूजा के योग्य ऋषि हमारे रक्षक हों ।१५। हे विश्वामित्र, जमदग्नि,वसिष्ठ, भरद्वाज, गौतम, वामदेव नामक महर्षियो ! हमको सुख प्रदान करो ।१६। महर्षि अत्रि ने हमारे घर की रक्षा स्वीकार की है । हे पितरो! हमारे नमस्कार आदि द्वारा तुम बांधव की मृत्युके दुःखको छोड़ते हुए और शव स्पर्शके पापसेयुक्त होते हुए घर जाते हैं । इस प्रकार हम दुःख से छूट गयेहैं इसलिए पुत्र-पौत्रा पशु आदि,सुवर्ण, धन आदि तथा सुन्दर गन्ध और आयुसे सम्पन्न रहें ।१७। सोमयाग के आरम्भ में यजमान को ऋत्विज अंजन लगाते हैं । समुद्र की वृद्धि के समय उदय को प्राप्त, रश्मियों द्वारा देखने वाले. प्रकाशमय चन्द्रमाको रक्षात्मक सोमरूप से अवस्थित होने पर ऋत्विज चार थालियों में शोधते हैं ।१८। हे पितरो ! तुम अपने सोमार्ह धन सहित हम से मिलो । क्योंकि तुम अपने यश से यशस्वी हो, हमको अभीष्ट प्रदान करो और हमारे यज्ञ में बुलाये जाने पर आह्वान को

सुनो हे पितरो! तुम अत्रि गोत्रिय या अङ्गिरा गोत्रिय हो। नौ महीने तक सत्र याग करनेके कारण स्वर्गारोही हुए हो। दश मासिक यागपूर्ण करने पर दक्षिणा प्रदायक पुण्यात्मा हो। इसलिए इस विस्तृत कुशपर बैठकर हमारी हवि से तृप्ति को प्राप्त होओ।२०।

अधा यथा नः पितरः परास प्रत्नासो अग्न ऋतमाशशानाः।
शुचीदयन् दीध्यत उक्थशासःक्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन्।२१

सुकर्माण सुरुचो देवयन्तो अयो न देवा जनिमा धमन्तः।
शुचन्तो अग्नि वावृधन्त इन्द्रमुर्वी गव्यां परिषद नो अक्रन् ॥२२

आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद् देवानां जमिमान्त्युग्रः।
मर्तासश्चिदुर्वशीपक्रप्रन वृधे चिदर्य उपरस्यायोः ॥२३

अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो बिभातीः।
विश्व तद् भद्रं यदवन्ति देवा बृहद वमेम विदथे सुवीराः ॥२४

इन्द्रो मा मरुत्वान् प्राच्या दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२५

धाता मा निर्ऋत्या दक्षिणाया दिशः पातु बाहच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि। लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२६

आदितिर्मादित्यैः प्रतीच्या दिशःपातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि।
लोककृतः पथिकतौ यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२७

सोमो मा विश्वैदवैरुदीच्या दिशःपातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२८

धर्ता ह त्वा धरुणौ धारयाता ऊर्ध्वं भानुं सविता द्यामिवोपरि।
लोककृता पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ।२९

प्राच्यां त्वा दिशि पुरा सबृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवीद्यामिवोपरि। लोककृतः यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्था ॥३०

हे अग्ने ! जैसे हमारे श्रेष्ठ पितर स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं, और उक्थों के गायक पितर रात्रि के अँधेरे को अपने तेजसे दूरकर उषाओं को प्रकाशित करते हैं ।२१। सुन्दर कर्म और सुन्दर तेज वाले देव काम्य, तप से अपने जन्म को शोधने वाले देवत्व को प्राप्त हुए, गार्हपत्य को प्रदीप्त करते हुए और स्तुतियों से इन्द्र को प्रवृद्ध करते हुए यह पितर गौओं को हमारे यहाँ निवास करने वाली बनावें ।२२। हे अग्ने ! तुम्हारे द्वारा भस्म किया जाता यह यजमान देवताओं के प्रादुर्भाव को देखे । मरणधर्मी मनुष्य तुम्हारी कृपा से उर्वशी आदि अप्सराओंको भोगने वाले होतेहैं, और तुम्हारी कृपा से यह देवत्वप्राप्त मनुष्य भी गर्भाशय में सोये हुए मनुष्य की वृद्धि वाला भी होता है ।२३। हे अग्ने ! हम तुम्हारे सेवक और तुम हमारे पालक हो,इसलिए हम सुन्दर कर्म वाले हों । उषाकाल हमारे कर्मों के फलों को सत्यकरे, देवताओं द्वारा रक्षित कर्म हमारे लिए कल्याणकारी हों और हम भी सुन्दर पुत्र आदि से युक्त रहते हुए यज्ञमें विस्तृत स्तोत्रों का उच्चारण करें ।२४। मुझे संस्कार करने वाले को मरुद्गण सहित इन्द्र पूर्व दिशा में भयों से रक्षित करें । दाता को दी गई पृथिवी जैसे उपभोग स्वर्ग की रक्षा करती है, वैसे ही तेरी रक्षक हो । पुण्य के फल रूप स्वर्ग प्राप्तिका मार्ग प्रवर्तन करने वालोंको हम हवि से पूजते हैं । हे देवगण इस यज्ञमें तुम हुतभात होओ ।२५। पापदेवी निऋ ति के भयसे दक्षिण दिशा के धाता देव मेरी रक्षा करें और दाता की दी हुई पृथिवी जैसे दाता प्रतिगृहीता के उपभोग स्वर्गका पालन करती है, वैसेही वह तेरी रक्षक हो । जिन स्वर्गादि लोकों के देने वाले देवताओं के लिए हवि दे चुके हैं, उन देवताओं का हम पूजन करते हैं ।२६। देवमाता अदिति पश्चिम दिशा के भय से मेरी रक्षा करे । दाताको दी हुई पृथिवी जैसे दाता प्रतिगृहीता के लिए स्वर्ग का पालन करती है, वैसेही तेरा पालन करे । जिन स्वर्गादि लोकोंको देने वाले देवताओं को हवि दी जा चुकी है उन देवताओं का हम पुजन करते हैं ।२७। उत्तर दिशा के भयों से देवताओं सहित सोम मेरी रक्षा करे । दाता को दी हुई पृथिवी जैसे दाता प्रतिगृहीता के लिए स्वर्ग का पालन करती है वैसेही तेरा पालन

करे। जिन स्वर्गादि लोकों को देने वाले देवताओं को हवि दे चुके हैं, उन देवताओं का हम पूजन करते हैं।२८। हे प्रेत ! संसार के धारण-कर्ता वरुण देव तुम ऊर्ध्व दिशा में गमन करने वाले पुरुष को धारण करें। दाता को दी हुई पृथिवी जैसे दाता प्रतिग्रहीता के लिए स्वर्गका पालन करती है, वैसेही तेरा पालन करे। जिन स्वर्गादि लोकोंको देने वाले देवताओं का भाग हम होम चुकेहै, उन देवताओं को हम पूजतेहैं।२९। हे प्रेत ! दहन स्थान से पूर्व दिशा की ओर स्थित कम्बल द्वारा आच्छादित मैं तुझे पितरों को तृप्ति कर स्वधा में प्रतिष्ठित करता हूँ। जैसे संकल्प करके दी हुई पृथिवी दाता प्रतिगृहीता के लिए स्वर्ग की रक्षा करती है, वैसे ही तेरी रक्षा करे। जिन स्वर्गादि लोकों के प्रापक देवताओं को हविर्भाग दे चुके हैं उन देवताओं को हम पूजते हैं।३०।

दक्षिणायां त्वा दिशि पुरा संवृत: स्वधायामा दधामि बाहुच्यता-पृथिवी द्यामिवोपरि। लोककृत: पथिकृतो यजामहे ये देवाना इह स्थ ।।३१

प्रतीच्यां त्वा दिशि पुरा संवृत: स्वधायामा दधामि बहुच्युता-पृथिवी द्यामिवोपरि लोककृत: पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ।।३२

उदीच्यां त्वा दिशि पुरा सवृत: स्वधायामा दधामि बहुच्युता-पृथिवी द्यामिवोपरि लोककृत: पथिकृतो यजामहे ये देवानां-हुतभागा इह स्थ ।।३३

ध्रुवायां त्वा दिषि पुरा संवृत: स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि। लोककृत: पथिकृतो यजामहे ये देवानां-हुतभागा इह स्थ ।।३४

ऊर्ध्वायां त्वा दिश संवृत: स्वधायामा दधामि बाहुच्युता-पृथिवी द्यामिवोपरि। लोककृत: पथिकृतो यजामहे ये देवानां

हुतभागा इह स्था ।।३५
धर्तासि धरुणऽसि वंसगोऽसि ।।३६
उदपूरसि मधुपूरसि वातपूरसि ।।३७
इतश्च मामुतश्चावतां यमेइव यतमाने यदैतम् ।
प्र वां भरन मानुषा देवयन्त आ सोदतं स्वमु लोकं विदाने ।।३८
स्वासस्थे भवतमिन्दवे नो युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिः ।
वि श्लोक एति पथ्ये व सूरिः शृणवन्तु विश्वे अमृतास एतत्।३९
त्रीणि पदानि रूपो अन्वराहच्चतुष्पदीमन्वैद व्रतेन ।
अक्षरेण प्रति मिमीते अर्कमृतस्य नाभावमि स पुनाति ।।४०

हे प्रेत! दहन स्थानने दक्षिण दिशाकी ओर स्थित कम्बलसे ढका हुआ मैं मुझे पितरों को तृप्त करने वाली स्वधा में प्रतिष्ठित करताहूँ। दाता को दी हुई पृथिवी जैसे दाता प्रतिगृहीताके लिए स्वर्ग की रक्षा करती वैसे ही वह तेरी रक्षा करे ! जिन स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करने वाले देवताओं को हम हविर्भाग दे चुके हैं उन देवताओंका पूजन करते हैं ।३१। हे प्रेत ! दहन स्थान से पश्चिम की ओर कम्बल से ढका हुआ मैं तुझे पितरों को तृप्त करनेवालो स्वधा में प्रतिष्ठित करता हूँ। दाता को दी हुई पृथिवी जैसे दाता प्रतिग्रहीता के लिए स्वर्ग की रक्षा करती है वैसेही वह पृथिवी तेरी रक्षक हो । जिस स्वर्गादि लोकों को प्राप्त कराने वाले देवताओं को हम हविर्भागदे चुकेहैं, उन देवताओं का पूजन करते हैं ।३२। हे प्रेत ! दहन स्थान से उत्तर दिशा की ओर स्थित कम्बल से ढका हुआ मैं तुझे पितरों को तृप्त करने वाली स्वधा में प्रतिष्ठित करता हूँ। दाता की दी हुई पृथिवी जैसे दाता प्रतिगृहीता के लिए स्वर्ग की रक्षा करती है, वैसे ही वह तेरी रक्षक हो । जिन स्वर्गादि लोकों के प्राप्त करने वाले देवताओं को हम हविर्भाग दे चुके हैं, उन देवताओं को पूजते हैं ।३३। हे प्रेत ! दहन स्थान से ध्रुव दिशा की ओर स्थित कम्बल आदि ओढ़े हुए मैं पितरों को तृप्त

करने वाली स्वधा में प्रतिष्ठित करता हूँ। दाताको दी हुई पृथिवी जैसे दाता प्रतिगृहीता के लिए स्वर्ग की रक्षा करती है, वैसे ही वह तेरी रक्षा करे जिन स्वर्गादि लोकों को प्राप्त कराने वाले देवताओं को हम हविर्भाग दे चुके हैं, उन देवताओं का पूजन करते हैं।३४। हे प्रेत! दहन स्थान से ऊर्ध्व दिशा की ओर स्थित कम्बल आदि ओढ़े हुए तुझे पितरोंको तृप्त करने वाली स्वधा में प्रतिष्ठित करता हूँ। दाता को दी हुई पृथिवी जैसे दाता प्रतिगृहीता के लिए स्वर्ग की रक्षा करती है वैसे ही वह तेरी रक्षाकरे। जिन स्वर्गादि लोकोंको प्राप्त करनेवाले देवताओं को हम हविर्भाग दे चुके हैं, उन देवताओं का पूजन करते हैं।३५। हे अग्ने! तुम धारणकर्त्ता धरणहो। वरणीयगति और सुवर्णके पूरक और प्राणात्मक वायु के भी पूरक हो।३६-३७। जिनमें हविर्धान होता है, वे द्यावापृथिवी भूलोक और स्वर्ग में होने वाले भयोंसे तेरी रक्षाकरें। हे द्यावापृथिवी! तुम यमल संतानों के समान यत्न वाले होकर संसार का पोषण करतेहो। देवताओंकी कृपा कामनावाले पुरुष जबतुम्हें हवि दें तब तुम अपने स्थान को जानती हुई उस पर प्रतिष्ठित होओ।३८। हे हविर्धाने! धर्ममयगामी विद्वान जैसे इच्छित प्राप्त करता है, वैसेही प्राचीन स्तोत्रों सहित नमस्कार करताहूँ। वे स्तोत्र तुम्हें प्राप्त होतेहैं। तुम हमारे सोमके लिए स्थिरहोओ। अविनाशी देवताहमारे इस स्तोत्र को सुने।३९। मोहको प्राप्त मृतक इस संस्कार द्वारा अनुस्तरणी गौको ध्यानमें रखता हुआ तीनों द्युलोकों को प्राप्त होताहै। यह परिच्छेदक शरीर के छोड़ने पर स्वर्गादि का पुण्य फल प्राप्त कर रहा है।४०।

देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं प्रजायै किममृतं नावृणीत।
बृहस्पतिर्यज्ञमतनुत ऋषिः प्रिया यमस्तन्वमा रिरेच ॥४१
त्वमग्न ईडितो जातवेदोऽवाडढव्यानि सुरभीणि कृत्वा।
प्रादाः पितृभ्यः स्व धया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि।४२
आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ॥४३

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्तो हवींषि प्रयतानि बर्हिषि रयिं च नः सर्ववीरं दधात ।।४४
उपहूता नः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ।।४५
ये नः पितुः पितरो ये पितामहा अनूजहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।
तेभियमः सरराणो हवींष्युशन्नुशद्‌भिः प्रतिकाममत्तु ।।४६
ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविद स्तोमतष्टासो अर्कैः ।
आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः सत्यैः कविभिरृषिभिर्घर्मसद्‌भिः ।४७
ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं तुरेण ।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् परैः पूर्वैरृषिभिर्घर्मसद्‌भिः ।।४८
उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम् ।
ऊर्णम्रदाः पृथिवी दक्षिणावत एषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।४९
उच्छ्वञ्चस्व पृथिवी मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपसर्पणा
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ।।५०

सृष्टि- आरम्भ में विधाता ने इन्द्रादि देवताओंके लिए किसप्रकार की मृत्यु का वरण किया ? फिर सूर्य-पुत्र यमने बृहस्पति के स्नेह पात्र मनुष्य की देह को सब ओर से खींचकर प्राणहीन किया।४१। हे अग्ने! तुम उत्पन्न प्राणियोंके ज्ञाता हो । तुम हमारी स्तुति पाकर देवताओंके लिए हवि वहनकरो । तुमने पितृ देवताओंको स्वधा सहित कव्यदिया है, जिन पितरों ने भक्षण कर लिया अब तुम भी हमारी हवियों का सेवन करो ।४२। हे पितरो ! तुम अरुण वर्ण वाली उषा माताओं के अङ्कमें बैठते हो । तुम मरण धर्मवाले हविदाता यजमानको धन प्रदान करो । हमें पुन्नामक नरक से बचाने वाले, पुत्रोंके लिए सम्पत्ति और बलप्रद अन्न प्रदान करो।४३। हे पितरो! तुम इस यज्ञमें अपने स्थानों परआ आकरबैठो और हवियोंका भक्षणकरो। तुमहवियोंसे संतुष्टहोकर

हमको वीर पुत्रों से उक्त अन्न प्रदान करो ।४४। हम अपने सोमके पात्र पितरों को अपने पास बुलाते हैं । वे हमारी हवियों पर आकर स्तोत्र सुनें और हमको स्वीकार करते हुए इहलौकिक एवं पारलौकिक फल देते हुए रक्षा करें।४५। हमारे श्रेष्ठज्ञान वाले पितामह सोम पान करने वाले पितरों के साथ रहते हुए यम की इच्छा करें और हमारी हवियों का अपनी इच्छानुसार सेवन करें ।४६। जो पितर प्यासे होते हुए देवताओं की स्तुति कर रहे हैं उन सत्य फल देने वाले, सोमयाग में बैठने वाले पितरोंके साथ हे अग्ने! अपरिमित धन दानको हमारे पास लाओ ।४७। सत्यभाषी, हव्यादि के भक्षक, सोमपायी, देवताओं के सहगामी,सुन्दर बुद्धिवाले यज्ञमें बैठनेवाले पिता पितामह आदि पितरों सहित हे अग्ने ! हमारे सामने होओ ।४८। हे प्रेत! माता के समान सुखदायिनी पृथिवी पर आ । यह तुझ यज्ञदक्षिणादि पुण्य कर्मों वाले को ऊन के समान कोमल हो और पूर्व के सर्गारम्भ में तेरी रक्षा करे ।४९। हे भूमि ! तुम कर्कश मत रहो, इस पुरुष को बाधा मत दो। यह सुख में तुम्हारे पास रहे। जैसे माता अपने पुत्र को वस्त्रसे ढकती है, वैसे ही तुम इसे आच्छादित करो ।५०।

उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम् ।
ते गृहासो घृतश्चुतः स्योना विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र ।।५१
उत्ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत् परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम्।
एतां स्थूणां पितरो धारयन्ति ते तत्र यमः सादना ते कृणोतु।५२
इममग्ने चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम् ।
अयं यश्चमसो देवपानस्तस्मिन् देवा अमृता मादयन्ताम् ।।५३
अथर्वा पूर्णं चमसं यमिन्द्रायबिभर्वाजिनीवते ।
तस्मिन् कृणोति सुकृतस्य भक्षं तस्मिन्निन्दुः पवतेविश्वदानीम्।५४
यत् ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः ।
अग्निष्टद् विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणां आविवेश।।५५

पयस्वतीरोहधय: पयस्वन्मामकं पय: ।
अपां पयसो यत् पयस्तेन मा सह शुम्भतु ।।५६
इमा नारीरविधावा: सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा स स्पृशन्ताम् ।
अनश्रवो अनमीवा: सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ।।५७
स गच्छस्व पितृभि: सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे परमे व्योमन् ।
हित्वावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छतां तन्वा सुवर्चा: ।।५८
ये न: पितु: पितरो ये पितामहा य अविविशुरुर्वन्तरिक्षम् ।
तेभ्य: स्वराडसुनीतिर्नो अद्य यथावशं तन्व: कल्पयाति ।।५९
शते नीहारो भवतु शते प्रुष्वाव शीयताम् ।
शीतिके शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति ।
मण्डूक्यप्सु श भुव इस स्वग्नि शयम ।।६०

यह पृथिवी सुख पूर्वक स्थिर रहे, श्मशान में स्थापित औषधियां पासमें लगें, घृतको प्रवाहित करती हुई वे औषधियाँ इस मृतकके लिए घर रूप हों और श्मशान में इसकी रक्षा करती रहें ।५१। हे मृतक ! तेरे निमित्त इस भूमि को ऊपर करता हूँ। तेरे चारों ओर भूमि को स्थापित करता हूँ । इस कर्म से मैं हिंसित न होऊँ। इस उठाई गई भूमि में घर बनाने के लिए पितृदेवता स्थूणा धारण करें और यम तेरे लिए गृह निर्माण करें ।५२। हे अग्ने! इडा पात्र को टेढ़ा न कर। यह चमस देवताओं को सोम आदि सेवन कराने वाला होने से पितरों को अत्यन्त प्रिय है । इस चमस में सब देवता तृप्ति को प्राप्त हों ।५३। अथर्वा ने जिस हवि से पूर्ण चमस को इन्द्रके निमित्त धारण किया था। उसी चमस में शोमन प्रकार से हुई एवं यज्ञ से बची हुई हवि का भक्षण ऋत्विज करते हैं। उसी चमस में सदा अमृत स्रवित होता है। ।५४। हे पुरुष ! तेरे जिस अङ्ग को कौआ आदि काले पक्षी या विष-युक्त दाढ़ वाली पिपीलिका ने काट लिया है, उसे सर्वभक्षी अग्नि निरोग करें ब्राह्मण, ऋत्विज यजमान आदि में यह रस रूप रमा हुआ सोम भी उस अङ्ग को रोग रहित करे ।५५। ओषधियाँ सार वालीहों,

बल सारयुक्त हो, जलों के सार का भी सत्व है उन सबसे जलाभिमानी वरुण मुझे स्नान से शुद्ध कर।५६। इस प्रेत के बांधवों की स्त्रियाँ विधवा न हों, पति से युक्त रहती हुई घृतयुक्त अञ्जन लगावें। वे सुन्दर आभूषणों को धारण करने वाली रोग रहित अश्रु रहित रहती हुई सन्तानवती हों।५७। हे मृतक ! तू सपिण्डीकरण तक कर्मसे पितरों में युक्त हो और पितृलोक से भी श्रेष्ठ कर्म फल के भोग रूप स्वर्ग में पहुँचे।५८। हमारे पितामह,प्रपितामह और हमारे गोत्रमें उत्पन्न अन्य जिन पुरुष ने विस्तृत अन्तरिक्ष में प्रवेश किया, उस समय स्वराट असुनीति देवता उनके शरीरों को रचने वाले हुये।५९। हे प्रेत ! तुझ नीहा सुख प्रदान करे। जल तुझे सुख पहुँचाता हुआ बरसे। हे औष-धिमती पृथिवी ! तू इस दग्ध पुरुष को मण्डूकपर्णी द्वारा सुख दे और जलाने वाली अग्नि को शान्त कर।६०।

विवस्वान नो अभयं कृणोतु यः सुत्रामा जीरदानुः सुदानुः ।
इहेमे वीरा बहवो भवन्तु गोमदश्ववन्मय्यस्तु पुष्टम् ॥६१
विवस्वान नो अमृतत्वे दधातु परैतु मृत्युरमृतं न ऐतु ।
इमान रक्षातु पुरुषाना जरिम्णो मोष्वेषामसवो यम गुः ॥६२
यो दध्रे अन्तरिक्षे न मह्ना पितृणां कविः प्रमतिर्मतीनाम् ।
तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीव से धात् ।६३
आ रोहत दिवमुत्तमामृषयो मा बिभीतन ।
सोमपाःसोमपायिनि इदं व क्रियते हवि रगन्म ज्योतिरुत्तमम्।६४
प्र केतना बृहता भात्वग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।
दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्ते महिषो व वर्ध ॥६५
नाके सुपर्णमुप यत् पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत् त्वा ।
हिरण्यपक्ष वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥६६
इन्द्रं क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।

शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥६७
अपूपापिहितान कुम्भान् यांस्ते देवा अधरयन् ।
ते ते सन्तु स्वधावान्तो मधुमतो घृतश्चुतः ॥६८
यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तु विभ्वीः प्रभ्वीस्तास्त यमो राजानु मन्यताम् ॥६९
पुनर्देहि वनस्पते य एष निहतस्त्वयि ।
यथा यमस्य सादन आसातै विदथा वदन् ॥७०
आ रभस्व जातवेदस्तेजस्वद्धरो अस्तु ते ।
शरीरमस्य स दहाथैन घेहि सुकृतामु लोके ॥७१
ये ते पूर्वे परागता अपरे पितरश्च ये ।
तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु शतधारा व्युन्दती ॥७२
एतदा रोह वय उन्मृजानः स्वा इह बृहदु दीदयन्ते ।
अभि प्रेहि मध्यतो माप हास्थाः पितॄणां लोकं प्रथमो यो अत्र ॥७३

सूर्य, जीरदानु और सुत्रामा देवता हमको भयसे बचावें। इस लोक में हमारे वीर्य से उत्पन्न अनेक वीर और गवादि पशु हो ।६१। सूर्य हमको अमरत्व दें। मृत्यु हारकर चली जाय। अमरत्व वृद्धावस्था तक इन पौत्रादिकोंकी रक्षा करे,उनमेंसे कोई भी यमको प्राप्त न हो। ।६२। श्रेष्ठ बुद्धि वाले, क्रान्तदर्शी मन पितरों को अन्तरिक्ष में धारण करते हैं। हे ब्राह्मणो! तुम सब प्राणियों के सखा हो ऐसे यम को हव्यादिसे पूजो। वह यम हमारे जीवन को पुष्ट करें।६३। हे ऋषियो तुम मन्त्रद्रष्टा हो अपने श्रेष्ठ कर्मों द्वारा स्वर्ग पर आरोहण करो। तुम सोमयागी और सोमपायी हो, तुम स्वर्ग पर चढ़े हुओं के निमित्त यह हवि दी जाती है हम भी तुम्हारे अनुग्रह से चिरायु को प्राप्त हों ।६४। यह अपने धूम रूप ध्वजा से दमकते हैं। यह कामनाओं के वर्षक हैं। आकाश पृथिवी की ओर लक्ष्य करते हुए यह शब्दवान् होते हैं। वह द्युलोक से ऊपर व्याप्त होतेहैं और जलों के स्थान अन्तरिक्षमें भी

अपनी महिमा से महान होते है ।६५। हे प्रेत ! जब हम तुम्हें सुन्दर गति से स्वर्ग की ओर जाते हुए देखते हैं जब तुम्हें स्वर्णिम पंख वाले वरुण के दूत यम के गृहमें पक्षीके समान और भरण करने वालेके रूप में देखते हैं ।६६। हे इन्द्र ! पिता जैसे पुत्रों को इच्छित वस्तु देता है, वैसे ही हमको यज्ञादि इच्छित वस्तु दो । संसार यात्रा में अभीष्ट दो जिससे हम दीर्घजीवी होकर इस लोक के सुख को प्राप्त करें ।६७। हे प्रेत ! देवताओंने जिन घृत मधु आदिसे युक्त कुम्भोंको तेरे लिए रखा है, वे कुम्भ तेरे लिए अन्न, मधुसे युक्त और घृत सींचने वाले हों ।६८ हे प्रेत ! तिल युक्त स्वधा वाली जो की खीलें मैं दे रही हूँ वे तुझे वैभव वाली और तृप्तकर हों । यमराज तुझे खीलों का उपभोग करने की आज्ञा दें ।६९। हे वनस्पते ! तुममें जो अस्थि रूप पुरुष स्थापित किया था वैसे मुझे लौटाओ, जिससे वह यज्ञात्मक कर्मों को प्रकाशित करता हुआ यम के गृह में स्थित हो ।७०। हे अग्ने! तुम्हारा दहनशील ज्वालायें रस हरण वाली शक्तिसे युक्तहों, तुम जलनेको तत्पर होओ । इस मृतक के शरीर को ठीक प्रकार भस्म करके इसे पुण्यात्माओं के पुण्यलोक रूप में स्वर्ग में प्रतिष्ठित करो ।७१। तुझसे पहले उत्पन्न पुरुष जो तुझसे बड़े पितर हैं वे गये हैं अथवा तुझसे पीछे उत्पन्न पुरुष गये हैं । उन सब पितरों के लिए घृत की (कृतिम) नदी प्रवाहित हो । वह सहस्त्रों धार वाली होकर तुझे अनेक प्रकार से सींचती रहे ।७२। हे मृतक ! तू इस शरीर से निकलकर अपने ही द्वारा पवित्र होताहुआ व्योम में चढ़ और तेरी जाति से सब व्यक्ति समृद्धि सहित इसी लोक में रहें । बन्धुओं के मध्य से दूसरे लोक की ओर बढ़ता हुआ ऊँचा चढ़कर और पितरों के आकाशमें स्थित मध्य लोक को मत छोड़।७३।

सूक्त ४ (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—यम मन्त्रोक्ता, पितर, अग्नि, चन्द्रमा, छन्द—त्रिष्टुप्, जगती, शक्वरी, वृहती, अनुष्टुप् गायत्री पंक्ति, उष्णिक)

आ रोहत जनित्रीं त तवेदसः पितृयाणैः सँ व आ रोहयामि ।
अवाड्ढव्येपितो हव्यवाह ईजान युक्ता सुकृतां धत्त लोके ।।१

देवा यज्ञसृतवः कल्पयन्ति हविः पुरोडाशं स्रुचो यज्ञायुधानि ।
तेभिर्याहि पथिभिर्देवयानैर्यैरीजानाः स्वर्गं यन्ति लोकम् ।।२
ऋतस्य पन्थामनु पश्य साध्वङ्गिरसः सकृतो येन यन्ति ।
तेभिर्याहि पथिभिः स्वर्गं यत्रदित्या मधु भक्षयन्ति तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व ।।३

त्रयः सुपर्णा उपरस्य मायू नाकस्य पृष्ठे अधि विष्टपि श्रिता ।
स्वर्गा लोका अमृतेन विष्टा इषमूर्जं यजमानाय दुह्राम् ।।४
जुहूर्दाधार द्यामुपभृदन्तरिक्षं ध्रुवादाधार पृथिवी प्रतिष्ठाम् ।
प्रतीमां लोका घृतपृष्ठाः स्वर्गाः क मंकामं यजमानाय दुह्राम।।५
ध्रुव आ रोह पृथिवीं विश्वभोजसमन्तरिक्षमुपभृदा क्रमस्वः ।
जुहु द्यां गच्छ यजमानेन साक स्रुवेण बत्सेन दिशः प्रपीना सर्वा धुक्ष्वाहृणीयमानः ।।६
तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति यज्ञकृतः सुकृतो येन यान्ति ।

अत्रादधुर्यजमानाय लोकं दिशी भूतानि यदकल्पन्त ।।७
अङ्गिरसामयनं पूर्वं अग्निरादित्यानामयमं गार्हपत्यो दक्षिणानामयन दक्षिणाग्निः ।

महिमानमग्नेर्विहितस्य ब्रह्मणा समङ्गः उप याहि शग्मः ।।८
पूर्वो अग्निष्ट्वा तपतु शर्म पुरस्ताच्छ पश्चात् तपतु गार्हपत्यः ।
दक्षिणाग्निष्टे तपतु शर्म वर्मोत्तरतो मध्यतो अन्तरिक्षाद् दिशोदिशो अग्ने परि पाहि घोरात् ।।९

यूयमग्ने शंतमाभिस्तनूभिरीजानमभि लोकं स्वर्गम ।
बश्वा भूत्वा पृथिवाहो बहाय यत्र देवैः सधमादं मदन्ति ।।१०

हे गार्हपत्यादि अग्नियों ! तुम उत्पन्न हुओं के ज्ञाता हो । तुम अपनी उत्पादक अरणियोंमें प्रविष्टहोओ । मैं भी तुम्हें पितृयानों द्वारा

अरणियों में चढ़ाता हूँ । हव्यवाहक अग्नि ने देवताओं के लिये हव्य वहन किया । हे अग्नियो ! जिस यजमान ने तुम्हारे निमित्त यज्ञकिया था उस विदेश में मृत्यु को प्राप्त हुए यजमान को पुण्यलोकमें प्रतिष्ठित करो ।१। इन्द्रादि पूज्य देवता ऋतुयज्ञ की कामना करते हैं । घृतादि हव्य सामग्री तथा पात्रादि आयुध भी यज्ञ की कामना करते हैं । हे अहिताग्ने ! तुम देवयान मार्ग से गमन करो । जिन मार्गों से यज्ञकर्म वाले पुण्यात्मा जाते हैं, उस देवयान मार्गसे ही तुम जाओ।२। हे प्रेत! तू सत्य के कारण रूप मार्गको भले प्रकार जानता हुआ महर्षि अङ्गि-रस आदि के स्वर्ग को गमन कर जिस मार्ग अदिति पुत्र देवता अमृत का सेवन करते हैं उस दुःखरहित तृतीया स्वर्ग में तू निवास कर ।३। अग्नि, वायु, सूर्य सुन्दरता से गमन करने वालेहैं वायु और पर्जन्य मेघ के समान शब्द करते हैं । यह सब स्वर्ग से ऊपर विष्टप में निवास करते हैं । यह अपने कर्मों से प्राप्त स्वर्ग लोक अमृत से सम्पन्न हैं । कर्मानुष्ठान करने वाले प्रेत को यह इच्छित अन्न और रस देने वाला हो ।४। होम पात्र जुहु ने आकाश को पुष्ट किया, उपभृत पात्रने अन्त-रिक्ष को धारण किया और ध्रुवापात्र ने पृथिवी का पालन किया । इस ध्रुवा से पालित पृथिवी का ध्यान रखते हुए उर्ध्व स्वर्गलोक यज-मान को इच्छित फल प्रदान करें ।५। हे ध्रुवा नामक स्रुक!तू पृथिवी पर चढ़ और यजमान भी पृथिवी पर प्रतिष्ठित रहें । हे उपभृथ पात्र! तू अन्तरिक्ष पर आरोहण कर । हे जुहु ! तू यजमान के साथ द्युलोक को गमन कर और सब दिशाओं से अभीष्ट फलों को दोहन कर ।६। तीर्थ और यज्ञादि कर्मों द्वारा बड़ी-बडी विपत्तियों से पार होतेहैं । इस प्रकार विचार करने वाले यज्ञ कर्म करते हुए पुरुष जिस मार्ग से स्वर्ग को जाते हैं, उस मार्ग को खोजते हुए यज्ञकर्त्ता इस यजमान के उस मार्ग को खोले ।७। असिताग्नी की चितामें स्थित गार्हपत्यादि अग्निमें यथा प्रवेश करती हैं, व इच्छित फल दें पूर्वमें स्थित आह्वानीय अग्नि अङ्गिरसों का सत्रात्मक कर्महै । गार्हपत्यादि आदित्यों का अयननामक सत्रयागहैं । दक्षिणाग्नि दक्षावन नामक सत्र । इस प्रकार विभिन्ननामों वाली विभूति को हे प्रेत! पूर्ण अवयव वाला होकर सुख प्राप्त करता

हुआ प्राप्त हो ।८। हे भस्म होते हुए प्रेत ! तुझे पूर्व में दमकते हुए, अग्नि सुख देते हुए भस्म करें। दक्षिणाग्ने तुझे सुख से भस्म करे। हे अग्ने ! तुम उत्तरादि सब दिशाओं से क्रूर और हिंसकों से इस प्रेतकी रक्षा करो ।९। हे अग्ने ! पृथक-पृथक स्थानों को प्राप्त हुए तुम अपने आधान करता आराधक यजमान को अपने महान् कल्याण देने वाले साधकों से स्वर्ग लोक में पहुँचाओ। उस लोक में हम गोत्र वालों सहित देवताओं के साथ रहते हुए प्रसन्नता को प्राप्त हों ।१०।

शमग्ने पश्चात् तपं शं पुरस्ताच्छमुत्तराच्छमधरात् तपैनम् ।
एकस्त्रेधा विहितो जातवेद: सभ्यगेन धेहि सुकृतासु लोके ।।११
शमग्नय: समिद्धा आ रभन्तां प्रजापत्यं मेध्यं जातवेदस: ।
शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन ।।१२
यज्ञ एति वितत: कल्पमान ईजानमभि लोक स्वर्गम् ।
तमन्मय सर्वहुतं जुषन्तां प्रजापत्यं मेध्यं जातवेदस: ।
शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् ।।१३
ईजानश्चितमारुक्षदग्नि नाकस्य पृष्ठाद् दिवंमुत्पतिष्यन् ।
तस्मै प्रभाति नभसो ज्योतिषीमान्त्स्वर्ग:मन्था:सुकृतेदेवयान:।१४
अग्निर्होताध्वर्यु ष्टे बृहस्पतिरिन्द्रो ब्रह्मा दक्षिणतस्ते अस्तु ।
हुतोऽयं संस्थितो यज्ञ एति यत्र पूर्वमयनं हुतानाम् ।।१५
अपूपवान् क्षीरवांश्चरूरेह सीदतु ।
लोककृत: पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ।।१६
अपूपवान् दधिवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृत: पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ।।१७
अपूपवान् द्रप्सावांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृत: पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ।।१८
अपूपवान् घृतवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृत: पथिकृतो यज्ञामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थं ।।१९

अपूपवान् मांसवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृत: पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ।।२०

हे अग्नि ! पश्चिम, पूर्व उत्तर, दक्षिण आदि दिशाओं में इसे सुख पूर्वक भस्म करो । एक होते हुए भी यजमान ने तुम्हें तीन रूप में स्थापित किया था । ऐसे यज्ञ कर्म वाले इसे पुण्यात्माओं के लोक में प्रतिष्ठित करो ।११। प्रदीप्त होकर अग्नियाँ इस प्रेत को भले प्रकार भस्म करें वे इसे इधर उधर न फेंके ।१२। यह विस्तृत पितृमेध यज्ञ इसे सुख सम्पन्न स्वर्गलोक को प्राप्त कर रहा है । अग्नियाँ इस मेघ्य का भक्षण करें और पकाते समय इसे इधर उधर फेंक कर अधजला न छोड़ें ।१३। यह याज्ञिक पुरुष तृतीय स्वर्ग पर चढ़ने के लिये विषम संख्या वाली शलाका और ईंटों से चिने अग्नि प्रदेश पर चढ़ा है । स्वर्ग पर चढ़ते हुए इस पुण्यात्मा प्रेत के लिये देवयान प्रकाश से युक्त हो ।१४। हे प्रेत ! तेरे पितृमेध यज्ञ में अग्नि होता बनें, बृहस्पति अध्वर्यु हों, इन्द्र ब्रह्म हों । इस प्रकार अनुष्ठित यह पूर्व समय में बहुत यज्ञों के स्थान को प्राप्त होता है ।१५। पिसे गेहूँ और गोदुग्ध मिश्रित पक्व ओदन रूप इस कर्म में अस्थियों के पास पश्चिम में रखा रहे । इस संस्कार हुए इस प्रेत के लिए स्वर्ग निर्माता इन्द्रादि देवताओं में से इस हविके अधिकारी देवताओं को प्रसन्न करते हैं ।१६। पिसे हुए गेहूँ और दधि मिश्रित ओदन रूप चरु इस कर्म में अस्थियों के पास पश्चिम दिशा में रखा रहे । इस संस्कार को प्राप्त हुए प्रेत के लिए स्वर्ग निर्माता इन्द्रादि देवताओं में से इस हवि के अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओं को हम प्रसन्न करते हैं ।१७। पिसे गेहूँ और दधिकण द्रप्स वाले प्रेत के लिए, स्वर्ग निर्माता इन्द्रादि देवताओंमें से इस हविके अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओं को हम प्रसन्न करतेहैं ।१८। पिसे गेहूँ और गोघृत से संयुक्त इस संस्कार किये प्रेत के लिए, स्वर्ग—निर्माता इन्द्रादि देवताओंमें से इस हवि के अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओं को हम प्रसन्न करते हैं।१९। पिसे गेहूँ और प्रा-

णिज द्रव्य से संयुक्त ओदन रूप चरु पश्चिम में रखा जाय । इस संस्कार किये गये प्रेत के लिये स्वर्ग-निर्माता इन्द्रादि देवताओं में से इस हविके अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओं को हम प्रसन्न करते हैं ।२०।

अपूपवानन्नवांश्चरेह सीदतु ।
लोककृत: पथिकृतो यजामह ये देवानां हुतभागा इह स्थ ।।२१
अपूपवान् मधुवांश्चरूरेह सीदतु ।
लोककृत: पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ।।२२
अपूपवान् रसवाश्चरूरेह सीदतु ।
लोककृत: पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ।।२३
अपूपवानपवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृत: पथिकतो यजामहे ये देवानां हुतभाग इह स्थ ।।२४
अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन् ।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तों घृतश्चुत: ।।२५
तास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्रा: स्वधावती: ।
तास्ते सन्तूदभ्बी: प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ।।२६
अक्षितिं भूयसीम् ।।२७
द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिभं च योनिमनु यश्च पूर्व ।
समानं योनिमनु संचरन्त द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ।।२८
शतधारं वायुयर्कं स्वर्विद नृचक्षसस्ते अभि चक्षते रयिम् ।
ये पृणन्ति प्रच यच्छन्ति सर्वदा ते दुह्रते दक्षिणाँसप्तमातरम्।२९
कोशं दुहन्ति कलशं चतुर्बिमुमिडां धेनुं मधुमती स्वस्तये ।
ऊर्जं महन्तीमदित्तिं जनेष्वग्ने मा हिंसी: परमेत् ।।३०

पिसे गेहूँ के अपूपों से युक्त, अन्न से मिश्रित पवन ओदन रूप चरु इस कर्म में अस्थियों के पश्चिम में रहें । इस संस्कार किये जाते प्रेत के लिये स्वर्गके निर्माता इन्द्रादि देवताओंमें से इस हविके अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओं को हम प्रसन्न करते हैं ।२१। पिसे गेहूँ के

अपूर्वों से और मधु से युक्त कुंभी पक्व ओदन रूप चरु इस कर्म में अस्थियों के पश्चिम भाग में रहे। इस संस्कार किये जाते प्रेतके लिए स्वर्ग के निर्माता इन्द्रादि देवताओं में से इस हवि के अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओं को हम प्रसन्न करते हैं।२२। पिसे गेहूँके अपूपों और छः रसों से युक्त कुंभी पक्व ओदन रूप चरु इस कर्म में अस्थियों के पश्चिम भागमें रहे। इस संस्कार किये जाते प्रेतके लिए स्वर्ग-निर्माता इन्द्र आदि देवताओं मेंसे इस हविके अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओं को हम प्रसन्न करते हैं।२३। पिसे गेहूँ के तथा अन्य प्रकार के अपूप से युक्त, कुम्भी पक्व ओदन रूप चरु इस कर्म में अस्थियों के पश्चिम भाग में रहे। इस संस्कार किये जाते प्रेत के लिए स्वर्ग निर्माता इन्द्र आदि देवताओं में से हविके अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओं को हम प्रसन्न करते हैं।२४। हे प्रेत! हवि भागी जिन देवताओं ने चरु पूर्ण कलशों को अपने भाग रूप में ग्रहण किया है। वे चरु तुझे परलोक में स्वधा से युक्त करें।२५। हे प्रेत! तेरे लिए मैं जिन काले तिल युक्त जौ की खीलों को बखेरता हूं वे तुझे परलोक में प्रचुर परिणाम में मिलें और इन्हें खाने के लिए यमराज तुझे आज्ञा दें।२३-२७। सोम रसमें स्थित जलांश द्रप्स पृथिवी-आकाश को लक्ष्यमें रखकर बिखेरता हूँ। संसार की कारण रूप पृथिवी को लक्ष्य में कर पूर्वोत्पन्न द्युलोक और द्यावापृथिवी को लक्ष्य में रखकर, सात वषट्कर्ता होताओंको भी लक्ष्य में रखकर सोम रस द्रप्स को अग्नि में होमता हूँ। यह देवता के लिए करता हूँ।२८। हे प्रेत! मनुष्यों को देखने वाले देवता टपकते हुए जल से युक्त वायुके वेगसे जलते हुए स्वर्ग प्रापक इस कुंभ को तेरे लिए धन रूप जानते हैं। तेरे गोत्र वाले तुझे कुम्भोदक से तृप्त करते हैं और कुम्भोदक देने वाले सप्त मातृक रूप जलधारा रूप दक्षिणा को सदा देते हैं।२९। धन, सुवर्ण आदि से युक्त कोश के समान चार छेद वाले कलश को धेनु के दुहने के समान दुहते हैं। अग्ने! पितरोंको प्राप्त हुए इस प्रेत के लिए संतुष्ट करने वाली अदिति को खण्डित न करना।३०।

एतत् ते देवः सविता वासो ददाति भर्तवे ।
तत् त्वं यमस्य राज्ये वसानस्तार्प्यं चर ।।३१
धाना धेनुरभवद वत्सा अस्यास्तिलोऽभवत् ।
ता वै यमस्य राज्ये अक्षितामुप जीवति ।।३२
एतास्ते असौ धेनवः कामदुधा भवन्तु ।
एनीः श्येनीः सरुपा विरुपास्तिलवत्सा उप
तिष्ठन्तु त्वात्र ।।३३
एनीर्धाना हरिणीः श्येनीरस्य कृष्णा धाना रोहिणीर्धेनवस्ते ।
तिलवत्सा ऊर्ज मस्मै दुहाना विश्वाहा सन्त्वनपस्फुरन्ती ।।३४
वैश्वानरे हस्विरिदं जुहोमि साहस्रं शत्तधारमुत्सम् ।
स बिभर्ति पितरं पितामहान् प्रपितामहन् विभर्तिपिन्वमानः।३५
सहस्रधारं शतधारमुत्समक्षितं व्यच्यमानं सलिलस्य पृष्ठे ।
ऊर्जं दुहानमनपस्फुरन्तमुपासते पितरः स्वधाभि ।।३६
इदं कसाम्बु चयनेन चितं तत् सजाता अव पश्यतेत ।
मर्त्योऽयममृतत्वमेति तस्मै गृहान् कृणुत यावत्सवन्धु ।।३७
इहैवैधि धनसनि हिचित इहक्रतुः ।
इहेधि वीर्यवत्तरो वयोधा अपराहतः ।।३८
पुत्रं पौत्रमभितर्पयन्तीरापो ममुमतीरिमाः ।
स्वधां पितृभ्यो अमृतं दुहाना आपो देवीरुभयांस्तर्पयन्तु ।।३९
आपो अग्नि प्र हिणुत पितृँरुपेमं यज्ञं पितरो मे जुषन्ताम् ।
आसीनामूर्जमुप पे सचन्ते नो रयि सर्ववीरं दि यच्छान् ।।४०

हे प्रेत ! सविता तेरे लिये यह वस्त्र ढकने के लिए देते हैं । तू इसे ओढ़कर यम के राज्य में स्वच्छन्दता से घूम ।३१। भुने जौ को खील और तिल उसका वत्स बनेगा ।३२। हे प्रेत ! तू उस धेनु रूप वाली खील से जीवित रह ।३२। हे प्रेत ! यह विभिन्न रूप वाली वत्स युक्त तिलात्मक गौयें तेरे लिए कामधेनु हों और तेरे पास रहती

हुई यमलोक में तुझे इच्छित फल दें ।३३। लाल, श्वेत, हरी और भुनने से काली तथा अरुण वर्ण वाली खीलें तेरे लिये गौ रूप हुई हैं, यह निरन्तर इस प्रेत को बलदायक अन्न देती रहे ।३४। वैश्वानर अग्नि में मैं इन हवियों को डालता हूँ । यह अनेक प्रकार के बहते हुए जलों से युक्त हैं और सिंचित होती हुई अपने उपजीवी पितरोंको तृप्त करने वाली हैं । इस हवि से प्रदीप्त हुए वैश्वानर अग्नि मेरे सभी पूर्व पुरुषों को तृप्त करें ।३५। भूत प्रेत पितर मेघ के समान क्षरित होने वाले उदक से पूर्ण उर्ध्व भाग में स्थित अन्न साधन जल को टपकाते हुए, छिद्र युक्त कुम्भ की कामना करते हैं ।३६। हे समान कुल गोत्र वालो । तुम इस एकत्र अस्थि समूह को सावधानी से देखो । यह प्रेत अमरत्व को प्राप्त हो रहा है, तुम सब उससे लिये चर का निर्माणकर ।३७। हे उल्युक ! इसी धूलिमय देश में रहता हुआ हमको धन देने वाला हो । तू वहीं से हमारे कर्म का सम्पादक हो और परम बली, अन्न को पुष्ट करने वाला और शत्रुओं से असंतप्त रहता हुआ वृद्धि को प्राप्त हो ।३८। आचमन योग्य यह मधुर जल पुत्र पौत्रादि को तृप्तिकर है । यह पिण्ड से उपजीवन करने वाले पितरों को स्वधा प्रदान करता रहता है । यह जल आचमन करने पर मातृकुलके पितरों को तृप्त करे ।३९। हे जलो! तुम अवसेचन के साधन रूप हो । तुम दक्षिणाग्नि यज्ञ में प्रदत्त हिण्डों का वहन करने के लिए पितरों के पास पहुँचाओ । मेरे पितर इन पिण्डों का आस्वादन करें । यज्ञ में रखे पिण्ड रूप अन्न को सेवन करने के लिये जो पितर पास में आवें वे हमें कुशल पुत्र पौत्रादि सहित धन दे ।४०।

समिन्धते अमर्त्यं हव्यबाह घृतप्रियम् ।
स वेद निहितान् निधीन् पितृन् परावतो गतान् ।।४१
यं ते मन्थ यमोदन यन्मांस निपृणामि ते ।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुत: ।।४२
यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्रा स्वधावती: ।

तास्ते सन्तूदभ्वीः प्रभ्वीस्तात्ते यमो रायानु मत्यताम् ।४३
इदं पूर्वमपरं नियानं येना ते पूर्वे पितरः परेताः ।
परोगवा ये अभिशाचो अस्य ते त्वा वहन्ति सुकृतामलोकम्।।४४
सरस्वती देवयन्तो हवन्ते सरस्वती मध्वरे तायमाने ।
सरस्वती सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ।।४५
सरस्वती पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
आसद्यास्मिन बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे ।।४
सरस्वति या सरथं यथाथोवथः स्वधाभिर्देवि पितभिर्मदन्दी ।
सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि ।।४७
पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशायमि देवो नो धाता प्र तिरात्यायुः ।
परापरैता यसुविद्वो अस्त्वधा मृताः पितृषु सं भवन्तु ।।४८
आ प्र च्यवेथामप तन्मृजेथां यद् वामभिभा अत्रोचु ।
अस्मादोतमध्न्यौ वद वशीयो दातुः पितृष्विहभोजनौ मम ।।४९
एतमगन् दक्षिणा भद्रतो ना अनेन दत्ता सुदुधा वयोधाः ।
यौवने जीवानुपपृंचती जरा पितृभ्य उपसंपरायणायादिमान।५०

अविनाशी अग्नि को कर्मवान पुरुष प्रकट करते हैं । दिखाने वाले के बिना जैसे कोई भूमिगत कोश को देख नहीं सकता, वैसे ही पितर भी स्वयंही प्रकाशित नहीं होते । यह अग्नि दूर देशमें वास करनेवाले पितरों के जानने वाले हैं इसलिये यह प्रदीप्त किये जाते हैं ।४०। हे प्रेत ! तेरे लिए जो मन्थ दे रहा हूँ वह मन्थ तुझे स्वधा और घृत से सम्पन्न किये प्राप्त हों ।४२। हे प्रेत! इन कृष्ण तिलों वाली स्वधा मयी खीलें परलोक प्राप्ति पर तुझे विस्तृत रूपमें प्राप्त हों और इनके भक्षण की तुझे यमराज स्वीकृति दें ।४३। इस लोक से जिसके द्वारा प्राणी जाते हैं,वह मृतकको ढोने वाली गाड़ी प्राचीन और नवीन दोनों प्रकार की है । इसी के द्वारा तेरे पूर्व पुरुषा गए थे । इनके दोनों ओर जोड़े गये दोनों वृषभ तुझे पुण्यात्माओं का लोक प्राप्त करावें । ४४ ।

मृतकका संस्कार कराने वाले अग्नि की इच्छा करते हुए पुरुष सरस्वती का आह्वान करते हैं। ज्योतिष्टोम आदि के समय भी सरस्वती का आह्वान किया जाता है,वह सरस्वती हविदाता यजमानको वरण करने योग्य पदार्थ प्रदान करें।४५। वेदी के दक्षिण भाग में स्थित पितर भी सरस्वती का आह्वान करते हैं। हे पितरो ! इस यज्ञ में प्रसन्नता को प्राप्त करो, सरस्वती को तृप्त करते हुये हमारी हवि से स्वयं तृप्त होओ। हे सरस्वती ! तुम पितरों द्वारा आहूत होकर इच्छित अन्न में हमें प्रतिष्ठित करो।४६। हे सरस्वते ! तुम उक्थ, शस्त्र, स्वधा रूप अन्न से तृप्त होती हुई पितरों सहित एक ही रथ पर आगमन करती हो। तुम यजमान को अनेक व्यक्तियों को तृप्त करने वाले अन्न को प्रदान करो।४७। हे पृथिवी ! मैं तुझे विकार कुम्भी में प्रविष्ट करता हूँ। हम सब यज्ञ के अनुष्टोताओं की धाता देवता आयु वृद्धि करें। हे दूर लोक वासी पितरो। यह लिपी हुई चरु कुम्भी तुम्हें अन्न प्राप्त करावे। चरुके स्वाहाकारके पश्चात् यह मृतक अपने पितरों से जा मिले।४८। हे प्रेतवाहक बैलो ! इस गाड़ी से तुम हमारे सामने ही पृथक् हो जाओ, प्रेत को सवारी देने की निन्दा वाक्यसे छूटो। तुम इस गाड़ी सहित आओ, तुम्हारा आना शुभ हो। तुम इस पितृमेध में पितरों के लिए हविर्दाता बनो।४९। हम संस्कार करने वालों के पास यह गौ रूप वाली दक्षिणा आ रही है। यह सुन्दर फल और दूध रूप अन्न को देती हुई वृद्धावस्थामें भी युवती ही रहे। इस संस्कार किये हुए पुरुष को यह दक्षिण पूर्व पितरों के पास पहुँचावे।५०।

इदं पितृभ्यः प्र भरामि वर्हिर्जीव देवेभ्य उत्तर स्तृणामि।
तदा रोह पुरुष मेध्यो भवन प्रति त्वा जामन्तु पितरःपरेतम्।५१
एदं वर्हिरुसदो मेध्योऽभूः प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम।
यथापरु तन्वं स भरस्व गात्राणि ते ब्रह्मणा कल्पयामि ।।५२
पर्णो राजापिधानं चारूणामूर्जो बल सह आजो न आगन।
आयुर्जीवेभ्यो वि दधद दीर्घायुत्वाय शताशारदाय ।।५३
ऊर्जो भगो य इमं जजानाश्मान्नामाधिपत्यं जगाम।

तमर्चत् विश्वामित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात्॥५४
यथा यमाय हर्म्यमवपन पञ्च मानवाः ।
एवा वपामि हर्म्यं यथा मे भूरयोऽसत ॥५५
इद हिरण्यं बिभृहि यत् स पिताबिभः पुरा ।
स्वर्गं यतः पितुर्हस्तं निमृड्ढि दक्षिणम् ॥५६
ये च जीवा ये च मृता ये जाता ये च यज्ञियाः ।
येभ्यो घृतस्य कुल्यैतु मधुधरा व्युन्दती ॥५७
वृषा मतीनां पवसे विचक्षणः सूरो आह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।
प्राणःसिन्धूनां कलशां अचिक्रदन्द्रिस्य हार्दिमाविशन्मनीपया।५८
त्वेषस्ते धूम ऊर्णोतु दिवि षञ्छक आततः ।
सूरो न हि द्यु ता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥५९
प्र वा एतीन्दुरिन्द्रस्य निष्कृति सवा सख्युर्न प्र मिनाति संगिरः ।
मर्यइव योषाः समर्षसे सोमः कलशे शतयामना पथा ॥६०

मैं संस्कार करने वाला पुरुष पितरों को और देवताओं को जीवन कामना करता हुआ कुशाओं को बिछाता हूँ । हे पुरुष ! तू पितृमेध के योग्य होता हुआ इन पर चढ़ जिससे पूर्वज पितर भी तुझे प्रेत हुआ जान लें ।५१। हे प्रेत तू इस चिता पर बिछी कुशा पर चढ़ कर पितृमेध के योग्य हो गया है अतः पितर तुझे प्रेत हुआ जानें । तेरी अस्थियाँ, जीवित रहने पर जैसी थीं, वैसी ही अब भी रहें । कुल में बड़ा मैं, तेरे अस्थि रूप का अवयवों को मंत्र से एकत्र करता हूँ ।५२। पालश पत्र हमको अन्न, रस, बल, शक्ति और तेजदेता हुआ पावे वह हमें सौ वर्ष की आयु प्रदान करता हुआ प्राप्त हो ।५३। चरु रूप अन्न के योग्य जिन यमराज ने इसे प्रेत बनाया है, जो यम इन चरुओं को आच्छादित करने वाले पाषाणोंके स्वामी हैं,उन यमदेवको हे बन्धुओ! हवियों से सन्तुष्ट करो । वे दीर्घ जीवन के निमित्त हमारा पोषण करे ।५४। पंचों ने जैसे यम के स्थान को किया, वैसे ही मैं इस प्रेत के

निवासके लिये पितृ स्थानको ऊँचा करता हूँ। हे बांधवों !ऐसा करने से तुम वृद्धि को प्राप्त हुए रहोगे।१५। हे प्रेत ! इस सुवर्ण-मुद्रिकाको घृत से धारित कर। तेरे पिता ने जिस दक्षिण हाथमें सुवर्ण धारणकर रखा था, उस स्वर्ग प्रापक हाथ को तू धो।५६। जीवित, मृत, उत्पन्न होने वाले सबके ही लिये मधु के प्रवाह को सींचती हुई घृतकी सरिता मिले।५७।। स्तुति करने वालों को इच्छित देने वाला सोम छन्नेसे छन कर चलता है, वही सोम दिन रात्रि को निष्पन्न करता है। उषाकाल और आकाश को भी वही बढ़ाता है। वह वसतीवर जलोंका प्राणहै। ऐसा कलशों की ओर जाता हुआ अत्यन्त शब्द करता है। यह तीनों सवनों में पूज्य इन्द्र के पेट में प्रविष्ट हो रहा है।५८। हे प्रेताग्ने ! तुम्हारा धुँआ अन्तरिक्ष को मेघ रूप में ढके। तुम स्तुति के कारण प्रदीप्त होकर सूर्य के समान प्रकाशित होते हो।५९। यह छन्नेसे छनता हुआ सोम इन्द्र के पेट में जाता हैं। यह यष्टाके लिये मित्र के समान है और उसकी इच्छित कामनाओंको व्यर्थ नहीं करता। पुरुष के स्त्री मिलने के समान यह सोम द्रोण कलश में सहस्रों धाराओं से मिलता है।६०।

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रियाँ अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा यविष्ठा ईमहे ॥६१
आ यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पितृयाणैः ।
आयुरस्मभ्यं दधतः प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचध्यम् ॥६२
परा यात पितरः सोम्यासो गम्भीरै पथिभिः पूर्याणैः ।
अधा मासि पुनरा यात नो गृहान्द्हविरत्तं सुप्रजसः सुवीरा॥६३
यद् चो अग्निरजहादेकमङ्गं पितृलोक गमयञ्जातवेदः ।
तद् व एतद् पुनरा प्यायययामि साङ्गा स्वगपितरोमादयध्वम्।६४
अभूद दतः प्रहितो जातवेदाः सार्यं न्यह्न उपवन्द्यो नृभिः ।
प्रादाः पतृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धित्वं देव प्रयता हवींषि ॥६५
असौ हा इह ते मनः ककुत्सलमिव जामयः । अभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥६६

शुम्भन्तां लोकाः पितृषदनाः पितृषदने त्वा लोक आ सादयामि ॥६७

ये स्माकं पितरस्तेषां बर्हिरसि ॥६८
उदुत्तम वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यम श्रयाम ।
अधा वयमादित्य व्रते तवानागसो आदितये स्याय ॥६९
प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान पैः समामे बध्यते यैर्व्यामे ।
अधा जीवेम शरदं शतानि त्वया राजन् गुपिता रक्षमाणाः ॥७०

पिण्ड भक्षण करके पिता पितर तृप्त हो गये, फिर वे अपने शरीर को कम्पायमान कर रहेहैं । फिर वे हमारी प्रशंसा करते हैं । उन तृप्त पितरों से हम अपने अभीष्ट फल को मांगते हैं ।६१। हे सोम के पात्र पितरो ! तुम पितृयानों से आगमन करो । पिण्डके निमित्त कुश बिछा कर तिल प्रदाता हमको आयु और सन्तान देते हुए धनों से पुष्ट करो ।६२। पितरो! तुम पितृयानोंसे अपने लोकको गमनकरो और अमावस के दिन हवि भक्षण को हमारे घरमें फिर आना । तुम सुन्दर पुत्र,पौत्र प्रदान करने वालेहो ।६३। हे प्रेत ! तुम्हारे जिस एक अङ्गको उछटा कर अग्निने भस्म नहीं किया है उसे पुनः अग्निमें डालकर तुम्हें प्रवृद्ध करता हूं । तुम पूर्णाङ्ग होकर स्वर्ग गमन करते हुये प्रसन्नताको प्राप्त होओ ।३४। प्रातः सायं वन्दना के योग्य अग्नि को दूत बनाकर हमने पितरोंके पास प्रेषित कियाहै । हे अग्ने ! हमारी हवियोंको उन्हें दो । वे पितर उनका सेवन करें और हे अग्ने ! फिर तुम भी अपने लिए दी हुई हविका सेवन करो ।६५। हे प्रेत! तेरा मन इस श्मशान में है । हे श्मशान भूमे ! इस प्रेत को भले प्रकार उसी तरह ढक जैसे स्त्रियाँ अपने स्कन्ध को वस्त्र से ढकती हैं ।६६। हे प्रेत ! पितरों के बैठने के लोक तेरे लिये प्रकट हों । मैं तुझे उसी लोकमें प्रतिष्ठित करता हूं ।६० हे बर्हि ! तू हमारे पूर्वज पितरों के लिये बैठने का स्थान बन ।६८। हे वरुण ! अपने उत्तम, मध्यम और निकृष्ट पाश को हमसे पृथक् रखो । पाशों से छुटने पर हम तुम्हारी सेवा करते हुए अहिंसित रहें ।६९। हे वरुण ! जिन पाशों से मनुष्य जकड़-सा जाता है, उन्हें हमसे पृथक्

रखो। तुमसे रक्षित हुए और आगे भी रक्षा पाते हुए हम सौ वर्ष की आयु प्राप्त करें।७०।

अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः ॥७१

सोमाय पितृमते स्वधा नमः ॥७२

पितृभ्यः सोमवद् भ्यः स्वधा नमः ॥७३

यमाय पितृमते स्वधा नमः ॥७४

एतत् प्रततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥७५

एतत् ते ततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥७६

एतत् ते तत स्वधा ॥७७

स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः ॥७८

स्वधा पितृभ्यो अन्तरिक्षसद्भ्यः ॥७९

स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः ॥८०

कव्यवाहन अग्निको स्वधायुक्त हवि प्राप्त हो। उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ।७१। पितृमान सोमको स्वधायुक्त एवं नमस्कारसे सम्पन्न यह हबि प्राप्त हो।७२। सोम वाले पितरों को स्वधा एवं नमस्कार से सम्पन्न यह हवि प्राप्त हो।७३। पितरों के अधिपति यम को स्वधा एवं नमस्कार युक्त यह हवि प्राप्त हो।७४। हे प्रपितामह! तुम्हारे लिए यह पिण्डरूप हवि स्वधाकर युक्तहो। पत्नी, पुत्र आदिको पितर तुम्हारे अनुकूल रहते हों उन्हें भी यह स्वधाकार प्राप्त हो। हे पिता! यह स्वधाकार युक्त हवि तुम्हें प्राप्त हो। हे पिता! यप स्वधाकार युक्त हवि तुम्हें प्राप्त हो।७५-७६-७७! पृथिवी में रहने वाले पितरोंको, अन्तरिक्षवासी पितरोंको और स्वर्गके निवासी पितरों को यह स्वधाकार वाली हवियाँ प्राप्त हों।७८-७९-८०।

नमो वः पितर ऊर्जे नमो वः पितरो रसाय ॥८१

नमो वः पितरो भामाय नमो वः पितरो मन्यवे ॥८२

नमो वः पितरो यद् घोरं तस्मै नमो वः पितरो यत् क्रूरं तस्मै ॥८३

नमो वः पितरो यच्छिवं तस्मै नमो वः पितरो यत् स्योनं तस्मै ॥८४

नमो वः पितरः स्वधा वः पितरः ।।८५
येऽत्र पितरः पितरो येऽत्र यूयं स्थ युष्मांस्तेऽनु यूयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्थ ।।८६
य इह पितरो जीवा इह वयं स्मः ।
अस्मांस्तेऽनु वयं श्रेष्ठा भूयास्म ।।८७
आ त्वाग्न इधीमहि द्युमन्तं देवजरम् ।
यद् ध सा ते पनीयसी समिद् दीदयति द्यवि ।
इषं स्तोतृभ्य आ भर ।।८८
चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्त मे अस्य रोदसी ।।८९

हे पितरो ! तुम्हारे अन्न रस को, तुम्हारे क्रोधको, तुम्हारे मानस क्रोध को, तुम्हारे भयंकर रूप को, तुम्हारे हिंसक रूप को तुम्हारे मङ्गलकारी रूप को और सुख देने वाले रूप को नमस्कार है। तुम्हें नमस्कार है। यह हवि तुम्हारे लिए स्वाहुत हो।८१-८२-८३-८४-८५। हे पितरो ! इस पिण्ड पितृ यज्ञ में तुम देवता रूप में बैठे हो। अपने आश्रित पितरों में तुम श्रेष्ठ होओ वे तुम्हारे द्वारा उपजीवी हों। वे तुम्हारे अनुग्रह से पिंड अँश का भाग पावें। हम पिण्ड देने वाले भी आयु से सम्पन्न हों और अपने समानों में हम श्रेष्ठ हों ।८६-८७। हे अग्ने! हम तुम्हें समिधाओं द्वारा प्रवृद्ध करतेहैं। तुम्हारी प्रशंनीयदीप्ति आकाश में प्रकाशितहै। हम स्तोताओंको अभीष्ट अन्नप्रदान करो।८८ जल-मय आलोक में स्थित सुषुम्ना नामक किरणसे युक्त चन्द्रमा शीघ्र गमन कर रहे हैं। हे चन्द्र किरणों ! कुँए में बन्द होने से मेरे नेत्र तुम्हारे रूप को देखने में समर्थ नहीं है हे द्यावा पृथिपी ! तुम भी मेरे स्तोत्र को जानती हुई दया करो ।८९।

।। इत्यष्टादशं काण्डं समाप्तम् ।।

एकोनविंश काण्ड

सूक्त १ (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—यज्ञः । छन्द—बृहती, पंक्तिः)

स म स्रवन्तु नद्यः सं वाताः स पतत्रिणः ।
यज्ञमिमं वधयता गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥१
इम होमा यज्ञमवतेमं संस्रावणा उत ।
यज्ञमिमं वर्धता गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥२
रूपरूपं वयोवयः संरभ्यैन ष्वजे ।
यज्ञामिम चतस्रः प्रदिशो बर्धयन्तु संस्राण्येण हविषा जुहोमि ॥३

उर्जनशील सरितायें सुखपूर्वक प्रवाहित हों, वायु भी हमारे अनुकूल चले,पक्षी आदि सब हमारे अनुकूल हों और अभींष्ट देने वालेहों। हे देवताओ ! तुम स्तुत्य हो। जिस यजमान के निमित्त यह शान्ति कर्म किया जा रहा है,उसकी पुत्रादि तथा पशु धनसे वृद्धि करो । मैं घृतादि से युक्त हवि को देवताओं को आहुति देता हूँ ।१। हे आहुतियो ! इस वर्तमान यज्ञको सुफल करो । हे घृत,क्षीर आदि तुम इस यज्ञका पालन करो हे स्तुत्य देवगण ! इस यजमान को पुत्र पौत्रादि तथा पशु आदि से युक्त समृद्धि दो । मैं घृतयुक्त आहुति प्रदान करता हूँ ।२। मैं इस यजमान में पुत्र, पशु आदि सब अवस्थाओं को स्थापित करता हूँ,चारों दिशायें इसके लिये इच्छित फल देने वाली हों मैं घृतादि से सम्पन्न हवि प्रदान करता हूँ ।३।

सूक्त २

(ऋषि—सिन्धुदीपः ।। देवता–आपः ।। छन्द–अनुष्टुप्)

शं त आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः ।
शं ते सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्या ।।१
शं त आपो धन्वन्या शं ते सन्त्वनूप्याः ।
शं ते खनित्रमा आपः शं यः कुम्भेराभृताः ।।२
अनभ्रयः खनमाना विप्रा गम्भीरे अपसः ।
भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपो अच्छा वदामसि ।।३
अपामह दिव्या नामपां स्रोतस्या नाम् ।
अपामह प्रणेजनेऽश्वा भवथ वाजिनः ।।४
ता अपः शिवा अपोऽयक्ष्मकरणीरपः ।
यथैव तृप्यते मयस्तास्त आ दत्त भेषजीः ।।५

हे यजमान ! हिमवान् पर्वत से लाये जल, झरने के जल सदा प्रवहित जल तेरा कल्याण करने वाले हों। वर्षाके जल भी तेरे लिये मंगल मय हों ।१। मरुतभूमि के जल, जलयुक्त प्रदेश के जल कूप तड़ाग और बावड़ी के जल तथा कुम्भोंमें भरकर लाये हुए जल तेरा कल्याण करने वाले हों ।२। खनन साधन कुदालादि के न होते हुए भी जो दोनों ओर के किनारोंको ढाने में समर्थ है,जो इनके द्वारा उपजीवन करतेहैं उनकी बुद्धियों को प्रवृद्ध करने वाले हैं, जो अत्यन्त गहन स्थानों को प्राप्त हैं ऐसे जल वैद्यों से भी अधिक पित-साधक हैं । मैं उन जलों की वन्दना करता हूँ ।३। हे ऋत्विजो ! तुम आकाशके जलोंके समान अथवा छोड़े गये अश्वों के समान इस शान्त्युदक कर्म में शीघ्रता वाले होओ ।४। हे प्रोक्ताओ ! कल्याणकारी, यक्ष्मादि रोगों को शमन करने वाले औषधि रूप जलों को सुख की वृद्धि के निमित्त यहाँ ले आओ ।५।

सूक्त ३

(ऋषि—अथर्वाङ्गिरा: । देवता—अग्नि । छन्द—त्रिष्टुप्,
भुरिक, त्रिष्टुप्)

दिवस्पृथिव्या: पर्यन्तरिक्षाद् वनस्पतिभ्यो अध्योषधीभ्य: ।
यत्रयव विभृतो जातवे स्तित स्तुतो जुषमाणो न एहि ।।१
यस्ते अप्सु महिमा यो वनेषु य औषधीषु पशुष्व प्स्वन्त: ।
अग्ने सर्वास्तन्व: स रभस्व तामिर्न एहि द्रविणोदा अजस्र: ।।२
यस्ते देवेषु महिमा स्वर्गो या ते तनु: पितृष्वाविवेश ।
पृष्टिर्या ते मनुष्येषु पप्रथेऽग्ने तया रयिमस्मासु धेहि: ।।३
श्रुत्कर्णाय कवये वेद्याय वचोभिर्वाकैरूप यामि रातिम् ।
यतो भयोमभयं तन्नो अस्त्वव देवानां यज्ञ हेडो अग्ने ।।४

हे अग्ने! हमारे स्तोत्र पर,तुम जहाँ-जहाँ विशिष्ट पूर्णता वालेहो, यहाँ वहाँ से ही हमारी प्रसन्नता के लिए आओ । आकाश,पृथ्वी,अन्त रिक्ष, पुष्पफल रहित ओषधियों और पक्व फल वाली ओषधियोंसे भी यहाँ आओ ।१। हे अग्ने ! जल में जो तुम्हारा रूप है, जङ्गल में जो तुम्हारा रूप है, ओषधियों में फल पाक रूप है, सब प्राणियों में जो वैश्वानर रूप है, अन्तरिक्षमें जो विद्युतरूप है, अपने उन सब रूपोंको एकत्र करके उन सबके सहित हमको धन देते हुए आओ ।२। हे अग्ने! तुम्हारी स्वर्ग गमन रूप जो महिमा देवताओं में है, जिस महिमासे तुम पितरोंमें प्रविष्ट हुए हो, तुम्हारा जो पोषण-कर्म मनुष्य में वर्तमानहैं, अपनी उन सब महिमाओं के सहित आकर हमको धन प्रदान करो।३। हे अग्ने! तुम हमारे स्तोत्रके श्रवणमें समर्थ श्रोतृ वाले हो,तुम अभीष्ट प्रदाता, सबके जानने योग्य अतीन्द्रियार्थदर्शी हो । मैं इस स्तोत्र रूप वाणी और मन्त्र-समूह अनुवाकों द्वारा तुम्हारी स्तुति करता हूँ,जिससे अभय प्राप्त हो । तुम हम पर क्रोध करने वाले देवताओं के क्रोध को

सूक्त ४

(ऋषि–अथर्वाङ्गिरा: । देवता–अग्नि: । छन्द–जगती, त्रिष्टुप्)

यामाहुतिं प्रथमामथर्वा या जाता या हव्यमकृणोज्जातवेदाः ।
तां त एतां प्रथमो जोहवीमि ताभिष्टप्तो वहतु हव्यमग्निरग्नये
स्वाहा ।।१
आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम्।२
आकूत्या नो बृहस्पत आकूत्या न उपा याहि ।
अथो भगस्य नो धेह्यथो नः सहदो भव ।।३
बृहस्पतिर्म आकूतिमांगिरसः प्रति जानातु वाचमेताम् ।
यस्व देवा देवताः संबभूवु स सुप्रणीताः कामो
अन्वेत्वस्मान् ।।४

हे अग्ने ! सृष्टि से पूर्व रचे देवताओं को प्रसन्न करने के लिए अथर्वा रूप ईश्वर ने आहुति दी और अग्नि ने उसे देवताओं को पहुं-चाने की इच्छा की । उसी इस आहुतिको तुम्हारे मुख में डालता हूं । तीनों शरीरों द्वारा पूजेगये अग्नि देवताओं को हवि प्राप्त करावे । यह हवि स्वाहुत हो ।१। मैं सौभाग्य देने वाली वाणी का पूजन करता हूं । उसे बुरे कामों से बचाकर सुन्दर कर्म में प्रेरित करने वाले पुरुष को आगे रखा जाता है, वैसे ही माता के समान मन को वश में करने वाली हमारे द्वारा आगे रखी हुई सरस्वती हमारे लिए अनुकूल हों । मेरा अभीष्ट मेरे लिए विशिष्ट बने, अन्य को प्राप्त न हो । मैं अपने इच्छित को सदा प्राप्त करता रहूं ।२। हे बृहस्पते ! तुम सब देवताओं के पालने वाले हो ! सब वाक्यों की सार रूप वाणी सहित, वाणी को हमारे अनुकूल करने के लिए आगमन करो और हमें सौभाग्य शाली बनाओ ।३। आङ्गिरस बृहस्पति प्रसिद्ध वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती का मुझे देने के लिए स्मरण करें । जिन बृहस्पति के वश

में देवता रहतेहैं, वे बृहस्पति इच्छित फल देने वाले हैं, वे हमारे समक्ष आकर अभीष्ट प्रदान करें।४।

सूक्त ५

(ऋषि–अथर्वाङ्गिराः। देवता–इन्द्रः। छन्द–त्रिष्टुप्)

इन्द्रो राजा जगयश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूप यदस्ति ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद् राघ उपस्तुयश्चिदर्वाक् ॥१

तीनों लोकों में वास करने वाले मनुष्य देवता आदि के स्वामी तथा महान् वनस्पति इन्द्र पृथिवी के महान् धन को मुझ हविदाता यजमान को प्रदान करें। वे इन्द्र हमारे द्वारा स्तुत होकर धनों को हमारे समक्ष भेजें।१।

सूक्त ६

(ऋषि–नारायणः। देवता–पुरुषः। छन्द–अनुष्टुप्)

सहस्रबाहुः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात ।
स भूमि विश्वतो वृत्यात्यतिष्ठद् दशांगुलम् ॥१
त्रिभिः पद्भिर्द्यामरोहस पादस्येहाभवत् पुनः ।
तथा व्यक्रामद् विष्वङ्डशनानशने अनु ॥२
तावन्तो अस्य महिमानस्ततो ज्यायांश्च पुरुषः ।
पादऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३
पुरुष एवेदं सर्वं यद् भुतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येश्वरो यदन्येनाभवत् सह ॥४
यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं कियस्य कि बाहू किभूरूप दा उच्येते ॥५
ब्रह्मणेऽस्यमुख मासीद् वाहू राजन्योऽभवत् ।
म य तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो न जायत ॥६
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूयो अजायत ।

मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत ।।७
नाभ्या आसीदन्तरिक्ष शीर्ष्णो द्यौ: समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिश श्रोत्राद् तथा लोकां अकल्पयन् ।।८
विराडग्र सम्भवद् विराज अधि पुरुष: ।
स जातो अत्यरिच्यत् पश्चात् भूमिमथे पुर: ।।९
यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्म: शरद्धवि: ।।१०

अनन्त भुजा,अनन्त नेत्र, अनन्त चरणों वाले नारायण सप्त सिन्धु और द्वीपों वाली पृथिवी को अपनी महिमा से व्याप्त करते हुए दशा अंगुल वाले हृदयाकाश में प्रतिष्ठित हुए ।१। इस यज्ञ जो अनुष्ठाता नारायण अपने तीन पदों सहित स्वर्गलोक में चढ़े । इनका चतुर्थ पाद इस लोकमें बारम्बार प्रकट होताहै। यह पाद भोजन जीवी सब मनुष्य, पक्षी आदि और वृक्ष आदि में सर्वत्र व्याप्त हैं ।२। सम्पूर्ण विश्व उसी यज्ञानुष्ठाता पुरुष का महान् कर्महै, यह महिमा का भी आश्रय रूपहै । इसका चतुर्थ पाद सब भूतों में व्याप्त है । इसके तीन पाद अमृत लोक स्वर्गमें स्थित हैं।३। विगत, भविष्यत् और वर्तमान संगत सब नारायण रूप ही है । यही पुरुष अमृत्व का स्वामी है और अन्य भूतों का भी ईश्वर है।४। साध्य और वस्तु नामक देवताओं ने जब यज्ञ पुरुषकी कल्पना की, तब इसे कितने प्रकार से कल्पित किया । इसका मुखभुजा उरु और पाद क्या कहलाते हैं ? ।५। इसका मुख ब्राह्मण,भुजाक्षत्रिय, उरु वैश्य और पाद शूद्र कहलाये ।६। उसके मन से चन्द्रमा, मुख से इन्द्राग्नि, प्राण वायु प्रकट हुए ।७। शिर से स्वर्गलोक नाभि से अन्तरिक्ष और पांवों से पृथिवी लोक प्रकट हुआ । इसके स्रोत से दिशायें उत्पन्न हुई इस प्रकार साध्य आदि देवताओं ने लोकों और वर्णों की योजना बनाई ।८। सृष्टि के आरम्भमें विराट् उत्पन्न हुआ, विराट् से अन्य पुरुष (यज्ञ) हुआ । वह उत्पन्न होतेही वृद्धि को प्राप्त होता हुआ पृथिवी आदि लोकों के आगे पीछे व्याप्त हो गया और जीवों की देह

रचना की ।६। देवताओं ने अश्व रूप हवि से साध्य अश्वमेध यज्ञ को किया तब रसोत्पादिका वसन्त ऋतु यज्ञ का घृत और ग्रीष्म ऋतु समिधा हो गई तथा शरद ऋतु पुरोडाश रूप हवि हुई ।१०।

तं यत्रं प्रावृषा प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रशः ।
तेन देवा अजयन्त साध्या वसवश्च ये ।।११
तस्मादश्वा अजायंत ये च के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः ।।१२
तस्माद् यज्ञातः सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दो ह जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ।।१३
तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् ।
पशूस्तांश्चके वायव्या नारण्या ग्राम्याश्च ये ।।१४
सप्तास्यासन परिष्यस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद् यज्ञं तन्वाना अवध्नन् पुरुषं वमुम् ।।१५
मूर्ध्नो देवस्य वृहतो अंशवः सप्त सप्ततोः ।
राज्ञः सोमस्याजायत जातस्य पुरुषादधि ।।१६

सृष्टि के प्रारम्भ काल में उस पूजा के योग्य पशुको प्रावट् नामक ऋतु से धोया और उससे समय तथा वसु देवताओं ने यज्ञ किया ।११। उस यज्ञात्मक पशुसे अश्व, खच्चर और गर्दभ उत्पन्न हुए । ऊपरनीचे दांत वाले, गौयें, बकरी और भेड़भी उससे उत्पन्न हुई।१२। उसी अश्व रूप यज्ञ पुरुष से पद्योवद्ध मन्त्र, गीत्यात्मक मन्त्र, अधिष्ठान छन्द और प्रश्लिष्ट पाठ वाले यजुमंन्त्र प्रकट हुए ।१३। उसी से दधिमिश्रित घृत का सम्पादन किया । सात्य नामक देवताओं ने उस घृत कणं को, और वायु ने श्वापद, पक्षी, सरीसृप, बन्दर, हाथी तथा गौ, अश्व, गधे, भेड़ बकरे, ऊँट आदि की रचना की ।१४। साध्यादि देवताओं ने जब अश्व मेध किया तब यज्ञ पुरुष को पशु रूपमें बांधा और गायत्री आदि सात

छन्दों को परिधि बनाकर इक्कीस समिधाओं की रचना की ।१५। यह पुरुष से सम्पादित सोम की चार सौ नब्बे महान् दीप्ति वाली रश्मियाँ आदि के मस्तक से उत्पन्न हुई ।१६।

सूक्त ७

(ऋषि–गार्ग्यः । देवता–नक्षत्राणि । छन्द–त्रिष्टुप्)

चित्राणि साक दिवि रोचनामि सरसृपाणि भुवने जवानि ।
तुर्मिशं समतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकसु ।।१
सुहवमग्ने कृतिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा ।
पुनर्वसू सूनृता पुष्यो भानु राश्लेषा अयनं मधा मे ।।२
पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सखीमेअस्तु।
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा मुनश्रत्रमरिष्ट मूलम् ।।३
अन्न पूर्वा तास्तां मे अषाढा ऊर्जदेश्युत्तरा या वहन्तु ।
अभिजिन्मे रासतां मे पुण्यमेव श्रवणःश्रविष्ठाःकुर्वतांसुपुष्टिम्।४
आ मे महच्छतभिषग् वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म ।
आ रेवती चाश्वयुजौ भग म आ मे रयि मरण्य आ वहन्तु ।।५

अनेक रूप वाले जो नक्षत्र आकाश में चमकते हैं वे प्रतिक्षण द्रुत-गति से सरकते हैं । उन नक्षत्रों की मैं मन्त्र रूप वाली स्तुति करताहूँ। क्योंकि मैं उनकी विघ्ननाशिनी कल्याणमयी बुद्धि की इच्छा करता हूँ, ।१। अग्ने ! कृतिका नक्षत्र हमारे आह्वान के अनुकूल हो। हे प्रजा-पते ! रोहिणी नक्षत्र भी सुन्दरता से आह्वान योग्य हो। हे सोम ! मृगशिरा नक्षत्र हमारे लिए मंगलमय और आह्वान योग्य हो । रुद्र! भद्रा नक्षत्र सुखदे आदित का पुनर्वसु नक्षत्र सत्यवाणीप्रद हो बृहस्पति का पुण्य नक्षत्र कल्याण दे, सर्प का अश्लेषा नक्षत्र तेजस्वी बनावे और पितृ देवता का मघा नक्षत्र मेरा अभीष्ट पूर्ण करने वाला हो।२।अर्यमा का पूर्वाफाल्गुनी, भग का उत्तरा फाल्गुनी, सविता का हस्त, इन्द्र का चित्रा नक्षत्र मुझे पुण्यमय सुख दें । बायु का स्वामी, इन्द्र का अनुराधा

और विशाखा तथा मित्र का अनुराधा सुख ने आह्वान करने योग्यहो! इन्द्र का ज्येष्ठा नक्षत्र भी मेरे लिए कल्याणकारी हो ।३। जल देवताका पूर्वासाढ़ा मुझे सुभक्ष्य अन्न दे । विश्वे देवताओं का, उत्तराषाढ़ा हमारे सामने वलदायक अन्नमय रस दें । ब्रह्म देवता का अभिजित् नक्षत्रमुझे पुण्यप्रद हो । विष्णु का श्रवण, वसु देवता का धनिष्ठा नक्षत्र भी मेरा भले प्रकार पालन करें ।४। इन्द्र का शतभिषा, अजैक पाद का पूर्वा भाद्रपद और अहिर्बुध्न्यका उत्तराभाद्रपद हमारे लिए महान् फल देते हुए सुसज्जित गृह प्रदान करने वाले हों । पूषा का रेवती और अश्वि-द्वय का अश्वयुक्त नक्षत्र मुझे सौभाग्यशाली बनावे तथा यम भरणी नक्षत्र मुझे ऐश्वर्य में प्रतिष्ठित करें ।५।

सूक्त ८

(ऋषि–गार्ग्यः । देवता–नक्षत्राणि । छन्द–जगती, त्रिष्टुप्)

यानि नक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्ष अप्सु भूमौ यानि नरेषु दिक्ष ।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु ॥१
अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योग भजन्तु मे ।
योगं प्र पद्ये क्षेम च क्षेम प्र पद्ये योगंचनमोऽहोरात्राभ्यांमस्तु।२
स्वस्तितं मे सुप्रातः सुमायं सुदिवं सुमृग सुशकुन मे अस्तु ।
सुहवमग्ने स्वस्त्यमर्त्यं गत्वा पुनरायाभिनन्दन् ॥३
अनुहवं परिवादं परिक्षवम् ।
सर्वे मे रिक्तकुम्भान् परा तान्त्सवितः सुव ॥४
अपपापं परिक्षवं पुण्य भक्षीमहि क्षवम् ।
शिवा ते पाप नासिकां पुण्यगश्चाभि मेहताम् ॥५
इमा या ब्रह्मणस्पते विषू च वातं ईरते ।
सध्रीचीरिन्द्र ताः कृत्वा मह्यं शिवतम स्कृधि ॥६
स्वस्ति नो अस्त्वभयं नो अस्तु नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥७

आकाश, अन्तरिक्ष, पृथिवी, जल, पर्वत और दिशाओं में नक्षत्र दिखाई देते हैं और जिन नक्षत्रों को प्रदीप्त करते हुए चन्द्रदेव प्रकट होते हैं वे नक्षत्र मुझे सुख प्रदान करें ।१। सुखका दर्शन करने वाले जो अट्ठाईस नक्षत्र हैं वे मुझे फल प्रदान करने के लिए समान बुद्धि वाले हों । मैं नक्षत्रोंका सहयोग पाकर अलभ्य वस्तुकी प्राप्तिको सिद्ध करूँ और प्राप्त हुई वस्तु की रक्षाका सामर्थ्य भी पाऊँ। दिवस और रात्रि को मेरा नमस्कार है ।२। सुन्दर प्रातःकाल मुझे सुख प्रदान करे, सायं काल मुझे सुखी करे । दिवस और रात्रि भी सुख दें । मैं जिस प्रयोजनीय नक्षत्र में प्रस्थान करूँ. उसमें हरिण आदि शुभ शकुन के रूप में अनुकूल गति वाले हों । हे अग्नि! हवि पात्र नक्षत्रों को हमारी हवियाँ पहुँचकर हमारी प्रशंसा करते हुए फिर आगमन करो ।३। हे सयिता-देव ! सब नक्षत्र सहित तुम अनुभय (टोक) परिहब, कठोर भाषण, वर्जित स्थल प्रवेश, खाली बर्तन और छींक आदि अपशुकुनों और दुर्निमितों को हमसे पृथक करो।४। अहित करने वाली छींक हमसे दूर हो, धन प्राप्ति के निमित्त भाग में शृङ्गाल-दर्शन, नपुंसक-दर्शन निषिद्ध है, यह सब हमारे पाक का शमन करने वाले हों !।५। हे इन्द्र जिन दिशाओं को आँधी चलती हुई धुँधला करती है, उन अन्धकारसे ढकी दिशाओं को अनुकुल रूप से स्थित हुए मेरे लिए कल्याण करने वाली करो ।६। हमारा भय दूर हो । दिन और रात्रि को नमस्कार है । हमारे लिए सदा मङ्गल हो ।७।

सूक्त ६

(ऋषि—शन्ततिः । देवता—मन्त्रोक्ताः । छन्द—वृहतीः, अनुष्टुप्,प्रभृति)

शान्ता द्यौः पृथिवी कान्तमिदमुर्वन्तरिक्षम् ।
शान्ता उदन्वतारापः शान्ता नः सन्वोषधीः ।।१
शान्ता नि पूर्वरूपाणि शान्तं नो अस्तु कृताकृतम् ।
शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः ।।२

इयं या परमेष्ठिनी बाग देवी ब्रह्मसंशिता ।
यनैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः ।।३
इदं यत् परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम् ।
येनैव ससृजे घोर तेनैव शन्तिरस्तु नः ।।४
इमानि यानि पंचेन्द्रियाणि मनः षष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणासंशिः
तानि । यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ।।५
शं नो मित्रः शं वरुणः विष्णुः शं प्रजापतिः ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो भवत्वर्यमा ।।६
शं नो मित्रः शं वरुणः शं विवस्वांछमन्तकः ।
उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाः शं नो दिविचरा ग्रहाः ।।७
शं नो भूमिर्वोष्यमाना शशुल्का निर्हतं च यत् ।
शं गावो लोहितक्षीराः श भूमिरव तीर्यतीः ।।८
नक्षत्रमुल्काभिहत शमस्तु नः शं नोऽभिचाराः शमु सन्तु कृत्याः।
शं नो निखाता वल्गाः शमुल्का देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु ।।९
शं नो ग्र ाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा ।
शं नो मृत्युर्धूमकेतुः श रुद्रास्तिग्मतेजसः ।।१०
शं रुद्राः श वसवः शमादित्याः शमग्नयः ।
शं नो महर्षयो देवाः शं देवाः बृहस्पतिः ।।११
ब्रह्म प्रजापतिर्धाता लोका वेदाः सप्तऋषयऽग्नयोः ।
तैर्मे कृतं स्वस्त्यमिन्द्रो मे शर्म यच्छतु ब्रह्मा मे शर्म यच्छतु ।
विश्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु सर्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु ।।१२
यानि कानि चिच्छान्तानि लोके सप्तऋषयो विदुः ।
सर्वाणि शं भवन्तु मे शं अस्त्वभय मे अस्तु ।।१३
पृथिवीशान्तिरन्तरिक्षशान्तिर्द्यौः शान्तिरापःशान्तिरोषधयःशांति
बनस्पतयः शान्तिविश्वे भे देवाः शान्तिःसर्वे मे देवाशान्तिःशांति
शान्तिः शान्तिभि । ताभिः शान्तिभिः सर्व शान्तिभिः शमया-

मोऽहं यदिह चोरं यदिह क्रूरं यदिह पाप तच्छान्तं तच्छिवं सर्व मेवशमस्तु नः ।।१४

अपने कारण से उत्पन्न दोषों का शमन करता हुआ द्युलोक हमें सुखदे, विशाल अन्तरिक्ष और पृथिवी भी हमें सुख शान्ति प्रदान करें। समुद्र के जल और औषधियाँ भी हमें शान्ति दें ।१। कार्य कारण और न हो सकने वाला कार्य भी मुझे सुख दें। मेरे पूर्व पापों के फल, भोग भी शान्त हों। मेरा दुष्कर्म और विरुद्धाचरण भी शान्त को प्राप्त हों। भूतकाल का और आगे होने वाले का कोष और वर्तमान काल का कर्म दोष भी शान्त होता हुआ सुखदे।२।परम स्थानकी निवासिनी मन्त्रों द्वारा उत्कृष्ट और विद्वानों द्वारा अनुभव में लाई हुई परमेष्ठीकी वाणी रूप सरस्वती, जो शाप आदि में भी उच्चारित होती है, हमारे लिए सुखदेने वालीहो।३। परमेष्ठी द्वारा विरचित संस्कारका मूलकारण रूप मन, जो घोर कर्म करने वाली है, वही मन हमारे लिए होनेवाले घोर कर्म को शान्त करने वाला हो ।४। जिन पंचेन्द्रियों को मैंने घोर कर्ममें प्रयुक्त किया था, वह ज्ञानेन्द्रियाँ हमारे घोर कर्मको शान्ति करें ।५। दिन के अभिमानी देवता मित्र, रात्रि के अभिमानी देवता वरुण विष्णु प्रजापति, इन्द्र, बृहस्पति और अर्यमा देवता हमको शान्ति दें।६ मित्र, वरुण, सूर्य, अन्तक पृथिवी और अन्तरिक्ष में होने वाले उत्पात और आकाशमें विचरण करने वाले ग्रह हमारे लिए शान्ति करने वाले हों ।७।काँपती हुई पृथिवी, कम्पके दोषको दूर करती हुई शान्ति देने वाली हो ज्वाला रूप से गिरने वाली बिजलियों वाला स्थानभी सुख-दायक हो। दूधके स्थान पर रक्त देने वाली धेनु तथा फटतीहुई पृथिवी यह भी हमारे दोषों को शान्त करें ।८। उल्काओं के आघात से स्थाई च्युत नक्षत्र हमें शान्ति दें, शत्रुओं के कृत्यादि अभिचार कर्म सुख दें, भूमि खोद कर हड्डी और केश आदि लपेट कर बनाई गई विष पुत-लिकाऐं हमारे लिए शान्तप्रद हों। विद्युत अपने देखने से प्राप्त हुई व्याधि को दूर करें। राष्ट्र में होने वाले विघ्न भी शान्त हो ।६। चन्द्र

मण्डल के ग्रह, राहु से ग्रस्त सूर्य, धूमकेतुका अनिष्ट और रुद्रके तीक्ष्ण सन्ताप देने वाले उपद्रव, यह सभी शान्ति कराने वाले हों।१०। ग्यारह रुद्र,आठ वसु,बारह आदित्य,इन्द्रादि देवता,बृहस्पति और सब अग्नियां हमको शान्ति दें ।११। ब्रह्म, प्रजापति , धाता और सब लोकचार,चार वेद, सप्तर्षि अग्नियां वह मुझे कल्याण देने वालेहों । इन्द्र ब्रह्म विश्वे-देवा और सब देवता मेरा कल्याण करें ।१२। ऋषिगण शान्ति करने वाली जिन-जिन वस्तुओं के ज्ञाता हैं, वे सब वस्तुयें मुझे सुख देनेवाली हों, सब ओर से मुझे सुख और अभय की प्राप्ति हो ।१३। पृथिवी शान्ति दें, द्यौ शान्ति दें, जल औषधियां, वनस्पतियां, विश्वेदेवा और सभी देवता मुझे शान्ति दें । शान्ति से बढ़कर शान्ति हमको मिले । विपरीत फल, क्रूर फल और पापमय फल जो हमें मिलने वाला हो, वह कल्याण करने वाला हों ।१४।

सूक्त १० (दशवां अनुवाक)

(ऋषि–वसिष्ठः । देवता–मन्त्रोक्त । छन्द–त्रिष्टुप्)

शं न इन्द्राग्नो भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रा सोमा सुविताय शं यो शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ।।१
शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरधिः शमु सन्तु रायः ।
शं नः सत्यस्त सुयमस्य शंसः शं नो अयमा पुरुजातो अस्तु ।।२
शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः ।
शं रादसी बृहती शं नो अद्रिः श नो देवानां सुहवानि सन्तु ।।३
शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विनाशम ।
शं नः सुकृता सुकृतानि सन्तु श न इषिरो अभि पातु वातः ।।४
शं नो द्यावापृथिवी पूवहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ।
शं न औषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसम्पतिरस्तु जिष्णुः ।।५
शं न इन्द्रो बसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शं नो रुद्रो रुद्रंभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाॐरिह श्रृणोतु ।।६

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म श नः श नो ग्रावाण-शमु सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥७
शं नः सूर्य रूरूचक्षा उदेतु शं नो भवन्तु प्रदिशश्चतस्रः ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्त् शं नः सिन्धवः शंभु सन्त्वापः ॥८
शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।
शं नो विष्णु शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्र शम्वस्तु वायुः ।९
शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नौ भवन्तूषसो विभातोः ।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः भेत्रस्य पतिरस्तु शंभूः ॥१०

हे इन्द्राग्ने! तुम अपनी रक्षा बुद्धि से हमारे दुःखों को दूर करो। यजमानसे हवि प्राप्त करके इन्द्र और वरुण हमारा मङ्गल करें। सोम और इन्द्र सुख देने को तत्पर हों। इन्द्र और पूषा देवता घोर युद्ध में हमारे संकट और भयों को नष्ट करने वाले हों।१। भग देवता, नराशस देवता हमारा कल्याण करने वाले हों, बुद्धि, मन वाणी यह सबमें सुखदें, अर्यमा हमारे लिए मंगल करने वालेहों। देवताओं की स्तुतियाँ हमारा कल्याण करनेमें समर्थ हों।२। धात, वरुण, पृथिवी, द्यावापृथिवी और पर्वत हमारे लिए मंगल करने वाले हों। देवताओं की स्तुतियाँ हमारा कल्याण करने में समर्थ हों।३। ज्योतिर्मुख अग्नि, मित्र बरुण और अश्विनीकुमार हमारा मंगलकरें। पुण्यात्माओंके कर्म हमारे लिए कल्याणकारी हो। बहते हुए वायु हमको शान्तिप्रद हो।४। पर्वातियज्ञ में आकाश पृथिवी हमारे लिए कल्याण करने वाली हों। अन्तरिक्ष हमारी दृष्टिको सुखदें। औषधि, वृक्ष, लोकपाल, बिजली इन्द्र हमारी मङ्गल कामना करें।५। वसुओं सहित इन्द्र, आदित्यों सहित वरण, रुद्रों सहित त्वष्टादेव हमारे लिए कल्याण योजना करतेहुए हमारी स्तुतियों को श्रवण करें।६। निष्पक्ष सोम, स्तोत्र, शसात्मक मन्त्र, सोम कूटने का पाषाण और सोम में सम्पादित होने वाले यज्ञ हमारा मङ्गल करे वही हमारे लिए कल्याण-कारिणी हो। प्रचुरतासे उत्पन्न होने वाली

हवियाँ भी हमारा कल्याण करें ।७। महान् तेजस्वी आदित्य हमारा मङ्गल करते हुए उदयको प्राप्तहों, चारों दिशायें, स्थिर पर्वत, नदियाँ और उसके जल हमारे लिए मङ्गलमय हों ।८। देवमाता अदिति हमको सुखदे, विष्णु, पूषा और मरुद्गण हमारे लिए मङ्गल करे जल और वायु हमको शान्ति देने वाले हों ।९। भय से त्राण करने वाले सविता उषा की अभिमानी देवता, विभाती वर्षा, देह वाले पर्जन्य और क्षेत्र-पालक शम्भु हमारा कल्याण करें ।१०।

सूक्त ११

(ऋषि–वशिष्ठः । देवता–मन्त्रोक्तः । छन्द–त्रिष्टुप्)

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्बन्तः शमु सन्तु गावः ।
शं न ऋभव सुकृतः सुहस्ताः शं नौ भवन्तु पितरो हवेषु ।।१
शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ।
शमभिषाचः शमु रातिषाच शंनो दिव्याः पार्थिवाःशंनो अप्या।२
शं नो अज एकपाद देवो अस्तु शमहिर्बघ्न्यः शं समुद्राः ।
शं नो अपां नपात् पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवत देवगोपा ।।३
आदित्या रुद्रो वसवो जुषन्तामिदं ब्रह्म कियमाण नवीयः ।
श्रृण्वन्तु नो दिव्या पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ।।४
ये देवानामृत्विजो यज्ञियासो मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
यो नो रासन्तामुरुगायमद्य यूय पात स्वस्तिभिः सदा नः ।।५
तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् ।
अशोमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे वृहते सादनाय ।।६

सत्यका पालन करने वाले देवता हमारे लिए मङ्गलकरें । गवाश्च शान्ति प्रदायक हों, ऋजु और पितर हमारी स्तुतियोंसे प्रसन्न होतेहुए सुख प्रदान करें ।१। अनेक स्तोत्र वाले इन्द्रादि देवता हमारा मङ्गल करें, सरस्वती हमारा कल्याण करें, दानशील विश्वेदेवा हमेंसुखी करें। आकाश पृथिवी और जल में उत्पन्न देवता हमारा कल्याण करें ।२।

अजैकपाद नामक देवता हमारे लिए शान्ति देने वाले हों-अहिबुंध्न्य देवता, अपान्नपात देवता, समुद्र और मरुतों की माता पृश्नि यह सब हमारा मंगल करें ।३। आदित्य, रुद्र और वसु देवता इस नये स्तोत्रको स्वीकार करें । पृश्नि से उत्पन्न यज्ञार्हे देवता तथा द्युलोक के और पृथिवी के देवता भी हमारे इस स्तोत्र का श्रवण करें ।४। देवताओं के ऋत्विज, यज्ञ हे मनु के पुत्र तथा ममृतत्व प्राप्त सत्यनिष्ठ देवता हमको विस्तृत यश दें । हे देवताओ ! कल्याणमय रक्षा साधनों के द्वारा तुम हमारा सदा पालन करते रहो ।५। हे दिन के अभिमानी देवता मित्र,हे राज्यभिमाती देव वरुण ! रोगों की शान्ति और भयों के दूर होने का फल हमको मिले । हम खेत आदि रूप प्रतिष्ठा और धनको प्राप्त करें । आकाश और सबकी आश्रयभूत पृथिवी को नमस्कार है ।६।

सूक्त १२

(ऋषि–वसिष्ठः । देवता–उसा । छन्द–त्रिष्टुप्)

उषा अप स्वसस्तमः स वर्तनि सुजातता ।
अया वजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ।।१

अपनी बहिन रात्रि के अन्धकार को, उषा लाते ही हटा देती हैं और प्रकाश करती हुई इहलौकिक, पारलौकिक मार्गोंको खोलती है । इस उषा से हम देवताओं के लिए अव्य हन्न पावें और सुन्दर अपत्य वाले होते हुए सो हेमन्तों तक जीवित रहते हुए सुखी हों ।१।

सूक्त १३

(ऋषि–अप्रतिरयः । देवता–इन्द्र । छन्द–त्रिष्टुप्)

इन्द्रन्य वाहू स्थाविरौ वृषाणौ चित्रा इमा वृषभौ पारयिष्ण ।
तौ योक्षे प्रथमो योग आगते याभ्यां जितसुराणां स्वर्यत ।।१
नाशुः शिशन्नो वृषभो न भीमो घनाननः क्षोभणाश्चर्षनीनाम् ।
संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतः सेना अजयत् साकमिन्द्रः ।।२

सक्रन्दनेनाभिषेण जिष्णुनाऽयोध्येन दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत् साहध्वं मुधो नर इषुहस्तेन वृषणा ।।३
स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युव इन्द्रो गणेन ।
संसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ।।४
बलविज्ञायः स्थविर प्रवीरः सहस्वान् वाजी सदमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिषत्वा सहोजिज्जैत्रमिन्द्र रथमातिष्ठगोविदन्।।५
इमं वीरमनु हर्षध्वमुग्रामिन्द्रं सखायो अनु स रमध्वम् ।
ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।।६
अभि गोत्राणि सहसा गाहमामोऽदाय उग्रः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयोध्योस्माक सेना अवतु प्र युत्सु ।।७
बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्रां अपबाधमानः ।
प्रभञ्छत्रन् प्रमृणामित्रनमस्माकमेध्यविता तनूनाम् ।।८
इन्द्र एषां नेमा बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभंजतीनां जयन्तीनानां मरुतो शर्धं उग्रम् ।।९
महामनासां भुवनच्यवानां घोषो देवासो जयतामुदस्थात् ।।१०
अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्मान् सेवासोऽवता हवेषु ।।११

मैं देवताओं से बैर करने वाले राक्षसों को जीतने वाली इन्द्र की आयुध-वर्षक और अभीष्ट वर्षक भुजाओं का कल्याण के लिए पूजन करता हूं ।१। द्रुतकर्मा बुद्धि को तीक्ष्ण करने वाले, भयंकर, विकृतों के प्रेरक, शत्रु-नाशक, स्वयं समर्थ इन्द्र शत्रु सेना के जीतने वाले हैं, अतः इच्छित कामनाओंकी पूर्ति के लिए उन्हींका सहारा लेना चाहिए ।२। विजयशील, रणक्षेत्र में आसक्ति वाले, शत्रुओं को रुलाने वाले, धनुर्धारी, अभीष्टवर्षक इन्द्र की सहायतासे विजय को प्राप्त होओ । हे वीरो ! उन्हीं के अनुग्रहसे शत्रुको वशमें करो ।३। खड्गधारी,वाणधारी वीरों से युक्त इन्द्र अपने वीर अनुचरों को शत्रुके सामने भेजते हैं और

युद्ध की कामना से आने वाले शत्रुओं को जीतते हैं। यह सोमपायी, प्रचण्ड धनुष वाले भुजबल में प्रवृद्ध और शत्रुओं के संहारक हैं। हे वीरो ! उन इन्द्र की कृपा से विजय प्राप्त करो ।४। यह इन्द्र महावली अन्नवान धनवान शत्रुओं को वश में करने वाले, वीरों से युक्त है यह शत्रुओं के बल को सामने जाते ही जीतते और उनके गयादि धन को अपने वश में कर लेते हैं हे इन्द्र ! तुम ऐसे गुणों से युक्त हो इसलिए उस विजयात्मक रथ पर चढ़ो ।५। हे समान कर्म और मति वाले वीरो ! तुम इन वीर कर्मा इन्द्र को आगे बढ़ाकर उत्साहमें भर जाओ शत्रु नाश में प्रवृत्त इन्द्र के साथ बढ़कर तुम भी शत्रु के नाश करने वाला कर्म करो। यह इन्द्र शत्रु से ग्रामों, गौओं और संग्राम भूमि को जीत लेते हैं। इनकी भुजायें वज्रके समान दृढ़ हैं। यह अपने पराक्रम से ही शत्रु सेना का मर्दन कर डालते हैं।६। यह शत्रुओं को चीर कर घुसे चले जाते हैं। अनेक प्रकार के क्रोध करते हुए यह प्रचण्ड पराक्रम वाले इन्द्र शत्रुओं की सेना को वशमें कर लेते हैं। इनके सामने ठहरने का कोई साहस नहीं करता। ऐसे इन्द्र रणक्षेत्र में हमारी सेना के रक्षक हो ।७। वे इन्द्र देवताओं का पालन करने वाले हैं। हे इन्द्र ! तुम हमारे शत्रुओं को मारते हुए रथ सहित बढ़ते चलो। शत्रुओं को तथा अमित्रोंको मारो और हमारी रक्षा करते हुए प्रवृद्ध होओ।८।इन्द्र हमारे शत्रुओं को परास्त करने वाली विजयवाहिनी सेनाओंके नेता हो बृहस्पति पूर्व भाग में, सोम और यज्ञ दक्षिण में तथा मरुद्गण इनके बीच में चले ।९। शस्त्रास्त्र वर्षक इन्द्र, शत्रु को भगाने वाले वरुण, मरुद्गण और आदित्य शत्रुओं को वश में करने वाली शक्ति के सहित प्रकट हों और आदित्य शत्रुओं को इस लोक से भी गिराने में समर्थ अत्यन्त यज्ञ वाले देवताओं के जय घोष छा जाय ।१०। युद्धों को अवसर प्राप्त होने पर इन्द्र हमारी रक्षा करें। हमारे आयुध शत्रुओं पर विजय पाने में समर्थ हों। हमारे वीर सैनिक विजय पाकर उल्लामय हों। हे देवताओ ! संग्राम भूमि में तुम हमारे रक्षक होओ ।११।

सूक्त १४

(ऋषि–अथर्वा । देवता–द्यावापृथिव्यौ । छन्द–त्रिष्टुप्)

इदमुच्छ्रेयोऽवसानमागां शिवे मे द्यावापृथिवी अभूताम ।
असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु वं त्वा द्विष्मो अभयं नो अस्तु ।।१

श्रेष्ठ फल रूप लक्ष्य स्थान को में प्राप्त हो गयाहूँ । आकाश और पृथिवी मेरे लिए मंगलमय हों । चारों दिशायें निरुपद्रव हों । हे सपत्न हम तुम्हारे द्वेषी नहीं हैं इसलिए हमको अभय प्राप्त कराओ ।१।

सूक्त १५

(ऋषि–अथर्वा । देवता–इन्द्र मन्त्रोक्ताः । छन्द–बृहती, जगती, पंक्ति, त्रिष्टुप्)

यत इन्द्र भयामहे ततनो अयं कृधि ।
मघवंछग्वि तव त्वं न ऊतिभिवि द्विषी वि मृधो जहि ।।१
इन्द्रं वयमनुराधं हवामहेऽनु राध्यास्य द्विपदा चतुष्पदा ।
मा नः सेना अररुषीरुप गविरचीरिन्द्र द्रुहो वि नाशय ।।२
इन्द्रस्त्रातोत वृत्रहा परस्फोनो वरेण्यः ।
स रक्षिता चरमतः स मध्यता स पश्चात् स पुरस्तान्नो अस्तू ।३
उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्स्व गज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
उग्रा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप क्षयेम शरणा वृहन्ता ।।४
अभयं नः करत्यरिक्षमभवं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभयं पाश्चादभय पुरस्तादत्तराधदभयं नो अस्तु ।।५
अभयं मित्रादमयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात् ।
अभयं नक्तमभयं दिवा न सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ।।६

हे इन्द्र! तुम अभय देने वाले हो हमारे भयके कारण रूप उपद्रव को दूर करतेहुए हमारी रक्षाकरो । तुम अपने रक्षा-साधनोंको हमारी

और प्रेरित करो ।१। हम उन पूज्य इन्द्र की कामना पूर्ति के लिए आहूत करते हैं। हम दुपाये, चौपायों से युक्तहों हमारी कामना पूर्तिमें बाधक शत्रुसेना दूर रहे। हे इन्द्र ! हमारे शत्रुओं को सब ओरसे नष्ट कर डालो ।२। वृत्रासुर के ताड़न करने वाले वरण करने योग्य इन्द्र हमारी रक्षा करें। अन्त, मध्य, पीछे, आगे सर्वत्र वे इन्द्र हमारी रक्षा करने वाले हों ।३। हे इन्द्र ! तुम सबके जानने वाले हो, हमें इहलोक और परलोक स्वर्ग प्राप्तकराओ। स्वर्गमें ज्योतिर्मान सूर्यहमको अभय और कल्याण के देने वाले हों। हे इन्द्र ! तुम्हारी शत्रुओं का संहार करने में समर्थ महाबली भुजाओं को हम आपकी रक्षा के लिए पावें।४ अन्तरिक्ष हमको अभयप्रद हो, आकाश-पृथिवी को हमको अभयता देने वाली रक्षा दें। चारों दिशायेंभी हमको सब ओरसे अभय प्रदान करने वाली हों ।५। मित्रों से अभय प्राप्त हो, शत्रुओं से भी हम भयभीत न हों, प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के शत्रु हमको भय के कारणन बने, दिवस, रात्रि और सब दिशायें मुझे अभय प्रदान करती हुई मित्र के के समान हित करने वाली हों ।६।

सूक्त १६

(ऋषि—अथर्वा । देवता—मन्त्रोक्ता । छन्द—अनुष्टुप्, शक्वरी)

असपत्नं पुरस्तात् पश्चानो अभय कृतम । सविता मा दक्षिणत-
उत्तरान्मा शचीपतिः ।।१
दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नया ।
इन्द्राग्नी रक्षता मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम् ।
तिरश्चींनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वत सन्तु वर्म ।।२

हे सवितादेव ! हे पत्नियों सहित देवताओ ! पूर्व और पश्चिम दिशाओं को हमारे लिए शत्रुओंसे शून्यकरो। उत्तर दिशामें शचीपति इन्द्र हमारी रक्षा करे और दक्षिण में सूर्य हमारे रक्षक हों ।१। सूर्य-मंडल में आदित्य मेरी रक्षा करें, पृथिवी में अग्नि मेरी रक्षा करें, पूर्व

दिशा में इन्द्राग्नि मेरे रक्षक हों। दिशाओंमें अग्नि रक्षा करने वालेहों वे भूतपिशाचों का मर्दन करने वाले, कवच रूप होते हुए रक्षा करें।२

सूक्त १७

(ऋषि—अथर्वा। देवता-मंत्रोक्ता:। छन्द:=जगती, शक्वरी)

अग्निर्मा पातु वसुभि: पुरस्तात् तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मान परिददे स्वाहा ।।१

वायुर्मान्तरिक्षेणैतस्या दिश: पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परिददे स्वाहा ।।२

सोमो मा रुद्रै र्दक्षिणाया दिश: पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परिददे स्वाहा ।।३

वरुणो मादित्यैरेतस्य दिश: पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये ता पुर प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मां आत्मानं परि ददे स्वाहा ।।४

सूर्यो मा द्यावापृथिवीभ्यां प्रतीच्वा दिश: पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परिददे स्वाहा ।।५

आपो मौषधीमतीरेतस्या दिश: पान्तु तासु क्रमे तासु श्रये तां पुरं प्रैमि। मा रक्षन्तु ता मा गोपायन्तु ताभ्य आत्मानं परिददे स्वाहा ।।६

विश्वकर्मा म सप्तऋषिभिरुदीच्या निश: पातृ तस्मिन्कर्मं तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायन्तु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ।।७

इन्द्रो मा मरुत्वानेतस्य दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा । ८
प्रजापतिर्मा प्रजननवान्त्सह प्रतिष्ठायां ध्रुवाया दिशः पातु तस्मिन क्रमे यस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायत्तु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ।।९
वृहस्पतिर्मा विश्वैदेवैरुध्वार्वां दिशः पातु यस्मिन्क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ।।१०

पृथिवी में अग्नि और पूर्व में पशु देवता मेरे रक्षक हों । पाद-प्रक्षेप और पाद-प्रक्षेप के स्थान में, जहाँ जाऊँ, वहीं यह अग्नि मेरी रक्षा करने वाले हों। मैं अपनी रक्षाके निमित्त बसुमान अग्निका आश्रय ग्रहण करता हूँ ।१। अन्तरिक्ष में और पूर्व दिशा में वायु मेरे रक्षक हों, पाद-प्रक्षेप और पाद-प्रक्षेप के स्थान में, जहाँ भी जाऊँ, वहीं यह वायु मेरी रक्षा करें । मैं अपनी रक्षा के निमित्त ही वायु देवता की शरण में जाता हूँ, वह मेरी सब ओर से रक्षा करें ।२। सोम और रुद्र दक्षिण में मेरी रक्षक हों । पाद प्रक्षेप और पाद प्रक्षेप के स्थानमें भी यह दोनों मेरो रक्षा करे । जिस शय्या पर जा रहा हूँ, वहाँ सब ओरसे सोममेरे रक्षक हो। मैं अपनी रक्षाके निमित्त सोम देवताका आश्रय ग्रहणकरता हूँ ।३। आदित्यों के सहित वरुण दक्षिण दिशा में मेरे रक्षक हों । पाद प्रक्षेप में तथा पाद प्रक्षेप के स्थानमें मेरी रक्षा करें । शय्या रूप पुरमें वे वरुण सब ओर रक्षक हों । मैं अपनी रक्षा के लिए अपने को वरुण देवता के लिए सौंपता हूँ।४। द्यावा पृथिवी सहित सूर्य पश्चिम दिशामें मेरे रक्षक हों पाद और प्रक्षेप में और पाद प्रक्षेप के स्थान में यह सूर्य मेरे रक्षक हों । शय्यारूप पुरमें सूर्यके लिए सौंपता हूँ ।५। ओषधियुक्त

जल इस दिशा में मेरे रक्षक हों। पाद-प्रक्षेप में पाद-प्रक्षेप के स्थान रक्षा करें। मैं अपनी रक्षा के लिये अपने को जल के लिये सौंपता हूँ।६। विश्व के रचयिता परमेश्वर सप्त ऋषियों सहित उत्तर दिशा में मेरे रक्षक हों। पाद-प्रक्षेप में और पाद प्रक्षेप के स्थान में यह सप्तर्षि रूप विश्वकर्मा मेरे रक्षकहों। शय्या रूप पुरमें भी वे सब ओरमें मेरी रक्षा करें। मैं अपनी रक्षा के लिए अपने को उन्हीं रक्षा करने वाले सप्तर्षि मय विश्वकर्मा को सौपता हूं।७। मरुद्गण युक्त इन्द्र सत्तर दिशामें मेरे रक्षक हों। पाद प्रक्षेप मैं और पाद प्रक्षेप के स्थानमें यह मरुद्गण युक्त इन्द्र मेरे रक्षक हों। शय्या रूस जिस पुर में मैं जा रहा हूँ वहाँ भी यह मेरी सब ओर से रक्षा करें। मैं अपनी रक्षाके लिए उन्हीं मरुत्वान इन्द्र को सौंपता हूँ।८। विश्वकी उत्पत्ति के कारणरूप प्रजापति ध्रुव दिशा में मेरे रक्षक हों। पाद प्रक्षेब में तथा पाद-प्रक्षेप के स्थानमें और जिस शय्यारूप पुरमें मैं जा रहा हूँ वहाँ भी सब ओर यह प्रजापति मेरे रक्षक हों। मैं अपनी रक्षा के लिये अपने को उन्हें सौंपता हूँ।६। देवताओं के हितैषी बृहस्पति सव देवताओं सहित उर्ध्व दिशा में मेरे रक्षक हों। पाद प्रक्षेप में तथा पाद प्रक्षेप के स्थान में जिस शय्या रूप पुर में मैं जा रहा हूं, वहां भी सब ओर यह बृहस्पति मेरी रक्षा करे। मैं अपनी रक्षाके लिए अपनेको उन्हीं बृहस्पति देवता को सौंपता हूं।१०।

सूक्त १८

(ऋषि—अथर्वा। देवता—मन्त्रोक्ता:। छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

अग्नि ते वसुवन्तमृच्छन्तु।
ये माघायव: प्राच्या दिशोऽभिदासात् ॥१
वायुं तेन्तरिक्षवन्तमृच्छन्तु

ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ।।२
सोम ते रुद्रवन्तमृच्छन्तु ।
ये मावायवो दक्षिणाया दिशोऽसात्भिदा ।।३
वरुण त आदित्यवन्तमेच्छन्तु ।
ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ।।४
सूर्य ते द्यावापृथिवीवन्तमृच्चन्त ।
ये माघायव प्रतीच्या दिशोऽभिदासात् ।।५
अपस्त ओषधीमतीर्ऋच्छन्तु ।
ये माघायाव एतस्या दिशोऽभिदासात् ।।६
विश्वकर्माणं ते सप्तऋषिवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव उदीच्या दिशोऽभिदासात् ।।७
इन्द्रं ते मरुत्वन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासातु ।।८
प्रजापति ते प्रजननवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायवो ध्रुवाया दिशोऽभिदासात् ।।९
बृहस्पति ते विश्वदेववन्तवृच्छन्तु ।
ये माघायव ऊध्वर्याया दिशोऽभिदासात् ।।१०

दूसरों की हिंसा-कामना वाले जो शत्रु मुझे रात्रि में अनुष्ठान करने वाले की पूर्व की ओर से आकर हिंसा करना चाहते हैं,वे वसुवंत अग्नि में पड़ते हुए नाश को प्राप्त हों ।1। दूसरों की हिंसा-कामना वाले जो शत्रु मुझ रात्रि में अनुष्ठान करने वाले को पूर्व दिशामें आकर मारना चाहते हैं, वे शत्रु अन्तरिक्ष युक्त वायु को प्राप्त होकर नष्ट हो ।२। दूसरों की हिंसा कामना वाले जो शत्रु रात्रि में अनुष्ठान करने वाले को दक्षिण दिशा से आकर मारना चाहते हैं, वे शत्रु रुद्रवंत सोम को प्राप्त हो नष्ट हों।३। दूसरोंकी हिंसा-कामना वाला जो शत्रु रात्रि अनुष्ठान करने वाले को दक्षिण दिशा से आकर मारना चाहतेहैं,वे शत्रु

आदित्यवान् वरुण के पाशको प्राप्त होते हुए नष्ट हों।४। दूसरी हिंसा कामना वाले जो शत्रु मुझ रात्रि में अनुष्ठान करने वाले को पश्चिम दिशा से आकर मारना चाहतेहैं, वे शत्रु द्यावापृथिवीको अपने प्रकाश से प्रकट करने वाले सूर्य को प्राप्त होते हुए नष्टहों।५। दूसरोंकी हिंसा कामना वाले जो शत्रु मुझ रात्रिमें अनुष्ठान करने वालेको पश्चिमदिशा से आकर मारना चाहते हैं, वे शत्रु औषधिमेव जलसे नाशको प्राप्तहों ।६। दूसरों की हिंसा कामना वाले जो शत्रु मुझ रात्रिमें अनुष्ठान करने वाले को उत्तर दिशा से आकर हिंसित करना चाहते हैं, वे शत्रु सप्तर्षिमय विश्वकर्मा से नाश को प्राप्त हों।७। हिंसा-कामना वाले जो शत्रु, मुझ रात्रि में अनुष्ठान करने वाले का उत्तर दिशा से आकर वध करना चाहते हैं, वे शत्रु मरुत्वान् इन्द्र को प्राप्त होते हुए नष्ट हों।८। जो पापरूप हिंसा वाले शत्रु मुझ रात्रि अनुष्ठानको ध्रुव दिशासे आकर मारना चाहें, वे प्रजनन से युक्त प्रजापति को पाते हुए न हों।९। जो पाप रूप हिंसा वाले शत्रु मुझ रात्रि में अनुष्ठान करने वाले को उर्ध्वं दिशा से आकर मारना चाहें, वे सब देवताओं सहित बृहस्पतिके द्वारा नाश को प्राप्त हो ।१०।

सूक्त १९

(ऋषि—अथर्वा। देवता—मन्त्रोक्ताः। छन्द—बृहती, पंक्तिः)

मित्रः पृथिव्योदक्रामत् तां पुरं प्रणायामि वः।
तामा विशत तां प्र विश्वत सा वः शर्म च यच्छन्तु ।।१
वायुअन्तरिक्षेणोदक्रामत् तां पुरं प्र णायामि वः।
तामा विशत तां ग्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ।।२
सूर्यो दिवोदकामत् तां पुरं प्र णायामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ।।३
चन्द्रमा नक्षत्रै रुदक्रामत् यां पुरं प्र णायामि वः।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ।।४
सोभ औषधीभिरुदक्रामत ताँ पुरं प्र णायामि वः।

तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च बर्म च यच्छतु ॥५
यज्ञो दक्षिणाभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णायामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥६
समुद्रो नदीभिरुदक्रामत् सां पुरं प्र णायामि वः ।
तामा बिशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥७
ब्रह्म ब्रह्माचारिभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णायामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥८
इन्द्रो वीर्येणोदक्रामत् तां पुरं प्र णायामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वम च यच्छतु ॥९
देवा अमृतेनोदक्रामस्तां पुरं प्र णायामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म वर्म च यच्छतु ॥१०
प्रजापतिः प्रजाभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णायामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥११

मित्र नाम वाले अग्निदेव अपने आश्रम स्थान पृथिवी से जिस पुर की रक्षा के लिए उठते हैं,उस शय्यायुक्त पुरमें तुम प्रजावान् पत्नीवान् राजाको प्रविष्ट करता हूँ। वह पुर अग्निदेव द्वारा रक्षितहै । तुम उसमें पहुँचकर शय्या, भवन आदि प्राप्तकरो । वह पुरी तुम्हारे लिए अभेद्य कवच के समान सुख देने वाली हो ।१। वायु अपने स्थान अन्तरिक्ष से जिस पुर की रक्षाके लिए चलते हैं, वह पुर वायु द्वारा पूर्णतया रक्षित होता है । उस शय्या, गृह आदि से युक्त पुर में, मैं तुम प्रजा, पत्नीसे सम्पन्न राजा को प्रविष्ट करता हूँ । तुम उसमें पहुँचकर शय्या भवन आदि प्राप्त करो । वह पुरी तुम्हारे लिये अभेद कवचके समान सुखदेने वाली हो ।२। आदित्य अपने स्थान स्वर्ग लोकसे जिस पुर की रक्षाके लिए उदित होतेहैं, वह पुर उनके द्वारापूरी तरह सुरक्षितहै। उस शय्या गृह आदि से युक्त में प्रजा, पत्नी से युक्त राजा को प्रविष्ट करता हूँ । तुम उसमें पहुंच कर निवास करो । वह तुम्हारे लिए

अभेद्य कवच के समान सुखदायी हो ।३। जित पुर की रक्षा के लिए नक्षत्रवान चन्द्रमा उदय होते हैं, वह उन चन्द्रदेव द्वारा भले प्रकार रक्षित हैं । उस शय्या, भवन आदि से सम्पन्न पुर में प्रजा और पत्नी वाले राजा को प्रविष्ट करता हूँ । तुम उसमें पहुँचकर निवास करो । वह पुर तुम्हारे लिये अभेद्य कवच के समान सुखदायी हो ।४। जिस पुर की रक्षाके लिये सोम औषधियों सहित प्रकट होतेहैं, वह पुर उन सोम से भले प्रकार रक्षित है । उस शय्या और भवन आदि से सम्पन्न पुर में तुम प्रजा और पानी वाले राजा को प्रविष्ट करता हूँ । तुम उनमें पहुँचकर निवास करो वह पुर तुम्हारे लिये अभेद्य कवच के समान सुखदायी हो ।५। जिस पुर की रक्षा के लिये दक्षिणा युक्त यज्ञ प्रकट हुआ है, वह पुर यज्ञसे रक्षित है । उस शय्या और भवन और सम्पन्न पुरमें तुम प्रजा और पत्नी सहित राजाको प्रविष्ट करता हूँ तुम उसमें पहुँचकर निवास करो । वह पुर तुम्हारे लिए अभेद्य कवच के समान सुखदायी हो ।६। जिस पुर के रक्षार्थ नदियों सहित समुद्र, उद्यत हुआ हैं, वह पुर समुद्र के जल से रहित है उस शय्या और भवन आदि से युक्त पुर में तुम प्रजा सहित राजा को प्रविष्ट करता हूँ । तुम उसमें पहुँचकर निवास करो । वह पुर तुम्हारे लिए अभेद्य कवच के समान सुख देने वाला हो ।७। ब्रह्मचारियों से युक्त ब्रह्म जिस पुर की रक्षा करने को तत्पर हुए हैं, वह पुर ब्रह्मा से भले प्रकार रक्षित है । उस शय्या और भवन आदिसे युक्त पुरमें तुम प्रजा और पत्नी सहित राजा को प्रविष्ट करताहै । तुम वहाँ पहुँचकर निवास करो । वह पुर तुम्हारे लिये अभेद्य कवच के समान सुखदायी हो ।८। अपने भुजबल सहित इन्द्र जिस पुर की रक्षा करतेहैं वह पुर इनके द्वारा भले प्रकार रक्षित है । उस शय्या और भवनादिसे युक्त पुर में तुम राजा को पत्नी और पुत्रों सहित प्रविष्ट करता हूँ । तुम जाकर निवास करो । वह पुर तुम्हारे लिए अभेद्य कवच के समान सुख देने वाला हो ।९। जिस पुर की रक्षा अमृत के सहित देवता करते हैं, वह पुर इन देवताओं द्वारा

रक्षितहैं। उस भवन शय्या आदि से सम्पन्न सुन्दर पुरमें तुम राजाकी पत्नी-पुत्रादि सहित प्रविष्ट करताहूं। तुम उसमें जाकर निवास करो। वह पुर तुम्हारे लिये अभेद्य कवच के समान सुखदायी हो।१०। मनुष्य आदि प्रजाओं सहित पुर की प्रजापति ने रक्षा की है, वह पुर उन प्रजापति द्वारा भले प्रकार रक्षित है। तुम राजाको पत्नी पुत्रादि सहित उस सुन्दर पुर में प्रविष्ट करता हूँ तुम उसमें जाकर रहो। वह पुर तुम्हारे लिये अभेद्य कवच के समान सुखदायी हो।११।

सूक्त २०

(ऋषि–अथर्वा देवता–मंत्रोक्ता। छन्द–त्रिष्टुप् जगती, बृहती)

अप न्यधु पौरुषेयं वध यमिन्द्राग्नी धाया सविता बृहस्पतिः।
सोमो राजा वरुणो अश्विना यमः पूषास्मान् परि पातु मृत्योः।१
यानि चकार भुवनस्य यस्पतिः प्रजापतिर्मातरिश्वा प्रजाभ्यः।
प्रदिशो यानि वजते दिशश्च तानि मे वर्माणि बहुलानि सन्तु।२
यत ते तनुष्वनह्यन्त देवा द्यु पाजयो देहिनः।
इन्द्रो यच्चके वर्म तदस्मान् पातु विश्वतः ॥३
वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः।
वर्म मे विश्वे देवाः कन् मा मा पापत् प्रातीचिका ॥४

जिस मरण कर्म को शत्रु ने गुप्त रूप से किया है, उसमें इन्द्र, अग्नि, धाता, सविता, बृहस्पति, सोम, वरुण, अश्विद्वय,यम और पूषा हमारे कवचधारी राजाकी रक्षा करें।१। प्रजा-रक्षण के लिये प्रजापति ने जो कवच बनायाहै और जिन कवचों को, मातरिश्वा प्रजापति और दिशा, महादिशा, अवान्तर दिशायें रक्षार्थ धारण करती हैं, वे कवच अनेक हों।२। जिस कवच को असुर से युद्ध करते समय देवताओं ने धारण किया था और इन्द्रने भी जिसे पहना था,वह कवच सब ओरसे हमारी रक्षा करने वाला हो।३। द्यावा पृथिवी अग्नि, सूर्याग्नि मुझे युद्धाभिलाषी को रक्षण-धारण रूप कवच प्रदान करें। हमारे राजा के समीप शत्रु-सेना गुप्त-रीति से न पहुँच सके।४।

सूक्त २१ (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि–ब्रह्मा । देवता–छन्दांसि । छन्द–बृहती)

गायत्र्युष्णिगनुष्टुव बृहती पंक्तिस्त्रिष्टुव जगत्यै ।।१

गायत्री छन्द, उष्णिक् छन्द, अनुष्टुप् छन्द, पंक्ति छन्द, त्रिष्टुप् छन्द और जगती छन्द के लिए आहुति स्वाहुत हो ।१।

सूक्त २२

(ऋषि–अङ्गिराः । देवता–मंत्रोक्ताः । छन्द–जगती प्रभृति)

आङ्गिरसानामाद्यैः पञ्चानुवाकैः स्वाहा ।१। षष्ठाय स्वाहा।२।
सप्तमाष्टमाभ्यां स्वाहा ।३। नीलनखेभ्यः स्वाहा ।४।
हरितेभ्यः स्वाहा ।५। क्षुद्रेभ्यः स्वाहा ।६।
पर्यायिकेभ्यः स्वाहा ।७। प्रथमेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ।८।
द्वितीयेभ्यः शंखेभ्यः स्वाहा ।९। तृतीयेभ्यः शंखेभ्यः स्वाहा ।१०।
उपोत्तमेभ्यः स्वाहा ।११। उत्तमेभ्यः स्वाहा ।।१२
उत्तरेभ्यः स्वाहा ।१३। ऋषिभ्यः स्वाहा ।१४।
शिखिभ्यः स्वाहा ।१५। गणेभ्यः स्वाहा ।१६
महागद्यभ्यः स्वाहा ।१७।
सर्वेभ्योऽङ्गिरोभ्यो विदगणेभ्यः स्वाहा ।१८।
पृथक्सहस्राभ्यां स्वाहा ।१९। ब्रह्मणे स्वाहा ।२०।
ब्रह्मज्येष्ठा अभ्भृतः वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठ दिवमा ततान ।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत यज्ञे तेनर्हति ब्रह्मण स्पधितु कः ।२१।

आंगिरस के लिए आदि में पांच अनुवाकों से यह आहुति स्वाहुत हो ।१। षष्ठ के लिए, सप्तम अष्टम् के लिए, नीलनखोंके लिए हरितों के लिए, क्षदों के लिए पर्यायिकों के लिए, प्रथम शंखों के लिए, द्वितीय तृतीय शंखोंके लिए । उपोतमोंके लिए उत्तमों के लिए । उत्तरोंके लिए ऋषियों के लिए, शिखियों के लिए महागणों के लिए, विद्वान् अङ्गि-

रायों के लिए, पृथक् सहस्रों के लिए और ब्रह्माके लिए आहूत स्वाहुत हो ।२ से २० तक। सब बीर कर्म ब्रह्मज्येष्ठ होते हैं, यह सब कर्म वेद से सम्पन्न होतेहैं । पर्वकालमें ज्येष्ठ ब्रह्मने आकाश का विस्तार किया । ब्रह्मा सब भूतोंमें पहिले प्रादुर्भू त हुये इसलिये उनकी समानता कोई भी नहीं कर सकता ।२१।

सूक्त २३

(ऋषि–अथर्वा । देवता–मन्त्रोक्ताः । छन्द–बृहती, त्रिष्टुप्, पंक्ति, गायत्री, जगती)

अथर्वणानां चतुर्ऋचेभ्या स्वाहा ।१। पंचर्चेभ्यः स्वाहा ।।२
षड्र्केभ्यः स्वाहा ।३। सप्तर्चेभ्यः स्वाहा ।।४
अष्टर्चेभ्यः स्वाहा ।५। नवर्चेभ्यः स्वाहा ।६।
दशर्चेभ्य स्वाहा ।७। एकादशर्चेभ्यः स्वाहाः ।८।
द्वादशर्चेभ्यः स्वाहा ।६। त्रयोदशर्चेभ्यः स्वाहा ।१०।
चतुर्दशर्चेभ्यः स्वाहा ।११। पंचदशर्चेभ्यः स्वाहा ।१२।
षोड़शर्चेभ्यः स्वाहा ।१३। सप्तदशर्चेभ्यः स्वाहा ।१४।
अष्टाशर्चेभ्यः स्वाहा ।१५। एकोनविंशति स्वाहा ।१६।
विंशतिः स्वाहा ।१७। महात्काण्डाय स्वाहा ।।१८
तृचेभ्यः स्वाहा ।१६। एकर्चेभ्या स्वाहा ।।२०
क्षुद्रेभ्यः स्वाहा ।२१। एकानृचेभ्यः स्वाहा ।।२२
रोहितभ्यः स्वाहा ।२३। सूर्याभ्यः स्वाहा ।।२४
ब्राताभ्यां स्वाहा ।२५। प्राजापात्याभ्यां स्वाहा ।।२६
बिपासह्यै स्वाहा ।२७। मांगलिकेभ्य स्वाहा ।।२८
ब्रह्मण स्वाहा ।२६।
ब्रह्मज्येष्ठा सम्भृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान ।
भूतानां ब्रह्मा प्रणमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुः कः ।।३०

आववंणों की चार ऋचाओं को पाँच ऋचाओं को छै ऋचाओं सात ऋचाओं,आठ ऋचाओं,नौ ऋचाओं,दश ऋचाओं,ग्यारह ऋचाओं

बाहर ऋचाओं, तेरह ऋचाओं, चौदह ऋचाओं,पन्द्रह ऋचाओं,सोलह ऋचाओं, सत्तरह ऋचाओं, अठारह ऋचाओं, उन्नीस ऋचाओं, बीस ऋचाओं, महत्कारांड, तृचों, एकाचौं, शूद्रों, एकानचों, रोहितों, सूर्यों, व्रात्यों, प्रजापात्यों, विषासहि मांगलिको और ब्रह्मा के लिए स्वाहुत ।१। से ।२९। सब वीर कर्म ब्रह्म ज्येष्ठ होते हैं। सृष्टि के आरम्भ में पहिले ब्रह्म ही उत्पन्न हुए, इन्हीं ने इस आकाश का विस्तार किया। इसलिये कोई मनुष्य या देवता इनकी समानता कैसे कर सकताहै ?।३०

सूक्त २४

(ऋषि–अथर्वा, । देवता–मन्त्रोक्ता । छन्द–अनुष्टुप्,त्रिष्टुप,गायत्री)

येन देवं सवितारं परि देवा अधारयन ।
तेनेम ब्रह्मणस्पते परि राष्ट्राय धत्त न ।।१
परीममिन्द्रमायुषे महे श्रोत्राय धत्तन ।
यथैनं जरसे नयां ज्योक् श्रोत्रेऽधि जागरत् ।।२
परीम सोममायुष महे श्रोत्राय धत्तन ।
यथैनं जरसे नयां योक् श्रोत्रेऽधि जागरत् ।।३
परि धत्त नो वर्चसेमं जरामृत्युं वृणुत दीर्घमायुः ।
वृहस्पतिः प्रायच्छद वास एतत् सामाय राज्ञे परिधातवा उ ।४
जरां सु गच्छ परि धत्स्व वासो भवा गृष्टीनामभिशस्तिपा उ ।
शतं च जोव शरदः पुरूची रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व ।।५
परोदं वासो अधिथाः स्वस्तयेऽमूर्वापीनामभिशस्तिपा उ ।
शतं च जीवः शरदः पुरूचीर्वसूनि चार्रुधि भजासि जीयन् ।।६
योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे ।
सखाय इन्द्रमूतये ।।७
हिरण्यवर्णो अजरः सुवीरो जरामृत्युः प्रदया शं विशस्व ।
तदाग्निराह तदु सोम आह वृहस्पति सविता तदिन्द्रः ।।८

देवताओं ने जिस आदित्य को धारण किया, उस शत्रु नाश रूप कारण से ब्रह्मणस्पते ! इस महान् शान्ति कर्म वाले यजमानको राष्ट्र रक्षाके निमित्त प्रतिष्ठित करो ।१। हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र! तुम इस साधक को परोपकार और वायु के निमित्त क्षात्रबल से युक्त करो,जिससे वह शांतिकर्म करने वाला यजमान चिरकाल तक चैतन्य रहे । यह शत्रुओं को वश में करने वाले बल से युक्त रहे और वृद्धावस्था तक की आयु प्राप्त करे ऐसा करो।२। वस्त्राभिमानी सोम! इस शांतिकर्म करनेवाले यजमानको दीर्घ आयु के लिये, इन्द्रियोंके सबलता के लिए और यशके लिये पुष्टकरो। यह शांतिका अनुष्ठाता यजमान वृद्धावस्था तक श्रोत्रादि इन्द्रियोंसे सम्पन्न और यशस्वी हो।३। हे देवगण ! इस बालक को तेज से आच्छादित करो, यह वृद्धावस्था ने मृत्यु को प्राप्त हो । वह सौवर्ष की आयु वाला हो । इस वस्त्र को बृहस्पति ने सोमको धारणार्थंप्रदान किया।४। हे यजमान! तू बृद्धावस्था तक भले प्रकार पहुँचे । इस वस्त्र को पहिन और गौओं को सुभावना से रक्षा प्राप्त कर। तू पुत्र पौत्रों वाला तथा धनसे युक्त हुआ सौ वर्ष तक जीवित रह ।५। हे यजमान्! कल्याण के लिये तू इस वस्त्र को पहिन रहा है । तू गौओं की अभिशस्ति ने रक्षित हो । तू वस्त्रसे समा हुआ मित्र,स्त्री आदि को धनदेने वाला हो और प्रजावान होकर सौ वर्ष तक की दीर्घायु भोग ।६। हम स्तुति करनेवाले सखारूप, परमेश्वर्य ! तू पुष्ट होताहुआ सुन्दर कान्ति से युक्त हो और पुत्रादि से सम्पन्न होकर अकाल मरण से रक्षित हुआ प्रजा सहित इस गुहा वे प्रवेश करो ।८।

सूक्त २५

(ऋषि—गोपथः । देवता—वाजी । छन्द—अनुष्टुप्)

अश्रान्तस्य त्वा मनसा युनज्मि प्रथमस्य च ।
उत्कूलमुद्वहो भवोदुह्य प्रति धावतात् ॥१

हे अश्व ! मैं तुझे शत्रु के घर्षण के लिए उत्सुक और आरोहो को

उत्साहित करने और शत्रु पर आक्रमण करने वाले मन से युक्त करता हूँ। तुझे सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न हुई अश्व जाति के समर्थ मन से सम्पन्न करता हूँ। तू उस शक्ति से युक्त हो, सब प्रवृद्ध नदी जैसे किनारों पर चढ़ने लगती है, वैसे ही शत्रु सेना पर चढ़ता हुआ उसे संतप्त कर। मैं तेरे द्वारा शत्रु को जीतने वाले फलको पाऊँ, तू शीघ्र ही जीतने वाले स्थान की ओर गमन कर ।१।

सूक्त २६

(ऋषि—अथर्वा। देवता—अग्निः हिरण्यम्। छन्द—त्रिष्टुप्,अनुष्टुप् पंक्ति)

अग्नेः प्रजातं परि यद्धिरण्यममृतं दध्रे अधि मर्त्येषु।
य एनद वेद स इदेन महति जरामृत्युर्भवति यो विभर्ति ॥१
यद्धिरण्य सूर्येगं सुवर्ण प्रजावन्तो मनवः पूर्व ई परे।
तत् त्वा चन्द्र वर्चसा स सृ'जत्यायष्यान् भवति यो विभर्ति ॥२
आयुषे त्वा वर्चसे त्वौजसे च वलाय च।
यथा हिरण्यतेजसा विभासासि जनां अनु ॥३
यद् धेद राजा वरुणो वेद देबो बृहस्पतिः।
इन्द्रो यद वृत्रहा वेद नत् त आयुःपं भुवत् ते वर्चस्यं भुवत् ॥४

अग्नि से उत्पन्न होने वाला सुवर्ण और अमृत रूप से मरणधर्मी मनुष्यों में व्याप्त सुवर्ण के इन रूपों को जानने वाला पुरुष ही इसके धारण करने का अधिकारी है। जो पुरुष इस स्वर्ण को आभूषण रूपमें धारण करता है वह वृद्धावस्था में मरने वाला होता है ।१। जिसस्वर्ण की सूर्य द्वारा उत्पन्न प्रजावान् मनुने धारण किया था, वह दीप्तिमान सुवर्ण मुझे देह-कांति से युक्त करे। ऐसे सुवर्ण के धारण करने वाला आयु से सम्पन्न होता है।२। हे स्वर्णधारी पुरुष! यह सुवर्ण मुझे आयु-ष्यान बनावे यह तुझे वर्च से युक्त करे, भृत्यादिसे सम्पन्न करे और तू

स्वर्ण के समान तेज को प्राप्त करता हुआ। मनुष्यों में तेजस्वी हो।३। वरुण जिन सुवर्णको जानते हैं, बृहस्पति भी जिसे जानते हैं, उस स्वर्ण से मृत्यु नाशक गुण से वृत्र-हननकर्त्ता इन्द्र भी परिचित हैं, वह स्वर्ण तुझे आयु और वर्च से सम्पन्न करने वाला हो।४।

सूक्त २७ (चौथा अनुवाक)

(ऋषि–भग्वङ्गिरा। देवता–त्रिवृत्। छन्द–अनुष्टुप् त्रिष्टुप्, जगती, उष्णिक्, शक्वरी)

गोभिष्टवा पात्वृषभो वृषा त्वा पातु वाजिभिः ।
बायुष्टवा ब्रह्मण पात्विन्द्रस्त्वा पात्विन्द्रियैः ॥१
सोमस्त्वा पात्वोषधोभिर्नक्षत्रै पातु सूर्यः ।
माद्भचस्त्वा चन्द्रो वृत्रहा वातः प्राणान रक्षन्तु ॥२
तिस्त्रो दिवस्तिस्त्रः पृथिवीस्त्रीण्यन्तरिक्षाणि चतुर ममुद्रान् ।
विवृतं स्तोमं त्रिवृत आप आहुस्तास्त्वा रक्षतु त्रिवृता त्रिवृद्भिा ॥३
त्रोन्नाकां स्त्रीन् समुद्रांस्त्रीन् ब्रध्गांस्त्रीन् यैष्टपान् ।
त्रीन् मातरिवनस्त्रीन्त्सूर्यान् पोपतृन् कल्पयामि ते ॥४
घृतेन त्वा समुक्षाम्यग्न आज्येन बर्धयन् ।
अग्नेश्चन्द्रस्य मा प्राणं मायिनो दभन् ॥५
मा वः प्राणं मा वोऽपानं मा हरो मायिनो दभन् ।
भ्राजन्तो विश्ववेदसो देवा दैव्येन धावतः ॥६
प्राणेनग्नि सं सृजति वातः प्राणेन सहितः ।
प्राणेन विश्वतोमुखं सूर्यं देवा अजनयन् ॥७
आयुषायुः कृतां जोवायुष्मान् जीव मा मृथाः ।
प्राणानात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुदगा वशम् ॥८
देवानां निहितं निधि यमिन्द्रोऽन्वविन्दत पथिभिदवयानैः ।

अपापो हिरण्य जुगुतुस्त्रिवृद्भिस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृर्ता त्रिवृद्भिः ।।९
त्रयस्त्रिशद् देवतास्त्रीणि च वीर्याणि प्रियायमाणा जुगृपुरऽस्वन्तः ।
अस्मिश्चन्द्रे अधि यद्धिरण्य कृणवद् वीर्णाणि ।।१०
ये देवा दिव्येकादश स्थ ते देयासो हविरिदं जुषध्वम् ।।११
ये देवा अन्तरिक्ष एकादशस्थ ते देवासो हविन्दिं जुषध्वम् ।।१२
असपत्नं पुरुस्तात् शश्चान्नो अभय कृतम् ।।१३
सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः ।
दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः ।।१४
इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम् ।
तिरश्चीनध्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्त वर्म ।१५

हे पुरुष ! तू त्रिवृत् मणि को धारण करता है। दलपति वृषभ अपनी गौओं सहित तेरे रक्षकहों। प्रजननमें समर्थ अश्व अपने वेगवान् अश्वों सहित तेरे रक्षक हों। वायुसे व्याप्त ब्रह्म इन्द्रकी इन्द्रियों सहित तेरी रक्षा करें।१। ओषधियों सहित सोम तेरी रक्षा करें। नक्षत्रों सहित सूर्य तेरा पोषण करें। मासों सहित वृत्र हनन कर्त्ता चन्द्रमा तेरे रक्षक हों। प्राण वायु सहित वायुदेव तेरी रक्षा करें।२। तीन प्रकार के स्वर्ग, तीन प्रकार के अन्तरिक्ष तीन प्रकार की पृथिवी, चार समद्र त्रिवृत् स्तोम,त्रिवृत् जल यह सब अपने भेदों सहित मणिके सुवर्णरजत लोह रूप त्रिवृत से ही तेरी रक्षा करने वाले हों।३। हे पुरुष ! तू सुवर्ण रजत लोहात्मक त्रिवृत् मणि के धारण करने वाला है। इनमणि के द्वारा मैं त्रिभेदात्मक स्वर्ग को तेरा रक्षक बनाता हूँ, तीन समुद्रों तीन आदित्यों और तीन भुवनों को तेरी रक्षा करने वाला करता हूँ। त्रिगुणात्मक वायु, रश्मियों और उनके अधिष्ठात्रों देवता भेदवाले तीन स्वर्गों को तेरे रक्षा कार्य में नियुक्त करता हूँ।४। हे अग्ने ! मैं तुम्हें घृत के द्वारा प्रवृद्ध करता हूँ। तुम्हें घृत से सींचता हूँ।

हे मणि धारणकर्ता पुरुष! घृत से सम्पन्न अग्नि को, ओषधादिको पुष्ट करने वाले चन्द्रमाकी ओर सूर्यकी कृपासे माया करने वाले राक्षस तुझे हिंसित न कर पावे ।५। है पुरुष ! मायामय असुर तुझे मार न सकें, तेरे प्राणापान और तेजको नष्टन कर पावें । हे समस्त देवगण! इसके रक्षार्थ तुम दिव्य रथ पर आरूढ़ होकर द्रुत वेगसे चलो ।६। समिधन कर्त्ता प्राण से अग्नि को युक्त करता है, वायु भी प्राण से युक्त होताहै, प्राण से ही देवताओं ने विश्वतोमुखी सूर्य को सम्पन्न किया था ।७। हे मणिमान पुरुष प्राचीन महर्षियों में दूसरों की आयु बढ़ाने और स्वयं शीघ्र जीवी होने की शक्ति थी, तू उन्हीं महिषियोंकी आयुसे आयुष्मान हो, मृत्यु को प्राप्त न हो । तू मृत्युके वश से जाता हुआ, उन्हीं स्थिर प्राण बालों के प्राण से जीवित रह ।८। हे पुरुष! इन्द्र ने जिस धरोहर रूप छिपाकर रखे हुए सुवर्णको ढूंढ़कर प्राप्त कियाथा और जिस धरोहर की त्रिवृत जनोंने रक्षाकी थी वे त्रिवृत जल त्रिवृत मणिरूप देहसे तेरी रक्षा करने वाले हों ।६। तैंतीस देवताओं ने तीन प्रकार के वीर्यों को और स्वर्ण को प्रिय मानकर जलमें स्थापित किया । चन्द्रमामें जो सुवर्ण है, उसके द्वारा यह मणि उन तैंतीस देवताओंकी विविध शक्तियों को इस मणि धारण करने वाले पुरुष से व्याप्त करे ।१०।

आकाश में व्याप्त ग्यारह आदित्य इस घृत युक्त हवि का भक्षण करें । अन्तरिक्ष के ग्यारह रुद्र भी इस हवि का सेवन करें और पृथिवी के ग्यारह देवता भी इस हविका भक्षण करें ।११-१२-१३।हे सविता,हे शचिमन ! पूर्व पश्चिम में शत्रुका अभाव करते हुए अभय दो । सविता दक्षिण दिशा से मुझे रक्षित करें और इन्द्र उत्तर दिशा से रक्षा करने वाले हों ।१४। स्वर्गस्थ सूर्य स्वर्गलोक में भय से रक्षा करें । पार्थिव अग्नि पृथिवीमें प्राप्त भयको दूर करें । इन्द्राग्नि सामने से रक्षा करें । अश्विद्वय सब दिशाओंसे मेरी रक्षा करें । अग्नि तिर्यक् स्थानमें रक्षक हों । पञ्चभूतोंके स्वामी अग्नि देवता मुझे सब ओर में रक्षा करने वाला कवच दें ।१५।

सूक्त २८

(ऋषि–ब्रह्मा । देवता–दर्भमणिः । छन्द–अनुष्टुप्)

इमं बध्नामि ते मणि दीर्घायुत्वाय तेजसे ।
दर्भं सपत्नदम्भनं द्विषतस्तपन हृदः ॥१
द्विषतस्तापयम् हृदः शत्रूणां तापयन् मनः ।
दुर्हार्दः सर्वास्त्वं दर्भ धर्मइवाभीन्त्सन्मापयन् ॥२
धर्मइवाभिपतन् दर्भ द्विषती नितपन् मणे ।
हृदः सपत्नानां भिन्द्धीन्द्रइव विरुजं वलम् ॥३
भिन्द्धि दर्भ सपत्नानां हृदय द्विषतां मयो ।
नद्यन् त्वचमिव भूस्याः शिर एषां वि पातय ॥४
भिन्द्धि दर्भ सपत्नान मे भिन्द्धि मे पृतनायतः ।
भिन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दे भिन्द्धि मे द्विकेयो मणे ॥५
भिन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे छिन्द्धि मे पृतनायतः ।
छिन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दं शिछन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥६
वृश्च दर्भ सपत्नाम मे पृश्च मे पृतायतः ।
वृश्च म सर्वान् दुर्हार्दो वृश्च मे द्विषतो मणे ॥७
कृन्त दर्भ सपत्नान मे कृन्त मे वृतनायतः ।
कृन्त मे सर्वान् दुर्हार्दः कृन्त मे द्विपतो मणे ॥८
पिश दर्भ सपत्नान मे पिश मे पृतनायतः ।
पिश मे सर्वान तुर्हार्दः पिश मे द्विषतो मणे ॥९
विध्य दर्भ सपत्नान् मे विध्य मे पृतनायतः ।
विध्य मे सर्वान् दुर्हार्दो विध्य मे द्विषतो मणे ॥१०

हे पुरुष ! तू विजय और बल की कामना करता हैं । यह दर्भमय मणि शत्रुओंका क्षय करने वाली और उनके हृदयको सन्ताप देनेवाली हैं । इसे तेज और दीर्घायु के निमित्त बांधता हूं ।१। से वर्भमणे ! तू शत्रुओं के मन को सन्ताप दे तू उनके हृदयको व्यथित कर । तू मलीन हृदय वाले शत्रु के घर, पशु, प्रजा, खेत आदि का नाशक ।२। हे दर्भं

मणे ! जैसे सूर्य अपनी उष्णता से सन्ताप देते हैं, वैसे ही द्वेष करने वालों को सन्तप्त कर। तू इन्द्र के समान, शत्रुओं के हृदयों और बलों का नाश कर।३। हे दर्भमणे! तू बैरियों के हृदयको विदीर्ण कर। गृह निर्माण के लिए भूमिके पर्त और तृण आदि को मनुष्य उखाड़ डालते हैं, वैसे ही तू शत्रुओं के सिर को उखाड़ डाल।४। हे दर्भमणे ! जो शत्रु मेरी हिंसा के लिए सेना एकत्र करने की इच्छा करें उन्हें चीर डाल। मेरे बैरियों, मुझसे बुरे भाव रखने वालों को विदीर्ण कर।५। हे दर्भमण ! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वालों, मलीन हृदयों वालों,मुझ से द्वेष करने वालों के टूक-टूक कर डाल।६। हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वाली मली हृदयवाली और मुझसे द्वेष रखने वाली को काट डाल।७। दर्भमणे! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वालों,मलीन हृदय वालो और मुझसे द्वेष रखने वालों को छिन्न मस्तक रख।८।हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वालों, मलीन हृदय वालों और मुझसे द्वेष रखने वाले शत्रुओं को पीस डाल।९। हे दर्भमणे ! मेरे शत्रुओं का ताड़न कर। मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वाले, मलीन हृदय वाले और मुझसे द्वेष रखने वाले शत्रुओं को पीस डाला।१७।

सूक्त २६

(ऋषि–ब्रह्मा। देवता–दर्भमणि। छन्द–त्रिष्टुप्)

निक्ष दर्भ सपत्नान मे निक्ष मं पृतनायत।
निक्ष मे सर्वान् दुर्हादो निक्ष मं द्विषतो मणे ॥१
तृन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे तृन्द्धि मे तुन्द्धि मे पयमायतः।
तन्द्धि ने सर्वान् दुर्हादस्तृद्धि मे द्विषतो मणे ॥२
रुन्द्धि दर्भ सपत्नात् वन्द्धि मे पतनायत्।
रुन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दो रुन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥३
मृण दर्भ सपत्नात् मं मृण मे पृतनायत्।
मृण से सर्वान् दुहार्दो मृण मे द्विषतो मणे ॥४

मन्थ दर्भ सपत्नान् मे मन्थ पृतनायतः ।
मन्थ मे सर्वान दुर्हादो मन्थ मे द्विषतो मणे ।।५
पिण्ड्ढ दर्भ सपत्नान् मे पिण्ड्ढ म पृतनायतः ।
पिण्ड्ढ मे सर्वान् दुर्हार्दः पिड्ढ मे द्विषतो मणे ।।६
ओष दर्न सपत्नान् मे पृतनायतः ।
ओष मे सर्वान् दुर्हार्दः ओष मे द्विषतो मणे ।।७
दह दर्भ सपत्नान् मे दह मे पृतनायतः ।
दह मे सर्वान् दुर्हार्दो दह मे द्विषतो मणे ।।८
जहि दर्भ सपत्नान् मे जहि पृतनायतः ।
जहि मे सर्वान् दुर्हार्दो जहि मे द्विषतो मणे ।।९

हे दर्भमणे ! शत्रु, मेरे बिरुद्ध सेना एकत्र करने वालों, मलीन हृदय वाले और मुझसे द्वेष रखने वाले शत्रुओं को चूसले 'हे दर्भमणे! मेरे विरुद्धसेना एकत्र करने वालों, मलीन हृदय वालों और मुझसे द्वेष रखने वाले शत्रुओंका नाश कर ।२। हे दर्भमणे! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वाले, मलीन हृदय वालो और मुझसे द्वेष रखनेवाले शत्रुओं को रोक ।३। हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वालों, मलीन हृदय वालों और मुझसे द्वेष रखनेवाले शत्रुओंको मार।४। हे दर्भमणे! मेरे विरुद्ध सेनाएकत्र करने वालों मलीन हृदय वालों और मुझसे सेना करने वाले शत्रुओं का मन्थन कर ।५। हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सेना एकत्रकरने वालों,मलीन हृदय वालों और मुझसे द्वेष रखने वालेशत्रुओं को तू चूर्णित कर ।६। हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वाले मलीन हृदय वाले और मुझसे द्वेषरखने वाले शत्रुओं को भस्मकर।७ हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वाले मलीन हृदयों, मुझसे द्वेष करने वाले शत्रुओं को तू जला ।८। हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वाले मलीन हृदयों मुझसे द्वेष करने वाले शत्रुओं को तू मार डाल ।९।

सूक्त ३०

(ऋषि–ब्रह्मा । देवता–दर्भमणि । छन्द–अनुष्टुप्)

यत ते दर्भ जरामृत्युः शतं वर्मसु वर्म ते ।
तेनेम वर्मिण कृत्वा सह नाञ्जहि वीर्यैः ॥1
शत ते दर्भ वर्माणि सहस्रं वीर्याणि ते ।
तस्मस्मै विश्वे त्वां देवा जरसे भर्तवा अदुः ॥2
स्वामाहुर्देव वर्म त्वा दर्भ ब्रह्मणस्पतिम् ।
त्वामिन्द्रस्याहुर्वम त्वं राष्ट्राणि रक्षसि ॥3
सपत्नक्षयणं दर्भ द्विषतस्तपन हृदः ।
मणि क्षत्रस्य वर्धनं तनूपान कृणोमि ते ॥4
यत समुद्रो अभ्यक्रन्दत् पर्जन्यो विद्युता सह ।
ततो हिरण्ययो विन्दुस्ततो दर्भो अजायत ॥5

हे दर्भमणे ! तेरी गांठोंमें अपरिमित जरामृत्यु व्याप्त है और जरा मृत्युका नाश करने वाला तेरा जो कवच है,उसके द्वारा रक्षा और जीत की कामनाको मिलाकर शत्रु के उपद्रव को दूर करता हुआ शत्रुको भी नष्ट कर डाल ।1।हे दर्भ ! तुझसे दूसरोंको पीड़ित करने वाली सैकड़ों गाँठें हैं, और उन पीड़ाओं को दूर करने के भी सैकड़ों पराक्रमहैं । तुम कवच रूप को इस रक्षा काम्य राजाके लिए देवताओं ने जरा नाशनार्थ दिया है इसलिए इसकी वृद्धावस्था को दूर करती हुई तू इसे पुष्ट कर ।२। हे दर्भमणे ! तू देव रक्षक कवच कहाती है तुझे ब्रह्मणस्पति और इन्द्र की रक्षा बताते हैं । इसलिए तू इस राजा के राज्यों की रक्षा करने वाली हो ।३। हे दर्भ ! तुझे शत्रुओं का नाश करने वाली द्वेषी के हृदय को सन्तप्त करने वाली और जल वृद्धि करने वाली देह रक्षक मणि के रूप में धारण करता हूँ ।४। जिस मेघ से जल उदद्रवित होता है, उसमें विद्युत की गड़गड़ाहट से हिरण्यमय बूँद प्रकट हुई उसी बूँद से दर्भ उत्पन्न हुआ ।५।

सूक्त ३१

(ऋषि–सविता (पुष्टिकाम:) । देवता–औदुम्बरकणि । छन्द–अनुष्टुप्)
त्रिष्टुप्, पंक्ति, शक्वरी)

औदुम्बरेण मणिना तुष्टकामाय वेधसा ।
पशूनां सर्वेषां स्भाति गोष्ठे मे सविता करत् ।।१
यो नो अग्निर्गार्हपत्य: पशूनामधिपा असत् ।
औदुम्बरौ वृषा मणि: स मा सृजतु पुष्ठ्या ।।२
करोषिणी फलवती स्वधामिरां च नो गृहे ।
औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्ठि दधातु मे ।।३
यद् द्विपाच्च चतुष्पाच्च यान्यन्नानि ये रसा ।
गृह्णेह त्वेषां भूमान विभ्रदोदुम्बर मणिम् ।।४
पुष्टि पशूनां परि चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यन ।
पय: पशूनां रसायोषधीना वृहस्पति: सविता नि यच्छात् ।५
अहं पशूनामधिपा असानि मयि पुष्टं पुष्टपतिदधातु ।
मह्यमौदुम्बरो मणिद्रविणानि नि यच्छतु ।।६
उप मौदुम्बरो मणि: प्रजया च धनेन च ।
इन्द्रेण जिन्वितो मणिरा मा· न्तसह वर्चसा ।।७
देवो मणि: सपत्नहा धनसा धनसातये ।
पशोरन्नस्थ भूमानं गवाँ स्भार्ति नि वच्छतु ।।८
यथाग्रे त्वं वनस्पते पुष्टया सह जज्ञिष ।
एवा धनस्य मे स्फातिमा दधातु सरस्वती ।।९
आ में धनं सरस्वती पयस्धार्ति च धान्यम् ।
त्वं मणीनामधिपा वृषासि त्वयि पुष्टं पुष्पतिर्जंजान ।
सिनीवाल्युपा वहादयं चोदुम्बरी मणि: ।।१०

त्वयीमे वाजा द्रविणानि सर्वोदुम्बरः स त्वमस्मत् ।
महस्वारादरातिममति क्षुध च ।।११
गामणीरसिग्रामणीरुत्थायाभिषिक्तोऽभि मा सिञ्च वर्चसा।
तेजोऽसि तेजो मयि धारयाधि रयिरसि रयिं मे धेहि ।।१२
पुष्टिरसि पुष्टचा भा समङ्ग्धि गृहमेधी गहपतिं माकृणु ।
औदुम्बरः स त्वमस्मासु धाह रयिं च न सर्ववीरं ।
नियच्छ रायस्पोषाय प्रति मुञ्चे अह त्वाम् ।।१३
अयमौदुम्बरो मणिवीरो वीराय बध्यते ।
स न सनि मधुमती कृणोतु रयिं च नःसर्वघोरं नि यच्छात्।१४

प्राचीन काल में ब्रह्मा ने गूलर की मणि के द्वारा पशु पुत्र, धन, शरीर पोषण आदि का प्रयोग किया था। मैं उस पोषण मणिसे तुझे पुष्टिकाम्य को पुष्ट करता हूँ। सविता देव मेरे घर में दुपाए, चौपायों की बढ़ावें।१। गार्हपत्य अग्नि हमारे गवादि पशुओंके अधिष्ठाता और रक्षा करने वाले हों। इच्छित फल की वर्षा करने वाली गूलर, मणि शरीर की वृद्धि और पशुओं की पुष्टि करे।२। गूलर को मणिके तेज से धातादेव मेरे शरीर में पुष्टकरें हमारे घरमें अन्न और गोबरवाली भूमि हो।३। दो पाँव वाले मनुष्य चार पाँव वाले पशु ग्राम्य अन्न, वन के अन्न, दही, दूध, गुण, मधु आदि रस इन सबको में गूलर मणि के धारण करने वाला अधिकतासे प्राप्त करता रहूँ।४। मैं मनुष्यो और पशुओं की, धान्यादि की पुष्टि को प्राप्त करूँ। सविता और बृहस्पति गूलर मणि के तेज से पशुओं का सार रूप दूध और अन्नादि दें।५। मैं पुत्र, पशुओं से युक्त होऊँ। गूलर मणि मुझ पुष्टि-काम्य को समृद्ध करे। यह मणि मुझे स्वर्णादि भी दे।६। गृह मणि इन्द्र की प्रेरणा से मुझे इच्छित तेज सहित प्राप्त हुई हैं। इसके द्वारा मुझे पुत्र, पौत्र, पशु धन।स्वर्ण आदि की प्राप्ति भी होगई है।७। यह गूलर मणि पुष्टिके लिए निर्मित होने के कारण देव संज्ञक हैं। यह पशुओं का नाश करने

वाली और हमारे अभीष्ट धनोंके देने वालीहैं। यह मणि गवादि पशुओं की वृद्धि करे और धन लाभ करने वाली हो ।८। हे गूलर मणे ! जैसे तू औषधि के उत्पत्ति कालमें ही पुष्टि के साथ उत्पन्न हुई है, वैसेही तेरे द्वारा सरस्वती मेरे धन आदिकी वृद्धि करें ।९। सरस्वती सिनी वाली और वह ओदुम्बर मणिमुझे नवर्णोरूप ऐश्वर्य,व्रीहि,यव आदि औषधि और अन्य को प्राप्त करावें ।१०। हे मणे! तू इच्छित फलकी वर्षक है । प्रजापति ने तुझमें सब पदार्थों की पुष्टि को भर दिया है । तुझ समृद्धि वाली के प्रभावसे तुझमें अनेक प्रकार के अन्न और धनहों। हे गूलर मणे ! तू दुर्गति और अन्नभाव को हमारे पास न आनेदे।११। हे गूलर मणे ! तू ग्रामीण नेता के समान मणियोंमें श्रेष्ठ हैं । तू हमारे लिए इच्छित फल दिखाने वाली हो । तू वर्चसे सम्पन्नहै, मुझेभी वर्च से युक्तकर, तू तेजोमयी है, मुझे भी तेजस्वी बना और धन प्रदानकर ।१२। हे मणे ! तू साक्षात् पुष्टि है, इसलिए मुझे पुष्टकर । ग्रहमेधी हैं,मुझे ऐश्वर्ययुक्त घर का स्वामी कर । तुझमें ग्राणीत्व वर्च और तेज वे सब गुण मुझमें स्थापित कर और जिस धनसे पुत्रादि वीर प्रसन्न हों, वह धन मुझे प्राप्त करा ।१३। हे मणे ! धन पुष्टि की कामना वाला मैं तुझे धारण करताहूँ । शत्रुओंको खदेड़ने वाली यह मणि स्वयं वीर रूप हो जाय, इसीलिए बाँधी गई है । यह मणि हमको पुत्रादि सहित धन दे और मधुमयी होती हुई हमें भी मधुमय बनावें ।१४।

सूक्त ३२

(ऋषि–भृगुः (आयुश्कामः) । देवता–दर्भः । छन्द–अनुष्टुप् बृहती, त्रिष्टुप्, जगती)

शतकाण्डो दुश्च्यवनः सहस्रपर्ण उत्तिरः ।
दर्भो य उग्र औषधिरत ते वध्नाभ्यायुते ॥१
नास्य केशान प्र वपन्ति नोरसि ताडमा घ्नते ।
यस्मा अच्छिन्नपर्णेन दर्भेण शर्म यच्छति ॥२

दिवि ते तूलमोषधे पृथिव्यामसि निष्ठितः ।
त्वया सहस्रकाण्डनायुः प्र वर्धयामहे ।३
तिस्रो दिवो अत्यतृणत यिस्र इमाः पृथिवीरुत ।
त्वयाह दुर्हार्दो जिह्वां नि तृणद्मि वचांसि ।४
त्वमसि सहमानोऽहमस्मि सहस्वान् ।
उभौ सहस्वन्तौ भूत्वा सयत्नान् सहिषीमहि ।५
सहस्व नो अभिमाति सहस्व पृतनायतः ।
सहस्व सर्वान् दुहर्दिः सुर्हो मे बहून कृधि ।६
दर्भेण देवजातेन दिविष्टम्भेन शश्वदित् ।
तेनाह शश्वतो जनां असमं सनवन्नि च ।।७
प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च ।
यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते ।८
यो जायमानः पृथिवीमदृहद् यो अस्तध्तादन्तरिक्ष दिवं च ।
यं बिभ्रतं ननु प्राप्ता विवेद स नोऽयं दर्भो वरुणो दिवा कः ।९
सपत्नहा शमकाण्डः सहस्वानोषधीनां प्रथमः स बभूव ।
स नोऽयं दभः परि पातु विम्वतस्तेन साक्षीय पृतनाःपृतन्यतः।१०

हे मृत्यु से भीत पुरुष ! जो दर्भ अपरिमित गांठों से युक्त है, सहस्रों पर्णवाली उस प्रचण्ड वीर्य औषधिको तेरी आयु वृद्धिके निमित्त बांधता हूं ।१। प्रयोग करने वाला पुरुष जिस भयभीत पुरुष को पर्णा युक्त पूर्णाङ्क दर्भ मणिको बांधता है, यमदूत उसके केशों को नहीं उखाड़ते और न उसके हृदय पर घूंसा मारते हैं ।२। हे सहस्र काण्ड वाली औषधे ! तू पृथिवी में पूर्ण रूप से स्थिर हैं, तेरा अग्रभाग स्वर्ग लोक हैं । तुम आकाश पृथिवी व्याप्त हुई द्वारा इस मृत्यु से डरे हुए पुरुष की आयु वृद्धि करते हैं ।३। हे औषधे ! तू त्रिवृत् आकाश और त्रिगुणात्मक पृथिवीको व्याप्तकर रही है। तेरे द्वारा मैं उस ग्आत हृदय वाले पुरुष की जीभ को और शत्रु की वाणी को भी अवरुद्ध करता हूँ

।४। हे ओषधे ! तू शत्रुओं को वश में समर्थ है मैं भी शत्रुओं को मारने में समर्थ हूँ। अतः हम दोनों ही शत्रु को दबाने लिए समान मति वास हों ।५। हे ओषधे ! हमारे शत्रुओं का क्षय कर। सेना एकत्र कर मुझे वश करना चाहने वाले मेरे शत्रुओं को वश में कर और मेरे मित्रों की वृद्धि कर ।६। आकाश के स्तम्भरूप और लताओं के समीप उत्पन्न दर्भ के द्वारा मैं दीर्घायु वाले पुत्रों को प्राप्त होऊँ।८ आर्य पुरुषो और शूद्रोंके लिए भी मुझे प्रिय बनाओ तथा हम जिसके प्रिय होना चाहे मुझे उसी का प्रिय करो ।८। उत्पन्न होते ही जिस दर्भ ने पृथिवी को स्थिर किया, उत्पन्न होते ही उसने अन्तरिक्ष और स्वर्ग को स्तम्भित किया जिस दर्भ के धारणकर्ता का पाप से परिचय नहीं हैं, ऐसा यह वरुण रूप दर्भ हमको प्रकाश देने वाला हो ।९। वह दर्भ अन्य ओषधियों में श्रेष्ठ होता हुआ उत्पन्न हुआ। यह सब पर समान स्वामित्व की कामना करता है। यह चारों दिशाओं से रक्षित करे। मैं इसके प्रभाव से सेना की कामना वाले शत्रुओं को वशीभूत करूँ ।१०।

सूक्त ३३

(ऋषि—भृगुः देवता—दर्भः। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्, पंक्ति)

सहस्रार्घः शतकाण्डः पयस्वानपामग्निर्वीरुधां राजसूयम् ।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतो देवो मणिरायुषा स सृजाति नः ।१

घृताद्‌ल्लुप्तो मधुमान् भूमिदृहोऽच्युतश्यावयिष्णुः ।
नुदः सपत्नानधरांञ्च कृण्वन् दर्भा रोह महताविन्द्रियेण ।२

त्वं भूमिमत्येष्योजमा त्व वेद्यां सोदसि चारुरध्वरे ।
त्वां पवित्रमृषयोऽभरन्त त्वं पुनीहि दुरितान्यस्मत् ।३

तीक्ष्णो राजा विषासहो रक्षोहा विश्वचर्षणिः ।
ओजो देवानां बलमुग्रमेतत् तं ते बध्नामि जरसे स्वस्तये ।४

दर्भेण त्वं कृणवद् वीर्याणि दर्भं विभ्रदात्मना मा व्यथिठाः ।
अतिष्ठाया वर्चसाधान्यात्सूर्यइवा भाहि प्रदिशश्चतस्रः ।५

यह प्रसिद्ध दर्भमणि जलों में अग्नि रूप, अनेक काण्ड वाली, बल से सम्पन्न और प्रशस्तहै । यह हमारी रक्षाकरे और आयुष्मान बनाये ।१। होम से अवशिष्ट घृत से लुप्त, मधुर, विनाश रहित, अपनी मूल से पृथिवी को दृढ़ करने वाली दर्भमणे ! तू शत्रुओं को पीछे हटातीहुई उन्हें बलसे रहित कम वीर्य वाली अन्त औषधियों को भी शक्ति से सम्पन्न होकर मेरी भुजा पर आरोहण कर ।२। हे मणि रूप दर्भ ! तू अहिंसित यज्ञ की वेदीमें बैठने वाला, रमणीय और शोधकहैं । तुझे ऋषि अपनी शुद्धि के लिए धारण करते हैं । अतः हमें पापोंसे छुड़ा।३ अन्य मणियों में श्रेष्ठ तीक्ष्ण शक्ति बल, असुरों का नाशक, शत्रुओं को वश करने में समर्थ सर्व दृष्टा, देवताओंका बल रूप यह दर्भ प्रयोग करने वाले रक्षक होता हैं । हे रक्षा की कामना वाले पुरुष ! इस मणि को तेरे कुशल और वृद्धावस्था को अप्राप्तिके लिए बांधता हूँ।४। हे पुरुष ! दर्भमणे के प्रताप से तू शत्रु को जीतने वाले कर्म को कर तू शत्रु हमारा पराजित होने की बात को मत सोच, सूर्य जैसे लोकों को प्रकाशित करता है, वैसे ही तू अपने बलसे दूसरों को वशमें करता हुआ चारों दिशाओं को प्रकाशित कर ।५।

सूक्त ३४ (पाँचवाँ अनुवाक)

(ऋषि—अङ्गिराः । देवता—जङ्गिडो वनस्पतिः । छन्द—अनुष्टुप्)

जङ्गिडोऽसि जङ्गिडो रक्षिताजि जङ्गिडः ।
द्विषाच्चतुष्पादस्माकं सर्वं रक्षतु जङ्गिडः ।१
या गृत्स्यस्त्रिपञ्चाशीः शतं कृत्याकृतश्च ये ।
सर्वान् विनक्तु तेजसोऽरसाञ्जङ्गिडस्करत् ॥ २
अरस कृत्रिम नादमरसाः जप्त विस्रसः ।
अपेतो जङ्गिडामतिमिषुमस्तेव शातय ॥३

कृत्यादूषण एवायमथो अरातिदूषणः ।
अथो सहस्वाञ्जङ्गिडः प्र ण आयू पि तारिषत् ।।४
स जङ्गिणस्य महिमा परि णः पातु विश्वतः ।
विष्कन्ध येन सासह संस्कन्धमोज ओजसा ।।५
त्रिटवा देवा अजनयन् निष्टितं भूम्यामधि ।
समु त्वाङ्गिरा इति ब्राह्मणाः पूर्व्या विदुः ।।६
न त्वा पूर्वा ओषधयो न त्वा तरन्ति या नवः ।
विवाध उग्रो जङ्गिडः परिपाणः सुमङ्गलः ।।७
अथोपदान भगवो जङ्गिडामितवीय ।
पूरा त उग्रा ग्रमत उपेन्द्रो वीर्यं ददौ ।।८
उग्र इत ते वनस्पत इन्द्र ओज्मानमा दवौ ।
अमीवाः सर्वाश्चातयञ्जहि रक्षांस्योषधे ।।९
आशरीकं विशरीकं बलास पष्टयामयम् ।
तवनाम विश्वशारदमरमां जङ्गिडस्करत् ।।१०

जङ्गिड नामक ओषधि से निर्मित्त मणे ! तू कृत्याओं और कृत्या कर्मों का भी भक्षण रूप लेती है । सब भयों को दूर करने वाली है । यह मणि हमारे मनुष्यों और पशुओं आदि की रक्षक हो ।१। पुतलियों के निर्माता और तिरेपन प्रकार की ग्राहिका कृत्यायें हैं, उन सबको यह जङ्गिड मणि रसहीन और निवीर्य करे।२। अभिचार कर्मसे उत्पन्न हुई कृत्रिम ध्वनि जो हमारे कानों और शिर आदि स्थानों में होती है इस मणि के प्रभाव से निरर्थक हो जाते, नासिका से छेद, नेत्र गोलक, कर्ण छिद्र और मुख छिद्र भी अभिचार कर्म के अनिष्ट से मुक्त हों। हे मणे! तू अपने धारण कर्त्ता की कुबुद्धि और दरिद्रता का, बाण फेंककर नष्ट करने के समान ही नष्ट कर दे ।३। यह मणि शत्रुओं का पतन करने में साधक रूप है । दूसरोंके द्वारा की गई कृत्याओंको नष्ट करने वाली है यह बल उत्पन्न मणि कृत्वा आदि को दूर करती हुई हमारी आयु

वृद्धि करे ।४। यह मणि महावात रोग का नाश करने वाली है, इसके द्वारा नष्ट हुआ रोग फिर नहीं होता । इसके प्रभाव से विस्कन्ध रोग नष्ट होता है । यह मणि उन सब उपद्रवों से बचाती हुई हमारी रक्षा करे ।५। हे जङ्गिड मणे ! तुझे देवताओंने तीन बार प्रयत्न करके प्राप्त किया था । महर्षि अङ्गिरा और प्राचीनकालके ब्राह्मण ऋषि इस बात को जानते थे ।६। जंगिड ! तू सब प्रयोगों में अत्यन्त शक्तिशाली है । सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न औषधियाँ तेरी समानता नहीं कर सकती, नवीन औषधियाँ भी तुझसे श्रेष्ठ नहीं हो सकती । क्योंकि तू अमित, बलों, रोग और शत्रु नाशक तथा धारण करने वाले की रक्षक हैं ।७। हे जंगिड! तुघे कृत्यादि के शमन-साधन रूप में ग्रहण किया जाताहै । तू अत्यत्त सामर्थ्य वाला है । प्रचण्ड बल वाले जीव तुझे खा सकतेहैं, इसीलिये इन्द्र ने तुझे अत्यन्त बल दिया ।८। हे जंगिड! इन्द्र ने तुझमें बल की स्थापना की इसीलिए तू अत्यन्त वीर्य वाला है । इसीलिए तू कारण रूप पाप आदि का नाश कर ।९। अशरीक, विशरीक, बलाज, पृष्ठय, तक्मा, विश्व शारद आदि रोगोंको यह मणि निरर्थक करें ।१०

सूक्त ३५

(ऋषि–अंगिरा । देवता––जांगिडी वनस्पतिः । छन्द––अनुष्टुप् पंक्ति, त्रिष्टुप्)

इन्द्रस्य नाम गृह्णन्त ऋषियो जङ्गडं ददुः ।
देवा यं चक्रुर्भेषजमग्रं विष्वकन्ध दूषणम् ॥१
स नो रक्षतु जङ्गिडो धनपालोधनेव ।
देवा यं शक्रु ब्राह्मणः परिपाणमरातिहम् ॥२
दुहार्दः सघोर चक्षुः पापकृत्वानमम गमम ।
तांस्त्व सहस्रचक्षो पतोबोधेन नाशय परिपाणोऽसि जङ्गिडः।३
परि मा ना दिवः परि मा पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् परि मा वीरुद्भ्यः ।

परि मा भूतात् परि मोत भव्याद् दिशोदिशो ।
जङ्गिडः पात्वस्मान् ॥४

य ऋष्णवो देवकृता य उतो ववृतेऽन्यः ।
सर्वास्तान विश्वभेषजोऽरसां जङ्गिडस्करत् ॥५

अंगिरा आदि महर्षियोंने इन्द्र का नामोच्चार करते हुए परमवीर्य की इच्छा करनेवाले ऋषियोंको जंगिड नामके वृक्षकी यह मणि प्रदान की । इन्द्रादि देवताओंने इसे निष्कन्ध रोगकी महान् औषधि कहाहै । यह औषधि हमारी रक्षक हो ।१। राजा के धन की रक्षा करने वाले कोश-विकारों के समान यह मणि हमारी रक्षा करे । जिस मणि को देवताओं और ब्राह्मणोंने शत्रु नाशक और धारणकर्त्ताकी रक्षक बनाया है, वह मणि हमारी रक्षा करने वाली हो ।२। हे मणे ! दुष्ट हृदय शत्रु में क्रूर नेत्र को नष्ट कर डाल । हिंसाके लिए पास आये हुए को भी अपने दर्शन साधनों द्वारा नष्ट कर ।३। यह मणि आकाश पृथिवी और अन्तरिक्ष से हो सकने वाले सभी भयोंसे मेरी रक्षा करे । वृक्षादि के विष और विभिन्न जीवा के भय तथा दिशा प्रदिसाओं के भय से मुक्त करे ।४। देवताओं द्वारा बनाये हुए हिंसक, मनुष्यों से प्रेषित बाधा देने वाले जो-जो कर्म हैं इन सबको जगिड मणि निर्वीर्य करे।५।

सूक्त ३६

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता–शतवारः । छन्द–अनुष्टुप्)

शतवारो अनीनशद् यक्ष्मान् रक्षांसि तेजसा ।
आरोहन् वर्चसा सह मणिर्दुर्णामचातनः ॥१

शृङ्गाभ्यां रक्षो नुदते मूलेन यातुधान्यः ।
मध्येन यक्ष्मं बाधते नैनं पाप्माति तत्रति ॥२

ये यक्ष्मासो अर्भका महान्तो ये च शब्दिनः ।
सर्वान् दु र्णामहा मणिः शतवारो अनीनशत् ॥३

शतं वीरानजनयच्छतं यक्ष्मानपावपत् ।

दुर्णाम्नः सर्वान हत्वाव रक्षांसि धूनुते ॥४
हिरण्यश्रृङ्ग ऋषभ शातवारो अय मणिः ।
दुर्णाम्न सर्वास्तुड्ढवाव रक्षांस्यक्रमीत् ॥५
शतमहं दुर्णाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम् ।
शतं शश्वन्वतीनां शतवः रेण वारये ॥६

यह मणि शतवार नामक ओंषधि से बनी है । यह औषधि सैकड़ों रोगों को नष्ट करने में समर्थ हैं । णह अपने तेजने असुरोंको भी भस्म करने की शक्ति रखती है । यह दुनमि नामक त्वचा रोगों को नष्ट करती है । वह इस पुरुष के द्वारा धारण की जाती हुई ऐसे ही गुण वाली रहे ।१। यह अन्तरिक्ष में स्थित राक्षसोंको अपने सींगोंके समान अगले भागसे भगातीहै । यह अपने जड़के द्वारा पिशाचियों को भगाती है और मध्य भाग से सब रोगों को मिटाती है । इस शतवार मणिको पापी लोग लाँघ नहीं सकते।२। असाध्य रोगों और यक्ष्मादि रोगों को यह दुर्नाम रोग का नाश करने वाली मणि पूर्वतः शमन करें ।७। यह मणि सैकड़ों रोगों उत्पातों, दुर्लभ,कुष्ठा खाजः दद्रु आदि त्वचा रोगों को भी नष्ट करें और सैकड़ों पुत्रोंको प्राप्त करावें ।४। सब औषधियों में उत्तम यह शतवार नामक औषधि का अग्रभाग सुवर्ण के समान दमकता है । उस निमित्त न यह मणि सब त्वचा रोगों को दूर करा।५ इस शतवार मणि के द्वारा मैं समस्त त्वचा रोगों को दूर करता हूँ । अन्तरिक्ष में घूमते हुए अप्सरा गन्धर्व आदि प्राणी मनुष्यो को, बलि, के लिए अपहृत कर लेते हैं, उनके उस कर्म को मैं इस शतवार मणिके प्रभाव से दूर करता हूँ । यह मणि अपस्मार आदि व्याधियों को और पीड़ाप्रद रोगों का शमन करने में समर्थ हैं ।६।

सूक्त ३७

(ऋषि—अथर्वा देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति, बृहती,उष्णिक)

इदं वर्चो अग्निनाम: दत्तमाग भर्गो यश: सह ओजो वयो बलम्।
त्रयस्त्रिंशद् यानि च वीर्याणि तान्यग्नि: प्र ददातु मे ।।१
वर्च आ धेहि मे तन्त्रां सह ओजो वयो बलम् ।
इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याय प्रति गृह्णामि शतशारदाय ।।२
ऊर्जे त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा ।
अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय ।।३
ऋतुभ्यष्ट्र वार्तमेभ्यो मादम्य: सवत्सरेभ्य: ।
धात्र विधात्र समृध भूतस्यपतय यजे ।।४

अग्नि प्रदत्त वर्च, तेज, ओज कीर्ति, बल और युवाबस्था मुझे प्राप्त हो । जो तेंतीस वीर्य हैं, उन्हें भी अग्नि देवता मुझे दे ।१। हे अग्ने ! शत्रु को दवाने वाले वर्च मुझ में स्थापना करो । ओज, युवावस्था, बल भी दो । हे ग्रहणीय पदार्थ ! इन्द्रियों की दृढ़ताके लिए और यज्ञादि कर्मों को सिद्धि के लिए तुझे धारण करता हूँ शतायुष्य सोने के निमित्त तथा शत्रुओं पर विजय प्राप्त कराने वाले वीर कर्मके लिए भी धारण करता हूँ।२। हे पदार्थ! मैं तुझे अन्नकी प्राप्तिके लिए धारण करता हूँ । राज्य की पुष्टि के लिए और सौ वर्ष की आयु के लिएभी धारण करता हूँ।३। हे पदार्थ! मैं तुझे ऋतु सम्बन्धी देवताओं की प्रसन्नता के लिए ऋतुओं की प्रसन्नता के लिए, बारह महीनों की प्रसन्नता के लिए, संवासर की प्रसन्नता के लिए सुसंगत करता हूँ । धाता, विधाता तथा अन्य सब देवताओं की प्रसन्नता के लिए और सभी उत्पन्न पदार्थों के स्वामी के लिए सुसंगत करता हूँ ।४।

सूक्त ३८

(ऋषि—अथर्वा । देवता—गुलगुल: । छन्द—अनुष्टुप्)

न तं यक्ष्या अरुन्धते नैन शपथो अश्नुते ।
यं भेषजस्य गुलगुलो: सुरभिर्गन्धो अश्नुते ।।१

विष्वञ्चस्तस्मा: यक्ष्मा मृगा अश्वाइवेरेते ।।१
यद् गुल्गुनु सैन्धवं वद वाप्यासि समुद्रियम ।।२
उ योरप्रभं नामास्मा अरिष्टतातये ।।३

जो राजा गूगल रूप ओषधि की नस्य (धूप आदि) लेता है, उसे व्याधियाँ पीड़ित नहीं करती और अन्य द्वारा प्रेरित शाप नहीं लगता ।१। गूगल के धुएँ को सूँघने वाले के समीप से द्रुतगामी अश्व और हरिण के भागने के समान व्याधियाँ चारों दिशाओंकी ओर भाग जाती है ।२। हे गूगलों ! तुम समुद्र से उत्पन्न हुई हो या सिन्धु देश में प्रकट हुई हो । मैं तुम दोनों प्रकार की ो कहता हूँ । इस वर्तमान रोगादि को दूर करने के निमित्त मैं तुम्हारे नामक को कहता हूँ ।३।

सूक्त ३९

(ऋषि--भृग्वंगिरा । देवता-कुष्ठ: । छन्द—अनुष्टुप्
जगती, शक्वरी, अष्टि, प्रभृति)

यतु देवस्त्रायमाण: कुष्टो हिमवतस्परि ।
तक्नामं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्य: ।।१
त्रीणि ते कुष्ठ नामानि नद्यमारो नद्यरिष: ।
नद्याय पुरुषो रिषत् ।
यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायं प्रातरथो दिवा ।।२
जीवला नाम ते माता जीवन्तो नाम ते पिता ।
नद्यायं पुरुषो रिषत् ।
यस्मै परिब्रवीमे त्वा सायं प्रातरथौ दिवा ।।३
उत्तमी अस्योषधीनामनड् वान् जगतामिव व्याघ्र: श्वपदामिव
नद्यायं पुरुषो रिषत्
यस्मै परिब्रवीमि त्व सायंप्रातरथो दिवा ।।४
त्रि: शाम्बुभ्यो अंगिरेभ्यस्त्रिरादित्येभ्यस्परि ।
त्रिर्जातो विश्वदेवेभ्य ।

स कुष्ठो वि बभेषजः । साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥५
अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि ।
यत्रामृतस्य चक्षण ततः कुष्ठो अजायत ।
स कुष्टो विश्वभेषजः साक सोमेन तिष्ठति ।
तक्मान सर्वं नाशय सर्वा च यातुधान्यः ॥६
हिरण्ययी नौरचद्धिरण्यबन्यना दिवि ।
लत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत ।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साक सौमन तिष्ठति ।
तक्मान सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥७
यत्र नावप्रभ्रंशनं यत्र हिमवतः शिरः ।
तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत ।
स कुष्टो विश्वभेषजः साक सोमेन तिष्ठति ।
तक्मान सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥८
यं त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाको यं वा त्व कुष्ठ कान्यः ।
यं वा वसो यमात्स्यस्तेनासि विश्वभेषजः ॥९
शीर्षशोकं तृतीयकं सदान्दिर्यश्च हायनः ।
तक्मान वि त्रधावीर्वाधराञ्चं परा सुव ॥१०

हिमवान् पर्वतसे दमकता हुआ कूट हमारी रक्षा करता हुआ आवे हे कूट ! तू सभी सन्तापप्रद रोगों का नाश कर । सभी राक्षसियों को भी हिंसित कर ।१। हे कूट ! तेरा नाम रहस्यमय है । तू नक्षमार, नद्यरिक्ष और नद्य कहलाता है । तेरे नाम का ध्यान न करनेसे मरणात्मक व्याधि घेरतीहै । हे विनाम कूट! मैं प्रातः,सायं,मध्य तीनों समय से पार्त पुरुष के लिए तेरा नाम लेता हूँ । हे नद्य ! जिसके लिए द्वेष भाव से तेरा नाम लूँ वह मृत्यु को प्राप्त हो ।२। हे कुट ! तेरी माता का नाम जीवला और पिताका जीवन्तहै । तेरे माता-पिता रोग आदि

को दूर करने वाले हैं, तू भी वैसे ही गुण वाला है। हे नद्य ! दिन के तीनों काल मैं तेरे नामों को जिस रोगी के लिए लेता हूँ, वह रोगी तेरा नाम न लेने से मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।३। हे कूट ! पशुओंमें भार वहन करने वाला वृषभ जैसे श्रेष्ठ हैं, श्वपदों में जैसे बाघ श्रेष्ठ होता है वैसे ही तू औषधियों में श्रेष्ठ है। हे नद्य नामक कूट ! तेरा नाम न लेने से यह रोगी मर जाता, इसीलिए मैं तेरे नामको प्रात:सायं मध्यकाल में उच्चारण करता हूँ।४। आंगिरस शम्बु ऋषियों ने इस कूट नामक औषधि को तीनों लोकोंके कल्याण के लिए तीनबार खोज कर प्रकट किया। यह आदित्यों और विश्वे देवताओं ने भी तीन तीन बार प्रकट की है। ऐसी यह सब औषधियोंकी शक्तिसे सम्पन्न औषधि पहले सोम से सुसंगत थी। हे कूट! तू सब रोगों और यातुधानियोंको नष्ट कर।५। भूलोक से तृतीय स्वर्ग में देवता वास करते हैं वहां अवत्थ है। यह कूट पहिले सोम के साथ था। हे कूट ! तू सव रोगों और यातुधानियों को मार।६। स्वर्ग में सुवर्णमय खूँठे वाली सुवर्ण की नोका सदा घूमती है। वहाँ अमृत के प्रकाश में कूट उत्पन्न हुआ। वह कूट सब रोगों का उपाय रूप है और वही सोमके साथ रहताथा। हे कूट ! तू सव रोगों और पिशाचियों का नाश कर।७। जिस स्वर्गमें प्रतिष्ठित पुण्यात्मा औधे मुँह नहीं गिरते, जहाँ हिमवान् पर्वत का शीर्ष हैं, वहाँ अमृत के आकाश में कूट उत्पन्न हुआ। वह सब रोगोंका शमन करने वाला कूट पहले होम के साथ रहता था। हे कूट! तू सब रोगी और यातुधानियों को मारकर।८। हे कूट सब रोगों को नाश करने वाले रूप से राजा इक्ष्वाकु ने जाना था। काम के पुत्र ने और यम के समान मुख वाले वसुओंने भी तुझे सब व्याधियों का निवारक रूप से जाना था, इसलिए तू सब रोगों को दूर करता है।९। हे कुट तृतीय स्वर्ग तेरा शिर है। तेरा उत्पत्ति काल व्याधियों को सदा नष्ट करने वाला है। अत: इस शक्ति सम्पन्न जीवन को सन्तप्त करने वाले रोग को शीघ्र ही पराङ्मुख कर।१०।

सूक्त ४०

(ऋषि–ब्रह्मा । देवता—विश्वेदेवाः, बृहस्पतिः । छन्द—त्रिष्टुप्, बृहती, गायत्री)

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः सरस्वती मन्युमन्तं जगाम ।
विश्वैस्तद् देवैः सह संविदानः स दधातु बृहस्पतिः ॥१
मा न वापो मेधां मा ब्रह्म प्रमथिष्टन ।
शुष्यदा यूयं स्यन्दध्वमुपहूतोऽहं सुमेधा वर्चस्वी ॥२
मा नो मेधां मा नो दीक्षां मा नो हिंसिष्टं यत् तपः ॥३
या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः ।
तामस्मे रासनामिषम् ॥४

मेरे मनोव्यापार में या मन्त्रीरूपी वाणी में जो त्रुटि रह गई हैं, उसे वाग्देवता सरस्वती पूर्ण करें । सब देवताओं सहित बृहस्पति भी उसे पूर्ण करें ।१। हे जलो ! तुम हमारे वेदाध्ययन से युक्त सुन्दर बुद्धि को भ्रष्ट न करो । मेरा जो कर्म शुष्क हो गयाहै, उसे आर्द्र करो । मैं सुन्दर बुद्धि से युक्त तथा ब्रह्मचर्य से सम्पन्न होऊँ।२। हे द्यावापृथिवी! तुम हमारी बुद्धि को भ्रष्ट न करो, दीक्षा और तप को नष्ट न करो । जल आयु वृद्धि के लिए हमारी प्रशंसा करें । संसार को निर्माण करने वाले जल हमको माता के समान मंगलकारी हों ।३। हे अश्विद्वय ! हमको बाधाजनक अन्धकार न मिले । जो प्रकाशवती रात्रि अन्धेरे का तिरस्कार करने वाली हो, ऐसी रात्रि को हम प्राप्त हों ।४।

सूक्त ४१

(ऋषि–ब्रह्मा । देवता–तपः । छन्द–त्रिष्टुप्)

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे ।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु ॥१

अथर्वद्राष्टा ऋषियों ने सृष्टिके आदि कालमें कल्याण-कामना करते हुये स्वर्गको ... और उसके साधन रूप ... तथा दीक्षा

धारण आदि के साध्य दीक्षा को किया। उसी शक्ति से राष्ट्रबल और ओज हुआ। देवगण उस सबको इस पुरुष में सुसंगत करें।१।

सूक्त ४२

(ऋषि–ब्रह्मा। देवता–ब्रह्म। छन्द–अनुष्टुप्, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती)

ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञा ब्रह्मणा स्वरवो यिताः।
अध्वयु र्ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोऽन्तर्हित हविः ॥१
ब्रह्म स्रुचा घृतवतीर्ब्रह्मणा वेदिरूद्धिता।
ब्रह्म यज्ञस्य तत्वं च ऋत्विजो ये हविष्कृतः।
शामिताथ स्वाहा ॥२
अंहोमुच प्र भरे मनींषामा मुत्राब्णे सुमतिमावृणानः।
इममिन्प्र प्रति हव्य गृभाय सत्याः सन्तु यजमानत्य कामाः ॥३
अहोमुचं वृषभ यज्ञियानां विराजन्तं प्रथममध्वराणाम।
अपां नपातमश्विना हुवेधिय इन्द्रियेण त इन्द्रियं दत्तमोज ॥४

ब्रह्म ही होता है ब्रह्म ही यज्ञ है, ब्रह्म से ही स्वरोंकी वज्ञानुवेष्ठता आदि हैं, ब्रह्म से ही अध्वर्यु उत्पन्न हुए और ब्रह्म में ही हवियाँ अवस्थित हैं।१। घृत से पूर्ण स्रुच भी ब्रह्म है, वेदी ब्रह्म द्वारा ही निमित्त हुई, यज्ञ है और हवि करने वाले ऋत्विज भी ब्रह्म ही है।२। इन्द्र परम कल्याणके देने वाले और पापोंसे छुड़ाने वाले हैं। उन इन्द्र के लिए मैं सुन्दर स्तोत्रमयी स्तुतियों को कहता हूँ। हे इन्द्र! यजमान की आयु आदि की कामना सत्य हो। इस हवि को ग्रहण करो।३। यज्ञ-भागी देवताओं में इन्द्र श्रेष्ठ है, इसलिए मैं उनका आह्वान करता हूँ। जलों के स्रष्टा अग्नि का और अश्विद्वय का भी आह्वान करता हूँ। वे अश्विद्वय तुझे इन्द्र की शक्ति से इन्द्रियाँ और बल के देने वाले हों।४।

सूक्त ४३

(ऋषि–ब्रह्मा। देवता—अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता। छन्द—पंक्तिः)

यत्र ब्रह्मविदो यान्तिदीक्षया तपसा सह ।
अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेधा दधातु मे अग्नये स्वाहा ।।१
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षय तपसा सह ।
वायुर्मा तत्र नयतु वायु: प्राणान् दधातु मे । वायवे स्वाहा ।।२
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
सूर्यो मा तत्र नयतु चक्षु: सूर्यो दधातु मे । सूर्याय स्वाहा ।।३
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपस्या सह ।
चन्द्रो मा तत्र नयतु मनश्चन्द्रो दधातु मे । चन्द्राय स्वाहा ।।४
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दान्ति दीक्षया तपसा सह ।
सोमो मा तत्र नयतु पत: सोमो दधातु मे । सोमोय स्वाहा।।५
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
इन्दो मा तत्र नयतु बलमिन्द्रो दधातु मे । इन्द्राय स्वाहा ।।६
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपस्या सह ।
आपो मा तत्र तत्र वयन्त्वमृत मीप मिष्ठनु अद्‌भय स्वाहा । ७
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षाया तपसा सह ।
ब्रह्मा मा तत्र नयतुब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे । ब्रह्मने स्वाहा ।।८

जिस स्थान से ब्रह्म को जानने वाले दीक्षा और सर्प के द्वारा पहुँचते हैं, उसी स्थान में मुझे अग्निदेव ले जांय । जो अग्नि-स्वर्ग कर्म से ब्रह्मज्ञानी पुरुष जिस स्थानमें जाते हैं, वायु मुझे वहीं ले जाँय। वे वायु मेरे प्राणापान आदि पाँचों प्राणों को मुझ में स्थापित करें ।२। तप और कर्म के द्वारा ब्रह्मज्ञानी पुरुष वहाँ जाते हैं, उसी स्थान में सूर्य देवता मुझे ले जाँय और मुझे चक्षु प्रदान करें यह आहुति सूर्य के लिए हो ।३। तपोधन और कर्मवान् ब्रह्मज्ञानी पुरुष जिस स्थान को प्राप्त होते हैं, चन्द्र देवता मुझे भी उसी स्थान में स्थापित करे और मान प्रदान करें, स्वाहा ।४। तपोधन और कर्मवान ब्रह्मज्ञानि पुरुष जिस स्थान को प्राप्त होते हैं, सोम मुझे उसी स्थान में पहुँचावे।

वे और मुझे दूध रस युक्त करे, स्वाहा ।५। तपोधन और कर्मवान ब्रह्मज्ञानी पुरुष जिस स्थान को प्राप्त होतेहैं, इन्द्र मुझे उसी स्थान में पहुँचावे। वे इन्द्र मुझे बल प्रदान करें, स्वाहा ।६। तपोधन ब्राह्मण और कर्मवान् ब्रह्मवेत्ता पुरुष जिस स्थान में लाते हैं, वही स्थान मुझे जल के अभिमानी देवता प्राप्त करावें। जल मुझे अमृत्व दें, स्वाहा ।७। तप और कर्म के द्वारा ब्रह्म को जानने वाले पुरुष जिस स्थान में जाते हैं, वही स्थान ब्रह्मा मुझे प्राप्त करावें। वे ब्रह्म मुझे प्राप्त कराओ। वे ब्रह्मज्ञान प्रदान करें, स्वाहा ।८।

सूक्त ४४

(ऋषि–भृगु। देवता–ओजनम्, वरुण। छन्द-अनुष्टुप्,उष्णिक्,गायत्री)

आवुषोऽसि प्रतरण विप्रं भेयजमुच्यसे।
यदाञ्जम त्व ताते षमापो अभय कृतम ॥१
यो हरिमा जायान्योऽङ्गभेदो विसल्पकः।
सव त यक्ष्ममगेभ्यो बहिर्निहन्त्वां नम् ॥२
आंजन पृथिव्यां जात भद्र पुरुषजीवनम।
कृणोत्वप्रमामुकं रथजूतिमनागसम ॥३
प्राण प्राण ज्ञायग्वासा असवे मृड।
निर्ऋते निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुञ्च ॥४
सिन्धोर्भोऽसि विद्युतां पुष्यम्।
वातः प्राणः सूर्यश्चक्षुर्दिवस्पयः ॥५
देवांजन त्रैककुदं परि मा पाहि विश्वतः।
न त्वा तरन्त्योषधयो बाह्याः पर्वतीया उत ॥६
वीदं मध्यमवासृपद् रक्षोहामीवचातनः।
अमीवाः सर्वाश्चतयन् नाशयमभिभा इत ॥७
वह्वंद राजन वरुणनृतमाहं पुरुषः।
तस्मात् सहस्रवीर्य मुचं तः पर्यहसः ॥८

यदापो अघ्न्या इति वरुणेतियदूचिम ।
तस्मात सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यहसः ॥९
मित्रश्च त्वा वरुणश्चानुप्रे यतुरांजन ।
तौ त्वानुगत्व दूर भोगाय पुनरोहतुः ॥१०

हे आँजन ! तू सौ वर्ष भी पूर्ण आयु को प्राप्त करता है और चिकित्सकों का कहना है कि तू ब्राह्मणके समान शुद्ध और मंगलरूपहै। हे आंजन ! तू जल देवता सहित हमको सुख देने वाला हो ।१। शरीर को हरे रंग का बना देने वाला पांडुरोग अत्यन्त कष्टसाध्य होता है । आंजनमणि को धारणकर्त्ता पुरुषके वातादि जन्य अङ्गभेद विसर्पादिव्रण तथा अन्य सब रोग इस मणि से नष्ट हो ।२। यह आंजनमणि कल्याण का देने वाला और मनुष्यों को जीवन देने वाला है । व मुद्य मृत्यु से बचाने और रथ के समान वेग वाला तथा पाप से रहित करे ।३। हे प्राणरूप आंजन ! मेरे प्राण की रक्षा कर वह अकाल का ग्रास न बने तू उसके लिये सुख दे, पापदेवता निर्ऋति के बन्धन से छुड़ा तू सिंधु का गर्भ और विद्युतोंका पुष्प है । तू वातरुद्र प्राण है, तू सूर्यरूप निश्रेन्द्रिय है तू त्रिककूद पर्वत में उत्पन्न हुआ है । देवाजन ! सब ओर से मेरी रक्षा करें अन्य पर्वतों से उत्पन्न औषधियाँ तथा पर्वतोंमें अन्यत्र उत्पन्न औषधियाँ तेरी समानता नहीं कर सकती । वह आंजान रोगनाशक है, पर्वत से नीचे जाकर हर पदार्थ में व्याप्त होने से समर्थ है वह सब रोगों का दमन कर सकता है।४-७। हे वरुण! यह प्रातः समय से सोने के समय तक बहुत सा मिथ्याभाषण कर चुका है इसे क्षमा करो । हे औषधे ! तू मिथ्या भाषण के पाप से हमको क्षमा कर।८।हे जलो हे गौओं ! हमने जो कुछ कहाहै, उसके हम साक्षी हैं । हे वरुण! हमारी बात को तुम जानते हो । हे त्रैदकुद पर्वतोत्पन्न आंजन ! इन सब पापों से हमको छुड़ाओ ।९। हे आंजन! मित्रावरुण स्वर्गसे पृथिवी पर आये और लौटकर तेरे पीछे गये उन्होंने उस समय तुझको फिर लौटकर आने की अनुज्ञा दी ।१०।

सूक्त ४५

(ऋषि–भृगुः । देवता–आंजन, अग्न्नादयो मन्त्रोक्ताः ।
छन्द–अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, बृहती)

ऋणादृणमिव सनयन् कृत्यां कृत्याकृतो गृहम् ।
चक्षर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि श्रृणांजन ।।१
यदस्मासु दुःष्वप्न्य यद् गोषु यच्च नो गृहे ।
अन ामगस्तं च दुर्हार्दः प्रियः प्रति मुचाताम् ।।२
अपामूर्जं ओजसो बावृधानमग्नेर्जातमधि जातवेदसः ।
चतुर्वीर पर्वतोय यदाञ्जनं दि॰ पृदिशः करदिच्छिवास्ते ।।३
चतुवार बध्यत आञ्जन ते सर्वा दिशो अभयास्ते भवन्तु ।
ध्रुवस्तिष्ठासि सवितेव चार्य इमा विश हरन्तु ते वलिम् ।।४
आक्ष्वंकं मणिमेक कृणुष्व स्नाह्य`केना पिबैकमेषाम् ।
चतुर्वीर नंॠतेभ्यश्चतुर्भ्यो ग्राह्या बन्धेभ्य परिपात्वस्मान ।।५
अग्निर्माग्निनावतु प्राणापापानायायुषे वर्चसे ओजसे तेजसे ।
स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ।।६
इन्द्रो मेन्द्रियेणावतु प्राणायापानायायुषे वर्चसे ओजसे तेजसे ।
स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ।।७
सोमो मा सौम्येनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चसे ओजसे तेजसे।
स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ।।८
भगो मा भगेनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चसे ओजसे तेजसे ।
स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ।।९
मरुतो मा गणैरवन्त प्राणायापानायायुषे वर्चसे ओजसे तेजसे ।
स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ।।१०

जैसे ऋण लेने वाला पुरुष उसे ऋणदाता को ही लौटा देता है, वैसे ही उत्पीड़नार्थ भेजी हुई कृत्या को हे सूर्य हे चक्षु रूप आंजन! तू भेजने वाले पुरुष को ही लौटा और उसके पार्श्व आदि का श्रवण कर

।१। हममें जो दुःस्वप्न का भय है, गौओं में जो दुःस्वप्न उपस्थित है, उसे अनजान बैरी पुरुष स्वर्णभूषणों के समान धारण करे ।२। यह त्रिक्कुदांजन ओज का बढ़ाने वाला, चारों दिशाओं में कुण्ठित न होने वाला, जलों का रस रूप, अग्निके पास प्रकट होता हूँ, यह चारोंसूत्रों को देने में समर्थ है। दिशाओं और कोणोंको हमारे लिए सुख देने वाले करे ।३। हे रक्षा काम्य पुरुष । यह आंजनमणि चारों दिशाओं में वीर्य रूप है । इसे तेरे लिए बांधताहूँ । तेरे लिए सब दिशायें भय रहितहों। तू सूर्यके समान तेजस्वीहो और यह प्रजायें तुझे स्वर्ण,मणि रत्न आदि से युक्त भेंट दे ।४। हे पुरुष ! तू एक अंजन को मणि बना, एक को आज और एक से स्नान कर । यह आंजन चतुर्वीर हैं। निर्ऋति देवता के पाश से यह आंजन रूप औषधियां रक्षा करने वाली हों ।५। अग्नि-देव अपने सभी गुणों सहित मेरी रक्षा करें प्राणापान, आयु वर्च,ओज तेज, कल्याण और अपत्य के लिए मेरे रक्षक हों ।६। इन्द्र प्राणापान आयु,वर्च,ओज, तेज कल्याण और सुभूति को प्राप्ति के निमित्त ज्ञाने-न्द्रिय और कर्मेन्द्रियों को सुदृढ़ करते हुए मेरे रक्षक हों ।७। सन्तापको तृप्त करने वाले सौम्य रस के द्वारा सोम मेरी रक्षा करें । प्राण अपान आयु, वर्च, ओज, तेज, मगला सुभूतिके लिए वह मेरी रक्षा करने वाले हो ।८। ऐश्वर्य सम्पादक गुण के द्वारा भग देवता मेरे रक्षक हों । वे प्राण, अपान, आयु, वर्च, ओज. तेज, मंगल सुभूति के लिए भी मेरी रक्षा करे ।९। मरुद्गण प्राण, अपान, आयु, वर्च, ओज, तेज, मंगल, सुभूति के हेतु मेरी रक्षा करें १०।

सूक्त ४६

(ऋषि—प्रजापति । देवता—अस्तृततणि: । छन्द—त्रिष्टुप्, प्रभृति)

प्रजापतिष्टवा वघ्नात् प्रथममस्तृत वीर्याय कम ।
तत् ते बघ्नाम्यापुषे वर्चस ओजसे च बलाय ।
चास्तृत त्वाभि रक्षतु ॥१

ऊर्ध्वस्तिष्ठतु रक्षन्नप्रसादमस्तृतेमं मा त्वादभत् पणयोयातुधाना।
इन्द्रइव दस्यूनव धून्ष्व पृयन्यत: सर्वाञ्छत्रून् वि ।
पहस्व स्तृतस्त्वाभि रक्षतु ।।२
शत च न प्रहरन्तो निघ्नन्यो न तस्तिरे ।
तग्मिन्निद्र: पर्यदत्त चक्षु: प्राणतथो बलमस्तृत त्वाभि रक्षतु ।।३
इन्द्राय त्वा वर्मणा परि घापयामा यो देवानामधिराजो वभूव ।
पुनस्त्वा देव: प्रणयन्तृ सवऽस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ।।४
अस्मिन् मणावेकशतं वोर्याणि सहस्र प्राणा अस्मिन्नस्तृते ।
व्याघ्र: शत्रूनभि तिष्ठ सर्वान् यस्त्वा पृत न्यादधर: ।
सो अस्त्वस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ।।५
घतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान्त्सहस्रपाण: शतयोर्निर्वयोधा: ।
शंभूश्च मयोभूश्चोजस्वांश्च पयस्वांश्चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ।।६
यथा त्वमुत्तरोऽसो असपत्नहा ।
सजातानामसद् वशी तथा त्वा सविता करदस्तृतस्त्वाभिरक्षतु।७

हे मणे ! तू दूसरों द्वारा अवतरित तथा शत्रुओं को वश में करने वालीहै सृष्टिके आदिमें तुझे विधाताने धारण किया था हे पुरुष! ऐसी को तेरे बाँधता हूँ, आयु, वर्च, ओज और तेज बल की प्राप्ति से यह मणि तेरी रक्षक हो ।१। हे अस्तृत मणे ! तू सर्व श्रेष्ठ रहती हुई इस पुरुष की रक्षा कर। मणि जातीय असुर तेरी शक्ति को क्षीण न कर पावे । हे पुरुष ! जैसे इन्द्र शत्रुओं को गिराते हैं, वैसेही तू उन्हें ओंधे मुख गिरा । युद्ध रत शत्रु सेना को वश कर । यह मणि इन कार्यों में तेरी रक्षा हो ।२ प्रहार करने वाले असंख्य शत्रु भी इस मणि से पार न पा सकें इसीलिए यह अस्तृत नाम वाली है ।४। इन्द्र ने इस मणि में चक्षु, प्राण बल को प्रतिष्ठित किया है, यह मणि तेरी रक्षा करें ।३। हे मणे ! स्वर्गस्थ देवताओं के स्वामी इन्द्र है, उनके कवच से हम तुझे आच्छादित करतेहैं । फिर सब देवतातुझे अपने-अपने कवचोंसे आच्छा

दित करनेको ग्रहण करें। ऐसा होने पर तू इस धारण कर्ता पुरुष की रक्षक बन।४। यह मणि एकसौ एक वीर्योंसे युक्त हैं और सब देवताओं से अनुग्रहीत होनेके कारण उन सबके असंख्य प्राण बलभी इसमें व्याप्त है। हे पुरुष ! तू ऐसी मणि को धारण करके व्याघ्र के समान शत्रुओं पर पहुँचे। युद्ध काम्य शत्रु सेना निर्वीय हो, इसलिए यह मणि तेरी रक्षक हो।५। सर्व देवताओं की कृपा के कारण असीमित बल वालों, घृत मधु से सिंचित इन्द्र कवच से आच्छादित यह मणि शत्रु को भगाने के अनेक साधनों से सम्पन्न है। हे पुरुष धारण करने पर यह शरीर सुख, अन्न, पुत्र, पशु आदि का सुख देने वाली है। यह तेरी रक्षा करे।६। हे पुरुष ! तू सर्व श्रेष्ठ हो शत्रु से हींन हो, शत्रुओं को मार कर भगाने में समर्थ हो, विद्या धन, कर्म में समान पुरुषों से श्रेष्ठ हो। सविता देवता तुझे ऐसा करें और यह अस्वत मणि भले प्रकार तेरी रक्षा करें।७।

सूक्त ४७

(ऋषि–गोपथः। देवता–रात्रिः। छन्द–बृहती, जगती, अनुष्टुप्)

आ रात्रि पार्थिवं रज पितुरप्रायि धानभिः।
दिवः सदांसि वृहती वि तिष्ठम आ त्वेषं वर्नते तमः॥१
न यस्या पारं दहृशे न योयुवद विश्वतस्यां
नि निशते यदेजति।
सरिष्ठासस्त उर्वि तमस्वति रात्रि पारमशीमहि।
भद्रे पारमशीमहि॥२
ये ते रात्रि नृचक्षसो द्रष्टारो नवतिर्नव।
अशीति सन्त्यष्टा उतो मप्त सप्यतिः॥३
षष्टिश्च षट् च रेवति पञ्चाशत् पञ्ज सुम्नाय।
चत्वारश्चत्वारिंशच्च वाजिनि॥४

द्वौं च ते विंशतिश्च ते रात्र्येकादशावमाः ।
तेभिर्नो अद्य पायभिर्नु पाहि दुहितर्दिवः ॥५
रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत मा नो दुःशंस ईशत ।
मा नो अद्य गवां स्तेनो मावीनां वृक ईशत ॥६
म श्वानां भद्रे तस्करो मा नृणां यातुधाः ।
परमेभिः पथिभि स्तेनो धावतु तस्कारः ।
परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ॥७
अर्धं रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमंह कृणु ।
हनू वृकस्य जम्भययास्तेन तं द्रुपदे जहि ॥८
त्वयि रात्रि वसामसि स्वविष्यामसि जागृहि ।
गोभ्यो न शर्म यच्छाश्वेभ्यः पुरुषेभ्यः ॥९

हे रात्रि ! तेरा अन्धकार पृथिवी के सब स्थानों में, स्वर्ग और अन्तरिक्ष के सब स्थानों में भर गया है हरे नीले रङ्ग का यह तप तीनों लोकों पर छा गया । सब ओर अन्धेरा ही अन्धेरा है ।१। जिस रात्रि में यह विश्व विभक्त नहीं होता एकही दिखाई देताहै, चेष्टावान् प्राणी चलनेमें असमर्थ होता हुआ जहाँ का तहाँ स्थिति हो सो जाताहै हे प्रभृत तममयी रात्रि! हम सब अहिंसित रहते हुए तुझसे पार हों ।२ हे रात्रि ! मनुष्यों के कर्म फलको देखने वाले तुम्हारे जो निन्यानवेगण है तथा अठ्ठासी और सतत्तर गणहै उन सबके द्वारा तुम हमारी रक्षा करो ।३। हे रात्रि! तुम्हारे छियासठ, पचपन और चबालीसगण हमारे रक्षकहों।४। हे रात्रि! तुम्हारे वाईस या ग्यारह गण हैं उन सबके सहित हमारी रक्षक होओ ।५। मुझे मारने की धमकी देने वाला कोईभी शत्रु मुझ पर न चढ़ सके, दुर्वाक्य वाला कोईभी दुष्ट मुझ पर अधिकार न कर पावे, चोर हमारी गौओंको चुरा न पावे, शृंगाल हमारी भेड़ोंको न ले जाय । हे रात्रि! ऐसा करो ।६। हे रात्रि! तस्कर हमारे घोड़ेका अपहरण न करसके । राक्षसियों और पिशाच मेरे मनुष्योंको हिंसित न कर पावे । चार अन्य मार्गोंसे होताहुआ चला जाय दांत वाली सर्पिणी आदि भी अन्य मार्गगामिनी हो और हिंसात्मक विचार वाला पापीभी

दूर चला जाय ।७। हे रात्रि ! पीड़ित करने वाले प्रकगास युक्त सर्प को मस्तक हीन करो । भेडिये की ठोड़ियों को नष्ट करके उसे मरवा दो ।८। हे रात्रि ! तुम्हारी रक्षा के बल पर हम टिकेहैं और उसीके द्वारा निद्रा को प्राप्त होंगे । तुम हमारी गौ, अश्व, सन्तान आदि को सुख देती हुई हमारी रक्षा में तत्पर रहो ।९।

सूक्त ४८

(ऋषि—गोपण: । देवता--रात्रि: । छन्द--गायत्री, अनुष्टुप्, पंक्ति)

अथा यानि च यस्मा ह यानि चान्त: परीणहि ।
तानि ते परि दद्मसि ।।१
रात्रि कातरुषसे न: परि देहि ।
उषा नी अह्ने पर ददात्वहस्तुभ्य विभावरि ।।२
यत् किं चेद पतयति यत् किं चेदं सरीसृपम ।
यत् किं च पयतायासत्व तस्मात् त्वं रात्रि पाहि न: ।।३
स पश्चात् पाहि सा पुर सोत्तरादधरादुत ।
गोपाय ना विभावरि स्तोतारस्त इह स्मसि ।।४
ये रात्रिमनुतिष्ठिन्ति य च भूतेषु जाग्रति ।
पशून् ये सर्वान् रक्षान्ति ते न आत्मसु जाग्रतिं ।
ते न: पशुषु जाग्रति ।।५
वेद वै रात्रि ते नाम घृताची नाम वा असि ।
तां त्वा भरद्वाजो वेद सा नो वित्तोऽधि जाग्रति ।।६

खुले हुए चरागाह में जो वस्तुयें हैं, घरमें जो वस्तुयें हैं उन सबको हे रात्रि ! हम तुम्हें सौंपते हैं ।१। हे रात्रि! तुम माता को समान रक्षा करने वाली हो । अपने बादहोने वाले उषाकालकी हमारी रक्षाके लिए प्रदान करो । वह दिन फिर तुम्हें हमको दे दें ।२। आकाश में उड़ने वाले पक्षी और पृथिवी पर सरकने वाले सर्पादि ,पर्वत और जंगल में गमन वाले सिंह आदि इन सब हिंसकों से हे रात्रि! हमारी रक्षा करो

।३। हे रात्रि ! हमारे सोने बैठने के स्थानों की चारों दिशाओंसे रक्षा करो। हम तुम्हारा ही स्तोत्र कर रहे हैं ।४। रात्रि से सम्बन्धित अनुष्ठान आदि करते हुए जो पुरुष रक्षार्थ जागते हैं और जो रात्रि के चोरी आदि कर्मोंसे सावधान रहते हैं, वे पशुओं और मनुष्यों की रक्षा के लिए जागते रहें ।५। हे रात्रि ! तू घृताची कहलाती है, इस बात को भारद्वाज ऋषि जानते हैं। ऐसी हे रात्रि ! हमारे पशु आदि की रक्षा के लिए तू सावधान रह ।६।

सूक्त ४९

(ऋषि=गोपथ: भारद्वाजश्च । देवता–रात्रि । छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्ति, जगती)

इषिरा योषा युवतिर्दमूना रात्री देवस्य सवितुर्भगस्य ।
अश्वक्षभा सुहवा संभृतश्रीरा पप्रौ द्यावापृथिवी महित्वा ।।१
अति विश्वान्यरुहद गम्भीरो वर्षिष्ठमरुहन्त श्रविष्ठा: ।
उशती राव्यनु सा भद्राभि तिष्ठते मित्रइव श्वधाभि: ।।२
वर्ये वन्दे सुभगे सुजात आजगन रात्रि सुमना इह स्याम् ।
अस्मांस्त्रायस्व नर्याणि जाता अथो यानि गव्यानिपुष्टया ।।३
सिंहस्य रात्र्युशती पांषस्य व्याघ्रस्य द्वीपिनो वर्च आ ददे ।
अश्वस्य व्रघ्नं पुरुषस्य मायुं पुरु रूपाणि कृणुषे विभाती ।।४
शिवां रात्रिननुसूय च हिम य माता सुहवा नो अस्तु ।
अस्य स्तोमस्य सुभगे नि बोध येन त्व: वन्दे विश्वासु दिक्षु ।।५
स्तोमस्य नो विभावरि रात्रि राजेव जोषसे ।
असाम सर्ववीरा भवाम सर्ववेदसो व्युच्छन्तीरनूषस: ।।६
शम्या ह नाम दधिषे मम दिप्सन्ति ये धना ।
रात्री ह तानसुतपा य स्तेनो न विद्यते वत् पुनने विद्यते ।।७
भद्रासि रात्रि चमसो न विष्टो विष्वङ् गोरुप युवतिर्विभर्षि ।
चक्षुष्मती मे उशतो वपूषि प्रति त्व दिव्या न क्षाममुक्था. ।।८

या अद्य स्तेन आयत्यघायुमर्त्यो रिपुः ।
रात्री तस्य प्रतीत्त प्र ग्रावाः प्र शिरो हनत् ।।६
प्र पादौ न यथायति प्रस्ह तौ न यथाशिषत ।
यो मलिल्लुरुपायति स सपिष्टो अपायति ।
अपायति स्वपायति शुष्के स्थाणावपायति ।।१०

एक अवस्था वाली, सबके द्वारा पूज्य चक्षुओं को तिरस्कृत करने वाली, आह्वानीय, रात्रि विश्व में व्याप्त होने एकाकार वाली लगती है। द्यावापृथिवी उस रात्रि की महिमा से युक्त हो रहे हैं ।१। सर्वत्र व्याप्त इस रात्रि की सब स्तुति करते हैं,यह सब वन पर्वत समुद्र आदि को आच्छादित किए हुए हैं। यजमान आदि के अन्नदान के प्रभाव से सूर्य जैसे जगत पर चढ़ते हैं, वैसे ही यह भी जगत पर छा जाती है।२ हे सुन्दर जन्म वाली सौभाग्वती रात्रि ! तू आ गई। मैं तुझे पाकर सुन्दर मन वाला बनूँ तब तुम प्रसन्न होकर मेरे पुत्र, पुत्रादि की रक्षा करो और मनुष्यों और पशुओं के हित वाले पदार्थों की भी रक्षाकरो ।३। यह रात्रि, सिंह, हाथी, गेंडा आदि के तेजों को खींचती है, प्राणी के आह्वान रूप शब्द और अश्व के वेगको भी खींच लेतीहै। हे रात्रि! तुम इस प्रकार विशेष रूपसे दीप्तिमती होकर अपने अनेक रूप प्रकट करती हो ।४। हे रात्रि! तू मंगलमयी है, मैं तुम्हारी स्तुति करताहूँ। रात्रि के भरण करने वाले सूर्य की भी स्तुति करता हूँ। वह रात्रि हिम का उत्पादन करने वाली है। हे रात्रि! मेरी स्तुतिको भले प्रकार जानो जिससे तुम सर्वत्र व्याप्त की वन्दना कर सकूँ ।५। हे विभावरि जानो जैसे अपने प्रशंसकों की स्तुतियों को प्रसन्न होता हुआ सुनताहै, वैसे ही तुम हमारे स्तोत्र से प्रसन्न होओ ।६। तुम्हारे स्तोत्र सुनने पर हम पुत्र पौत्र और वेनों से सम्पन्न उषाकलोंसे युक्त रहे ।७। हे रात्रि! तुम शत्रुओं का गमन करने से शय्या हो। मेरे धन के अपहारकों के प्राणी को सन्तप्त करती हुई आगमन करो। चोर नष्ट भी हो जाय और पुनः प्रकट न हो, ऐसी कृपा करती हुई आओ ।८। हे रात्रि ! तुम सर्वत्र व्याप्त होने वाली और अन्धकार से

सम्पन्न धेनु रूप और चमस के समान मंगलमयी हो। तुम हमको पुष्ट करती हुई, दर्शन इन्द्रिय देती हुई आओ और जैसे दिव्य शरीरको नहीं छोड़ती वैसे हमारे शरीरों को पृथिवी पर न छोड़ ।८। जो अघायु धन का अपहरण करने या बध रूप पाप करने के लिए आ रहा हो, वह शत्रु रात्रिके तेज से संतप्त होकर हमसे दूर भागे और रात्रि देवता उसकी ग्रीवा और कंठ को भी काट डालो ।९। पाँव, हाथ से भी हीन होकर वह शत्रु अगाध निद्रा को प्राप्त हो और शुष्क वृक्षके नीचे स्थान प्राप्त करे ।१०।

सूक्त–५०

(ऋषि–गोपथ: । देवता—रात्रि: । छन्द–अनुष्टुप्)

अधं रात्रि तृष्टधूमभशीर्षाणमहिं कृणु ।
अक्षौ घृकस्य निर्जह्यास्तेन तं द्रु पदे जहि ।।
ये ते रात्र्यनड्वासस्तीक्ष्णशृगा स्वाशव: ।
तेभिर्नो अद्य पारयाति दुर्गाणि विश्वहा ।२
रात्रिंरात्रिमरिष्यन्तस्यरेम तन्वा वयम् ।
गम्भीरमपृलवाइव न तरेयुररातय: ।३
तथा शाम्याक: प्रततश्नन्नपवान् नानुविद्यते ।
एवा रात्रि प्र पानय यो अस्माँ अभ्यघायति ।४
अप स्तेनं वासो गोअजमुत तस्दरम् ।
अथो यो अर्वत: शिरोऽभिधाय निनीषति ।५
यदद्या रात्रि सुभगे विभजन्त्ययो वसु ।
यदेतदस्मान् भोजय तथेदन्यानुपायसि ।६
उषसे न: परि देहि सर्वान् रात्र्यनागस: ।
उषा नो अह्ने आ भजादसस्तुभ्यं विभावरि ।७

जिस सर्प का धूम रूप श्वास कष्टदायक है उसे हे रात्रि ! शीर्ष-हीन करो। शृगाल को तेजहीन करके वृक्ष से स्थान में मारकर डाल

हे रात्रि ! तुम्हारे तीक्ष्ण शृङ्ग वाले वृषभ शीघ्र गति वाले हैं, उनके द्वारा तू न जीते जाने योग्य अनर्थों से पार कर ।२। हम अपने पुत्रादि सहित रात्रि को लाँघ जाँय, परन्तु हमारे शत्रु रात्रि को न काट सकें। साधन-हीन मनुष्य गम्भीर नदी में जाकर डूब जातेहैं, वेसे ही हे रात्रि ! तुम्हारे रक्षा रूप नाव से रहित हमारे शत्रु मार्ग में ही नाश को प्राप्त हों ।३। हे रात्रि ! हमारे लिए पाप रूप होकर जो शत्रु आ रहा है, उसे पके हुए शाम्यक के समान पृथिवी पर गिरा दो ।४। वस्त्रापहारक, गो और अश्वादि के अपहारक को हे रात्रि ! तुम नाशको प्राप्त कराओ ।५। हे सुभगे ! हे रात्रि ! जो शत्रु हमारे सुवर्णादि धनों को हमसे छीनना चाहते हैं, उस धन का भोगने वाला हमको बनाओ जिस मार्ग से शत्रुओं के धन को हमें प्राप्त कराती हो- उसी मार्ग से हमारे धनोंको भी हमारे पास पहुँचाओ ।६। हे रात्रि ! हमारी उषा काल तक रक्षा करो वह उषा सूर्योदय तक हमारी रक्षा करे और वह दिन सुख पूर्वक फिर तुम्हें प्राप्त करावे इस प्रकार के यह दिन रात्रि हमको धन आदि से युक्त रखते हुए शत्रुओं से रक्षित करें ।७।

सूक्त—५१

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता–आत्मा:, सविता । छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक्)

अयुतोऽहमयुतो म आत्मायुतं मे चक्षुरयुतं मे श्रोत्रम मे
प्राणोऽयुतो मेऽपानोयुतो मे व्यनौऽयुतोऽह सर्वः ।१
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो-
हस्ताभ्यां प्रसूत आ रभे ।२

मैं कर्मानुष्टान की इच्छा वाला पूर्ण हूं, मेरा शरीर भी पूर्ण है,मेरे नेत्र, श्रोत, नासिक, प्राण, अपान, व्यान सब पूर्ण हैं, मैं सर्वेन्द्रिय हूं ।१। हे कर्म ! मैं प्रयोग करने वाला पुरुष सबको प्रेरणा देने वाले सवितादेव की प्रेरणा से, अश्विनीकुमारों की भुजाओं से और पूषा के हाथों से तुझे प्रारम्भ करता हूँ ।२।

सूक्त—५२

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता–कामः, छन्द–त्रिष्टुप्, उष्णिक, बृहती)

कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
स काम कामेन बृहता सयोनी रायस्पोषं यजमानाय धेहि ।१
त्वं काम सहसासि प्रतिष्ठितो विभुर्विभावा सख आ सखीयते
त्वमुग्रः पृतनासु सासहिः सह ओजो यजमानाय धेहि ।२
दूराच्चकमानाय प्रतिपाणायाक्षये ।
आस्मा अशृण्वन्नाशाः कामेनाजनयन्त्स्वः ।३
कामेन मा काम आगन् हृदयाद्धृदयं परि ।
यदमीषामदो मनस्तदैतूप मामिह ।४
यत्काम कामयमाना इद कृण्मसि ते हविः ।
तन्नः सर्व समृध्यतामथैतस्य हविषो वीहि स्वाहा ।५

सृष्टि के पूर्व परमात्मा के मन में काम भले प्रकार व्यप्त हो गया । हे काम! सृष्टि रचना के लिए प्रथम उत्पन्न हुआ तू परमात्मा का सयोनि हैं ! तू हविदाता यजमान को धनकी पुष्टि में स्थापित कर ।१। हे काम ! तुम साहस से प्रतिष्ठित हो, तुम विभ और विभावा हो । हे मित्र ! तुम हमारे प्रति-मित्र रखते हो । तुम शत्रुओं को वश करने वाले एवं महान बली हो इस यजमान को ओज और बल प्रदान करो । ।२। पूर्वादि सब दिशाओं ने उस दुर्लभ फल की अभिलाषा करने वाले यजमान को इच्छित फल प्राप्त कराने और अक्षत फल द्वारा सुख प्रदान करने का निश्चय किया है ।२। अभीष्ट फल की कामना से सम्पन्न फल मुझे मिले और ब्राह्मणों का फल प्राप्त युक्त मन भी मुझे प्राप्तहो ।४। हे कामदेव ! जिस फल की कामना से हम तुम्हारे लिए हवि दे रहे हैं, उस हविर्भाव को ग्रहण करो और हमारा इच्छित फल पूर्ण

सूक्त—५३

(ऋषि—भृगुः । देवता—कामः । छन्द—त्रिष्टुप्, बृहती, अनुष्टुप्)

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः।
तम रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ।१
सप्त चक्रान् वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतं न्वक्षः
स इमा विश्वा भुवनान्यञ्जत् कालः स ईयते प्रथमो नु देवः ।२
पूर्ण कुम्भोऽधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः ।
स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ्कालं तमाहुः परमे व्योमन ।३
स एव सं भुवनान्याभरत् स भवमानि पर्येत् ।
पिता सन्नभवत् पुत्र एषां तस्माद् वै नान्यत् परमस्ति तेजः ।४
कालोऽमूं दिवम जानयत् काल इमाः पृथिवीरुत ।
काले ह भृतं भव्यं चेषित ह बि तिष्ठते ।५
कालो भूतिमसज्ञत काले पतति सूर्यः ।
काले ह विश्वा भूतानि काले चक्षुर्वि पश्यति ।६
काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम् ।
कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः ।७
काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम् ।
कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः ।८
तेनेषितं तेन जातं तदु तस्मिन् प्रतिष्ठितम् ।
कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम् ।९
कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम् ।
स्वयम्भूः कश्यपः कालात् तपः कालाद्जायत ।१०

कालात्मक वस्तुओंको व्याप्तकर लेने वाले वह अश्व सप्तरश्मिवाले, सहस्र नेत्र वाले नित्ययुवा, भूरि वीर्ययुक्त हैं। उस अश्व-रूप पर बुद्धिमान

ही आरूढ़ होते हैं। उस अश्व के चक्र समस्त लोक हैं ।१। कलात्मक संवत्सर सात चक्रों (ऋतुओं) को वहव करता है यह चक्र इसके नाभि-रूप हैं अमृत अक्ष है। यही कलात्मक ब्रह्म चराचरात्मक विश्वकी रचना और यही उसका नाश करता हुआ स्थित रहता है ।२। संसारके कारण-भूत परमेश्वर काल से कुम्भ के समान पूर्णतया व्याप्त हैं। हम साधु पुरुष उस काल को अनेक भेद से देखते हुए उसे व्योम के समान निर्लेप बताते हैं ।३। वही काल परमात्मा प्राणियों को उत्पन्न करते हैं, वही भुवनरूप से हैं, वहीं इनके पिता होते हुए भी पुत्र हो जाते हैं इस काल से श्रेष्ठ अन्य कोई तेज नहीं है ।४। द्युलोक और प्राणियों को आश्रय देने वाली पृथिवी को काल से ही प्रकट किया। भूत, भविष्य और वर्तमान भी इस काल के ही आश्रित हैं ।५। इस संसार की रचना उसी काल ने की। काल की प्रेरणा से ही सूर्य इस विश्व को प्रकाशदेते हैं। सब प्राणी काल के ही आश्रित हैं। इन्द्रियों का अधिष्ठाता कालमें ही अपनी इन्द्रिय-संचालन आदि क्रियाओं को करता है।६। उसी काल में सृष्टि रचना का मन रहता है, उसी में संसार में अन्तर्यामी रूप से निवास करने वाला प्राण निवास करता है। आगत कालसे ही सब प्रजा अभीष्ठ-सिद्धि को प्राप्त कर प्रसन्न होती है।७। काल ही तप है, काल ज्येष्ठ है, काल में ही ब्रह्म प्रतिष्ठित हैं। काल सभी का ईश्वर, पिता और प्रजापति है ।८। यह जगत काल से ही उत्पन्न हुआ और काल में ही प्रतिष्ठित है। काल ही ब्रह्मा होता हुआ परमेष्ठी ब्रह्म को धारण करता है ।९। काल ने पहले प्रजापति को उत्पन्न किया, फिर प्रजाओं की रचना की काल के कश्यप हुए। वह काल स्वयम्भु हैं ।१०।

सूक्त—५४

(ऋषि—भृगुः। देवता-कालः। छन्द—अनुष्टुप्, गायत्री, अष्टि)

कालादापः समभवन् कालाद् ब्रह्म तपो दिश
कालेनोदेति सूर्य काले नि विशते पुनः ।१

कालेन वातः पवते कालेन पृथिवी मही ।
द्यौर्मही काल आहिता ।२
कालो ह भूत भव्यय च पुत्रो अजनयत् पुरा ।
कालादृचः समभवन यजुः कालादजायत ।३
कालो यज्ञं समैरयद्देवेभ्यो भागामक्षितम ।
काले गन्धर्वाप्सरसः काले लोकाः प्रतिष्ठिताः ।४
कालेऽयमङ्गिरा देवोऽथर्वा चाधि तिष्ठतः ।
इमं च लोकं परमं च लोक पुण्यांश्च लोकान् विधृतीश्च पुण्याः।
सर्वाल्लोकानभिजित्य ब्रह्मणा कालः स ईयते परमो नु देवः ।५

काल से ही जलों की उत्पत्ति हुई, काल से ही ब्रह्म तप, दिशायें और सूर्य उत्पन्न हुए । काल ही सूर्य को फिर अस्त कर देता है ।१। काल से वायु वहता है, काल से ही पृथिवी महिमामयी हुई है और द्युलोक भी काल के ही आश्रित है ।३। काल ने ही भूत, भविष्य पुत्र, पुर, ऋचा और यजुर्वेदी उत्पत्ति हुई है।३। काल ने ही यज्ञको देवताओं के भाग रूप से प्रकट किया, काल से ही गन्धर्व, अप्सरायें हुई यह सब लोक उस काल के ही आश्रित हैं ।४। यह अङ्गिरा, अथर्वा आदि महर्षि कालसे ही हुए । वह काल इस परलोक स्वर्ग तथा अन्य लोकों को देश, काल, कारण से रहित परमलोक के द्वारा व्याप्त करके वित रहता है ।

सूक्त—५५

(ऋषि—भृगुः । देवता—अग्नि ।: छन्द—त्रिष्टुप्,
पङ्क्ति, उष्णिक्)

रात्रिरात्रिमप्रयात भरन्तोऽतोश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम् ।१
या ते वसोर्वात इषुः सा त एषा तंया मो मृड ।
रायस्पोषेण सनिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम् ।२

सायसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रात-प्रातः सौमनसस्य दाता ।
वसोर्वसोर्बसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ।३
प्रातः प्रायगृंहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनस्य दाता ।
वसार्वसोर्वसुदान एधोन्धानास्त्वा शतहिमा ऋधेम ।४
अपश्चादग्धान्नस्या भूयासम ।
अन्नादायान्नपतये रुद्राय अग्नये ।५
सभ्य सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ।
त्वयेदगा पुरूहूत विश्वामायुर्व्यंश्नवम् ।६
अहरहर्बलिमित्ते हरन्तोऽश्वाये तिष्ठते घासमग्ने ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ।७

हे अग्ने ! गार्हपत्य आदि रूपों में वर्तमान तुम पूजन योग्य को हवि देते हुए हम इच्छित अन्न और धन सम्पन्न रहें तथा तुम्हारा, सामीप्य करके नाश को प्राप्त न हों ।१। हे अग्ने ! तुम अपनी अन्न देने वाली जो कृषामयी मति है, उसके द्वारा सुख प्रदान करो । हम तुम्हारा सामीप्य धन पाकर धनसे पुष्ट और अन्नसे सम्पन्न रहें । हमनष्ट न हों ।२। गार्हपत्य अग्नि प्रातः और सायं दोनों समय हमको सुख देते हैं । हेअग्मे ! तुम हमारे पास वृद्धि को प्राप्त होते हुए हमको धन दो । हम तुम्हें हवियों से प्रदीप्त करते हुए अपने शरीरों को स्वस्थ रखें ।३। गार्हपत्य अग्नि प्रातः सायं कालों में हमें सुख प्रादन करते हैं । हे अग्ने! तुम वृद्धि को प्राप्त होते हुए हमको सब का धन दो । हम तुम्हें हवियों से दीप्त करते हुए सौ वर्ष तक जीवें ।४। पात्र के पेदे में जल हुए अन्न को मैं न पाऊँ । अन्न सेवन करने वाले अन्नपति रुद्रात्मक अग्निको नमस्कार करता हूँ ।५। सभा में प्रतिष्ठित होने वाले तुम मेरे पुत्र मित्रादि के रक्षक होओ । सभासद इस सोम के रक्षक हों ।५। इन्द्र और अग्ने ! तुम ऐश्वर्यवान् हो । हमको जीवन भर अन्न दो । हमको आयु दो । अश्व को तृण देने के समान जो तुमको नित्यप्रति हवि देते हैं, उन्हें अन्न प्रदान करो ।७।

सूक्त–५६

(ऋषि–यमः । देवता—दुःस्वप्ननाशनम् । छन्द–त्रिष्टुप्)

यमस्य लोकादध्या वभूविथ प्रमदा मर्त्यान प्र युनक्षि धीरः ।
एकाकिना सरथं यासि विद्वान्त्स्वप्न मिमानो असुरस्य योनी ।१
बन्धस्त्वाग्रे विश्वचया अपश्यत् पुरा रात्र्या जनितोरेके अह्नि ।
ततः स्वप्नेदमध्या बभूविथ भिषग्भ्यो रूपमपगूहमानः ।२
वृहद्गावासुरेभ्योऽधि देवानुपावर्तत महिमानमिच्छन् ।
तस्मै स्वप्नाय दधुराधिपत्यं त्रयस्त्रिंशासः स्वरानशानाः ।३
नैतां विदुः पितरो नोत देवा येषां जल्पिश्चरत्यन्तरेदम ।
त्रिते स्वप्नमदधुराप्त्ये नर आदित्यासो वरुणेनानुशिष्टा ।४
यस्य क्रूरमभजन्त दुष्कृतोऽस्वप्नेन सुकृतः पुण्यमायुः ।
स्वमर्दसि परमेण उन्धुना तप्यमानस्य मनसोऽधि जज्ञिषे ।५
विद्म ते सर्वाः परिजाः पुरस्ताद् विद्म स्वप्न यो अधिषा इहाते।
यशस्विनो नो यशसेह पाह्यारद् द्विषेभिरप याहि दुरम् ।६

हे पिशाच ! तू यमलोक से दुःस्वप्न के रूप में पृथिवी पर आया है और निर्भय होकर तू स्त्री पुरुष के निकट जा पहुँचता है और तू दुःस्वप्न ग्रस्त पुरुष के रथ पर एक साथ बैठकर हो जाता है ।१। हे दुःस्वप्न ! तुझे प्रजापति आदि निरात्रि की रचनासे पहले और बिधाता ने सृष्टि के आरम्भ में देखा था, तभी से तू इस संसार पर छाया हुआ है । चिकित्सकों के सामने तू अन्तर्हित हो जाता है ।२। यह दुःस्वप्न असुरों के यहाँ से चल कर महिमा प्राप्त करने की कामना करता हुआ देवताओं के पास पहुँचा, तब उन तैंतीसों देवताओं ने उस स्वप्न को अनिष्ट करने वाली शक्ति प्रदान की ।३। तैंतीस देवताओं द्वारा दुःस्वप्न को अनिष्ट फल वाली शक्ति देने वाली बात को उन देवताओं अतिरिक्त पितर भी नहीं जानते । पाप नाशक वरुण द्वारा उपदेशित आदित्यों ने महर्षि चित्रत में इसे स्थापित किया ।४। पाप करने

वाले पुरुष जिस दु:स्वप्न रूप भयंकर फलको प्राप्त करते हैं और पुण्यात्मा पुरुष जिस दु:स्वप्न के अभाव में दीर्घ आयु को प्राप्त करते हैं, ऐसे हे दुस्वप्न ! तू अपने परम बन्धु विधाता के साथ रहता हुआ प्रसन्न होता है और पापों की मृत्यु की सूचना के रूप में तू प्रकट होता है ।५

हे स्वप्न ! हम तेरे परिजन, और स्वामी के भी जानने वाले हैं तू दु:स्वप्न ने समय हमारी रक्षा करने वाला हो । तू हमसे द्वेष करने वालों को साथ लेकर दूर चला जा ।६।

सूक्त–५७

(ऋषि-यम: । देवता-दु:स्वप्ननाशनम् । छन्द-अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, जगती)

यथा कलां यथा शफ यथर्ण संनयन्ति ।
एवा दु:ष्वप्न्य सर्वमप्रिये स नायमसि ।१
स राजानो अगु: समृणान्यगु: स कुष्ठा अगु: सं कला अगृ: ।
समस्मासु यद् दु:ष्वप्न्यं निद्विषते दुष्वप्न्य सुवाम ।२
देवानां पत्नीनां गर्भ यमस्य कर प्रा भ्रद्र: स्वप्न ।
स मम य: पापस्तद द्विषते प्र हिण्म: ।
मा तृष्टानामसि कृष्णशकुनेर्मुखम् ।३
तं त्वा स्वप्न तथा स दि्म स त्वं स्वप्नाश्वइब कायमश्वइब
नीनाहम् ।

अनास्माकं देवपीयुं पियारुं वय यदस्मासु ।
दु:ष्वस्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे ।४
अनास्माकस्तद् देवपीयु:पियारुनिष्कमिव प्रति मुञ्चयाम् ।
नवारत्नीनपमया अस्माक तत: परि ।
दु:ष्वप्न्य सर्वं द्विषते निर्दयामसि ।५

जैसे यज्ञ में अवदानीय अङ्गोंको लेकर संस्कार करने वाले ऋत्विज अन्यत्र उठा ले जाते हैं, जैसे ऋण को भार समझ कर उतारते हैं, वैसे ही हम दु:स्वप्न जनित अनिष्टोंको जल के पुत्र त्रित पर उतारते हैं ।१।

जैसे शत्रु नाश के लिए एकत्र होते हैं, जैसे ऋण बढ़ते हुए एकत्र होते हैं उसे कुष्ट आदि वृद्धि को प्राप्त रोग एकत्र होते हैं, जैसे फैंके हुए खुर आदि गड्ढे में एकत्र होते हैं, वैसे ही दुःस्प्न देखने से जो अनिष्ट एकत्र हो गये हैं, उन्हें हम अपने शत्रुओं पर डालते हैं।।२। हे देव-पत्नियों के गर्भ ! हे यम के हाथ रूप स्वप्न ! तेरा मंगलमय भाग मुझे प्राप्त हो और तेरा क्रूर भाग हम शत्रु की ओर भेजते हैं। काले काक का स्वप्न के समान मुख मेरे लिये बाधक न हो।३। हे स्वप्न तेरे इस प्रकार के जन्म और आगम को हम जानते हैं। जैसे अश्व धूल से भरे शरीर को झाड़ता और काठी आदि को गिरा देता है वैसे ही हमारे तथा देवता और यज्ञों के बाधक शत्रु का तू पतन कर गौ के निमित्त अपशकुन रूप दुःस्वप्न को तू हमारे घर से हटा।४। हे देव ! उस अनिष्ट को हमारा शत्रु अलंकार के समान धारण करे हमारे दुःस्वप्न का जो बुरा फल है उसे तुम नौ मुट्ठी दूर हटाओ। हम अपने द्वेषी पर इस उत्पन्न कुफल कों प्रेरित करते हैं।५।

सूक्त---५८

(ऋषि-ब्रह्मा। देवता-मन्त्रोक्ता:। छन्द—त्रिष्टुप्, शक्वरी)

घृस्तस्य जूतिः समना सदेवा सवत्सरं हविषा वर्धयन्ती।
श्रोत्रं चक्षः प्राणोऽच्छिन्नो नोअस्त्वच्छिन्न वयमामायुषो वर्चसः१
उपास्मान् प्राणो ह्वयतामुप वयं प्राणं हवामदे।
वर्चो जग्राह पृथिव्यन्तरिक्षं वचः सोमो बृहस्पतिर्विधत्ता।२
वर्चसो द्यावापृथिवी संग्रहणी बभूवथुर्वर्चो गृहीत्वा।
पृथिवीमनु सं चरेम।
यशसं गावो गोपतिमुप तिष्ठन्त्यायतीर्यशो गृहीत्वा।
पृथिवीमनु सं चरेम।३
व्रज कृणध्व स हि वो नृपाणो वर्मा सीव्यध्वं बहुला पृथूनि।
पूरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा माः वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम्।४
यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनता जुहोमि।

इमं यज्ञ विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ।५
ये देवानामृत्विजो ये च यज्ञिया येभ्यो हव्यं क्रियते भागधेयम् ।
इमं यज्ञं सह पत्नीभिरेत्य यावन्तो देवास्तविषा मादयन्ताम् ।६

परमात्मा विषयक बुद्धि, संवत्सर रूप ईश्वर को शब्द स्पर्श हवि से परिपुष्ट करती है । साधक अपनी इन्द्रियों से हटाकर संतमाग्नि में झोंकते हैं ऐसे हम श्रोत्र, चक्षु, प्राण, आयु, वर्च आदि से युक्त रहें ।१ हमारे शरीरों का साधक प्राण हमें दीर्घजीवी बनावे । हम उस प्राण से शरीर में चिरकाल तक विद्यमान रहने को कहते हैं । पृथिवी अन्तरिक्ष सोम, वृहस्पति और सूर्य ने हमको प्रदान करने के लिए वर्च को ग्रहण किया है ।२। हे आकाश पृथिवी ! वर्च प्रदान करो । हम तुम्हारे तेज से पृथिवी और आकाश में घूमें । मुझ स्वामी को अन्न से युक्त गौएँ प्राप्त हों और हम उन गौओं के साथ ही यश को भी पाकर दोनों लोकों में घूम सकने वाले हों ।३। हे इन्द्रियो ! शरीर से मिलकर रहो क्योंकि यह शरीर ही तुम्हारा रक्षक है । तुम अपने कर्मों को भले प्रकार करो और अपने-अपने विषयों को ग्रहण करने में समर्थ होओ । चमस के समान यह भाग साधन रूप शरीर नाश को प्राप्त न हो ।४। यज्ञ के नेत्र रूप अग्नि, प्रथम पूज्य होने के कारण मुख रूप है उन अग्नि के लिए मैं श्रोत्रादि से युक्त मनके द्वारा हवि प्रदान करता हूँ । विश्वकर्मा के इस यज्ञ में अनुग्रह बुद्धि वाले इन्द्रादि देवता आगमन करें ।५। देवताओ ऋत्विज रूप तथा यज्ञा है, जिनके लिए हविर्भाग दिया जाता है, वे देवता जितने भी हैं, वे सब अपनी पत्नियों सहित इस यज्ञ में आकर हवि ग्रहण करें और हम पर प्रसन्न हों ।६।

सूक्त—५९

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—अग्निः । छन्द—गायत्रीः । त्रिष्टुप्)

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा । त्वं यज्ञष्वीड्यः ।१
यद वो प्रमिनाम व्रतानि विदुषा देवा अविदुष्टरासः ।
अग्निष्टद्विश्वादा पृणातु विद्वान्त्सोमस्य योब्राह्मणाँ आविवेश ।२

आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनुप्रवोढुम ।
अग्निर्विद्वान्त्सय जात् स इद्धोता सोऽध्वारान्त्स ऋतून कल्पयाति

हे अग्ने ! तुत मनुष्यों में जठराग्नि रूप से निवास करते हो। तुम कर्मों की रक्षा करने वाले हो। तुम यज्ञों में स्तुतियों द्वारा पूजित होते हो ।१। हे देवगण ! विद्वानों के जिस कर्मों की हम अल्प ज्ञान वाले नहीं जानते हैं, उन अन्तर्हित हुए कर्मों को अग्नि देवता सम्पन्न करते हैं। सोम की पूजा करने वाले ब्राह्मणों के समान यह अग्नि प्रतिष्ठित हैं ।२। हम जिस अनुष्ठानकी कामना करने हैं उससे यथा स्थान पहुँचाने के लिए हम देवयान मार्ग को जान गये हैं। उस देवयान मार्ग ज्ञाता के अग्निदेवकी पूजा करें क्योंकि देवताओके होता और आह्वान करने वाले वही हैं। वे अहिंसित यज्ञों का समय निश्चित करें ।३।

सूक्त–६०

(ऋषि–ब्रह्मा । देवता–वागादिमन्त्रोक्ता । छन्द–वृहती, उष्णिक्)

वाङ्म आसन्नसो: प्राणश्चक्षुरक्ष्णो: श्रोत्र कर्णयो ।
अलिता केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम् ।१
ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयो: ।
प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्मानिभृष्ट: ।२

मेरे मुख में वाणी, नासिका में प्राण, नेत्रों में दर्शन शक्ति, दाँत, अक्षुण्ण और केश पलित रोग से रहित रहें मेरी बाहुओं में वल रहे ।१ उरुओंसे ओज, जांघो में वेग और पांवों में खड़े रहने योग्य शक्ति रहे। आत्मा अहिंसित और अङ्ग पाप से शून्य हों ।२।

सूक्त–६१

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—ब्रह्मणस्पतिः । छन्द-बृहती)

तनूस्तन्वा मे सहे दतः सर्वमायरशीय ।
स्योन मे सीद पुरुः पृणस्व पवमानः स्वर्गे ।१

मैं जीवन भर अपने दांतों से खाता रहूँ, शत्रूओ के शरीर को अपने

शरीर से दबा सकूँ । हे अग्ने ! तुम मेरे यहाँ सुख से प्रतिष्ठित होओ और स्वर्ग में भी मुझे सुख से सम्पन्न रखो ।१।

सूक्त—६२

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—ब्रह्मणस्पतिः । छन्द—अनुष्टुप्)

पियं मा कृणु देवेषु पियं राजसु मा कृणु ।
पिय सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतर्ये ।१

हे अग्ने ! मुझे देवताओं का प्रिय बनाओ और मुझे राजा का भी प्रिय करो । मैं सब शूद्रों का, आर्यो का और सब देखने वालों का भी स्नेह-पात्र होऊँ ।१।

सूक्त—६३

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—ब्रह्मणस्पतिः । छन्द—बृहती)

उत् तिष्ठ ब्राह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय ।
आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्ति यजमानम च वर्धय ।१

हे ब्रह्मणस्पते ! उठो, देवताओं को यज्ञ के प्रति बोधित करो । इस यजमान की आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति तथा यजमान की भी वृद्धि करो ।१।

सूक्त—६४

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—अग्निः । छन्द—अनुष्टुप्)

अग्ने समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे ।
स मे श्रद्धाँ च मेधां जातवेदाः प्र यच्छतु ।१
इध्मेन त्वा जातवेदः समिधा वर्धयामसि ।
तथा त्वमस्माम् वर्धय प्रजया च धनेन च ।२
यदग्ने यानि कानि चिदा ते दारुणि दध्मसि ।
सर्व तदस्तु मे शिवं तज्जुषस्व यचिष्ठय ।३
एतास्ते अग्ने समिधस्त्वमिद्धः समिद् भव ।
आयुरस्मासु धेह्यमृतत्वमाचार्याय ।४

उन जातवेदा अग्नि के लिए मैं समिधायें ले आया और उन्हें दीप्त कर रहा हूँ। यह मेरे लिए श्रद्धा और वेदात्मक बुद्धि को प्रदान करें।१। हे अग्ने ! हम तुम्हें समिधा द्वारा प्रवृद्ध करते हैं अतः तुम हमको धन और सन्तान से समृद्ध करो ।२। हे अग्ने ! यह यज्ञीय या अयज्ञीय काष्ठ तुम्हारे निमित्त रखे हैं, वह सब मेरे लिए मंगलमय हों। तुम उन काष्ठों का भक्षण करो ।३। हे अग्ने ! तुम्हारे लिये यह समिधा लाई गई है,तुम उनसे प्रदीप्त होओ और हम समिधा डालने वालोंको आयु दो। हमारे आचार्य को अमृतत्व प्रदान करो ।५।

सूक्त—६५

(ऋषि–ब्रह्मा। देवता-सूर्यो जातवेदाः। छन्द—जगती)

हरिःसुपर्णो दिवमारुहोऽर्चि ये त्वा दिप्सन्ति दिवमुत्पतन्तम।
अव तां जहि हरसा जातवेदो ऽविभ्यदुग्रोऽर्चिषा दिवमा रोह सूर्य ।१

हे सूर्य ! तुम अन्धेरे का नाश करने वाले हो। तुम अपने तेज से आकाश पर चढ़ते हो। तुम्हें जो शत्रु हिंसित करना चाहते हैं उन रोकने वाले को शत्रुओं को अपने तेज से भस्म करो। तुम अपने उसी तेज से स्वर्ग पर प्रतिष्ठित हो ।१।

सूक्त–६६

(ऋषि–ब्रह्मा। देवता–सूर्यो जातवेदा वज्रः। छन्द–जगती)

अयोजाला असुरा मायिनोऽयस्मपै पाशैरं किनो ये चरन्ति।
यांत्ते रन्धयामि हरसा जातवेदः सहस्रऋष्टिः सपत्नान्
प्रमृजन पासि वज्रः ।१

जो देवताओं के बैरी राक्षस लौह पाश हाथ में लिये पुण्यात्माओं को मारनेके लिए घूमते हैं, हे सूर्य ! उन सबकोमैं तुम्हारे तेज से अपने आधीन करता हूँ। तुम सहस्र रश्मि वाले एवं वज्रधारी हो। शत्रुओं को मारकर हमारी रक्षा करो ।१।

सूक्त—६७

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—सूर्यः । छन्द—गायत्री)

पश्येम शरदःशतम् ।१ जीवेम शरदःशतम् ।२
बुध्येम शरदःशतम् ।३ रोहेम शरदःशतम् ।४
पूषेम शरदःशतम् ।५ भवेम शरदःशतम् ।६
भूयेम शरदःशतम् ।७ भूयसी शरदःशतात् ।८

हे सूर्य ! हम तुम्हें सौ वर्ष तक देखते रहें ।१। हम सौ वर्ष तक जीवित रहे ।२। हम सौ वर्ष तक बुद्धि से सम्पन्न रहें ।३। हम सौ वर्ष तुक निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हों ।४। हम सौ वर्ष तक पुष्ट रहें ।५। हम पुत्रादि के प्रवाह से सौ वर्ष तक सम्पन्न रहें । सौ वर्ष से भी अधिक जीवित रहें ।६-८।

सूक्त—६८

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता— मन्त्रोक्त कर्म । छन्द-अनुष्टुप्)

अव्यसश्च व्यचसश्च बिल वि ष्यामि मायया ।
ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे ।१

मैं अपने व्यान और प्राण वायुके मूलाधार को अभिभवन से पृथक् करता हूँ । उन व्यान और प्राण से अक्षरात्मक वेद को बैखरी के क्रम से पृथक् कर हम कर्म करते हैं ।१।

सूक्त—६९

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—आपः । छन्द—अनुष्टुप्, गायत्री, उष्णिक्)

जीवा स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ।१
उपजीवा स्थोप जीव्यास सर्ववायुर्जीव्यासम् ।२
संजीवा स्थ सं जीव्यासं सर्ववायुर्जीव्यासम् ।३
जीवला स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ।४

देवगण ! तुम आयु वाले हो तृम्हारी कृपा से मैं भी आयु वाला होऊँ ।१। मैं पूर्ण आयु वाला होऊँ ।२। मेरी आयु सत्कार्यों में

व्यतीत हो ।३। देवताओ ! तुम आयुष्मान् हो, मैं भी आयुष्मान् होऊँ । ।४।

सूक्त–७०

(ऋषि–ब्रह्मा । देवता–इन्द्रादयो मन्त्रोक्ता: । छन्द–गायत्री)

इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम ।
सर्वमायुर्जीव्यासम् ।१

हे इन्द्र! तुम जीवित रहो, हे सूर्य! तुम जीवित रहो, हे देवताओ! तुम भी जीवित रहो और तुम्हारे अनुग्रहसे मैं भी चिरकाल तक जीवित रहूँ ।१।

सूक्त–७१

(ऋषि–ब्रह्मा देवता–गायत्री । छन्द–जगती)

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम ।
आयु: प्राण प्रजां पशुं कीर्ति द्रविणं ब्रह्मवर्चसम ।
मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम ।१

मेरे द्वारा स्तुति की गई वेद की माता मुझ स्तोता को आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, धन, ब्रह्मवर्च देती हुई ब्रह्मलोक के लिए गमन करे। ।१।

सूक्त–७२

(ऋषि–भृग्वङ्गिरा ब्रह्मा । देवता–परमात्मा देवाश्च ।
छन्द–त्रिष्टुप्)

यस्मात कोशादुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरबं दध्म एनम् ।
कृतमिष्ट ब्रह्मणो वीर्येण तेन मा देवास्तपसावतेह ।१

हम जिस कोश से वेद को निकाल कर जिस स्थान से कर्म किये जाते हैं उस स्थान में उसे पुन: प्रतिष्ठित करते हैं ब्रह्म के कर्म प्रतिपादक वीर्य वेद से जो कर्म किया है उस अभीष्ट कर्म के फल द्वारा हे देवताओ ! मेरा पालन करो ।१।

।। इत्येकोनविंशे काण्डं समाप्तम् ।।

विंश काण्ड

सूक्त—१ [प्रथम अनुवाक]

(ऋषि—विश्वामित्रः, गौतम, विरूपः । देवता—इन्द्रः, मरुतः, अग्निः
छन्द—गायत्री)

इन्द्र त्वा वृषभ वय सुते सोमे हवामहे ।
स पाहि मध्वो अन्धसः ।१
मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो बिमहसः ।
स सुगोपातमो जनः ।२
उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय बेधसे । स्तोमैर्विधेमाग्नये ।३

हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त ऐश्वर्यवान् हो और अभीष्टों की वर्षा करने में समर्थ हो । सोम के निष्फल होनेपर हम तुम्हें आहूत करते हैं । इस लिए यहाँ आकर इस मधुर रस युक्त सोम का पान करो ।१। मरुद्गण! तुम सब देवताओं से उत्कृष्ण तेज से युक्त हो । तूम जिस यज्ञ गृह में आकाश से आकर सोम पीते हो, उसका गृह स्वामी यजमान अपने आश्रितों की रक्षा करने वालों में अत्यन्त श्रेष्ठ होता है, अतः तुम मेरे घर में आकर ही सोम पियो ।२। वृषभ और वन्ध्या गौ जिनका भाग हैं और सोम जिनके ऊपर स्थित रहता है, ऐसे उन अग्निदेवकी हम स्तोत्रों द्वारा स्तुति करते हैं ।३।

सूक्त-२

(ऋषि—? । देवता—मरुतः, अग्निः, इन्द्रः, द्रविणोद्राः ।
छन्द—गायत्री, उष्णिक्, त्रिष्टुप्)

मरुतः पोत्रात् सुष्टभ. स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ।१
अग्निराग्नीध्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ।२

इन्द्रो ब्रह्मा ब्रह्माणात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ।३
दवो द्रविणोदाः पोत्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ।४

मरुद्गण होता के लिए सुन्दर स्तोत्र वाले और सुन्दर मन्त्रों से युक्त यज्ञ कर्म में हमारे संस्कृत सोम का पान करें ।१। अग्नि का समिधन करने वाले ऋत्विजके कर्मसे प्रसन्न होते हुए अग्नि सोम रस पीए। यह अग्नीध्र कर्म सुन्दर मन्त्र और स्तुतियों से युक्त हैं ।२। इन्द्र ही ब्रह्मा हैं, क्योंकि वह महान् है। हे ब्रह्मात्मक इन्द्र ! ऋत्विज की सुन्दर स्तुतियों से पूर्ण यज्ञ कर्म में संस्कृत सोम का पान करो ।३। धनदाता द्रविणोदा हमको धन दें। वे ऋत्विज कृत सुन्दर स्तोत्र से यज्ञमें शोधित सोम रस को पीवें ।४

सूक्त—३

(ऋषि इरिम्बिठिः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम।
एदं बर्हिः सदो मम ।१
आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना।
उप ब्रह्माणि न श्रृणु ।२
ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः।
सुतावन्तो हवामहे।३

हे इन्द्र ! यहाँ आओ। हमने सोम को संस्कृत किया है अतः उसे पीओ और विस्तृत कुशाओं पर प्रतिष्ठित होओ ।१। हे इन्द्र ! तुम्हारे हर्यश्व मन्त्रों से रथ में जुड़ते हैं और अभीष्ट स्थान पर पहुँचाते हैं। वे अश्व तुम्हें हमारे पास लावें तब तुम हमारी स्तुति सुनो ।२। हे इन्द्र ! हम अनुष्ठान करने वाले ब्राह्मणों ने सोमपान किया है और सस्कारित सोम यहाँ उपस्थित हैं। तुम सोम पीने वाले का हम स्तोता अपने सुंदर स्तोत्र से आह्वान करते हैं ।३।

सूक्त–४

(ऋषि–इरिम्बिठि । देवता–इन्द्रः । छन्द–गायत्री)

आ नो याहि सुतावतोऽस्माकं सुष्टुतीरुप । पिबा सुशिप्रिन्नन्धसः।१

आ ते सिञ्चामि कुक्ष्योरनु गात्रा वि धावतु ।

गृभाय जिह्वया मधु ।२

स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमानु तन्वे तव । सोमः शमस्तु ते हृदे ।३

हे इन्द्र ! हमारे पास सोम है, तुम हमारे शोभन स्तोत्र पर ध्यान देते हुये यहाँ आओ । तुम सुन्दर हनु वाले हो । हमारे इस सोम रसको पीओ ।१। हे इन्द्र! मैं तुम्हारी दोनों कोखोंको सोम रससे सम्पन्न करने की इच्छा कर रहा हूँ । यह सोम तुम्हारे सब अङ्गों में व्यष्टा होकर गति करे । इसलिते इस मधुर रस को अपनी जीभ के द्वारा पीओ ।२। हे इन्द्र! तुम धन-दान आदि में प्रसिद्धहो । हमारे द्वारा भेट किया हुआ सोम सुस्वाद हो और तुम्हारे लिये शक्ति दे । यह सोम तुम्हें प्रसन्नता प्रदान करे ।३।

सूक्त–५

(ऋशि-इरिम्बिठि । देवता–इंद्रः । छंद–गायत्री)

अयमु त्वा बिचर्षणे जनीरिवाभि सवृतः । प्र सोम इन्द्र सर्पतु ।१

तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुरन्धसो मदे । इन्द्रोवृत्राणि जिघ्नते ।२

इन्द्र प्रेहि पुरस्त्व विश्वस्येशान ओजसा । वृत्राणि वृत्रहञ्जहि।३

दिर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येनो वसु प्रयच्छसि ।

यजमानाय सुन्वते ।४

अयं य इन्द्र सोमा निपूतो अधि बर्हिषि ।

एहीमस्य द्रवा पिब ।५

शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः । अखण्डल प्र हूयसे ।६

यस्तेश्रृङ्गवृषो नपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः ।

यस्मिन् दध्र आ मनः ।७

हे इन्द्र सन्तानवती स्त्रियाँ जैसे पुत्रादि से सब ओर से घिरी रहती है, वैसे ही यह सोम अध्वर्यु आदि से घिरा हुआ रखा है। यह सोम तुम्हारे लिए हो ।१। उन इन्द्र के स्कन्ध सोम-भक्षण से उत्पन्न शक्ति के कारण वृषभ के समान मोटे होते हैं पेट विशाल और भुजायें दृढ़ हो जाती हैं। इस प्रकार सोम के द्वारा प्रवृद्ध इन्द्र वृत्र के समान आक्रामक शत्रुओं का संहार करते हैं ।२। हे इन्द्र ! तुम जगत के अधिपति हो, तुमने वृत का संहार किया था इसलिए हमारी सेना के आगे चलते हुए न वृत के समान घेरने वाले शत्रुओं को मार डाला ।३। हे इन्द्र ! अंकुश के समान झुका हुआ तुम्हारा हाथ, दान के निमित्त आगे बढ़े। जिस सोम को निष्पन्न करने वाले यजमानको तुम धन प्रदान करते हुए उसके लिए अपने हाथ को लम्बा करो ।४। हे इन्द्र ! यह सोम भले प्रकार छान कर स्वच्छ किया गया है, वह तुम्हारे लिए रखा है, इस-लिए यहाँ आगमन करो। वह सोम तुम्हारे लिए संस्कारित किया गया है, इसलिए शीघ्र यहाँ आकर इस सोम को पीओ ।५। हे इन्द्र ! तुमने प्राणियों द्वारा अपहृत गौएँ निकाल ली। तुम स्तोत्रोंके सुन्दर लोक को प्रकट करने में समर्थ हो। यह सोम तुम्हारे हर्ष के लिए संस्कृत किया गया है इसलिए हम तुम्हें आहूत करते हैं। क्योंकि तुम शत्रुचों को सब ओर से मारने में सशक्त हो ।६। हे इन्द्र ! तुम सींगों के समान ऊँची उठाने वाली रश्मियों वाले सूर्य का पतन नहीं होने देते हो। तुम्हारा कुण्डपाय्य नामक क्रतु है, उसके सोम से सम्पन्न यज्ञ में तुम अपने मन को प्रयुक्त करो ।७।

सूक्त-६

(ऋषि—विश्वामित्रः। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री)

इन्द्र त्वा वृषभ बय सुते हवामहे। सपाहि मध्वो अन्धसः ।१
इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत। पिबा वृषस्व तातृपिम् ।२
इन्द्र प्रणो धित वनं यज्ञं विश्वेभिर्देभिः। तिर स्तवान विश्पते ।३
इन्द्रसोमाः सुता इमे तव प्र प्रयन्ति सत्पते क्षयं चद्रास इन्दवः ।४
दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् तव द्युक्षास इन्द्रवः ।५

गिवण: पाहि नः सुत मधोर्धाराभिरयसे । इन्द्र त्वादातमिद् यशः ।६
अभि द्युम्नानि बनिन इन्द्र सचन्ते अक्षिता पीत्वी सोमत्य वावृध ।७
अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन्। इमा जुषस्व नो गोराः।८
यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे । इन्द्रह तत आ ।९

हे इन्द्र ! सोम के संस्कारित होने पर हम तुम्हें आहूत करते हैं । तुम इस मधुर रसयुक्त सोम को पिओ ।१। हे इन्द्र ! तुम अनेक यजमानों की स्तुतियों को प्राप्त करते हो । तुम इस संस्कारित सोमकी इच्छा करो और इससे तृप्ति कर सोम को पीकर अपने उदर को सन्तुष्ट करो ।२। हे इन्द्र ! तुम सब देवताओं सहित यहाँ आकर हमारे सोममय यज्ञ में हवि ग्रहण करके उसकी बृद्धि करो ।३। हे इन्द्र ! तुम यजमानों की रक्षा करने वाले हो । यह हर्ष प्रद सोम रस तुम्हारे पेट में जा रहा है ।४। हे इन्द्र ! इस सोम रसको हृदय में धारण करो । यह सोम तुम्हारे लिए विशिष्ट भाग है ।५। हे इन्द्र ! तुम स्तुतियों से पूजन के योग्य हो । हमारे निष्पन्न सोम को पीओ । तुमको हम सोम की आहुतियाँ दे रहे हैं । यह सोम तुम्हारा सुन्दर यश रूप ही है ।६। यजमान का उज्ज्वल सोम इन्द्र को सब ओर से प्राप्त हो रहा है, उसका पान करते हुए इन्द्र वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं ।७। हे इन्द्र ! तुम वृत हननकर्त्ता हो । तुम हमारे निकटस्थ स्थान में हो तो आ जाओ और दूरस्थ देश में हो तो भी शीघ्र आगमन करो और हमारी स्तुति को श्रवण करो ।८। हे इन्द्र ! तुम जिस दूरस्थ देश से या निकट से, जहाँ भी हो, वहीं से बुलाये जा रहे हो । तुम इस मंडप में शीघ्र ही आगमन करो ।९।

सूक्त-७

(ऋषि–सुकक्षः, विश्वामित्रः । देवता–इन्द्रः । छन्द गायत्री)

उद धेदभि श्रुतामध वृषभं नर्यापसम ।
अस्तारमेषि सूर्य ।१

नव यो नवतिं पुरो विभेद वाह्वोजसा ।
अहिं च वृत्रहावधीत ।२
स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद् गोमद यवमत् ।
इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत् ।
पिबा वृषस्व तातृपिम् ।४

हे सूर्य ! स्तुति करने वालों या यज्ञ करने वालों को इन्द्र के द्वारा धन दिया जाना प्रसिद्ध है । वे अभीष्ट फलों की वर्षा करने वाले हैं, वे अपने सेवकों का इच्छित करते और अनिष्टोंको दूर करते हैं और वे इन्द्र शत्रु को भी दवाने वाले हैं, तुम उन इन्द्र को ध्यान में रखते हुए उदित होते हो ।१। जिन इन्द्र ने शम्बर के माया से रचे हुये निन्यानवे नगरों को अपने बाहुवल से तोड़ डाला, उन्हीं इन्द्र ने वृत्रासुर का पूरी तरह संहार किया ।२। वे इन्द्र हमारे मित्र हों वे इन्द्र हमको सुख देने वाले हों, वे इन्द्र हमको गौओं, अश्वों तथा अन्य विभिन्न फलों को दें, जिससे हम धनवान हों ।३। हे इन्द्र! तुम ज्योतिष्टोम आदि को सम्पन्न करने वाले हो । तुम्हारी अनेक प्रकार स्तुतिकी जाती है इस तृप्तिकर सोम की तुम इच्छा करो, इसे सेवन करते हुये उदरस्थ करो ।४।

सूक्त–८

(ऋषि–भरद्वाज,कुत्स,विश्वामित्रः । देवता–इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप्)

एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्मा वावृध्रस्वीत गीभिः ।
आविः सूर्य कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रुरभि गा इंद्र तृन्धि ।१
अर्वाङ् हि सोमकामं त्वाहुरयं सुतस्तस्य पिबा मदाय ।
उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः श्रृणहि हूयमानः ।२
आपूर्णो अस्य कलशः सेवतेव कोश सिसिचे पिबध्यै ।
समु प्रिया आववृत्रन् मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ।३

हे इन्द्र! तुमने जैसे प्राचीन महर्षियोंके सोमयाग में सोम पीया था वैसे ही तुम हमारे इन सोमको भी पीओ । यह सोम तुम्हारे लिये हर्ष-

जनक हो। हमारे स्तोत्रों को सुनकर उनसे वृद्धि को प्राप्त होओ और फिर सूर्य को प्रकाशित करो। हे इन्द्र ! पणियों द्वारा अपहृत हमारी गौयें हमें दो, हमारे शत्रुओं का नाश करो उपभोग्य अन्न की वृद्धि करो।१। हे इन्द्र ! विद्वान् तुम्हें सोम की इच्छा करने वाला बताते हैं, इसलिए हमारे सामने आओ। यह सोम संस्कारित हो चुका है, इसे हर्ष के लिए पीओ। तुम इस सोम को अपनी कुक्षियों में भरो। जैसे पिता पुत्र की बात सुनता है, वैसे ही तुम हमारे स्तोत्र को सुनो।२। यह द्रोण कलश सोमरस से भरा हुआ इन्द्र के लिए रखा था। जिस प्रकार जल छिड़कने वाला मशक को जल से भरा रखता है, उसी प्रकार इन्द्र के पीने के लिए अध्वर्यु सोम रस को सींचता है। वह सोम इन्द्र के हर्ष के लिए उनकी ओर जाते हुए व्यापते हैं।३।

सूक्त—९

(ऋषि—नोधः, मेधातिथिः। देवता—इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप्, बृहती)

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः।
अभि वत्सं न स्त्रसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्गवामहे।१
द्युक्षं सुदानुं तविषोभिरावृतं गरिं द पुरुभोजसम्।
क्षुमन्तं बाज शतिय सहस्त्रिण मक्षू गोमन्तमीमहे।२
तत् त्वा यामि सुवीर्यं तद ब्रह्म पूर्वचित्तये।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ।३
तेना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः।
यद्यः सो अस्य महिमान न संनशे यं क्षोणीनुचक्रदे।४

हे यजमानो तुम्हारे यज्ञकी सम्पन्नता और अभीष्ट फलके निमित्त हम स्तुति रूप वाणीसे इन्द्र की प्रार्थना करते हैं। यह इन्द्र दर्शन करने के योग्य तथा दुःखोंके नाशक हैं। यह सोमके हर्यमें भरे रहते हैं। जिन दिनों के प्रकट करने वाले सूर्य हैं,उन दिनों के उदय और अस्तकाल में

गोऐं रंभाती हुई बछड़ो की ओर जाती हैं,वैसे ही हम भी स्तुति करते हुए वाणी सहित इन्द्र की ओर जाते हैं ।१। सुन्दर दान वाले, प्रजाओं के पोषक, दीप्तवान, स्तुत्य और गवादि से सम्पम्न धन की हम वैसे ही प्रार्थना करते हैं,जैसे दुर्भिक्ष को प्राप्त हुए जीव कन्द मूल-फल आदि से सम्पन्न पर्वत की प्रार्थना करते हैं ।२। हे हन्द्र ! मैं वीर्य से युक्त शक्ति शाली अन्न को तुमसे माँगता हूँ । जिस धन के दान से भृगु ऋषि को शान्ति मिली थी, और जिस धन से तुमने कण्व के पुत्र प्रस्कण्व का पालन किया था, वही धन हम तुमसे माँगते हैं ।३। हे इन्द्र तुमने अपने जिस वल ले सृष्टि के आरम्भ में समुद्रादि को पूर्ण करने के लिए जलों की कल्पना की तुम्हारा वह बल अभीष्ट का फल देने वाला है । तुम्हारी जिस महिमा को हम भूलोकवासी कहते हैं, उसे शत्रु नहीं पा सकते ।४

सूक्त-१०

(ऋषि–मेध्यातिथि: । देवता–इन्द्र: । छन्द–बार्हत: प्रगाथा)

उदे त्ये मधुमुत्तमा गिरा स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथाइव ।१
कण्वाइव सूर्याइव विश्वमिद् धीतमानशु ।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयव: प्रियमेधासो अस्वरन् ।२

यह गायन मन्त्रों से साध्य तथा न गाये जाने वाले मन्त्रों के साध्य मधुर स्तुतियाँ प्रकट हो रही हैं, यह सदा अन्न प्रदान करती हुई रक्षा करने में समर्थ होती है । जैसे रथारोही के अभिप्राय के प्रति रथ गमन करता है, वैसे ही यह इन्द्र को सन्तुष्ट करने के जिए गमन करती है।१। कण्व गोत्रिय महर्षि जैसे तीनो लोकों के ईश्वर, फल की फामना करने वाला द्वारा पूजित इन्द्र को स्तुतियों से प्राप्त होते हैं, जैसे सूर्य अपने नियन्ता इन्द्र को प्राप्त होते हैं और भृगु वंश वाले ऋषि जैसे इन्द्र को प्राप्त होते है वैसे ही मनुष्य स्तोत्रों द्वारा इन्द्र को प्राप्त होते हैं ।२।

सूक्त–११

(ऋषि–विश्वामित्रः । देवता–इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप्)

इन्द्र पूर्भिदातिरद दासमर्कैर्बिदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून् ।
ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद् रोदसी उभे ।१

मखस्य ते तविषस्य प्र जूतिमिर्यार्मि वाचममृताय भूषन् ।
इन्द्र क्षितीनामसी मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा ।२

इन्द्रोवत्रभवृणोच्छ्घनीतिः प्र मायिनाम मिनाद वर्षणीतिः ।
अहन व्यं ससुशधग वनेष्वाविर्धना अकृणोद् राम्याणाम् ।३

इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्ठः
प्रारोचयन्मनवे केतुमह् नामबिन्दज्ज्योतिबृहते रणाय ।४

इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवे । नृवद दधानो नर्या पुरुणि ।
अचेतयद् धिया इम जरित्रे प्रेम वर्णमतिरच्छकमासाम् ।५

महो महानि पनयन्त्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरुणि ।
वृजनेन वृजिनान्त्सं पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ।६

युधेन्द्र मह्ना बरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्रा ।
विबस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गणन्ति ।७

सत्रासाह वरेण्यं सहोदां ससवांस स्वरपश्चदेवीः ।
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेतामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ।८

समानात्याँ उत सूर्य ससानेन्द्रः समान पुरुभोजसं गाम ।
हिरण्ययमुतभोगं ममान हत्वी दत्यून प्रार्यं वर्णमावत् ।९

इन्द्र ओषधीरसनोदहानि ववस्वतीरसनोदतरिक्षम ।
बिभेद बल नुनुदे विवचोऽथाभवद दमिताभिक्रतूनाम् ।१०

शुनं हुवेम मधवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतम वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु ध्नन्तं वृत्राणि सजितं धनानाम ।११

इन्द्र ने अपने शत्रुओं को अपने बल से नष्ट कर डाला, वे शत्रुओं के नगरों का नाश करने वाले और शत्रुओं के धनों के प्राप्त करने वाले हैं। इन इन्द्र का शरीर मन्त्रों से प्रवृद्ध होता हैं, इनके पास शत्रु-नाशक असंख्य आयुध हैं। इन्होंने वृत्रादि शत्रुओं का नाश कर डाला और आकाश पृथ्वी को पूरी तरह व्याप्त कर लिया ।१। हे इन्द्र ! मैं इस यज्ञ रूप वाणी को अन्न से सुशोभित करता हुआ प्रकट करता हूँ। हे इन्द्र ! तुम सबके अग्रगण्य हो इसलिए मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ ।२। अपने शत्रु पर हिंषक बल को गिराने वाले इन्द्र ने वृत्र को रोका और युक्त की प्राप्ति पर मायावी राक्षसों का नाश कर डाला। शत्रुओं के नाश की कामना वाले इन्द्र ने वृत्र के कन्धे पृथक् कर दिये थे और पणियों द्वारा अपहृत गौओं को भी प्रकट किया था ।३। इन्द्र शत्रुओं को हराने वाले तथा स्वर्ग को प्राप्त कराने वाले हैं उन्होंने संग्रामेच्छु राक्षसों के दिनको प्रकट करके संग्राम किया और उनकी सेनाओं पर विजय पाई। यजमानों के लौकिक कर्मों के निमित्त उन्होने सूर्य को प्रकाशित कर रखा है ।४। जैसे युद्धाभिलाषी वीर शत्रु सेना में प्रविष्ट होता है, वैसे ही इन्द्र भी मनुष्यों के हित के लिए प्रवृद्ध-शत्रु सेनाओं में प्रवेश करते हैं और स्तुति करने वालों के निमित्त उषाओं को उदित करते हैं। उषाओं के श्वेत रङ्ग की वृद्धि इन्द्र ही करते हैं ।५। इन्द्र के द्वारा पूर्ण किए गये अनेकों प्रशंसनीय कर्मों की स्तोता गण स्तुति करते हैं। शत्रु को वश करने वाले इन्द्र ने अपने अस्त्रों द्वारा पापी राक्षसोंको मसल डाला और शक्ति सम्पन्न असुरों का क्षय कर दिया ।६। किसी की सहायता लिए बिना ही इन्द्र एकमात्र अपने ही बल से यह युद्ध द्वारा स्तुति करने वालों को धन प्राप्त कराया। यह इन्द्र यजमानों के सदा रक्षक हैं और मनुष्य को इच्छित फल प्रदान करते हैं। यज्ञादि कर्म वाले मनुष्य जिस इन्द्र का वरण करते हैं। जो इन्द्र बल प्रदान करते हैं, जो शत्रु सेना को तुरन्त ही दबाते हैं, जो स्वर्गीय जलों के सेवनकर्त्ता है, जिन इन्द्र ने इस

द्यावा पृथ्वी को मनुष्यों को दिया है, उन इन्द्रकी स्तुति करने वाले और यजमान उन्हें हवि देकर प्रसन्न करते हैं।८। अश्व, हाथी, ऊँट आदि इन्द्र ने मनुष्य के उपभोग के लिए दिए हैं। गौं, भैंस, तथा सुवर्णाभूषण आदि भी इन्द्र ने ही दिये हैं। सूर्य को भी इन्होंने ही प्रकाशित कियाहै। उन्हीं ने राक्षसों का संहार किया और हर वर्ण का पालन किया है।९। इन्द्र ने ही यव आदि औषधियों को प्राणियों के उपयोग के लिए रचा, दिनों को तथा वनस्पतियों को भी रचा। उन्हीं ने सबके उपकारक अन्तरिक्ष की रक्षा की। इन्द्र ने वल नामक असुर को चीर डाला, विरोधियों और विरुद्ध अनुष्ठान करने वालों को भी मर्दित किया।१०। उन धनैश्वर्य सम्पन्न एवं सुखदाता इन्द्र को हम इस संग्राम में आहूत करते हैं। जिस युद्ध में अन्न प्राप्त होता है, उसमें रक्षा के लिए इन्द्र का आह्वान करते हैं। शत्रु नाशक और धर्नों के विजेता इन्द्रको हम आहूत करते हैं।११।

सूक्त—१२

(ऋषिः-वसिष्ठः, अत्रिः। देवता-इन्द्रः। छन्द त्रिष्टुप्)

उदु ब्रह्माण्यरत श्रवस्येन्द्रं समय महया वसिष्ठ।
आ यो विश्वानि शवसा ततोनोपश्रोता मा ईवतो वचांसि।१
अयामि घोष इन्द्र देवजामिरिरज्जन्त यच्छुरुधो विवाचि।
नहि स्वमायाश्चिकिते जनेषु तानीदं हांस्याति पर्ष्यस्मान्।२
युजे रथं गवेषणं हरिम्तामुष ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः।
वि बाधिष्ट स्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान्।३
आपश्चित् पिप्युस्तर्यो न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इंद्र।
याहि वायुर्न नियुतो नी अच्छां त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान्।४
ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे।
एको देवत्रा दयसे हि मर्तानस्मिञ्छूर सवने मादयस्व।
एवेदिन्द्रं बृषणं वज्रवाहुं वसिष्ठासो अभ्य चन्त्यर्कैः।
स न स्तुती वरवद् धातु गोमद ययं पात स्वस्तिभिः सदाः न।६

ऋजीषो वज्री वृषभस्तुराषाट्छुष्मीराजा वृत्रहा सोमपावा।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यास दर्वाङ माध्यदिने मत्सदिन्द्र ।७

हे ऋत्विज ! तुम अन्न की कामना करते हुए स्तोत्रों को कहो। हे यजमान ! तुम ऋत्विजों सहित इस यज्ञ में इन्द्र का पूजन करो। जिस इन्द्र ने अपनी शक्ति से जीवों की वृद्धि की वे हमारी वाणी को सुनें ।१। हे इन्द्र ! जो स्तोत्र देवताओं को बन्धु के समान प्रिय है, उसे कहता हूँ। इस स्तोत्र के द्वारा यजमान के लिए स्वर्ग फल वाले सोम वृद्धि को प्राप्त होते हैं। मनुष्यों में यह यजमान अपनी आयु को नहीं जानता है, अतः इसे जीवन यज्ञ के उपयोगी आयु दो। आयु का नाश करने वाला पाप रूप जो कारण है उस इससे दूर रखो ।२। इन्द्र का रथ गौओं को प्राप्त कराने वाला है उसमें अपने हर्यश्व संयुक्त करते हुए आते हैं। हमारे स्तोत्र उन्हीं इन्द्र की सेवा कराते हैं। द्यावा-पृथिवी उनके आधीन है। उन्होंने वृत्रादि राक्षसों को भले प्रकार मार दिया है ।३। हे इन्द्र ! इस अभियुत सोम का रस गौ के समान वृद्धि को प्राप्त हुआ है। यह ऋत्विज स्तुति के लिए सत्य फल देने वाले यज्ञ मंडल में पहुँचे हैं। अतः आप हमारे स्तोत्रोंके प्रति पधार कर अन्न दो,जैसे वायु अपने नियुत नामक अश्वों के प्रति पधारते हैं ।४। हे इन्द्र ! तुम बलवान् ! यह सुसंस्कारित सोम तुम्हें हर्ष युक्त करें तुम्हारे पास स्तोताओं के निमित्त अपरिमित धन है और तुम मनुष्य पर कृपा करने वाले एक ही हो। अतः हमको अभीष्ट फल देकर सुखी करो ।५। वज्रधारी, अभीष्ट वर्षक इन्द्र की इन्द्रियों का निग्रह करने वाले स्तोता उपासना करते हैं। वे इन्द्र हमको बहुत से पुत्रों तथा अनेक गौओं से युक्त धन दें। हे देवगण ! इन्द्र की प्रेरणा से तुम भी हमारे पालन करने वाले होओ ।६। सोमात्मक, वज्रधारी, अभीष्ट वर्षक, शत्रुओं को वश करने वाले, बली वृत्रहन कर्त्ता देवताओं के स्वामी इन्द्र अभिषव वाले स्थान पर सोम पीने वाले हैं। वे अपने घोड़ों द्वारा आकर माध्यंदिन सवन में हमारा सोम पीकर हर्षित हो ।७।

सूक्त—१३

ऋषि—वामदेवः, गोतमः, कुत्सः, विश्वामित्र । देवता—इन्द्राबृहस्पती: मरुतः, अग्निः । छन्द–जगती, त्रिष्टुप्)

इन्द्रश्च सोम पिवत बृहस्पतेऽस्मिन् यज्ञ मन्द पना वृषण्वसु ।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम ।१
आ वो वहन्तु सप्तयो रचष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मघ्वो अन्धसः ।२
इमं स्तोममर्हते जातवेदरे रथामिव सं यहेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा ह्रिषामां वयं तव ।३
ऐभिरग्ने सरथ याह्यर्बाङ् नानारथ वा विभयो ह्यश्वाः ।
पत्नीवतस्त्रिशत त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ।४

हे बृहस्पते ! तुम इन्द्र के सहित सोम पियो। तुम यजमान को धन देने वाले हमारे इस यज्ञमें अत्यन्त प्रसन्न हो रहे हो । तुम्हारे शरीर में सोम प्रविष्ट हो और तुम हमारे पुत्रादि सहित धन प्रदान करो। ।१। हे दुरुतगण ! द्रुतगामी अश्व तुम्हें हमारे यज्ञ स्थान पर पहुँचावें और तुम भी शीघ्रता पूवंक यहाँ आओ। तुम्हारे लिए विशाल वेदी निर्मित की गई है । इस बिछाये हुए कुशाओं के आसन पर बैठते हुए सोम पीकर तृप्ति को प्राप्त होओ ।२। जतावेदा, पूज्य अग्नि के स्तोत्र को हम उसी प्रकार संस्कृत करते हैं, जैसे रथकार रथ के अवयवों को संस्कारित करता है। हमारी बुद्धि इन अग्निके प्रदीप्त करनेमें मंगलमयी है। हे अग्ने ! तुम्हारा बन्धुत्व पीकर हम हिंसा को प्राप्त न हो ।३। हे अग्ने ! तेंतीस देवताओं सहित एक रथ पर बैठकर आगमन करो क्योंकि तुम्हारे अश्व अत्यन्त सामर्थ वाले हैं । इसलिए जब-जब उन देवताओं को आहुतिदी जाय, तब-तब उन्हें यहाँ लाकर उन्हें सोम प्रदान करते हुए प्रसन्न करो ।४।

सूक्त-१४

(ऋषि–सोभरिः । देवता–इन्द्रः । छन्द–प्रगाथः)

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोऽवस्यवः । वाजे चित्र हवामहे ।१

उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।
त्वामिद्धयवितारं ववृमहे सखाये इन्द्र सानसिम् ।२
यो न इदमिदं पुराप्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे ।
सखाय इन्द्रमूतय ।३
हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्या यो अमन्दत ।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ।४

हे सदा नवीन रहने वाले इन्द्र ! तुम पूज्य और पोषणकर्त्ता हो । हम रक्षा की कामना वाले तुम्हें आहूत करते हैं । तुम हमारे किसी विरोधीके पास न जाओ । जैसे किसी अत्यन्त निपुण राजा को विजयके लिए आमन्त्रित करते हैं, वैसे ही हम भी तुम्हें बुलाते हैं ।१। हे इन्द्र ! संग्राम आदि के अवसर पर हम अपनी रक्षा के लिए तुम्हारा ही आश्रय पकड़ते हैं । जो इन्द्र नित्य युवा रहते हैं, जो शत्रु को वश में करने वाले हैं, वे इन्द्र हमारी सहायतार्थ आवें । हे इन्द्र हम तुम्हें सखा मानतेहैं,अतः रक्षा के निमित्त तुम्हारी ही कामना करते हैं ।२। हे यजमानों ! तुम्हारी रक्षा के लिए मैं इन्द्र का स्तोत्र कहता हूँ । वे इन्द्र हमको पहले भी गवादि धन दे चुके हैं मैं उन्हीं अभीष्ट-दाता का स्तवन करता हूँ ।३।जो इन मनुष्यों के रक्षक हैं उनके अश्व हरित वर्ण के हैं, जो मनुष्यों पर नियन्त्रण रखते और स्तुतियों से प्रसन्न होते हैं,मैं उन्हीं इन्द्रकी प्रार्थना करता हूँ, वे इन्द्र हम स्तोताओं को सौ गौ और सौ अश्व प्रदान करें।४

सूक्त—१५

(ऋषि—गोतमः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरु राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ।१
अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः ।
यत् पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः ।२
अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।

यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियंज्योतिकरि हरितो नायसे ।३
इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिर: सघत् क्षोणीरिव ।
प्रति नो हर्य तद् वच: ।४
भूरि त इन्द्र वीर्यं तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन् काममा पृण ।
अनु ते द्यौबृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेमि ओजसे ।५
त्व तमिन्द्र पर्वतं महामुरु वज्रणं वज्रन् पर्वशश्चकतिथ ।
अवासृजो निवृता: सर्तवा अपा सत्रा विश्व दधिषे केवलं सह: ।६

जिन इन्द्र का ऐश्वर्य सब मनुष्यों का पालन करने में समर्थ है,जो इन्द्र दाता, सामर्थ्यवान् और गुणों में अत्यन्त बढ़े हुए हैं, मैं उनका स्तोत्र करता हूँ । जैसे नीचे जाते हुए जल का वेग असहनीय होता है वैसे जिस इन्द्र का बल संग्राम आदि के अवसर पर असहनीय होता है, मैं इन्हीं का स्तवन करता हूँ ।१। हे इन्द्र ! जैसे जल नीचे स्वान के अनुकूल होता है, वैसे ही तुम्हारी कामना के लिए सम्पूर्ण विश्व अनुकूल हो । शत्रुओं के घर्षक, जिनका सुवर्णयुक्त वज्र पर्वत में भी न रुका इसीलिए संसार उनके अनुकूल होता है और तीनों यज्ञीय सवन भी उनके अनुकूल होते हैं ।२। हे उषे ! जिन इन्द्र से शत्रु भयभीत रहते हैं, उनके लिए ही यह यज्ञ कर रहे हैं अत: उन इन्द्रों को अन्न के सहित हमारे यहाँ लाओ । जिनका जल अन्न की समृद्धि वाला होता है, जो इन्द्र दिशाओं को प्रकाशित करते हैं, उन्हें हमारे यज्ञ स्थानमें लाओ ।३। हे इन्द्र ! तुम महान धन से सम्पन्न हो; स्तुतियों के पात्र हो, हम तुम्हारे ही आश्रित है । हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त महिमाना हो, हमारी स्तुतियाँ तो अल्प है, इसलिए हमारी वाणी सुननी ही चाहिए । जैसे राजा, प्रजा को बात को सुनता है, वैसे ही तुम हमारी वात को सुनो ।४। हे इन्द्र ! हम तुम्हारे वृत्र हनन आदि महान कर्मो को ध्यान में रखकर तुम्हारे उपासक होते हैं। तुम इस स्तोता यजमानकी कामना को पूर्ण करो । तुम्हारे बल का विशाल आकाश ही मान करताहै और

यह पृथिवी तुम्हारे बल से झुक जाती है, इसलिए यह भी तुम्हारा मान ही करती है ।४। हे वज्रिन् ! तुमने परम विशाल पर्वत को भी खण्ड-खण्ड कर डाला था और मेघ को नदी रूप से प्रवाहित कर दिया। तुम ऐसे सब महाबलों को धारण करने वाले हो तुम्हारी यह महिमा यथार्थ ही है ।५।

सूक्त-१६

(ऋषि—अयास्यः । देवता—बृहस्पतिः । छन्द—त्रिष्टुप्)

उदप्रुतो न वयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोषाः ।
गिरभ्रजो नोर्मयो मदन्तो बृहस्पतिमभ्यर्का अनावन् ।१
सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो भगइवेदर्यमणं निनाय ।
जने मित्रों न दम्पती अनक्ति बृहस्पते वाजयाशूरिवाजौ ।२
साध्वार्या अतिथिनीरिषिरा स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः ।
बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः ।३
आप्रु षायन मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क उल्कामिव द्योः ।
बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा भूम्या उदनेव वि त्वचं विभेद ।४
अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षादुदनः शीपालमिव वात आजत् ।
बृहस्पतिरनुमृश्या वलस्या भ्रमिव बात आ चक्र आ गाः ।५
यदा वलस्य पीयतो जसुं भेद बृहस्पतिरग्नितपोभिरर्कैः ।
दद्भिर्न जिह्वा परिविष्टमाददाविर्निधीरकृणोदुस्त्रियाणाम् ।६
बृहस्पतिरमत ह त्यदासां नाम स्वरीणा सदने गुहा यत् ।
आण्डेव भित्वा शकुनस्त गर्भमुदुस्रियाः पर्वतस्य त्मनाजत् ।७
अश्नापिनद्ध मधु पर्यपश्यन्मत्स्यं न दीन उदनि क्षयन्तम् ।
निष्टज्जभार चमस न वृक्षाद बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य ।८
सोषामविन्दत् स त्वः सो अग्नि सो अर्केण वि ववाधे तमांसि ।
ब्रह्मास्पतिर्गोविपुषो वलस्य निर्मज्जानं न पर्वणो जभार ।९
हिमेव पर्णा मुषिता वनानि बृहस्पतिनाकृपयद बलो गाः ।१०

अनानुकृत्यमपुनश्चकार यात् सूर्यामासा मिथ उच्चरातः ।१०
अभि श्याव न कृशनेभिरश्वः नक्षत्रभिः पितरो द्यामपिंशन् ।
रात्र्यां तमो अदधुर्ज्योतिरहन् बृहस्पतिर्भिनदद्रि विदद् गाः ।११
इदमकर्म नमो अभ्रियाय यः पूर्वीरन्वानोनवीति ।
बृहस्पति स हि गोभिः सो अश्वैः स बीरेभिः
से नृभिर्नो वयो धात् ।१२

जैसे मेघों के समान शब्दवान् जल में विचरणशील, पक्षियों के समान शब्द वाली, रक्षा करने वाली और मेघों से धारा रूप से गिरती हुई ऊर्मियां शब्द करती हैं, वैसे ही बृहस्पति की स्तुति के लिए मन्त्र झुकते हैं ।१। महर्षि आंगिरस जैसे भग के समान गो घृत आदि सहित विवाह-काल में पति-पत्नी को अर्यमा देवता को शरण प्राप्त करातेहैं, वैसे ही इस दम्पति को अर्यमा देवता की शरण दिलावें । जैसे सूर्य प्रकाशके लिये अपनी रशिमयों को एकत्र करते हैं, वैसेही इन पति-पत्नीको एक करें । हे बृहस्पते ! युद्ध को उद्यत वीर जैसे अश्वों को संयुक्त करते हैं, वैसे ही इन वर वधु को संयुक्त करो ।२। कोठियों से जैसे अन्न निकालते हैं वैसे ही बृहस्पति स्तोताओं, संतों और अतिथियों को तृप्तिकर सुन्दर वण बल द्वारा अपहृत गौओं को पर्वतसे लाकर देते हैं ।३। जैसे आदित्य उल्का को नीचे की ओर करके डालते हैं, वैसे ही बृहस्पति पृथिवी को सींचने वाले मेघों का अधोमुखी करके भेजते हैं और मणि द्वारा अपहृत गौओं को निकाल कर जैसे जल भूमि को फुलाते हैं वैसे ही गौओं के खुरों से भूमि की त्वचा को पृथक् कर डालते हैं ।४। बृहस्पति देवता, वायु के जल से विचार पृथक् करने के समान गौओं का रोकने वाले खोह स्थित अन्धरे को प्रकाश से दूर करते है और बल के गौ-स्थान का ध्यान करते हुये जैसे वायु मेघ को छिन्न-भिन्न कर देता हैं । वैसे ही गौओं को इधर-उधर फैलाते हैं । जब बल के हिंसात्मक आयुध को बृहस्पति ने अग्नि के समान ताप वाले मन्त्रों से नष्ट किया तब जैसे चबाये हुये अन्न को जिह्वा भक्षण करता है वैसे ही बल नामक असुर का उन्होंने पयस्विनी गौओं को प्रकट कर डाला ।६। जब गुफा

में छिपी इन गौओं को बृहस्पति ने जान लिया तब पर्वत को चीरकर उन्हें ऐसे निकाल लिया जैसे मोर आदि के अण्डे को चीर कर उसके गर्भ को निकालते हैं ।७। जैसे जल के कम हो जाने पर मनुष्य नदी में स्थित मछलियों को देखता है, वैसे बृहस्पति ने पर्वत की गुफा पर ढके पत्थर को हटाकर गौओं को देखा । जैसे चमस पात्र को वृक्ष से निकालते हैं, वैसे ही गौ रूपधारी बल का हनन करके गुफा से गौओंको निकाला ।८। अन्धेरे में छिपी हुई गौओं को देखने के लिये बृहस्पति ने उषा को प्राप्त किया, इन्हीं बृहस्पति ने प्रकाश के निमित्त सूर्यको तथा अग्नि को प्राप्त किया ।९। पत्तों को निःसार करके ग्रहण करनेके समान बृहस्पत्ति ने गौ रूप धन को ग्रहण किया । बल ने भी अपहृत गौयें बृहस्पति को दीं । बृहस्पति द्वारा ही सूर्य चन्द्रमा, दिन और रात्रि को प्रकट करते हुये घूमते हैं, यह बृहस्पति का ऐसा कर्म है, जिसे कोई अन्य नहीं कर सकता ।१०। बृहस्पति ने जब गौओं के छिपाने वाले पर्वत को चीरा और गौओं को प्राप्त किया, तब पालन करने वाले देवताओं ने, अश्व को अलंकृत करने के समान द्युलोक को नक्षत्रों से अलंकृत किया । उन्होंने दिन में सूर्य रूप तेज और रात्रि में अन्धकार को स्थापित किया ।११। मेघ को चीरकर जल निकालने वाले बृहस्पति के लिये हम यह हवि देते हैं । वे हमारी स्तुति की प्रशंसा करें और गौओं से सम्पन्न अन्न दें तथा अश्व, पुत्र भृत्यादि से युक्त करें ।१२।

सूक्त-१७

(ऋषि—कृष्णः । देवता–इन्द्रः । छन्द–जगती, त्रिष्टुप्)

अच्छा म इन्द्र मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।
परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवान मूतये ।१
न घा त्वद्रिगप वेति मे मनस्त्वे इत् काम पुरुहूत शिश्रय ।
राजेव दस्म नि षदोऽधि बर्हिष्यस्मिन्त्सु सोमऽवपान मस्तु ते ।२
विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इन्द्रायो मघवा वस्त्र ईशते ।
तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिन्धवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य शुष्मिणः ।३

वयो न वृक्ष सुपलाशमासदन्त्सोमास इन्द्र मन्दिनश्चमूषदः ।
प्रेषानीकं शवसा दविद्य तद विदत् स्वर्मनवे ज्योतिरार्यम् ।४
कृत न श्वघ्नो वि चिनोति देवने सवगं यन्मघवा सूर्यं जयत् ।
न तत् ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुराणो मघव नोतन् नूतनः ।५
विशंविश मघवा पर्यशायत जनानां अवचाकशद वृषा ।
यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमः सहते पृतन्यतः ।६
आर्यो न सिन्धुमभि यत् समक्षरन्तसोमास इन्द्रं कुल्याइव ह्रदम्।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यव न वृष्टिदिव्येन दानुना ।७
वृषा न क्रुद्धः पतयद् रज स्वा या अर्यं पत्नीरकृणो दिमा अपः ।
स सुन्वते मघवा जीरदारवेऽविन्दज्ज्यातिर्भनवे हमिष्मते ।८
उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत् ।
वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्वर्णशक्रशुशुचात सत्पतिः ।९
गोभिष्टरेमामति दुरेवां यवेन क्षुध पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्याकेन वृजनेना जयेम ।१०
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादवायोः ।
इन्द्रः पूरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ।११
बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्त रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूय पात स्वस्तिभिः सदा नः ।१२

मुझे सुन्दर हाथ और प्राणों वाले के स्तोत्र इन्द्र की स्तुति करते हैं । यह स्तोत्र स्वर्ण प्राप्ति में सहायक एवं परस्पर संयुक्त है । यह सदा इन्द्र की कामना करते हैं जैसे सन्तान-काम्या स्त्रियाँ पतिसे लिपटतीहैं, जैसे पिता आदि को आते देखकर पुत्र उससे लिपट जाते हैं, वैसे ही मेरी स्तुतियाँ इन्द्र से लिपटती हैं ।१। हे इन्द्र ! मेरा मन तुमसे-पृथक् कभी नहीं होता, वह सदा तुम्हारी ही कामना करता है । तुम शत्रुओं का नाश करने वाले हो । राजा के सिंहासन पर स्थित होने के समान तुम इस कुश रूप आसन पर विराजमान होओ । इस सुसंस्कारित सोमयाग में तुम सोमपान करो । २ । वे इन्द्र हमारी क्षुधा को मिटावें, हमारी दरिद्रता को दूर करें । क्योंकि इन्द्र

ही घनों के स्वामी हैं। इन इन्द्र की सप्त नदियाँ ही अन्नकी वृद्धि करते हैं।३। पक्षियों के वृक्ष पर बैठने के समान यह हर्षदायक सोम इन्द्र का ही आश्रय लेते हैं। इस सोमों के दमकते हुये मुख ने सूर्य रूप वाली ज्योति को प्रकाश के लिये मनुष्यों को प्रदान किया।४। जुआरी जैसे पाश ग्रहण करता है वैसे ही हमारी स्तुतियाँ इन्द्र को ग्रहण करती हैं, क्योंकि इन्द्र ने उस तम नाशक सूर्य को आकाश में प्रतिष्ठित किया है। हे इन्द्र तुम्हारे बल की अनुकृति अन्य किसी के द्वारा नहीं हो सकती। तुमसे प्राचीन और नवीन कोईभी तुम्हारे जैसा काम करनेमें समर्थ नहीं है।५। तभी उपासकों के पास वे कामनाओं के वर्षक इन्द्र एक समय में ही पहुँच जाते हैं और सबकी स्तुतिओं को एक ही समय सुन लेते हैं। ऐसे वे इन्द्र जिस ययमान के तीनों सवनों में प्रतिष्ठित होते हैं वह यजमान शक्ति प्रदायक सोम के प्रभाव से युद्ध-काम्य शत्रुओं को वश में कर लेता है।६। जैसे जल सागर में जाता है, जैसे छोठी नदियाँ सरोवर को प्राप्त होती है वैसे ही जब सोम इन्द्र की ओर जाते हैं तब स्तोतागण अपनी स्तुतियों से इन्द्र की महिमा को प्रबृद्ध करते हैं। जैसे जल देते हुए मेघ अन्नकी वृद्धि करते है, वैसे ही स्तुति करने वाले विद्वान् अपने स्तोत्रों से इन्द्र की वृद्धि करते हैं।७। सूर्य से रक्षित जलों को जो इन्द्र पृथ्वी पर गिराते हैं, वह क्रोधित वृषभ के समान मेघ को छिन्न भिन्न करने के लिये जाते हैं और सोमको संस्कारित करने वाले हविदाता यजमान को तेज देते देते हैं।८। मेघ के विदीर्ण करने को इन्द्र वज्र अपने तेज सहित प्रकट हो। जल का दोहन करने वाली वाणी पूर्ववत् प्रकट हो और अपने तेज से दमके। जैसे प्रकाशमान सूर्य अपने ही तेज से प्रकाशित होते हैं, वैसे ही साधूजन के रक्षक इन्द्र अत्यन्त तेजस्वी हो।९। हे इन्द्र तुम्हारी कृपा को प्राप्त करते हुये हम यजमान तुम्हारे अन्न से अपने मनुष्यों की क्षुधा शांत करें। हम तुम्हारी कृपा से अपने समान पुरुष में श्रेष्ठ हो और राजा से धन पावे और फिर अपनी शक्ति

से शत्रुओं को पराजित करें ।१०। बृहस्पति, उत्तर और अर्द्ध दिशाओं से आते हुए हिंसक पापियों से हमारी रक्षा करे। सम्मुख से और मध्य से आते हुये हिंसकों से इन्द्र रक्षा करें चारों ओर से हमारी रक्षा करते हुये सखा रूप इन्द्र हमको धन दें ।११। हे बृहस्पते ! हे इन्द्र ! तुम दोनों आकाश और पृथिवी के धनों के स्वामी हो। अतः मुझ स्तोता को धन देते हुए अपने रक्षा साधनों द्वारा हमारी रक्षा करते रहो ।१२।

सूक्त–१८ [तीसरा अनुवाक]

(ऋषि–मेधातिथिः प्रियमेधश्वः वसिष्ठ। देवता–इन्द्र। छन्द–गायत्री)

वयमु त्वा तदिदर्थी इन्द्र त्वायन्तः सखाय।
कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ।१
न धेमन्यदा पपन वाज्रन्नपसी नविष्टौ। तवेदु स्तोमं चकत ।२
इच्छन्ति देवाः सुन्वन्त व स्वप्नाय स्पृहयन्ति
यन्ति प्रमादमतन्द्राः ।३
वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र णोनुपो वृषन् विद्धी त्वस्य नो वसो ।४
मा नो च वक्तवेऽर्यो रन्धीरराव्णे।
त्वे अपि ऋतुर्मम ।५
त्व वर्मासि सप्रथः पुरोयोषश्च बृत्रहन् त्वया प्रति ब्रुवे युजा

हे इन्द्र हम कण्वगोत्रिय ऋषि तुम सखा रूप की कामना करते हुये तुम्हारे प्रयोजनीय स्तोत्रों से स्तवन करते हैं ।१। हे वज्रिन ! मैं नवीन करता।२। इन्द्रादि देवता सोमको संस्कारित करने वाले यजमान को चाहते हैं और हर्षकारी सोमका ध्यान करतेही प्रमाद रहित हो जाते है।३। हे अभीष्ट वर्षक इन्द्र ! हम तुम्हारी कामना करते हुए तुम्हारे सामने स्तुति करते हैं अतः तुम भी हमारे स्तोत्र की कामना करो।४। हे इन्द्र ! हमको क्रूर वचन कहने वाले, निंदक, अदानशील शत्रुओं के आधीन न करो। मेरी यह स्तुतियाँ तुम्हारे निमित्त ही हैं, इन्हें स्वीकार करो ।५। हे वृत्रहन इन्द्र ! आगे बढ़कर युद्ध करते हो, तुम अत्यन्त

महान हो। तुम ही मेरे लिये कवच के समान रक्षक होते हो। मैं तुम्हें सहायक रूप में पाकर शत्रुओं को ललकारता हूँ।६।

सूक्त–१६

(ऋषि—विश्वामित्र। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री)

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च इन्द्र त्वा वर्तयामापि।१
अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षः शतक्रतो। इन्द्र कृण्वन्तु वाधतः।२
नामानि ते शतक्रतो। विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे। इन्द्राभिमाति षाह्ये।३
पुरुष्टु तस्य धामभिः शतेन महयामसि। इन्द्रस्य चर्षणीधृतः।४
इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहुतमुप ब्रवे। भरेषु वाजसातये।५
वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो। इन्द्र वत्राय हुन्तवे।६
द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवः सुच। इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु।७

हे इन्द्र! वृत्र हनन जैसे कर्म के लिये बल प्रदर्शनार्थ और शत्रु सेनाओं को तिरस्कृत करने के निमित्त हम तुम्हें अपने समाने बुलाते हैं।१। हे इन्द्र! तुम सैकड़ों कर्म करने वाले हो। यज्ञ का निर्वाह करने वाले ऋत्विज तुम्हें हमारे सामने करें और अपनी दृष्टि को भी हमारे लिये कृपा से पूर्ण करो।२। हे शतक्रतो इन्द्र! स्थल में हम तुम्हारे सहस्राण, पुरुन्दर आदि नामों को स्तुति रूप से गाते हैं।३। इन्द्र अनेक स्तोताओं द्वारा पूजनीय हैं,वे मनुष्योंके रक्षक और सैकड़ों तेजों से युक्त हैं। हम उन्हीं इन्द्र का पूजन करते हैं।४। रणक्षेत्र में अनेक योद्धाओं द्वारा विजय के लिये आहूत तथा यज्ञ में अनेक यजमानों द्वारा आहूत इन्द्र को मैं पाप निवारणार्थ और बल प्राप्ति के लिये पूजता हूँ।५। हे इन्द्र! युद्ध में तुम शत्रुओं का तिरस्कार करने वाले होओ मैं पापके निवारणार्थं भी तुम्हारी स्तुति करता हूँ।६। हे इन्द्र! धन प्राप्ति के समय युद्ध की प्राप्ति पर, अन्न की प्राप्ति के समय, पापों और शत्रुओं का नाश करते समय तुम हमारे सहयोगी बनो।७।

सूक्त—२०

(ऋषि-विश्वामित्र:, गृत्समदः । देवता-इन्द्रः । छन्द-गायत्री:, अनुष्टुप्)

शुष्मिन्तम न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् ।
इन्द्र सोमं शतक्रतो ।१
इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु ।
इन्द्र तानि त आ वृणे ।२
अगन्निन्द्र श्रवो वृहद् द्युम्न दधिष्व दुष्टरम् ।
उत् ते शुष्मं तिरामसि ।३
अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः ।
उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ।४
इन्द्रो अङ्ग महद् भयमभी षदप चुच्यवत् ।
स हि स्थिरो विचर्षणिः ।५
इन्द्रश्क्ष मृडयाति नो न नः पश्चादध नशत् ।
भन्द्रं भवाति नः पुरः ।६
इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् ।
जेता शत्रनू विचर्षणिः ।७

हे इन्द्र ! अत्यन्त बल करने वाले, दुःस्वप्न के नाशक, तेज से दमकते हुये सोम को हमारी रक्षा के लिये पिओ ।१। हे इन्द्र ! तुम्हारे देखने सुनने योग्य जो बल देवता, पितर, असुर और मनुष्यों में हैं, मैं उन्हें प्राप्त करूँ ।२। हे इन्द्र ! तुम्हारा अपरिचित अन्न हमें मिले,तुम शत्रुओं से पार लगाने वाले धनों को हममें व्याप्त करो । इस सोम और स्तोत्र द्वारा हम तूम्हारे बल की वृद्धि करते हैं ।३। हे इन्द्र तुम शक्ति-शाली हो । तुम समीप या दूर जहाँ कहीं भी हो वहीं से हमारे पास आओ ! तुम अपने उत्कृष्ट लोक से सोम पीने के लिये यहाँ आगमन करो ।४। हमारे लिये प्राप्त भीषण भय को इन्द्र हमसे दूर

करते हैं वे इन्द्र सदा प्रतिष्ठित रहने वाले और सर्वद्रष्टा ।५। हमारे रक्षक इन्द्र हमको सुखी करें । इन्द्र की रक्षाओं से हमारे दुःखों का अन्त होगा और हमारा कल्याण होगा ।६। सब दिशाओसे प्राप्त होने वाले भयों को इन्द्र दूर करे क्योंकि यह दिशाओं में हमारे शत्रुओं को सूक्ष्म रूप से देख लेने में समर्थ हैं ।७

सूक्त—२१

(ऋषि—सव्य: देवता—इन्द्र: । छन्द—जगत:, त्रिष्टुप्)

यूष वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदेन विवस्वत: ।
नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिद्रदिणोदेषु शस्नते ।१
दुरो अश्वस्य दुर यन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः ।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकदर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिद गृणीमसि ।२
शचीव इन्द्र पुरुकृद् द्यु मत्तम तवेदिददमतिश्चेकिते वसु ।
अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः ।३
एभिर्द्यु भिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिराश्विना
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषमः समिधा रभेमहि ।४
समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सवाजेभिः पुरुश्चन्द्रै रभिद्यु भिः ।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअगयाश्वावत्या रमेमहि ।५
ते त्वा मदा अमदन् त नि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहत्येसु सत्पते ।
यत् कारवे दश वृत्राण्यप्रति वर्हिष्मते नि सत्रस्राणि बर्हयः ।६
युधा युधमप धैदेषि धृष्णुया पुरं समिदं हस्योजतो ।
नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ।७
त्वं करञ्जमुत पर्णय वधोस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्व वर्तनी ।
त्वं शता वंगदस्याभिनत् पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ।८
त्वमेतां जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सूश्रवसोपजम्मुषः ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्र तो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ।९

त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् ।
त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः ।१०
य उद्दृचीन्द्र देवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।११

हम इस इन्द्र के लिये सुन्दर स्तोत्र प्रस्तुत करते हैं यजमान के यज्ञ मंडप में इनके लिये सुन्दर स्तुतियां कही जा रही हैं। सोने वाले पुरुष के धन को चोर द्वारा शीघ्रता से लेने के समान वे इन्द्र असुरों के धन को शीघ्रता से लेते हैं। मैं उन इन्द्र की भले प्रकार की स्तुति करता हूँ ।१। हे इन्द्र ! तुम गौ, अश्व, गज,अन्न आदि के देने वाले हो और हिरण्य रत्नादि भी देते हो। तुम अत्यन्त प्राचीन हो, तुम अपने उपासकों को कामनाओं को प्रवृद्ध करते हो। ऐसे ऋत्विओंके शाखारूप इन्द्र की हम स्तुति करते हैं ।२। हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त मेधावी, बली और बहुकर्मा हो। सर्वत्र व्याप्त धन के तुम स्वामी हो। तुम हमको धन प्रदान करो। मैं तुम्हारी कामना करता हुआ स्तुति करता हूँ । मुझे तुम अपूर्ण मत रहने दो ।३। हे इन्द्र ! हमारी हवियों और सोमों से प्रसन्न होते हुये तुम हमको बहुत से गौ और अश्वादि धन देकर हमारी दारिद्रय को नष्ट करो। तुम सुन्दर मन वाले हो। हम अपने शत्रुओंको क्षीण करने के लिये इन्द्र को सोम द्वारा प्रसन्न करते हुये शत्रु-विहीन होते और दिये हुये अन्न से सम्पन्न होते हैं ।४। हे इन्द्र ! हम सब की इच्छा किये हुये तुम्हारे धन से सम्पन्न हों। हम प्रजाओंको प्रसन्न करने वाले बल से युक्त हों। तुम्हारी कृपामयी बुद्धि हमें प्राप्त हो और वह हमारे लिये गौओं को देने वाली तथा क्लेशों का निवारण करने वाली हो ।५। इन्द्र ! तुम साधुजनों के रक्षक हो। शत्रुनाश का अवसर प्राप्त होने पर हमारा हव्य तुम्हें हर्षित करे और हमारे स्तोत्र द्वारा प्रवृद्ध होकर तुम हमारे लिये अभीष्ट फलों के वर्षक होओ। जब तुम अपने स्तोता यजमान के लिये कर्म करो तब यह सोम तुम्हारे लिये हर्षदायक हो ।६। हे इन्द्र तुम अपने पहार-साधन वज्र से शत्रुओं के अस्त्रों पर आक्रमण करते हो और शत्रु के नगर में वास करने वाले वीरों को

मरुद्गण आदि वीरों द्वारा नष्ट कराते हो। तुमने मायावी नमुचि का संहार कर डाला था इसलिये हम तुम्हारा स्तवन करतेहैं।८। हे इन्द्र! तुमने अपनी अत्यन्त तेज वाली वर्तनी नामक शक्तिके द्वारा अतिथिगु नामक राजा के शत्रु करंजासुर का वध किया था तुम्हीं ने पर्णयासुर का भी वध किया। ऋजिश्वम् नामक राजा के शत्रु वंगृदासुर के सौ पुरों का भी तुमने ही ध्वंस किया था।८। हे इन्द्र ! तुमने असहाय राजा सुश्रुवा को घेरने वाले साठ हजार निन्यानवे सेनाध्यक्षोंको अपने उस चक्र से नष्ट किया, जिस चक्र को शत्रु प्राप्त नहीं कर सकते।६।हे इन्द्र ! सुश्रुवा की तुमने रक्षा की और उसी के लिये तूर्वयाण नामक राजा की रक्षा तुमने सुश्रुवा को कुत्स अतिथिगु और आयु का आश्रय प्राप्त कराया।१०। हे इन्द्र ! उस यज्ञ की सम्पन्नताके समय हम तुम्हारी रक्षा प्राप्त करें। हम तुम्हारे सखा रूप हैं इसलिये हम मङ्गलको प्राप्त हों। यज्ञ के सम्पूर्ण होने पर भी तुम्हारी स्तुति करते हुये हम सुन्दर पुत्रों वाले हों और दीर्घजीवन को प्राप्त करें।११।

सूक्त—२२

(ऋषि—त्रिशोकः, प्रियमेध। देवता—इन्द्रः छन्द—गायत्री)

अभि त्वा वृषभा सुते सतं सृजामि पीतये।
तृम्पा व्यश्नुही मदम् ।१
या त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन्।
माकीं ब्रह्मद्विषो वनः ।२
इहा त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे।
सरो गोरा यथा पिव ।३
अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे।
सूनुं सत्यस्य सत्यपतिम् ।४
आ हरयः सभृज्रिरेऽरुषीरधि वर्हिषि
यत्राभि संनबामहे ।५
इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु।

यत् सीमुपह्वरे विदत् ।६

हे इन्द्र के संस्कारित होने पर सोम के लिये हम तुम्हें सङ्गत करते हैं। उन हर्षदायक सोम को उदरस्थ करते हुए तृप्ति को प्राप्त होओ ।१। हे इन्द्र ! तुम्हारी सहायता बिना अपनी रक्षा की स्वयं कामना करने वाले मूर्ख तुम्हें हिंसित न कर पावें। तुम ब्राह्मणोंसे द्वेष करने वालों की सेवा स्वीकार मत करो। तुम्हारे प्रति व्यंग करने वाले तुम्हें दबाने में समर्थ न हों ।२। हे इन्द्र इस गोरस मिश्रित सोम से ऋत्विज इस यज्ञमें तुम्हें प्रसन्न करे। जैसे प्यासा मृग सरोवरपर जाकर जल पीता है, वैसे ही तुम सोम का पान करो ।३। हे स्तुति करने वालो ! इन्द्र हमें जिस प्रकार अपना मानें उस प्रकार तुम उनका पूजन करो यह यज्ञ के पुत्र रूप इन्द्र सत्य फल से युक्त हैं और साधुजनों के रक्षक हैं ।४। इन्द्र के सुन्दर अश्व उनके रथ को हमारे स्तुति स्थान पर बिछी हुई कुशाओं के समीप लावे ।५। जब पास ही रखे हुये मधुर सुस्वादु सोम को इन्द्र पीते हैं, तब उन वज्रधारण करने वाले के लिये गौऐं मधुर दुग्ध का दोहन करती हैं ।६।

सूक्त—२३

(ऋषि—विश्वामित्रः। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री)

आ तू न इन्द्र मद्र्यगघुवानः सामपीतये। हरिभ्यां याह्यद्रिवः।१
सत्तो होता न ऋत्वियस्तिरे वर्हिरानुषक्।
अयुज्रन् प्रातरद्रयः ।२
इमा ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ वर्हिः सीद।
वोहि शुर पुरोडाशम् ।३
रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेष वृत्रहन्। उक्थेष्विन्द्रगिर्वण ।४
मतयः सोमपामुरु रिहन्ति शवसस्पतिम्। इन्द्रं वत्स न मातरः।५
स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वामहे। न स्तोतार निदे करः।६
वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे। उत त्वमस्मयुर्वसो ।७

मारे अस्मद् वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ् याहि ।
इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ।८
अर्वाञ्च त्वा मुखे रथु वहतामिन्द्र केशिना । घृतस्नू वहिरासदे।९

हे वज्रिन ! हमारे यज्ञ में आहूत किये जाते हुये तुम अपने हरित अश्वों के द्वारा सोम पीने के लिये आओ ।१। हे इन्द्र हमारे यज्ञ के अवसर पर होता उपस्थित हैं और वेदी में कुशा भी बिछे हुये हैं और सोम का संस्कार करने वाले पाषाण भी प्रस्तुत हैं ।२। हे इन्द्र ! इन कुशाओं पर प्रतिष्ठित होओ और हमारे द्वारा प्रदत्त हविका सेवन करो हम तुम्हारी स्तुति कर रहे हैं ।३। हे इन्द्र ! वृत्रहन और स्तुतियाँ द्वारा सेवा करने योग्य हो । अतः तुम तीनों सवनों में स्तोत्रों में व्याप्त होओ ।४। जैसे गो अपने वत्स को चाटती है, वैसे ही हमारी स्तुतियाँ सोमापायी इन्द्र को प्राप्त होती हैं ।५। हे इन्द्र शरीर में बल भरने के लिये सोम की शक्ति से युक्त होओ । बहुत से धन-दान के लिये हर्षित होओ । मैं तुम्हारी स्तुति करने वाला किसी अन्य का निन्दक न होऊँ ।६। हे इन्द्र ! हम सोम रूपी हवियों से सम्पन्न होकर तुम्हारी कामना करते हैं । तुम हमको अभीष्ट फल दो ।७। हे इन्द्र ! तुम अपने अश्वों को प्रिय मानते हो । अपने रथ में संयुक्त उन अश्वों को दूर छोड़कर रथ पर चढ़े हुये ही हमारे सामने आओ और इस यज्ञमें सोमको पीकर हर्ष में भरो ।८। हे इन्द्र ! तुम्हारे श्रम की बूदोंसे भींगे हुये अश्व तुम्हें सुखी करने वाले रथ पर आरूढ़ कर इस कुशा पर विराजयान करने के लिये हमारे सामने लावें ।९।

सूक्त-२४

(ऋषि-विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

उप नः सुतमा गहि सोममन्द्र गवत्रिरम ।
हरिभ्यां यस्ते अस्मायुः ।१
तमिन्द्र भदमा गहि वर्हिष्ठां ग्रावभिः सुतम ।
कुविन्नवस्य तृष्णवः ।२

इन्द्रमित्था गिरो ममाच्छागुरिषिता इतः । आवृते सोमवीतये ।३
इन्द्र सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामह । उक्थेभिः कुविदागत ।४
इन्द्र सोमा सुता इमेतान् दधिष्व शतक्रतो जठरे जाजिनीवसो ।५
विद्मा हि त्वा धनजय जेषु दधृषं कवे । अध ते सुम्नमीमह ।६
इममिन्द्रा गवाशिर यवाशिर च नः पिब ।
अगात्या वृषाभिः सुतम् ।७
तुभ्यदिन्द्र स्व ओक्ये सोमं चोदामि पीतये ।
एष रारन्तु ते हृदि ।८
त्वां सुतस्य पोतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे । कुशिकासो अवस्ययः ।९

हे इन्द्र ! हमारे गव्यनय सोम के पास आओ । तुम्हारे अश्वों से युक्त रथ हमारे यहाँ आना चाहता है ।१। हे इन्द्र ! कुशाओं पर रखे इस सुखकारी सोम की ओर आगमन करो और इसे पीकर तृप्त होओ ।२। हमारी स्तुति रूप वाणियाँ इन्द्र को हमारे यज्ञ स्थान में लाने के निमित्त इन्द्र के पास जाती हैं ।३। सोम पीने के लिए इन्द्र को हम स्तुतियों द्वारा आहूत करते हैं, वे हमारे यज्ञ में अनेक बार आगमन करें ।४। हे इन्द्र ! सोम चमस आदि तुम्हारे निमित्त एकत्र किये गये हैं, इन्हें तुम अपने उदरस्थ करो ।५। हे इन्द्र ! हम तुम्हें जानते हैं कि तुम युद्धावसर रर शत्रुओं को वश में करने वाले और धनों के विजेता हो । इसलिये हम तुम से सुख देने वाले धन को माँगते हैं ।६। हे इन्द्र ! पाशाणों ने निष्पन्न और यव्य मिश्रित सोम का आकर पान करो ।७। हे इन्द्र ! इस सोम को पीकर उदरस्थ कर लेने के लिये मैं तुम्हें प्रेरित करता हूँ । वह सोम पीने के पश्चात् तुम्हें हृदय में रमा रहे ।८। हे इन्द्र ! हम कौशिक तुम्हारी रक्षा की कामना करते हुये निष्पन्न सोम को पीने के लिये आहूत करते है ।९।

सूक्त—२५

(ऋषि—गोतमः । देवता—इन्द्र । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

अश्वावति प्रथतो नोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभि ।

तमित् पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतस: ।१

आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमव: पश्यन्ति विततं यथा रज: ।
प्राचैर्देवास: प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रिय जोषयन्ते वराइव ।२
अधि द्वयोवदधा उक्थ्यं वचो यतस्रुचा मिथुना य सषर्यत: ।
असयतो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ।३
आदङ्गिरा: प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नय: शम्या ये सुकृत्यया ।
सर्वं पणे: समविन्दन्त भोजनमश्वान्तं गोमन्तमा पशु नर: ।४
यज्ञरथर्वा प्रथम: पथस्तते तत: सूर्यो वृतपा वेन आजनि ।
आ गा आजदुशना काव्य: सचा यजस्य जातमृत यजामहे ।५
र्वाहर्वा यत् स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि ।
ग्र वा यत्र वदति लारुरुक्थ स्तस्येदिन्दो अभिपित्वेषु रण्यति ।६
प्रोगा पोतिं वृष्ण इयर्मि सत्या प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम ।
इन्द्र धेनाभिरिह पादयस्व धाभिर्विश्वाभि: शच्या गृणान: ।७

हे इन्द्र ! तुम्हारे द्वारा रक्षित हुआ पुरुष बहुसंख्यक अश्वों वाले युद्ध में अश्वारोहियों में प्रमुख होता है और गौओं वाले पुरुषों में भी श्रेष्ठ होता है । जैसे जल समुद्र को सब ओर भरते हैं, वैसे ही तुम भी अनेक प्रकार से प्राप्त होने बाले धन से उसे पूर्ण करते हो ।१। हे इन्द्र जैसे जल नीचे को वह कर समुद्र में जाता है,वैसे ही स्तुतियाँ तुम में जा मिलती हैं, जैसे सूर्य के प्रकाश की चकाचौंधसे मनुष्य नीचे की ओर देखने लगते हैं, वैसे ही तुम्हारे तेजसे दृष्टि चुराते हैं । जैसे स्तोता तुम्हें वेदी के सामने करते हैं, वैसे ही ऋत्विज तुम्हारी सेवा करते हैं ।२। जिनमें यज्ञ साधन पात्र रखे हैं वे उन पात्रों के द्वारा इन्द्र का पूजन करते हैं उन पर स्तुति योग्य उक्थ स्थापित किया गया है । हे इन्द्र ! तुम्हारे निमित्त किये जाते इस यज्ञ का करने वाला यजमान संतान और पशु आदि से सम्पन्न हो और यह कल्याणमयी शक्ति को प्राप्त करे ।३। हे इन्द्र ! पणियों द्वारा गौओं का अपहरण कर लेने पर

अङ्गिराओं ने प्रथम तुम्हारे लिये ही हविरन्न का सम्पादन किया था। यह अङ्गिरावंशी ऋषि हमारे लिये प्राप्त भीषण भय को इन्द्र हमसे दूर करते हैं वे इन्द्र सदा अपने सुन्दर कर्मों मे आह्वानीय अग्नि को प्रदीप्त रखते हैं। इनके नेताओं ने पणि से छीता हुआ गौ, अश्व. भेड़, बकरी आदि के रूप में बहुत सा धन प्राप्त किया था।४। महर्षि अथर्वा ने इन्द्र के लिये यज्ञ करते हुये चराई हुई गायों के भाग को सूर्य से पहले ही जान लिया था जब सूर्य उदित हो गये तब कवि के पुत्र उशना ने गौओं को इन्द्र की सहायतासे प्राप्त किया था। उन अविनाशी इन्द्र का हम पूजन करते हैं।५। सुन्दर संतान रूप फल की प्राप्ति के लिये यज्ञ की कुशा विस्तृत की जाती है जिस वाणी रूप स्तोत्र का यज्ञ में उच्चारण किया जाता है, जिस यज्ञ में सोम का अभिषव करने वाला पाषाण स्तुति करने वाले के समान शब्द करता है, वहाँ इन्द्र विराजमान होते हैं।६। हे इन्द्र ! तुम हर्यश्व द्वारा श्रेष्ठ गमन करने वाले और अभीष्ठों के वर्षक हो तुम्हारे लिये मैं सोम-रस पीने की प्रेरणा करता हूँ। तुम स्तुतियों से हमारे इस यज्ञ में प्रसन्न होओ।७।

सूक्त-२६

(ऋषि—शुनः, शेपः, मधुच्छन्दाः। देवता—इन्द्र। छन्द गायत्री)

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे। सखायः इन्द्र मूतये।१
आ घा गमद् यदि श्रवत् सहस्रिणो भरूतिभिः।
वाजेभिरुप न हवम्।२
अनु प्रात्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम। यं ते पूर्व पिता हुवे।३
युञ्जन्ति व्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि।४
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे। शोणा धृष्ण नृवाहसा।५
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसेः। समुषद्भिरजायथा।६

यज्ञावसर या युद्ध की प्राप्ति पर हम सखा रूप इन्द्र को आहूत करते हैं और अन्न प्राप्ति के अवसर पर भी हम उन्हें ही बुलाते हैं।१। वे इन्द्र मेरे आह्वान को सुनकर अपने रक्षा साधनों और अन्नों सहित यहाँ आवें।२। हे इन्द्र ! तुम प्राचीन स्वर्ग के स्वामी और असंख्य

वीरों के प्रतिनिधि रूप हो । मेरे पिता ने भी पहले तुम्हारा आह्वान किया था । अतः मैं भी तुम्हें आहूत करता हूं ।३। इन्द्र के महान, देदीप्यमान, विचरणशील रथमें हर्यश्व संयुक्त होते हैं । वे अश्व आकाश में दमकते रहते हैं ।४। इन्द्र के सारथी इनके रथ में घोड़े को जोड़ते हैं, यह घोड़े रथ के दोनों ओर रहते हैं । यह अश्व कामना करने के योग्य एवं आरूढ़ कराने वाले हैं ।५। हे मनुष्यो ! अन्धकार में छिपे पदार्थों को अपने प्रकाश से रूप देने वाले और अज्ञानी को ज्ञान देने वाले सूर्य किरणों सहित उदय हो गये, इनके दर्शन करो ।६।

सूक्त—२७

(ऋषि—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनो । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

यदिन्दाहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् ।
स्तोता मे गोषखा स्यात् ।१
शिक्षेयमस्मै दित्सेय शचीपते मनीषिणे ।
यदहं गापतिः स्याम् ।२
घेनुष्ट इन्द्र सूनता यमानाय सुन्वते ।
गामश्वं पिप्युषी दुहे ।३
न ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मत्यः ।
यद् दित्ससि स्तुतो मघम् ।४
यज्ञ इन्द्रमवर्धयद भूमिं व्यवर्तयत् ।
चक्राण ओपश द्रिवि ।५
वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनामि जिग्युषः ।
ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे ।५

इन्द्र ! ऐश्वर्यंवान् हो तुम जैसे देवताओं में श्रेष्ठ धनों के स्वामी हो: वैसे ही मैं भी धन का स्वामी होऊं । जैसे तुम्हारी स्तुति करने वाला गौओं का मित्र होता है, वैसे ही मेरी प्रशंसा करने वाला गौ आदि को प्राप्त करने वाला हो ।१। हे शचीपते ! जब तुम्हारी कृपा से मैं गौओं से सम्पन्न हो जाऊं तब इस स्तुति करने वाले विद्वान को

धन देने की इच्छा करता हुआ इमे धन दे सकूं ।२। हे इन्द्र हमारी सत्य वाणी तुम्हें गौ के समान तृप्ति,कर हो और सोम का संस्कार करने वाले यजमान की बृद्धि करें। यह गबादि अभीष्ट पदार्थों का दोहन करती है ।३। हे इन्द्र ! तुम्हारे धन-दान को कोई रोक नहीं सकता। देवगण तुम्हारे धन को अन्यथा नहीं कर सकते और मनुष्य भी तुम्हारे धन को मिटाने में समर्थ नहीं है। हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होकर यदि तुम हमको धन प्रदान करना चाहो तो उस धन को कोई नष्ट नहीं कर सकता ।४। जो इन्द्र अन्तरिक्ष में मेघ को विस्तृत करते और पृथ्वी को वर्षा के जल से फुलाते हैं। वे ही वर्षा के जल से भूमि के धान्यों को पुष्ट करते हैं। तब हमारी हवियाँ इन्द्र की बृद्धि करती हैं ५। हे इन्द्र ! तुम स्तुतियों से प्रबृद्ध होते हो। हम तुम्हारी शत्रु के धनों को जीतने और रक्षा करने वाली शक्ति का वरण करते हैं ।६।

सूक्त-२८

(ऋषि: गोषूक्त्यश्वसूक्तिनो ।। देवता—इन्द्र: । छन्द:—गायत्री)

व्यन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना ।
इन्द्रो यदभिनद् वलम ।।१
उद्गां आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन गुहा सतीः ।
अर्वाञ्च नुनुदे वलम् ।।
इन्द्रेण रोचना दिवो दृढानि दृहितानी च ।
स्थिराणि न पराणुदे ।।३
अपामूर्मिर्मदन्निव स्त म इन्द्राजिरायत ।
वि ते मदा अराजिषुः ।।४

सोम-पान से उत्पन्न शक्ति के द्वारा इन्द्र ने जब मेघ को चीरा तब अन्तरिक्ष को वर्षा के जल से प्रवृद्ध किया ।१। अङ्गिराओं के लिये इन्द्र ने कंदरा में छिपी गौओं को प्रकट किया और उन्हें निकालकर अपहरण

कर्ता राक्षसों को भी अधोमुख कर पतित किया ।२। आकाश में स्थित ग्रहों और नक्षत्रोंको इंद्रने स्थित और दृढ़ किया । इसलिये अब इंहें कोई गिरा नहीं सकता ।३। हे इंद्र ! वर्षा के जल से समुद्र आदि को हर्षित करता हुआ रस के समान तुम्हारा स्तोत्र मुख से प्रकट होता है। सोम पान के पश्चात तुम्हारी शक्ति विशिष्ट होती हैं ।४।

सूक्त-२६

(ऋषि-गोषूबत्यश्यवरूक्तिनी ।देवता-इन्द्रः । छंदः-गायत्रीं,

त्वं हि स्तोमवर्धन इन्दास्युक्थवर्धनः ।
स्तोतृणामुत भादकृत् ।।१
ईंदभित् केशिना हरी सोमपेयाय वक्षतः ।
उप यज्ञं सुराधसम् ।।२
अपां फेनेन नमुचे शिरः इन्द्रोदवर्तयः ।
विश्वां यदजय स्पृधः ।।३
मायाभिरुत्सिसृप्सत ईंद्र द्यामारुरुक्षतः ।
अब वस्यूँरधनुथाः ।।४
असुंवामिंद्र संसदं विषुचीं व्यनाशयः
सांमपा उत्तरो भवन् ।।५

हे इंद्र ! तुम स्तोत्रों और उक्थों से बढ़ते हो स्तुति करने वालों के लिये कल्याणप्रद हो ।१। इंद्र के हर्यश्व सुंदर फल वाले हमारे यज्ञ में इंद्र को सोम होने के लिये लावें ।२। हे इंद्र ! तुमने नमुचि नामक राक्षस का शिर जल के फेनका वज्र बनाकर काट डाला औरप्रतिस्पर्द्धी सेनाओं पर विजय प्राप्त की ।३। हे इंद्र अपनी माया से आकाश पर चढ़ने की इच्छा करने वाले असुरों को तुम अधोमुखी करते हुए पतित करते हो ।४। हे इंद्र ! तुम सोम पीकर बलवान होते हो और जहाँ सोम का अभिषव नहीं होता वहाँ के समाज को नष्ट कर देते हो ।५।

सूक्त-३०

(ऋषिः—वरुः सर्वहरिर्वा । देवता— इन्द्रः । छन्दः—जगती)

प्र ते महे विदथे शंसिष हरी प्र ते वन्वे वनुषो षंतं मदम् ।
घृतं न यो हरिभिश्चारु सचेत आ त्वा विशन्तु हरिवर्पस गिरः ।१
हरिं हि योनियभि ये समस्वरन् हिन्वन्तो हि दिव्यं यथा सदः ।
आ यं पृणन्ति हरिभिर्न धनव इन्द्राय शूष हरिवन्तमचत । २
सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिनिकामो हरिरा गभस्त्योः
द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक इन्दे निरूप हरिता मिमिक्षिरे ।३
दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो विव्यचद् वज्रो हरितो न रह्या ।
तुददर्हि हरिशिप्रो य आतसः सहस्रशोका अयबद्धरिभरः ।।४
त्वंत्वमर्यथा उपस्तुतः पूर्वेभिरिन्द हरिकेश यज्वभिः ।
त्व हर्यसि तब विश्वमुक्थ्यमसामि राधो हरिजात हर्यतम् ।।५

हे इन्द्र ! तुम्हारे अश्व शीघ्रता गमन वाले हैं, इस विशाल यज्ञ में मैं उनकी प्रशंसा करता हूं । तुम शत्रुओं के हननकर्त्ता हो, सोम पीने से उत्पन्न हुई शक्ति द्वारा मैं अपने अभीष्ट फलको माँगता हूं । जैसे अग्नि में घृत सींचा जाता है, वैसे ही इन्द्र अपने हर्यश्वों सहित आतेहुएसुन्दर धन की वृद्धि करते हैं । उनको हमारे स्तोत्र प्राप्त हों ।१। प्राचीन महर्षियों ने इन्द्र को यज्ञ में शीघ्रता से बुलाने के लिए इन्द्रके अश्वों को प्रेरित किया, वह स्तोत्र मूल रूपसे इन्द्र के निमित्त ही था । नव प्रसूता गौ जैसे क्षीर देकर स्वामी को तृप्त करती हैं, वैसे ही सोमों के द्वारा यजमान इन्द्र को तृप्त करते हैं । हे ऋत्विजो! उन शत्रु-पोषक बलवान हर्यश्वयुक्त इन्द्र का पूजन करो ।२। इन्द्र का लौह वज्र भी हरा है ।इन्द्र का कमनीय देह भी हरे रङ्ग का है इनके पास हरे रङ्ग वाला ही वाण रहता है तथा इनकी सब साज सज्जा ही हरे रङ्ग की है ।३। इन्द्र का वज्र सूर्य से समान अन्तरिक्ष में स्थित है, गैसे सूर्य के घोड़े वेग से लक्ष्य को प्राप्त होते हैं, वैसे ही इन्द्र का वज्र वेग से गन्तव्य स्थान को

प्राप्त होता है। अपने हरित बज्र के द्वारा इन्द्र ने वृत्रासुर को संतप्त किया और उन्होंने उसके सहस्रों साथियों को शोक प्राप्त कराया।४। हे इन्द्र ! तुम्हारे केश भी हरे रङ्ग के हैं। जहां सोम रूप हवि है वहां तुम हो। स्तुति प्राप्त करके हवि की इच्छा करते हो और अब भी कर रहे हो। तुम अपने हर्यश्वों सहित यज्ञ में आते हो। ऐसे हे इन्द्र ! यह सोम, अन्न और उक्थ तुम्हारे ही हैं।५।

सूक्त-३१

(ऋषिः–बरूः सर्वहरिर्वा ।। देवताः–इन्द्रः ।। छन्दः–जगती)

ता वाज्रिण मन्दिन स्तोभ्य मद इन्द्रं रथे बहतो हर्यता हरो।
पुरुण्यस्मै सवनानि हर्यतं इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे ।।१
अरं कामाय हरयो दधिन्विरे स्थिराय हिन्वत् हरयो हरी तुरा।
अवद्भिर्यो हरिभिर्जोषमीयते हो अस्य काम हरिवन्तमानशे।२
हरिश्मशारुहरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवधत।
अवद्भिर्यो हरिभिर्वाजिनोवसुरति विश्वा दुरिता पारिषद्धरी।३
स्रुवेव यस्य हरिणी विपेततुः शिप्र वाजाय हरिणी दविध्वतः।
प्र यत् कृते चमसे ममृञ्जद्धरो पीत्वा मदस्य हर्यतस्यान्धसः।।४
उत स्म सद्म हर्यतस्य पस्तयो न वाजं हरिवाँ अचिक्रदत्।
मही चिद्धि धिषणाहर्य दो जसा बृहद् वयो दधिषे हर्यतश्चिदा।५

सोमोत्पन्न शक्ति के निमित्त इन्द्र के अश्व उन्हें हमारे यज्ञ में ला रहे हैं। तीनों सवनों वाले सोम इन्द्र को धारण करते हैं।१। हरे रङ्ग वाले सोम युद्धों में अटल रहने वाले इन्द्र को धारण करते हैं, वही सोम उनके घोड़ों को यज्ञ की ओर प्रेरित करते हैं। जो इन्द्र वेग से अपने घोड़ों द्वारा यज्ञ में आगमन करते हैं सोम वाले यजमान के पास पहुंचते हैं।२। इन्द्र के केश, दाढ़ी, मूंछ सब हरे रङ्ग के है। वे सोम के संस्कारित होने पर सोम को पीते हुए वृद्धि को प्राप्त होते हैं। अपने द्रुतगामी अश्वों से वे सोम पीने को आते हैं, हवि उनका धन रूप है।

वे अपने रथ में घोड़े को जोड़कर हमारे सब पापों का नाश करें ।३। जैसे यज्ञ में स्रुवे चलते हैं, वैसे ही इन्द्र की हरे रङ्ग की चिबुक सोम पीने के लिये चलती है । जब सोम से चमस पूर्ण होता है तब उसका पान करते हुये इन्द्र की चिबुक फड़कती है । उस समय वे अपने अश्वों को परिमार्जन करते हैं ।४। इनका निवास द्यावापृथिवी में है । अश्व जैसे युद्ध के लिये अग्रसर होता है, वैसेही अपने अश्वों पर चढ़े हुये इन्द्र यज्ञ स्थान की ओर अग्रसर होते हैं । हे इन्द्र ! हमारा स्तोत्र तुम्हारी कामना करता है, तुम भी यजमान की कामना करते हुए आकर उसे अपरिमित धन देते हो ।५।

सूक्त-३२

(ऋषि—वरु: सर्वहरिर्वा । देवता—इन्द्र: । छन्द—त्रिष्टुप्)

आ रोदसी हर्यमाणो महित्वा नव्यं नव्यं हर्यसि मन्म नु प्रियम् ।
प्र पस्त्य मसुर हर्यत गोराविष्कृधि हरये सूर्याय ।।१
आ त्वा हर्यन्तं प्रयुजो जनानां रथे वहन्तु हरिशिप्रमिन्द्र ।
पिबा यथा प्रतिभृतस्य मध्वो हर्यन् यज्ञं सधमादे दशोणिम् ।।२
अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते ।
ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषञ्जठर आ वृषस्व ।३

हे इन्द्र ! तुम अपनी महिमा से आकाश और पृथ्वी को व्याप्त करते हो । तुम सदा नवीन रहने वाले हो । तुम हमारे प्रिय स्तोत्र की इच्छा करते हो । तुम पणियों द्वारा अपहृत गौओं के स्थान को सूर्य को देते हो । वह सूर्य स्तुति करने वाले को उस गोष्ठ को दें, ऐसी कृपा करो ।१। हे इन्द्र ! तुम सोम पीने की इच्छा करने वाले और सोम पीने से हरे रङ्ग की हुई ठोड़ी वाले हो । तुमको रथ में जुड़े घोड़े यहाँ लावें । चमस आदि में रखे हुये सोम वाले घर में आकर तुम सोम पी सको इसलिये तुम्हें अश्व यहां ले आवें ।२। हे इन्द्र ! तुम प्रातः सवन में सोम पान कर चुके हो अब यह माध्यादित सवन भी तुम्हारा ही है ।

अतः इस सवन में सोम पीकर हृष्ट होओ । इस सोम को एक साथ ही उदरस्थ कर लो ।३।

सूक्त—३३

(ऋषिः-अष्टकः । देवता—इंद्र । छंद—त्रिष्टुप्)

अप्सु धूयस्य हरिवः पिबेह नृभिः सुतस्य जठरं पृणस्व ।
यमिक्षुर्यमद्रय इंद तुभ्य तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः ।१
प्रोग्रां पीतिं वृष्ण ईयमि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम् ।
इन्द धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गणानः ।२
ऊती शतीवस्तव वीर्येण वयो दधाना उशिज ऋतज्ञाः ।
प्रजावदिद मनुषो दुरोणे तस्थुर्गृणन्त सधमाद्यासः ।।३

हे इंद्र ! अध्वर्युओं द्वारा संस्कारित इस सोम को,पीकरउदर को पूर्ण करो । जिस सोम को पाषाण निष्पन्न कर चुके हैं, उसे पीते हुये हर्षयुक्त होओ ।१। हे इंद्र ! तुम इच्छित फल-वर्षक हो । मैं तुम्हें सोम की प्रचंड शक्ति रूपी बल के लिये प्रेरित करता हूं । तुम यज्ञ कर्म में हवि और स्तुतियों से प्रशंशित और तृप्त होओ ।२। हे इंद्र ! तुम्हारे द्वारा रक्षित पुत्रादि रूप संतान और अन्न से सम्पन्न सत्यफल के ज्ञाता और तुम्हें चाहने वाले ऋत्विज, यजमान के घर में तुम्हारी स्तुति करते हुए बैठे हैं ।३।

सूक्त—३४

(ऋषि—गृत्समदः । देवता—इंद्रः । छंद—त्रिष्टुप्)

योजात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतांनृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्र ।१
सः पृथिवीं व्यथमानामदंहद यः पर्वतान् प्रकुपितां अरभ्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नाव स जनास इंद्र ।२

यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून् यो गा उदाजदपधा वलस्य ।
यो अश्मनारन्तरग्नि जनान संवृक् सतत्सु स जनास इन्द्रः ।।३
येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।
स्वघ्नीव यो जिगीवाल्लं क्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः।।४
यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।
सो अर्यः पुष्टीर्विजइवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ।५
यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्राह्मणा नाधमानस्य कीरेः ।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः । ६
यस्माश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः।
यः सूर्यं य उषस जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ।।७
यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः ।
समानं चिद्रथमातस्थिवास नाना हवेते स जनास इन्दः ।।८
यस्मान ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव या अच्युच्यत स जनास इन्द्ः ।।९
यः शश्वतो मह्येनो दधानामन्यमानाञ्छर्वा जघान ।
वः शधते नानुददाति शघ्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इंदः ।।७१

इन्द्र के बल से आकाश पृथिवी भयभीत रहते हैं । उन इन्द्रनेप्रकट होते ही अन्य देवताओं को रक्ष्य रूप में ग्रहण किया ।१। हे असुर ! जिन्होंने विचलित भूमि को स्थिर किया, जिन्होंने पङ्ख वाले पर्वतों के पङ्ख काटकर अचल कर दिया, जिन्होंने अंतरिक्ष और आकाश को भी स्तम्भित किया, वह इन्द्र है ।२। जिस इन्द्र ने अन्तरिक्ष में घूमने वाले मेघ को चीर कर नदियों को प्रेरित किया और बल द्वारा अपहृत गौओं को प्रकट किया । जिन्होंने मेघोंमें व्याप्त पाषाणों से विद्युत को उत्पन्न किया, जो युद्धों में शत्रुओं का नाश करते हैं, वही इन्द्र हैं ।३। हे असुरो ! जिन्होंने दृश्यमान लोकों को स्थिर किया, जिन्होंने असुरों को गुफाओं में डाल दिया, जिन्होंने प्रत्यक्ष शत्रुओं पर विजय पाई और जो शत्रु के धनों को छीन लेते हैं, वे इन्द्र हैं ।४। शत्रु नाशक उन इन्द्र के

सम्बन्ध में लोग विविध शङ्कायें करते हैं, वह शत्रु रक्षक सेनाओं का समूल नाश करते हैं। हे मनुष्यों ! उन इन्द्र पर विश्वास करो, उनके प्रति श्रद्धावान होओ। वृत्रादि शत्रुओं को उनके सिवाय और कौन जीतता ? वे शत्रु-विजेता इन्द्र हैं।५। जो इन्द्र निर्धन को धन और असहायों की सहायता देते है जो स्तोता ब्राह्मणों को इच्छित प्रदान करते हैं। जिनकी चिबुक सुन्दर है और जो सोम संस्कारित करने वाले यजमानों के रक्षक हैं। हे मनुष्यो ! वह इन्द्र है।६। माँगने वाली को देने के लिये जिन इन्द्र के पास बहुत से अश्व गौए, ग्राम, रथ, गज, ऊँट, आदि सब कुछ हैं और जिन इन्द्र ने प्रकाश के लिये सूर्य का उदय किया है और उषा को प्रकट किया है। जो वर्षा के जलों के प्रेरक हैं, वे इन्द्र हैं।७। आकाश और पृथिवी परस्पर एकमत हुए इन्द्र का आह्वान करते हैं। द्युलोक हवि के लिये और पृथिवी वृष्टि के लिए उन्हें आहूत करते हैं, समान रथ में बैठे हुए सेनापति जिन्हें आहूत करते हैं वह इन्द्र ही हैं।८। जिनकी सहायता के बिना विजय की कामना करने वाले व्यक्ति शत्रुओं को हरा नहीं सकते। इसलिए युद्धावसर पर वे रक्षा के लिए उन्हें बुलाते हैं। जो इन्द्र अचल पर्वतों को हटाने में समर्थ हैं और जो प्राणियों के पुण्य पाप के द्रष्टा है, वह इन्द्र हैं।९। महापापियों और इन्द्र की सत्ता को न मानने वालों को जो इन्द्र हिंसित करते हैं, जो अपने कर्मों में इन्द्र की अपेक्षा नहीं करते उनके जो प्रतिकूल रहते हैं, जो वृत्र आदि असुरों के हिंसक हैं, हे मनुष्यो ! वह इन्द्र हैं।१०।

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानं शयान स जनास इन्द्रः।११
यः शम्बरं पर्यतरत् कसोभिर्योऽचारुदास्वापिबत् सुतस्य।
अन्तर्गिरौ यजमान बहुं जनं यस्मिन्नामुर्छत् स जनास इन्द्रः।१२
यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मामवासृजत सर्तवे सप्त सिन्धून्।
यो रौहिणमस्फुरद् वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः॥१३

द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते ।
यः सोपमा र्भिचितो वज्र वाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥१४
यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शसन्तं यः शशमानमूता ।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥१५
जातो व्यख्यत् पित्रारुपस्थे भुवो न वेद जनितुः परस्य ।
स्तविष्यमाणो नो यो अस्मद् व्रता देवानां स जनाम इन्द्रः ॥१६
यः सोमकामो हर्यश्वः सूरिर्यस्माद् रेजन्त भवनानि विश्वा ।
यो जघान शम्वरं यश्व शुष्णं य एकवीरः स जनास इन्द्रः ॥१७
य सुन्वते पचते दुध्र आ चिद् वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः ।
वय त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥१८

जिन इन्द्र ने चालीस वर्ष तक पर्वत में छिपकर घूमते हुए शम्बर का वध किया, जिन्होंने शयन करने वाले बली पुत्र का संहार किया, वह इन्द्र हैं ।११। जिन इन्द्र की हिंसा के लिए असुरों ने सोमयागकर्त्ता अध्वयुंओं को घेर लिया, जिन इन्द्र ने वज्र से शम्बर का दमन किया और जो निष्पन्न सोम को पी चुके हैं, वह इन्द्र है ।१२। जो जलों की वर्षा करने वाले हैं, जो कामनाओं के भी वर्षक हैं, जो सात रश्मियों वाले सूर्य रूप से स्थित हैं, जिन्होंने वज्र ग्रहण कर आकाश पर चढ़ते हुए रोहिणासुर का वध किया औरजिन्होंने सातनदियों को उत्पन्नकिया, वह इन्द्र है ।१३। जिनके समक्ष आकाश पृथिवी झुकती है, जिसके बल से पर्वत भी कांपते हैं, जो सोम पीकर दृढ़ शरीर वाले और बलवाण बाहुओं वाले हैं, जो वज्रको धारण करते हैं, वह इन्द्र है ।१४। जोहवि पाक करने वाले और सोम का संस्कार करने वाले यजमान के रक्षकहैं। जो रक्षा के लिए सोम गान करने वाले के रक्षक हैं, सोम और स्तोत्र जिन्हें बढ़ाते हैं, हमारा हविरन्न जिन्हें पुष्टि करता है, हे मनुष्यो ! वह इन्द्र हैं ।१५। जो प्रकट होते ही आकाश पृथिवी में व्याप्त हुए, जो पृथिवी रूप माता और पितृ स्थानीय आकाश को भी नहीं जानते और जो हमारी स्तुतियों से ही देवताओं को पूर्ण करते हैं, वे इन्द्र

है।१६। जो अश्वों को चलाते हुए सोम की कामना करते हैं, जिन्होंने शम्बर को मार डाला शुष्ण का वध किया जिनसे सभी प्राणी भयभीत होते हैं। क्योंकि वे असाधारण वीर हैं, वह इन्द्र हैं।१७। हे इन्द्र ! तुम युधंषं होते हुए भी पुरोडाश का पाक करने वाले या सोम का अभिषव करने वाले यजमान को इच्छित अन्न-धन देते हो तुम अवश्य ही सत्य हो। हम तुम्हारा स्नेह पाकर सुन्दर पुत्रादि से युक्त धन पाते हुए तुम्हारी स्तुति करते रहें।१८।

सूक्त—३५

(ऋषि:—नोध। देवता—इन्द्र: छन्द—त्रिष्टुप्:)

अस्या इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय।
ऋचीषमायाध्रिगव आहमिद्राय ब्रह्माणि राततमा ॥१
अस्मा इदु प्रयइव प्र यसि भराम्यांगूषं बाधे सुवक्ति।
इन्द्राय हृदा मनसा मवीसा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त ॥२
अस्मा इदु व्यमुपम स्वर्षा भराम्यांगू षमास्येन।
म हष्ठमच्छोक्तिभितीनां सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधध्यै ॥३
अस्मा इदु स्तोम सं हिनामि स्थ न तष्टेव तत्सिनाय।
गिरश्च गिर्वाहिसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्व मेधिराय ॥४
अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायर्कं जुह्वा समञ्जे।
वीरं दानौकस वन्दध्य पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ॥५
अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद् वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं रणाय।
वृत्रस्य विद् विदद्र येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ॥६
अस्येदु मातु सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिबाञ्चार्वन्ना।
मुषायद विष्ण पचत शहीयान विध्यद् वराहं तिरो अद्रिमस्ता।७
अस्मा इद् ग्नाश्चिद् देवपत्नीरिन्द्रायर्कमहिहत्य ऊवुः।
परि द्यावापृथिवो जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परिष्टः ॥८

अस्येदेव प्रारिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वराडिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥६
अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद वज्रेण वृत्रमिन्द्रः ।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दानवे सचेताः ॥१०

इस स्तोत्र को श्रेष्ठ ढङ्ग से इन्द्र के निमित्त उच्चारण करता हूं । वे इन्द्र सोम पीनेके लिए शीघ्रता वाले और ऋचाओंके अनुरूप रूपवाले महान बलवान, अबाध गति वाले हैं । वे जैसे क्षुधाग्रस्त को अन्न देतेहैं, वैसे ही मैं उनकी स्तुति करता हुआ, प्राचीन कालीन यजमानोंकेसमान हवि अर्पित करता हूँ ।१। मैं इन्द्र के लिये अन्न के समान अपने स्तोत्र को प्रेषित करता हूं, मैं शत्रुओं को बाधा देने वाले घोष को करता हूं । ऋत्विज भी अपने हृदय से इन्द्र के लिये स्तुतियों को मर्जित करते हैं ।२। धन के प्रेरक इन्द्र को स्तुतियों द्वारा प्रवृद्ध करने के लिये मैं सुसंस्कृत स्तोत्र का सम्पादन करता हूँ । मैं इन्द्र के लिये उपयोग्य स्तोत्रों का उच्चारण रूप घोष करता हूँ ।३। जैसे रथ-शिल्पी रथ का निर्माण करता है, वैसे ही मैं इन्द्र के लिए स्तोत्र प्रेरित करता हूँ यह इन्द्र स्तुतियों से प्रापणीय और यज्ञाह हैं । मैं उनके लिए स्तुति और हवि प्रदान करता हूं ।४। अन्न की कामना वाला मैं हविरन्न को घृत युक्त स्रुवे से मिलाता हूँ और अजन-साधन मन्त्र से भी जोड़ता हूं जैसे अश्वों को रथ में जोड़ा जाता है, वैसे जोड़ता हूं । असुरों के पुरों को ध्वंस करने वाले शत्रुओं के भगाने वाले, यशवाम इन्द्र की स्तुति करने के लिये उन्हें आहूत करता हूँ ।५। संसार के रचयिता ब्रह्मानेइन्द्र के लिये वज्र नामक आयुध की रचना की । वह आयुध स्तुतियों के योग्य सुन्दर कर्म वाला है, उसके द्वारा शत्रु-निग्रह होता है । वृत्रासुर के मर्मस्थल को ढूंढके उसी आयुध से प्रहार किया था ।६। यह इन्द्र सोमयोगात्मक तीनों सबनों में सोम का पान कर गये और पुरोडाश आदि को खा गये, यह उनका असाधारण कर्म कहा जाता है । यह इन्द्र सोम पान से उत्पन्न बल से शत्रुओं को वश करते और उनके छीनने योग्य धनों को छीन लेते हैं । इंहीं इंद्र ने जल निकालने

लिये मेघ को चीर डाला था ।७। वृत्र सुर का नाश करते समय देव पत्नियों ने इन्द्र के लिये अर्चन साधन-स्तोत्र को बढ़ाया और इन्द्र ने विस्तीर्ण आकाश पृथिवी को अपने तेज से व्याप्त किया, वे द्यावा पृथिवी इन इन्द्र की महिमा को कम करने में समर्थ नहीं हुई ।८। इन्द्र की महिमा को विस्तृत करती है, अन्तरिक्ष में भी इनकी महिमा का विस्तार है। दमन करने योग्य शत्रुओं पर यह दमकते हुए इन्द्र प्रचण्ड बल वाले हैं। यह वर्षा के लिए मेघों के लाने वाले हैं ।९। इन्द्र के तेज के सामने सूखते हुए वृत्रासुर को इन्द्र ने काट दिया और पणियों द्वारा अपहृत गौओको छुड़ाया, वृत्रासुर द्वारा रोके हुये जलों को मेघ को चीर कर निकाला और यजमान को इन्होंने अन्न प्रदान किया ।१०।

अस्येदु त्वेषसा रन्त सिधवः परि यद् वज्रेण सीमयच्छत् ।
ईशानकृद दाशषे दाशस्य तुर्वीतये गाधं लर्वणि कः ।।११
अस्मा इदु प्र भरा तू तुजानो वृत्राय वज्रमोशानः कियेधाः ।
गोर्न पर्व बि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां रध्यं ।।१२
अस्येदु प्र ब्रू हि पूर्व्याणि तुरस्त कर्माणि नव्य उक्थैः ।
युधे यदिष्णान आयुधान्युधायमाणो निरिणाति शत्रून् ।।१३
अस्येदु भिया गिरयश्च दृढा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते ।
उपो वेनस्य चागुवान आणि सद्यो भुवद् वीर्याय नोधाः ।।१४
अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद वव्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतश सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमादादिन्द्रः ।१५
एवा ते हरियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।
एषु विश्वपेशसं धियं धा प्रातर्मक्षु धियावसुर्जगम्यात् । १६

इन्द्र के वज्र से चारों ओर से नियमित हुई नदियाँ इन्द्र के वल से ही प्रवाहित होती है। यह यजमानको इच्छित फल देकर धनवान बनाने वाले और जल में निमग्न तुर्वीत को प्रतिष्ठा प्राप्त कराने वाले हैं ।

हे इन्दु ! वृत्र हनन में शीघ्रता करने वाले तुम शत्रु को नाश करने के लिये वज्र प्रहार करो। जैसे मांस के इच्छुक व्यक्ति पशुको टूक-टूक कर डालते हैं, वैसे ही तुम जल को पृथिवी पर प्रवाहित करने के लिये वज्र से वृत्र को टूक-टूक करो ।१२। हे स्तोता ! स्तुति के योग्य इन्द्र के प्राचीन कर्मों का गान करो। जब वे इन्द्र शत्रुओं का वश करते हुये वज्र को बार-बार चलावें तब उनके गुणों का गान करो ।१३। । इन्द्र के अविर्भाव से ही पंख कटने के भय से पर्वत स्थिर हो गये और आकाश पृथिवी भी इनके भयसे कम्पायमान होते हैं। नोधा ऋषि इनकी अनेक स्तोत्रो से प्रसंसा करते हुये वीर्ययुक्त हुये ।१४। हवियों के स्वामी इन्द्र ने स्तोत्र आदि की असाधारण कामना की थी, इसलिये सोम रूपी अन्न—इनके निमित्त दिया जाता है। इन्हीं इन्द्र ने सोवश्व्य की रक्षा के समय सूर्य से स्पर्धा करने बाले एतश की रक्षा की थी ।१५। हे इन्द्र ! गौतम गोत्रिय ऋषि इन मंत्रात्मक स्तोत्रो को तुम्हारे लिये करते हैं। इन स्तुति करने वालों से अनेक प्रकार के धन और यज्ञ कर्म की स्थापना करो। जैसे इस समय इन्द्र हमारी रक्षा के लिये आये हैं, वैसे ही वे दूसरे दिन भी हमारे यज्ञ में आगमन करें ।१६।

सूक्त-३६

(ऋषि—भरद्वाजः । देवता—इन्द्रः ।। छन्दः—त्रिष्टुप्ः)

य एक इद्धव्यश्चर्षणावाभिन्द्र तं गार्भिभ्यर्च आभिः ।
यः पत्य वृषभो वृष्ण्यावान्त्सयः सत्वा पुरुमायः सहस्वान् ।।१
तमु नः पूर्वं पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि बाजयन्तः ।
नक्षद्दाभ ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाच मातभिक्षोः शविष्ठम् ।।२
तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षीः ।
यो अस्कृधोयुरजरः स्ववान तमा भर हरिवो मादयध्यै ।।३
तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितान आनशुः सुम्नमिन्द्र ।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्धः पुरुहूत पूरुवसोऽसुरध्रः ।।४
त पृच्छन्ती वज्रहस्तंरथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः ।

तृविग्राभं तुविकूर्मि रभोदां गातुमिषे नक्षत्रे तुम्रमच्छ ॥५
हया ह त्यूं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतव पर्वतेन ।
अच्युता चित् वीडिता स्वोजो रुजो विदृ ढा धृषना विरप्शिना॥६
त वो धिया नवस्या शविष्ठ प्रत्न प्रत्नवत् परितसयध्यै ।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥७
आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा ।
तपा वृषन् विश्वतः शोचिषा तान् ब्रह्माद्विषे शोचय क्षामपश्च॥८
भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जघतस्त्वेषसदक् ।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे विमायाः ।९
आ सयतमिन्द्र णः स्वस्ति शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम ।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा कराः वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि ॥१०
स नो नियुद्भिः पेरुहूत वेचो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो ।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहितृयमा मद्य्द्रिक् ॥११

आह्वान योग्य इंद्र की स्तुतियों से आहूत करता हूँ यह इंद्र काम्य वर्षक, सत्य फल रूप, बहुकर्मा, बलप्रदाता और सब प्राणियों के ईश्वर हैं । मैं उन इंद्र का अपने स्तोत्रों से भले प्रकार पूजन करता हूँ ।१। हमारे जिन सात पूर्व पुरुषाओं ने हवि रूप अन्न से इंद्र की कामना की और नौ महीनों में सिद्धि पाई, वे इंद्र की स्तुति करते हुए पितृलोक को प्राप्त हुये । ईंद्र शत्रुओं के हिंसक दुर्गम को पार करने वाले हैं । यह अत्यंत वलवान हैं कोई इनकी बात उल्लंघन नहीं कर सकता ।२। वीर पुत्रों और सेवको से सम्पन्न अपरिमित धन को हम इंद्र से माँगते हैं । हे इंद्र ! हमको अविनाशी और सुख देने वाला धन दो ।३। इंद्र ! पूर्वकाल में स्तुति करने वाले ऋषि जिस सुख को तुमसे प्राप्त कर चुके हैं, हम स्तोताओं को भी वह सुख दो । उस सुख के लिये जो यज्ञ भाग तुम्हारे लिये निश्चित है, को हमें बताओ । तुम शत्रुओं को खेद डालने वाले तथा बहुत से धनों

स्वामी हो ।४। जिस विजेता की वाणी,वज्र धारण करने वाले औररथ में प्रतिष्ठित इंद्र को प्राप्त होती है, और बहुकर्मा तथा वली इंद्र से यजमान सुख की कामना करता है वह शत्रु को सामने से प्रात करता हुआ वश करता है ।५। हे इंद्र ! तुम मन के समान वेग के समान वज्र द्वारा माया द्वारा प्रबृद्ध वृत्रका नाश कर चुके हो । तुमने ऐसे शत्रुनगरों को भी ध्वस्त कर डाला जिंहें अंय कोई नहीं कर सकता था ।६। हे यजमानो ! प्राचीन ऋषियों के समान मैं भी इंद्र को नवीन स्तोत्रों से जमाने को उद्यत हुआ हूं । वे सुंदर बाहनों से युक्त इंद्र हमको सभी कठिन भागों से पार करें ।७। हे इंद्र ! पृथिवी, द्युलोक और अंतरिक्ष में राक्षस आदिके स्थानों को ताप युक्त करो और उंहें अपने तेज से भस्म कर डालो । ब्राह्मण द्वेषी राक्षसों के नाश केलिए आकाश पृथिवी को भी तेजमय करो ।८ हे इंद्र तुम स्वयं के राजा हो, अपने दक्षिण हाथ में वज्र लेकर उस सक्षसी मायाको दूर करो ।९। हे वज्रिन ! तुम अपनी जिस मंगलमयी सम्पत्ति से शत्रुवत मनुष्योंको भी श्रेष्ठबना देते हो उस अत्यंत महिमा वाली सपत्ति को हमारी ओर प्रेरित करो ।१०। हे इंद्र तुम अत्यंत पूजनीय, सवके रचने वाले और यजमानों द्वारा बुलाये जाने वाले हो । तुम्हारे उन अश्वोंको देवता या असुर कोई भी रोक नहीं सकता । तुम उनके द्वारा शीघ्र आओ ।११।

सूक्त—३७

(ऋषि—बसिष्ठ. । देवता—इंद्रः । छंद—त्रिष्टुप्)

यस्तिग्मशृङ्गो बृषभो न भीम एकः कुष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य व्रयन्तासि सुष्विवराय वेदः ॥१
त्वंह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाण स्तन्वा समर्यें ।
दासं यच्छुष्णं कुथवं न्यस्मा अरन्धय अर्जुनेयाय शिक्षन् ॥२
त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्य प्रात्रो विश्वाभिरूतिभि सदातम् ।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु ॥३

त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व असि ।
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चास्वापयो दमीतये सुहन्तु ॥४
तव च्यौत्नानि वज्रहस्त नानि नव यत् पुरो नवतिं च सद्यः ।
निवेशने शत तमाविवेषीरह च वृत्र नमुचिमुताहन् ॥५
सना तात् इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे ।
विष्णे ते हरा वृत्रणा युनाज्म वयन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम् ।६
मा ते अस्यां सहसवान् परिष्टावधाय भूम हरिवः परादै ।
त्रायस्व नोऽवृकोभर्वरू थैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम ॥७
प्रियास इत ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः ।
नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीह्यतिथिग्वाय शस्यं करिष्यन् ॥८
सुद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शमन्त्यशास उक्था ।
ये ते हवेर्घिवि पणीरदशन्नस्मान् वृणीष्य युज्याय तस्मै ॥९
एते स्तामा नरो नृतम तुभ्यमस्मद्र्यञ्चो ददतो मघानि ।
तेषामिन्द वृत्रहत्ये शिवा भूः सखा च शूरोऽविता च नणाम् ।१०
नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस्तन्वा ववृधस्व ।
उप नो वाज न् मिमीह्यु प स्तीन् यूय पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥११

हे इन्द ! तुम टेडे सींग वाले बैल के समान भय देने वाले हो । तुम हमारे शत्रुओं को दूर भगाने में समर्थ हो । तुम हवि न देने वाले के धन को हविदाता को प्रदान करते हो ।१। हे इन्द्र ! जब तुमने कुत्स के लिए शुष्ण को दण्ड दिया और कुयव का धन अपने अधिकार में कर लिया तब तुमने कुत्स का उपचार करके उसकी देह-रक्षा की थी ।२। हे इन्द ! तुमने शत्रु को वश करने वाले वज्रसे वीतहव्य और सुदासकी रक्षा की और तुमने पुरुकुत्सके पुत्र त्रसदस्यु और पुरुकी भी युद्ध में रक्षा की थी ।३। हे इन्द्र ! तुम युद्ध उपस्थित होने पर मरुद्गण के सहयोग से अनेक दस्युओं को मार डालते हो । तुमने राजर्षि दमीति के निमित्त वज्र ग्रहण करके चुमुरि और धुनि नामक दस्युओं का भी नाश किया

था ।४। हे वज्रिन ! तुम्हारा बल अत्यन्त प्रसिद्ध है । तुमने उसी बल से राक्षसों के निन्यानवे पुरों को ध्वस्त किया था और सौंवे पुर में व्याप्त हो गये थे । तुमने वृत्र और नमुचि का भी संहार कर दिया था ।५। हे इन्द्र ! सविदाता सुदास के लिए तुम्हारे धन चिरकाल के लिए हुए हैं । तुम बहुत से कर्म वाले और अभीष्ट वर्षक हो । तुम्हे यहाँलाने के लिए हर्यश्वों को तुम्हारे रथ में जोड़ता हूं । हमारे प्रबल स्तोत्रतुम्हें प्राप्त हों ।६ हे इन्द्र ! तुम्हारी इस स्तुति में हम त्याग योग्य न हों । हमको अपने अविनाशी रक्षा साधनों द्वारा रक्षित करो । हम स्तुति करने वालों और विद्वानों में तुम्हारे प्रिय हों ।७। हे इन्द्र ! हम तुम्हारे मित्र रूप यजमान अपने गृह में प्रसन्न रहे तुम अतिथिगु को सुख प्रदान करो और तुर्वश तथा यादवा राजाओं को तीक्ष्ण करो ।८। हे मघवन ! तुम्हारे अभिगमन के समय ऋत्विज उक्थो का उच्चारण करते हैं । जो ऋत्विज तुम्हारे आह्वान से अयाज्ञिकों कोनष्ट करते हैं, वे भी उक्थों को कहते हैं । अत: हम उक्थों का उच्चारण करने वालो के लिए फल देने वाले यज्ञ में निर्मित वरण करो ।९। हे नरोत्तमइन्द्र ! यह स्तोत्र तुम्हारे सामने आकर धर प्रदान से युक्त हैं । हम स्तोताओं के पाप शमनार्थं तुम सुख दो और हम हविदाता केमित्रके समानरक्षक होओ ।१०। हे इन्द्र ! तुम हमसे स्तुति और हवि प्राप्त करते हुए प्रवृद्ध होओ हमको धन तथा पुत्र दो । हें अग्नि आदि सब देवताओं ! तुम भी हमारा कल्याण करते हुए रक्षक बनो ।११।

सूक्त—३८

(ऋषि—इरिम्बिठि:, मधुच्छन्दा: । देवता—इन्द्र: । छन्द—गायत्री)

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सामं पिबा इमम् ।
एदं वर्हि: सदो मम ।१
आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना ।
उप ब्रह्माणि: न: श्रृण ।२

ब्रह्मणास्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोभिनः।
सुतावन्तो हवामहे ।।३
इन्द्रमिद् गा गनो वृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः। इन्द्र वाणीरनूषत ।४
इन्द्र इद्धर्यो सचा संमिक्ल आ वचोयुज। इन्द्रो वस्त्रोहिरण्ययः।५
इन्द्रो दार्घाय चक्षस आकूयँ रोहयद् दिवि।
वि गोभिरद्रिमैरयत्। ६

हे इन्द्र हमने सोम को संस्कारि कर लिया तुम यहाँ आकर इन विस्तृत कुशाओं पर बैठकर सोम पान करो।१। हे इन्द्र ! तुम्हारेअश्व मंत्रों द्वारा रथ में जुड़ते हैं और इच्छिक स्थान पर ले जाते हैं,वेअश्व तुम्हें यहाँ लाओं तब तुम हमारे आह्वान को सुनो।२। हे इंद्र! हमारे पास संस्कारित सोम है, हम तुम्हारे पूजक सोमयोग कर चुके हैं। तुम सोम पीने वाले हो अतः हम तुम्हें आहूत करते हैं।३। पूजा-मत्रों से इंद्र का पूजन किया जाता है, सान गान में भी इंद्र की ही स्तुति है और यह वाणी भी इंद्र का ही स्तवन करती है।४। इंद्र वज्रधारी और उपासकों के हितैषी है। इनके अश्व साथ रहते हैं। वे अश्वमंत्रों द्वारा रथ में जोड़ जाते हैं।५। दीर्घ दर्शन के निमित्त इंद्र ने सूर्य को द्युलोक में आरूढ़ किया और सूर्य रूप इंद्र ने ही अपनी रश्मियों से मेघों को चीर डाला।६।

सूक्त-३९

ऋषि-अधुच्छंदा, गोयुक्यत्यश्वसूक्तिन्नो। देवता-इंद्रः। छंद-गायत्री)

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः।
अस्माकस्तु केवलः ।।१
व्यन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्या रोचना।
इन्द्रो यदभिनद् वलम् ।।२
उद् गा आजदङ्गिराभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सत्तीः।
अवाञ्चप्र नुनुदे वलम्।३

इन्द्रेण रोचना दिवा दृढानि दृंहितानि च ।
स्थिराणि न पराणुदे ।।४
अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते । वि ते मदा अराजिषुः ।५

हम सब विश्व के प्राणियों की ओर से इन्द्र को आहूत करते हैं, वह इंद्र हमारे ही हों ।१। इंद्र ने अन्तरिक्ष को सोम से हर्षित होने पर वृष्टि के जल से प्रवृद्ध किया और अपनेबल से मेघ को चीरडाला ।२। अंङ्गिराओं के लिए इन्द्र ने गुफा स्थित गौओं को प्रकट किया और निकाला । अपहरणकर्त्ता बल को अधोमुखी करके गिरा दिया।३। आकाश में चमकते हुए नक्षत्रों को इन्द्र ! वर्षा के जल से समुद्र आदि को मत्त बनाता हुआ तुम्हारा स्तोत्र रस से समान उच्चारित होता है और तुम्हारा सोम पीने के कारण उत्पन्न हर्ष प्रकट होता है ।५।

सूक्त-४०

(ऋषि—मधुच्छन्दाः । देवता-इन्द्रः मरुत । छन्द-गायत्री)

इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अविभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ।१
अनवद्यै रभिमखः सहस्वदर्चति गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ।।२
आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे दधाना नाम यज्ञियम् ।३

हे इन्द्र ! तुम अभय प्रदान करने वाले मरुतों के साथ रहते ही हैं ।१। इन्द्र की कामना करने वालों से यह यज्ञ अत्यन्त सुशोभित है । वे इन्द्र अत्यन्त तेजस्वी एवं पाप रहित है ।२। फिर हवि देने पर वह गर्भत्व को प्राप्त होते और यज्ञिय नाम रखते हैं ३।

सूक्त-४१

(ऋषि—गोतमः । देवता-इन्द्रः । छन्द-गायत्री)

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुत । जघान नवतीर्नव ।१
इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । तद् विदच्छर्यणावति ।२
अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ।३

युद्ध से पीछे न हटने वाले इन्द्रने वृत्र के निन्यानवे नगरोंकोध्वस्त

कर डाला ।१। पर्वतों में अपवित्र अश्व के शीर्ष की कामना करते हुए उन्होंने उसे शर्णणावत् में प्राप्त किया ।१। चन्द्रमण्डल रूप ग्रह में सूर्य रूप इंद्र ही एक रश्मि रूप से विद्यमान हैं। अन्य सूर्य-रश्मियाँ भी इसे जानती है ।३।

सूक्त-४२

(ऋषि—कुरुस्तुति: । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

वाचमष्टापदीमहं नवस्राक्तिमृतस्पृशम् । इन्द्रात् परि तन्वं ममे ।१
मनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणमकृपेताम् । इन्द्र गद् वस्पुहाभव ।२
उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपय: । जोममिन्द्र चमूसुतम् ।३

मैंने इन्द्र से ही सत्य का स्पर्श करने वाली अष्ट पदवाली और नव शक्ति वाणी को अपने शरीर में धारण किया है ।१। हे इन्द्र ! जब तुमने असुरों को नष्ट किया, तब तुम्हारी निर्बलता को देखकर द्यावा पृथिवी ने तुम पर कृपा की थी ।२। हे इन्द्र ! सुसंस्कारित सोम को पीकर अपने हनु चलाते उठो ।३।

सूक्त-४३

(ऋषि—कुरुस्तुति देवता-इंद्र । छन्द—गायत्री)

भिन्धि विश्वा अप द्विष: परि बाधो जही मृध: ।
वसु स्पार्हं तदा भर ।४
यद् वीडाविन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम् ।
वसु स्पार्हं यदा भर ।५
यस्य ते विश्वादाणुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति । वसु स्पार्हं तदा भर ।६

हे इन्द्र ! हमारे शत्रुओं को काटो, रण की बाधा को दूर करो और हमको ग्रहणीय धन प्रदान करो ।१। जो धन स्थिर व्यक्ति में रहता है तथा जो धन पार्श्वों में भरा जाता है, हे इन्द्र ! उस धन को हमें दो ।२। तुम्हारे द्वारा प्रदत्त जिस धन को सब उपासक प्राप्त करते हैं उस धन को हमें दो ।३।

सूक्त—४४

(ऋषि—इरिम्बिट: । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्र स्तोता नव्यं गीर्भि: ।
नरं नृषाह माहिष्ठम् ।१
यष्मिन्नुवथान रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या ।
अपामवो न समुद्रं ।२
तं सुष्टुत्या बिवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम् ।
महो वाजिन सनिभ्य: ।३

मनुष्यों में सहनशील, अग्रगण्य, नित्य नवीन और पूजन के योग्य, मनुष्यों के स्वामी इंद्र की स्तुति करता है ।१। नीचे की ओर बहने वाले जल समुद्र में जाते हैं; वैसे ही उक्थ और अन्न की कामना से लिए जाले यज्ञ इंद्र को प्राप्त होते हैं ।२। मैं उन्हे स्तुति से प्रकट करता हूँ, वे तेजस्वी शत्रुओं को टालने वाले और स्तुतिको करनेवालों को अन्न और यश देने वाले हैं मैं उन्हें हवि से प्रसन्न करता हूं ।

सूक्त—४५

(ऋषि—शुन: शेपो देवरातापरमाना । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

अयसु ते समतसि कपोतइव गर्भधिम् । वचस्तच्चिवन्न पोहसे ।१
स्तोत्र राधानां पते गिवर्वाहो वीर यस्यते । विभूरिस्तु सुनृता।२
ऊर्ध्वस्तिष्ठि न ऊनयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो । समन्येषु ब्रवावहै।३

हे इन्द्र ! जैसे गर्भ धारण करने वाली कबूतरी के पास कबूतर जाता हैं वैसे ही हमारे तर्कना वाले वचन की ओर तुम आओ ।१। हे धनेश्वर ! तुम्हारी विभृति सत्य ही स्तुतियाँ ही तुम्हें प्राप्त कराने में समर्थ हैं ।२। हे इन्द्र ! तुम सैंकड़ों कर्म करने वाले हो तुम हमारी रक्षा करने के लिए ऊँचे स्थान पर खड़े होओ । अन्य पुरुषोसे द्वेष पाते हुए हम तुम्हारा स्तव करते हैं ।३।

सूक्त—४६

(ऋषि—इरिम्बिठिः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

प्रणतार वस्यो अच्छा कर्त्तारिं ज्योतिः समत्सु ।
सासह्वांसं युधामित्रान् ।१
सः नः पप्रिः पारताति स्यस्यि नावा पुरुहूतः ।
इन्द्रो विश्वा अति रिषः ।२
स त्वं इन्द्र वाजेभिर्दशश्या च गातुया च ।
अच्छा च नः सुग्नं नेषि ।३

वे इंद्र, नेता, रणस्थल में शत्रुओं को वशमें करने वाले औरयज्ञों में ज्योति के कर्त्ता हैं ।१। अपनी कल्याणमयी नाव के द्वारा हमकोपार लगाते हुए वे इन्द्र सब पशुओं से हमको बड़ावे ।२। हे इन्द्र ! तुमअपनी दसों उङ्गलियों से अन्नादि सम्पन्न से सुख को हमारे समक्ष लाते हो ।३।

सूक्त—४७

(ऋषि—सुकत्रः प्रभृति । देवता—इन्द्रः, सूर्यः । छन्द—गायत्री)

तमिन्द्र वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।
स वृवा वृषभो भुवत् ।१
इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः ।
द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ।२
गिरा वज्रो न सभृतः सबलो अनपच्युतः ।
ववक्ष ऋष्नो अस्तृतः ।३
इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्कभिरर्किणः ।
इन्द्रं वाणीरनूषत ।४
इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा ।
इन्द्रो वज्री हिरण्यायः ।५
इन्द्रो दीर्घाय चक्षम आ सूर्य रोहयद् दिवि ।

वि गोभिरद्रिमैरयत् ।६

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् ।
एद बर्हिः सदा मम ।७

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी बहतामिन्द्र केशिनो ।
उप ब्रह्माणि न श्रृणु ।८

ब्रह्माणात्वा वयं युजा सोमयामिन्द्र सोमिनः ।
सुतावन्ता हवामहे ६

युञ्जम्ति ब्रध्नमरुष चरन्त परि तस्थुषः ।
रोचन्ते रोचना गिवि ।१०

वे अभीष्ट वर्षक इन्द्र सब में उत्कृष्ट हों । वृत्र का नाश करने के लिए हम उन्हें पुष्ट करते है ।१। इन्द्र प्रशंसनीय, सोम और तेजस्वीहैं, वे बलवान प्रसन्नताप्रद यश है । उन्हें निग्रहार्थ रज्जु के रूप में किया गया है ।२। वे इन्द्र श्रेष्ठ मनुष्यों पर धन पहुंचाते हैं । वे वज्र के समान बल से सम्पन्न और अविनाशी है ।३। वाणी इन्द्र की स्तुति करती हैं, गायक भी इन्द्र का ही यशोगान करते हैं । पूजा मन्त्रों द्वारा भी इन्द्र का ही पूजन किया जाता है ४। इन्द्र के अश्व सदा साथ रहते हैं, यह मन्त्रों द्वारा रथ में जोड़ जाते हैं । वज्रधारी इन्द हिरण्यम हैं ।५। दीर्घ दर्शन के निमित्त सूर्य को इंद्र ने ही आकाश में आरूढ़ किया और यही इंद्र सूर्य रूप से मेघों को चीरते हैं ।६। हे इन्द्र ? हमनेसोम का संस्कार कर लिया, तुम इन विस्तृत कुशाओं पर बैठकर उस सोम का पान करो ।७। हे इन्द्र ! तुम्हारे अश्व मन्त्रों से जोड़ जाते हैं, वे तुम्हें अभीष्ट स्थान पर पहुंचाने में समर्थ हैं, वे अश्व तुम्हें यहां लावे और तुम हमारे स्तोत्रों की सुनो ।८। हे इन्द ! हम उपासकों ने सोम पान किया है और संस्कारित सोम हमारे पास रखा है, इसीलिए सोम-पान के लिए तुम्हे आहूत करते हैं ।९। तुम्हारा रथ सब प्राणियों को लांघता हुआ जाता है, उसमें जूते हुए अश्व आकाश में दमकते हैं ।१०।

युञ्चन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा घृष्णु नृवाहसा ।
केतुं कृण्वन्नकेतवो पेशो मर्या अपेशे । ससुषद्भिरजायथाः ॥१२
उदुत्य जातवेदस देव वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्यम् ।१३
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः सूराय विश्वचक्षसे।१४
अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मियो जनो जनां अनु ।
भ्राजन्तो अग्नयो यथा ।१५
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमाभासि रोचन।१६
प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङु देषि मानुषीः ।
प्रत्यङ् विश्व स्वर्दृशे ।१७
येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनां मनु । त्वं वरुण पश्यति ।१८
वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहर्मिमानो अक्तुभिः । पश्यञ्जन्मानि सूर्य ।१९
सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य।शोचिष्केशं विचक्षणम् ।२०
अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सुरो रथस्य नप्त्यः ।
ताभियाति स्वयुक्तिभिः ।२१

इन्द्र के सारथि रथ में अश्वों को संयुक्त करते हैं । यह अश्व रथ के दोनों ओर रहते हैं, यह कामना करने योग्यअश्व सवारी देनेमेंयोग्य हैं ।११। हे मनुष्यो ! यह सूर्य रूपी इन्द्र अज्ञानियों को ज्ञान देने वाले, अन्धकार से ढके पदार्थों को प्रकाश से प्रकट करनेवाले हैं, यहअपनी रश्मियों सहित उदित हो गए हैं । तुम इनके दर्शन करो ।१२। उसकी रश्मियाँ उत्पन्न भूतों को जागने वाली हैं और संसार को सूर्य रूपीइन्द्र का दर्शन कराने के निमित्त इन्हें ऊपर चढ़ाती है ।१३। रात के जाने के साथ ही चोर पलायन कर जाते हैं वैसे ही इन सर्वदृष्टासूर्य केआते ही नक्षत्र भाग जाते हैं ।१४। इसको ज्ञानदायिनी रश्मियाँ अग्नि के समान दीप्त हुई मनुष्यो के पीछे दिखाई देती है ।१५। हे इन्द्र ! तुम भव नौका रूप हो । तुम सबके द्रष्टा ज्योतिप्रद और सबके प्रकाशक हो ।१६। हे इन्द्र ! तुम मनुष्यों और देवताओं के लिए उदित होते हो

तुम सबके सामने प्रकाशित होते हो।१७। हे पाप नाशक इन्द्र! प्राचीन पुण्यात्माओं द्वारा ग्रहण किये गये मार्ग पर जो पुरुष चलते हैं उन्हे तुम सदा कृपा-दृष्टि से देखते हो।१८। हे इन्द्र! तुम सब पर कृपा करते और उन्हें देखते हुए और रात्रि दिन को बनाते हुई तीनों लोकों में बिचरते हो।१९। हे सूर्यात्मक इन्द्र! तुम्हारी दमकती हुई सप्तरश्मियाँ अश्व रूप से रथ में युक्त होती और तुम्हें वहन करती है।१०।इन इंद्र ने सात अश्वों को अपने रथ में संयुक्त किया, वह अपनेढङ्ग पर उसके द्वारा गति करते हैं।२१।

सूक्त-४८

(ऋषि—उपरिबभ्रव: सार्वराजी वा । देवता—गौ । छन्द—गायत्री)

अभि त्वा वर्चसा गिर: सिञ्चन्ताराचरण्यव: ।
अभि वत्स न धेनव: ।१
ता अर्षन्ति शुभ्रिय: पृञ्चन्तीर्वर्चसा प्रिय: ।
जातं जात्रीर्यथा हृदा ।२
वज्र पवसाध्य: कार्तिम्प्रियमाणमावहन् । मह्यमायुर्घृत पय ।३
आय गौ पृश्निरक्रमोदसदन्मातर पुर: । पितर च प्रयन्त्स्व: ।४
अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानत: । व्यख्यन्महिष: स्व: ।५
त्रिंशद् धामा वि राजति वाक् पतंगा अशिश्रियत् ।
प्रति वस्तोरहद्युभि ।६

विचरणशील गौयें जैसे अपने बछड़ों के सामने जाती है वैसे ही वाणी तुम्हें वर्च द्वारा सींचती हुई प्राप्त होती है।१। जैसे उत्पन्न शिशु की रक्षिका माता उसे अपने हृदय से लगा लेती है, वैसे ही सुन्दर स्तुतियाँ इंद्र को वर्च से अलंकृत करती हैं।२। यह बज्रधारी मुझे यश; आयु घृत, दुग्ध दिलावें।३। यह सूर्यात्मक इन्द्र उदयाचल को प्राप्त हो गये। इन्होंने प्राची में दर्शन देकर सब जीवों को अपनी रश्मियों से अच्छादित कर लिया। फिर इन्होंने वृष्टि जल को सींचकर स्वयं और

अंतरिक्ष को प्राप्त किया। वर्षा के जल रूप अमृत को दुहने के कारण यह गो कहलाते हैं।४। प्राणन के पश्चात अपानन व्यापार वाले जीवों के देह में सूर्य की प्रभा प्राण रूप से घूम रही हैं। वे सूर्य ही सबलोकों को प्रकाशित करते हैं।५। सूर्य की रश्मियों से दिन-रात के अंग रूप तीस मुहूर्त दीप्त होते हैं और वेद रूपवाणी सूर्य का पक्षी के समान आश्रय पाती है।६।

सूक्त-४९

(ऋषि—नोधा:, मेध्यातिथि:। देवता—इंद्र:। छन्द-गायत्री, प्रभृति)

यच्छका वाचमा हन्नन्तरिक्ष सिषासथः। स देवा अगदन् वृषा।१
शक्रो वाचमधृष्टायोरुवाचो अघृष्णह महिष्ठ आ मदद्दिवि।२
शक्रो वाचमधृष्णुहि धामधर्मन् वि राजति विमदन्बर्हिरासरन्।३
तं वो दस्ममृतीषह वसोर्मन्दानमन्धसः।
अभि वत्स न स्वसरेषु धेनव इन्दं ग भिर्नवामहे।४
द्युक्ष सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरि न पुरुभोजसम्।
क्षुमन्त वाज शतिन सहस्त्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे।५
तत् त्वा यामि सुवीर्य तद ब्रह्म पूर्व चित्तये।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ।६
येन समुदमसृजो महीरपस्तदिन्द वृष्णि ते शवः।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे।७

हे इन्द! जब स्तुति करने वाले विद्वान वाणी पर चढ़ते हैं तब देवता प्रसन्न होते हैं।१। वे शक्र शिष्ट मनुष्य पर कठोर वचन नकहें। हे महिष्ठ! तुम आकाश को हर्ष से पूर्ण करो।२। हे शक्र कठोर वाणी का उच्चारण न करो आप कुशाओं पर आकर हर्षित हुए विराजमान होते हैं।३। हे यजमानो! यह इन्द्र दुःखों का नाश करने वाले दर्शनीय एवं सोम से प्रसन्न रहने वाले हैं। तुम्हारे यज्ञ को प्रसन्नता के निमित्त हम इन्द्र की स्तुति करते हैं। जैसे सूर्य द्वारा प्रकाशित दिन के उदय और अस्त के समय गोएं रंभाती हुई बछड़े की ओर जाती हैं, वैसे

ही हम भी अपनी स्तुतियों सहित इन्द्र की ओर जाते हैं ।४। जैसे दुर्भिक्ष काल में सब जीव कंद, मूल, फल से सम्पन्न पर्वत की स्तुति करते हैं वैसे ही हम दानयोग्य, स्तुत्य, पोषक और गौओं से युक्त तेजवान धन की स्तुति करते हैं ।५। हे इंद! मैं तुमसे बलयुक्त अंनमांगता हूं। जिस अंन रूप धन से भृगु को शांति मिली और कण्व के पुत्र प्रस्कण्व की रक्षा हुई। वही धन हम मांगते हैं ।६। हे इंद ! जिस बल से तुमने समुद को सम्पंन करने वाले जलों को रचा वह बल सबको अभीष्ट फल देता है। इनकी महिमा को शत्रु प्राप्त नहीं कर सकतें।७।

सूक्त-५०

(ऋषि—मेध्यातिथिः। देवता—इंदः। छंद—पगाथः

कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः।
नही न्वस्य महिमानमिन्द्रिय स्वगृणन्त आनशुः ।१
कदु स्तुवन्तु ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते।
कदा हवं मघवन्निन्द सुन्वत. कदु स्तुवत आ गमः ।२

जो मृत्युधर्मा मनुष्यों का आकार धारण करने वाले, नित्य नवीन और बलवान है, उनकी स्तुति करो। उनकी महिमा का पूर्ण वर्णन न कर सको तो थोड़ा गान करने पर भी स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।१। हे इन्द ! कौन सा ऋषि तुम्हारे सम्बन्ध में तर्क करता है, किसकारण तुम सोम वाले के स्तोता के बुलाने पर आते हो और सत्य की कामना बाले देवगण किस कारण तुम्हारी स्तुति करते हैं ? ।२।

सूक्त-५१

(ऋषि—प्रस्कण्वः, पुष्टिगुः। देवता—इन्द्रः। छन्द—प्रगाथः)

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे।
यो जरितभ्यो मघवा पुरुवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ।१
शतानीकेव प्र जिगाति घृष्णया वृत्राणि दाशषे।

गिरेरिव प्र राना अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजस: ।२
प्र सु श्रुत सुराधसमर्चा शक्रमभिष्टय ।
य: सुन्वते स्तुवते काम्य वसु सहस्रेणेव महते ।३
शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः ।
गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषुः ।४

हे स्तोताओ ! उन इन्द्र को मुझे प्राप्त कराने के प्रयत्न रूपस्तोत्र को करो । वे इन्द्र विशाल सहस्र सँख्यक धन और अन्न के प्रदान करने वाले हैं ।१। जो हविदाता यजमान अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर उन्हें मारते हैं, उन यजमानों के लिए पर्वत से जल निकलने के समान इन्द्र का स्वर्ग रूप धन बरसता है ।२। अभिषव वाले स्तोताकोजो इन्द्र सहस्र संख्यक धन प्रदान करते हैं हे स्तोता ! तुम उन्हीं इन्द्र का भले प्रकार से पूजन करो ।३। इन्द्र के आयुधों से पापी मनुष्य पार नहीं पा सकते क्योंकि वे आयुध सैकड़ों सेनाओं के समान शक्ति रखते हैं । जैसे भोग देने वाला पर्वत अपने पदार्थों से धनवान बनाता है, वैसे सां-स्कारित सोम से इन्द्र शक्ति से भर जाते हैं तो यजमान को इन्द्र अन्न-वान देते हैं ।४।

सूक्त-५२

(ऋषि—मेध्यातिथिः ।देवता—इन्द्रः । छन्द—बृहती)

वयं घ त्वा सतावन्त आपो न वृक्तर्वाहषः ।
पवित्रस्य प्रस्प्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ।१
स्वरन्ति त्वा सुते नरो बसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुत तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ।२
कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम ।
पिशङ्गरूपं मनवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ।३

हे इन्द्र! संस्कार करने पर जलके समान द्रव हुए सोम हमारेपास हैं, हम तुम्हारी स्तुति कर रहे हैं ।१। हे इन्द्र ! सोम निष्पन्न करने के

पश्चात ऋत्विगण तुम्हारा आह्वान करते हैं । तुम इस सोम को पीने के लिए बृषभ के समान प्यासे होकर यहाँ कब आओगे ? ।२। इन्द्र ! तुम हृशक्त व्यक्ति को भी चीर देते हो और धन पर अधिकार कर लेते हो । हम तुमसे गवादि से सम्पन्न धन मांगते हैं ।३।

सूक्त-५३

(ऋषि–मेध्यातिथि: । देवता–इन्द्र । छन्द—बृहती)

कईं वेद सुते सचा पिबन्त कद् वयो दधे ।
अयं य: पुरो विभिनत्योजसा मन्दान: शिप्रयन्धस: ।१
दा ना मृगो न वारण: पुरुत्रा चरथं दधे ।
नकिष्ट वा नि यमदा सूते गमो महांश्चरस्योजसा ।२
य उग्र: सन्ननिष्टम स्थिरो रणाय संस्कृत: ।
यदि स्तोतुमघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत ।३

यह सुनकर सुन्दर चिबुक वाले इन्द्र हवि से प्रसन्न होकर शत्रुओं के नगरोंको ध्वस्त करते हैं इसे कौन जानता हैं कि साम के संस्कारित होने पर यह कौन-सा अन्न धारण करते हैं ।१। हे इन्द्र ! तुम रथ में बैठकर हर्षयुक्त मृग के समान अनेक स्थानों में जाते हो। तुम्हारे गमन को कोई नहीं रोक सकता । तुम अपने बल से ही महान हो । सोम का संस्कार होने पर तुम यहाँ आओ ।२। जो शत्रुओं द्वारा हिंसित नहीं होते, वे युद्ध क्षेत्र में डटे रहते हैं । जैसे पति-पत्नी के पास जाता है, वैसे ही इन्द्र हमारे आह्वान को सुनें तो अवश्य आवें ।३।

सूक्त–५४

(ऋषि—रेभ: । देवता-इन्द्रा । छन्द—जगती, बृहती)

विश्वा: पृतना अभिभूतर नर सजूस्ततक्षरिन्प्रं जजनुश्च राजसे।
क्रत्वा वरिष्ठ वर आमुरिमुतोग्रामोजिष्ठं तवसं तरस्विनम् ।१

सभी रेभासो अस्वरन्निद्रं सोमस्य पीतये ।
स्वर्पतिं यदीं वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ।२
नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरा ।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ।३

सब सेनाओं ने शत्रुओं को मूर्छित करने वाले इंद्रका वरण किया। वे इन्द्र अत्यन्त बलवान और उग्र हैं ।१। यह स्तुति करने वाले सोम पीने के इन्द्र की स्तुति कर रहे हैं यह सोम उनकी ओर अपनीरक्षाओं महित जाता हैं ।२। इनके वज्र पर दृष्टि पड़ते हो स्तोता उसे प्रमाण करते हैं । हे स्तोताओं ! ऋक्व नामक पितरों सहित इस वज्रकी धमक तुम्हारे कानों को व्यथित न करे ।३

सूक्त—५५

(ऋषि—रेभः । देवता— इंद्र । छन्द—जगती, बृहती)

तमिन्द्रं जोमवीहि मघवानमुग्र सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि ।
मंहिष्ठो गार्मिरा च यज्ञियो ववर्तद् राये नो विश्वा सुपथा कृ-
णोतु वज्री ।१
या इन्द भुज आभर स्वर्वां असुरेभ्यः ।
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ।२
यमिंद दधिषे त्वमश्वं गां भागमव्ययम् ।
यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन् तं धेहि मापणौ ।३

धनवान वज्रधारी, युद्धों में अग्रसर उग्र, बलधारक, स्तुत्य ईंद्रको मैं आहूत करता हूं, वे इन्द्र हमारे धन मार्गों को सुन्दर बनावें ।१। हे इंद्र ! तुम स्वर्ग के अधिपति हो । राक्षसों के लिए तुम जिन बाहुओं को उठाते हो; उन बाहुओं द्वारा यजमान के स्तोता की वृद्धि करोऔर तुमसे परायण ऋत्विज को बढ़ाओ ।२। हे ईंद्र ! तुम जिस गौ, अश्व आदि को पुष्ट करते हो, उसे सोमाभिषव वाले दत्तिदाणाता यजमान को दो, पणि जैसे असुरों को न दो ।३।

सूक्त ५६

(ऋषि—गोतमः। देवता—इंद्रः। छन्द-पंक्ति)

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः।
तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ।१
असि हो वीर सेन्योऽसि भूरि परादविः।
असि दभ्रस्य चिद् वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ।२
यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना।
युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्मां इन्द्र वसौ दधः।३
मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः।
सं गृभाय पुरू शतोभयाहस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ।४
मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे।
विद्मा हि त्वा पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव।५
एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम्।
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर ।६

वृत्रहन इन्द्र को बल और हर्ष के निमित्त प्रवृद्ध किया जाता है। उन्हें हम बड़े छोटे युद्धों में आहूत करते हैं, वे उस अवसर पर हममें व्याप्त हो जाता है ।१। हे वीर ! तुम शत्रुओं खण्डनकर्त्ता दुष्टों को दण्ड देने वाले और अभिषवकर्त्ताको परम ऐश्वर्य प्रदाता हो।२। हेइंद्र युद्ध के अवसर पर घर्षक पुरुष में धन के व्याप्त होने पर तुम अपने हर्यश्वों द्वारा किसे मारोगे ? किससे उन को प्रतिष्ठित करोगे ? उस समय तुम अपने धनको हमसे प्रतिष्ठित करना ।३। हे इंद्र!तुम्हारायज्ञ सुगमता से सम्पन्न होने वाला है, तुम प्रसन्न होकर हमें गौयें प्रदान करते हो। तुम धन को तीक्ष्ण करके हमें दो ।४। हे इंद्र ! तुम वीरहो सोम के संस्कारित होने पर हर्ष में भरो और बल को धारण करो। हम तुम्हें असीमित धन वाला जानते हैं तुम हम कामनाओं वालों के

रक्षक होओ ।५। हे इंद्र ! यह प्राणी तुम्हारे वीर्य का पोषण करतेहैं। तुम हवि न देने वाले और निन्दकों के धन को लेकर हमें दो ।६।

सूक्त– ५७

(ऋषि—मधुच्छन्दाः, प्रभृति । देवता–इंद्रः । छन्द–बृहती)

सुरूपकृत्नुमूतये मुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि ।१
उप न सवमागहि सोमस्य सोमपाः पिब गोदा इद रेवतो मदः।२
आथा ते अन्तमानांविद्याम सुमतीनाम् । मा नो अतिख्यआगहि।३
शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनंपाहि जागुविम् इन्द्र सोमशतक्रतो।४
इन्द्रयाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चस इन्द्र तानि त आ वृणे ।५
अगन्निमन्द्र श्रवो वृहदद्युम्न दधिष्व दुष्टरम् उत् तेशुष्म तिरामसि ।६
अर्वावतो न आ गह्यथा शक्र परावतः ।
उ लाको यन्तं द्रिव इअंद्रह तत आ यहि ।७
इन्द्रो अङ्गमहद् भयमभी षदप चुच्यवत् । स हि स्थिरोविचर्षणि ।८
इन्द्रश्च मृडयाति नो न नः पश्चादधः नशत् । भद्रभवातिनपुरः।९
इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयकरत।जेताशत्रुन् विचर्षणि।१०

उसे गो को दुहने के लिए दूध दोहनकर्त्ता को बुलातेहैं वैसे ही हम प्रत्येक अवसर हर रक्षा के लिए इन्द्र को बुलाते हैं ।१। इन्द्र सदाहर्षित रहते हैं, वे धनवान है, गोयें प्रदान करने वाले हैं । हे इन्द्र!हमारे सोम सवन में आकर सोम पियो ।२। हे इन्द्र ! हम तुम्हारी सुबुद्धियों के ज्ञाता हैं, तुम हमारी निन्दा मत कराओ । हमारे यहाँ आगमन करो।३ हे इन्द्र तुम सैकड़ों कर्म वाले हो । तुम हमारी रक्षाके लिए इसबलदेने वाले सोम को पियो ।४। इन्द्र ! तुम बहुकर्मा हो मैं तुम्हारी उन इन्द्रियों का वरण करता हूँ जो देवता पितर आदि में है ।५। हे इन्द्र ! तुम्हारा अपरिमित अन्न हमें मिलें । तुम हममें दमकते हुए धनको, जो शत्रुओं से पार लगा सके, हममें प्रतिष्ठित करो । हम इस स्तोत्र सेइस सोम को बढ़ाते हुए तुम्हें बल सम्पन्न करते हैं ।६। हे इन्द्र !तुम दूर या

तुम्हें जल से सम्पन्न करते हैं ।६। हे इंद्र ! तुम दूर या समीप जहाँ कहीं हों, वहीं से हमारे पास आओ । हे वज्रिन् ! अपने उत्कृष्ट लोक से भी सोम पीने के लिए इस पूजन गृह में आगमन करो।७। हे ऋत्विज ! वह इंद्र भयानक भय को भी दूर करने वाले है, उन इंद्र को कोई हटा नहीं सकता, वे सर्वद्रष्टा हैं ।८। यदि इंद्र हमारी रक्षा करें तो हमारे दुःखों का नाश होकर सुख प्रत्यक्ष हों वे सदा मंगल करने वाले हैं ।९। वे इंद्र सब दिशाओं में व्याप्त हमारे शत्रुओं को देखते हैं। वे सब दिशाओं और उप दिशाओं से प्राप्त होने वाले भयों को हमसे पृथक करें ।१०।

कईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे ।
अयं यः पुरो दिभिनत्यो जसा मन्दानः शिप्रयन्धसः ।११
दाना मृगो न वारणाः पुरुत्रा चरथ दधे ।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमा महांश्चरस्योजसा ।१२
य उग्रः सन्ननिष्टुत स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धव नेन्द्रो योषत्या यमत् ।१३
वय घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ।१४
स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक मा गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ।१५
कण्वेभिर्धृष्णवा घृषद् वाज दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षण मक्षु गोमन्तमीमहे ।१६

इसे कौन जानता है कि सोमाभिषव पर यह कौन से अन्न को धारण करते हैं यह हवि रूप अन्न से हृष्ट हुए इंद्र शत्रुओं केनगरों को अपनी शक्ति से तोड़ते हैं ।११। तुम रथ आरूढ़ होकर हर्षयुक्त मृग के समान अनेक स्थानों पर जाते हो । सोमाभिषव काल में तुम्हें कोई रोक नहीं सकता । तुम अपने ही बल से महान होकर घूमते हो । इस लिए सोम के संस्कारित होने पर यहाँ आओ ।१२। जो शत्रुओं सेवली होने के कारण रण के लिए उद्यत होने पर भी हिंसित नहीं होते ।जैसे

पत्नी के पास पति जाता है, वैसे ही यह इन्द्र स्तोता के द्वारा बुलाये जाने पर आते हैं ।१३। हे इन्द्र ! संस्कारित होने के कारण जल के समान द्रव हुए सोम से युक्त हम ऋत्विज तुम्हारा स्तोत्र करते हुए बैठे हैं ।१४ हे इन्द्र ! सोम के निष्पन्न हो जाने पर उक्थ गायक ऋत्विज तुम्हें आहूत करते हैं । तुम वृषभ के समान प्यास से भरकर कब हमारे सोम को पीने के लिए पधारोगे ।१५। हे इन्द्र! तुम धनों को अपने आधीन करने वाले हो सहस्रों साधनों से युक्त व्यक्ति को भी मर्दित करते हो । हम तुमसे गौओं से सम्पन्न धन को मांगते हैं ।१६।

सूक्त-५८

(ऋषि—नृमेध: भरद्वाज: देवता—इन्द्र: सूर्य: । छन्द—प्रगाथ:)

श्रायन्तइव सूर्य विश्वेदिन्दस्य भक्षत ।
वसूनि जात जनमान ओजसा प्रति भागं न दोधिम ।।१
अनर्शरातिं वसुदामुप स्तुति भद्रा इन्द्रस्य रातय: ।
सो अस्य काम विधतो न राषति मनो दानाय चोदयन् ।।२
वणमहाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।।
महस्ते सतो महिमा पतस्यतेऽद्धा देव महाँ असि।।३
वट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि ।
मह्ना देवाकामसूर्य: पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ।४

जैसे रश्मियाँ नित्य प्रति सूर्य के साथ रहती हैं, वैसे ही जलों के स्वामी इन्द्र के साथ रहती हैं । उन इन्द्र के जल धनों को हम विस्तृत करने की कामना करते हैं । जैसे इन्द्र तीनों काल के धनों को बाँटते हैं, वैसे ही हम उस धन के भाग पर ध्यान देते हैं ।१। हे स्तुति करने वालो! तुम धनदाता इन्द्र का हृदय से आश्रय लो । इन्द्र का दान मंगल मय है इसलिए उनकी स्तुति करो । वह अपने उपासक की कामना का नाश नहीं करते । इस प्रकार स्तुति करके माँगने वाला पुरुष दान के निमित्त इन्द्र के मन को आकर्षित करता है ।२। हे सूर्य रूप इन्द्र ! हे

आदित्य ! तुम महान् हो यह बात यथार्थ है । तुम सत्य रूप वाले हो । तुम्हारी महिमा भी प्रशंसित है । अतः तुम महिमावान् हो यह यथार्थ ही है ।३। हे सूर्य ! तुम स्वयं महान् हो, हवि रूप अन्न से भी महिमा में प्रवृद्ध हो । तुम अपनी महिमा द्वारा ही राक्षसों से संघर्ष करते हो तुम व्यापक रूप एवं अहिंसित हो ।४।

सूक्त-५६

(ऋषि—मेध्यातिथि, वसिष्ठः । देवता—इन्द्र, छन्द—प्रगाथ)

उदुत्ये मधुमत्तमा गिरि स्तोमास ईरते ।
सत्राजिता धनसा अक्षितोतयो वाजयन्त्रो रथाइव ॥१
कण्वाइव भृगवः सूर्याइव विश्वमिद्धीतमोनशु.
इन्द्र स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन ॥२
उदिन्वस्य रिच्यऽतेंशो धनं न जिग्युषः ।
य इन्द्रो हरिवान्न दभन्ति तं रिपो दक्षं दधाति सोमिनि ॥३
मन्त्रमखर्व सुधित्त सुपेशस दधात यज्ञियेष्वा ।
पुर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत् ॥४

यह स्तोत्र और गायन योग्य वाणियाँ उत्पन्न हो रही हैं । यह धन प्रदायिनी वाणी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करती है । यह अन्न देने वाली सदा रक्षा करती है जैसे रथ अपने स्वामी को गन्तव्य स्थान पर पहुंचाने लिए गमन करता है वैसे ही यह वाणियाँ इन्द्र को सन्तुष्ट करने के लिए चलती है ।१। जैसे त्रलोक्यधिपति इन्द्र के लिए कण्वों को स्तुतियाँ प्राप्त होती हैं, जैसे धाता, अर्यमा आदि सूर्य अपने प्रेरक इन्द्र में मिलते हैं जैसे भृगुवंशी ऋषि इन्द्र का आश्रय लेते हैं, वैसे ही प्रिय बुद्धि मनुष्य इन्द्र का ही स्तव करते हैं ।२। इन इन्द्र का यज्ञ भाग जीते हुए धन के समान होता है । जो इन्द्र हर्यश्व वाले हैं, उन्हें पाप हिंसित नहीं कर सकते । सोम प्रदान करने वाले यजमान में यह इन्द्र बल स्थापित करते हैं ।३। हे स्तोताओ ! सुन्दर तेज और रूप प्रदान करने वाले यज्ञिय मन्त्रों को उच्चारण करो ।

जो इंद्र की सेवा करने वाला पुरुष है, वह पूर्व बंधनों से मुक्ति को प्राप्त करता है ।४।

सूक्त-६०

(ऋषि—सुतकक्ष सुकक्षो वा, मधुच्छंदाः । देवता—इंद्र । छंद-गायत्री)

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः ।
एवा ते राध्य मन ॥१
एवा रातिस्तुवीमव विश्वेभिर्धायि धातृभि ।
अधा चिदिन्द्र मे सचा ।२
मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजामां पते ।
मत्स्वा सुतस्य गोमतः ।३
एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती महो ।
पक्वा शाखा न द शुषे ।४
एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते ।
सद्यश्चित् सन्ति दामुषे ।५
एवा ह्यास्य काम्या स्तोम ऊक्थं च शस्या ।
इन्द्राय सोमपीतये ।६

हे इंद्र ! तुम वीर हो स्थिर हो तथा दुष्कर्म करने वाले वीरों के रोकने वाले हो ।१। हे इंद्र ! तुम अपरिमित धन वाले हो । तुम मेरे सहायक होओ । अपनी पोषण शक्तियों से हम यजमानों में दान शक्ति की स्थापना करो ।२। हे इंद्र ! तुम अन्नों के ईश्वर हो । ब्रह्मा के समान इंद्र युक्त मत होओ । तुम बुद्धि देने वाले संस्कारित सोम के द्वारा अत्यंत आनंद में भरो ।३। इंद्र की भूमि गौओं के देने वाली है वह हविदाता यजमान को पक्की हुई शाखा के समान हो ।४। हे इंद्र ! हविदाता यजमान की रक्षा के लिए तुम्हारे शक्षा साधन शीघ्र हीप्राप्त होते हैं ।५। ईंद्र को सोम पान करते समय स्तोम, उक्थ और शंस्वा नामक स्तुतियाँ रमणीय होती हैं ।६।

सक्त-६१

(ऋषि—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनो । देवता—इन्द्र: छन्द:-उष्णिक्)

त ते मद गृणोमसि वृषणं पृत्सु स सहिम ।
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥१
ये ज्योतीष्यायवे मनवे च विवेदिथ ।
मन्दाना अस्य वर्हिषो वि राजसि ॥२
तदद्या चित्त उक्थिनोऽनुष्टुबन्ति पूर्यथा ।
वृषपत्नीरपो जय दिवेदिवे ।३
लम्बभि प्र गायत् पुरुहूत पुरुष्टतम् ।
इन्द गार्भिस्तविषमा विवासत ।४
यस्य द्विबर्हसो बृहत् सहो दाधार रोदसी ।
गिरी रज्राँ अप: स्ववृंषुत्वना ।५
स राजसि पुरुष्टु तं एको वृत्राणि जिघ्नसे ।
इन्द्र जत्रा अवप्या च यन्तवे ।६

हे वज्रिन ! शत्रुओं को पराजित करने वालों अश्वों की, श्री से युक्त और अभीष्टों के वर्षक तुम्हारे हर्ष को हम पूजा करते हैं ।१। हे इंद्र ! आयु और मन को तुमने जिस सोमके प्रभाव सेतेज प्राप्तकराया था, उसी सोम से पुष्ट हुए तुम इस यजमान के कुशा वाले आसन पर प्रतिष्ठित हो ।२। हे इन्द्र ! यह उक्थ गायक तुम्हारी महिमा का गान कर रहे हैं । तुम प्रत्येक अवसर पर धर्म कार्य करते हुए विजय प्राप्त करो ।३। वे इंद्र बहुतों द्वारा स्तुत हैं बहुतों ने उनका आह्वान किया था, तुम उन्ही इंद्र का यश गाओ और स्तुति रूप वाणी से उन्हें प्रतिष्ठित करो ।४। जिन इंद्र के धर्म आश्रय के कारण द्यावा पृथिवी उनके महान बल, जल, पर्वत और वज्र को धारण करते हैं उन्हीं इंद्र की पूजा करो ।५। हे इंद्र ! तुम विजय युक्त यश के कारण तेजस्वी हो और अकेले ही शत्रुओं का नाश करते हो ।६।

सूक्त-६२

(ऋषि–सोभरिः, प्रभृतिः । देवता— इन्द्रः । छन्द—बृहती; उष्णिक्)

वययु त्वाम पूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोऽवयस्वः ।
वाजे चित्र हवामहे ।१
उप त्वा कर्मंन्नूतय स नो युवोग्रश्चकाम यो धृषत् ।
त्वामिद्धयवितारं ववृमहे सखाय इन्द सानसिम् ॥२
यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे ।
सखाय इन्द्रमूतये ॥३
हर्यश्य सत्पतिं चर्षणीसहं स हिष्मा यो अमन्दत ।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ।४
इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।
धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ।५
त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः ।
विश्बकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ।६
बिभ्राजं ज्योतिषा स्वरगच्छो रोचन दिवः ।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ।७
तम्वभि प्र गायत पुरुष्टुतम् ।
इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ।८
यस्य द्विवर्हसो बृहत् सहा दाधार रोदसी ।
गिरीरज्रां अपः स्वर्वृषत्वना ।९
स राजसि पुरुष्टुतं एको वृत्राणि जिघ्नसे ।
इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ।१०

हे इन्द्र! तुम सदा नवीन रहते हो। अन्न प्राप्ति के अवसर पर हम रक्षा की कामना वाले हो तुम्हें आहूत करते हैं। विजय प्राप्त कराने को

हमारी ओर ही आओ, विपक्षियों की ओर मत जाओ। जैसे परमगुणी राजा को विषयाकांक्षा से बुलाते हैं, वैसे ही तुम्हें बुलाते हैं।१। हेइन्द्र! कर्म के अवसर पर तुम्हारा ही आश्रय लेते हैं। तुम शत्रुओं को वश में करने वाले, नित्य एवं अत्यन्त बली हो, तुम हमें सहायक के रूप में प्राप्त होओ। हम अपनी रक्षा के लिए तुम सखा रूपका ही वरणकरते हैं।२। हे यजमानो! तुम्हारी रक्षा के लिए इन्द्र का आह्वान करता हूँ। जो इन्द्र हमारी पहले गौ आदि के रूप में धन प्रदान कर चुके हैं, वे अभीष्ट फल देने में सदा समर्थ हैं। मैं उन्हीं इन्द्र की स्तुति करता हूँ।३। जो इन्द्र मनुष्यों के रक्षक हैं, जिनके हरित वर्ण के अश्व हैं, जो सबके नियामक हैं, जो स्तुतियों से प्रसन्न होते हैं, मैं उन्हीं इन्द्र की स्तुति करता हूँ। वह इन्द्र हम स्तोताओं को गौयें और अश्व दें।४। हे स्तुति करने वाली। तुम विद्वान् एवं धर्मात्मा हो। उन महान् इन्द्रकी साम गान द्वारा स्तुति करो।५। हे इन्द्र! तुमने ही सूर्य को आकाशमें प्रकाशित किया, तुम शत्रुओं के तिरस्कारक विश्वेदेवा और महान विश्वकर्मा हो।६। हे इन्द्र! देवता तुम्हारे मित्र भाव को प्राप्त हैं। स्वर्ग में दमकते हुए सूर्य तुम्हारे द्वारा ही ज्योतिर्मान हैं।७।हे स्तोताओं! वह इन्द्र अनेकों द्वारा आहूत किये जा चुके हैं। अनेकों ने उनकी स्तुतियाँ की हैं। तुम भी उन्हीं पराक्रमी इन्द्र की स्तुतियों से सुशोभित करो।८। जिन इन्द्र की महिमा से आकाश पृथिवी, जल, पर्वत, वज्र और बल तथा स्वर्ग को भी धारण करते हैं, उन्हीं इन्द्र का पूजन करो।९। हे इन्द्र! तुम विश्वात्मक यश के लिए तेजस्वी हुए हो। तुम शत्रुओं को अकेले ही नष्ट कर देते हो।१०।

सूक्त-६३

(ऋषि-भूवन। साधनो वा: भारद्वाजः, गोतमः, पर्वतः। देवता—इन्द्र
छन्द—त्रिष्टुप्, उष्णिक्)

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः।
यज्ञं च न नस्तन्वं च प्रजां च दित्यै रन्दः सह चीक्लृपाति।१

आदित्यैरिन्द्रः जगणी मरुद्भिरस्माकं भूत्थविता तनूनाम् ।
हत्वाय देवा ३ सुरान् यदायन देबा देवत्वमभिरक्षमाणाः ।२
प्रत्यञ्जमर्कमनयञ्छवीभिरादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ।
अया वाज देवहित सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ।३
य एक यद् विदयते वसु मर्ताय दीशुष ।
ईशानो अप्रयिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ।४
कदा मर्तमराधस पदा क्षुभमिव स्फुरत ।
कदा नः जुश्रवद गिर इन्द्रो अङ्ग ।५
यश्चिद्ध त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविव सति ।
उग्र तत् पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ।६
य इन्द्र सोमपातयो मदः शविष्ठ चेतति ।
येना हंसि न्यतत्रिणं तमीमहे ।७
येना दशग्वमध्रिगु वेपयन्तं स्वर्णरम् ।
येना समुप्रमाविथा तमोमह ।८
येन सिन्धु महोरपो रथ इव प्रचोदयः ।
पन्थामृतस्य यातवे तमोमह ।९

यह इन्द्र, सब विश्वेदेवा और भुवन सुख प्राप्ति का दान करते हैं। वे इन्द्र आदित्यों के सहित हमारे यज्ञ, देह और प्रजा को सामर्थ्य प्रदान करें ।१ देवत्व की रक्षा के लिए जिन देवताओं ने राक्षसों का संहार किया था, वे आदित्यवान और मरुत्वान इन्द्र हमारे देह की रक्षा करने वाले हो ।२। जो अपनी शक्ति के सूर्य को प्रत्यक्ष कर सके; जिन्होंने पृथिवी को अन्नवती किया, उन्होंने हम देवताओं का हितकारी अन्न प्राप्त करे और वीरों से युक्त रहते हुए शतायुष्य हों ।५। इन्द्र हविर्दाता यजमान को धन प्रदान करते हैं, इस कार्य में उनके समान अन्य कोई नहीं है ।५। वे इन्द्र अयाज्ञिक को अपने पद प्रहार द्वारा कब

ताड़ना देगे और हम स्तुतकरने वाली की प्रार्थनाओं को कब सुनेंगे ? ।५। हे इन्द्र ! जो सोमवान पुरुष अनेक स्तुतियों से तुम्हारी प्रार्थना करता है; वह पुरुष प्रचण्ड बल और ऐश्वर्य से सम्पन्न होता है ।६। जो इन्द्र सोम का अत्यन्त पान करने वाले हैं और जिनमें जलप्रदउत्पन्न होता है ऐसे हे इन्द्र ! अपने जिस बल से तुम असुरों का नाश करते हो, उसी बल को हम माँगते हैं।७। जिस बल से तुमने समुद्र को पुष्ट किया था, उसी बल को हम तुमसे माँगते हैं ।८। जिस बल से तुमनेरथ के समान, बलों को समुद्र की ओर गमनशील बनाया, उस बल को हम अमृत के मार्ग में अग्रसर होने के लिए माँगते हैं ।९।

सूक्त—६४

(ऋषि—नृमेधः विश्वमनाः । देवता—इन्द्रः । छन्द—उष्णिक् ।

एन्द्र नो गधि प्रियः सत्राजितुगोह्यः ।
गिरिर्न विश्वतस्पृथः पतिर्दिवः ।१
अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी ।
इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ।२
त्वं हि शश्वतीनाभिन्द्र दता पुरामसि ।
हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ।३
एदु मध्वो मदिन्तर सिञ्च वाध्वर्यो अन्धसः ।
एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ।४
इन्द्र स्थातहरीणां नकिष्टे पूर्व्यस्तुतिम् ।
उदानंश शवसा न भन्दना ।५
त वो बाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः ।
अप्रायुभियज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ।६

हे इन्द्र ! तुम सत्य के द्वारा विजय प्राप्त करते हो, तुम हमारे प्रिय हो तुम्हें कोई डस नहीं सकता। तुम स्वर्ग के अधिपति औरस्वर्गके

के समान विस्तारयुक्त हो। तुम हमें अपने प्रिय के रूप में स्वीकार करो ।१। हे इन्द्र ! तुम सामने पाकर सोम पीने वाले हो। तुम आकाश-पृथिवी दोनों में ही आविर्भूत होते हो। तुम स्वर्ग के अधीश्वर और सोमाभिषव वाले की वृद्धि करने वाले हो ।२। हे इन्द्र ! तुम असुरों को मारने वाले और उनके दृढ़ पुरों को नष्ट करने वाले हो। तुमस्वर्ग के अधिपति और मनुष्यों की बृद्धि करने वाले हो ।३। हे अध्वर्युओं ! मधु से भी मधुर अन्न से इन्द्र को तृप्त करो। यह इन्द्र यजमान की सदा वृद्धि करते हुए स्तुतियों को प्राप्त करते हैं ।४। हे इन्द्र ! तुमअपने हर्यश्वों पर आरूढ़ होते हो। तुम्हारे पूर्ण कर्म वाले वलों और कल्याणों की समानता कोई नहीं कर सकता तथा तुम्हारी स्तुतियों को भी कोई नहीं पा सकता ।५। हम अन्न की कामना करने वाले हैं। अन्न के अधीश्वर इन्द्र को हम आहूत करते हैं। विधि पूर्वक किये जाने वाले यज्ञानुष्ठानों से यह इन्द्र बारम्बार वृद्धि को प्राप्त होते हैं ।६।

सूक्त-६५

(ऋषि—विश्वमना: । देवता-इन्द्र: , छन्द—उष्णिक्)

एतो न्विन्द्र स्तवाम सखाय स्तोम्यं नरम् ।
कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ।१
अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः ।
घृतात् स्वादोयो मधुनश्च वोचत् ।२
यस्यामितानि वीर्या न राधः पर्येतवे ।
ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा ।३

यह इन्द्र स्तुति के योग्य हैं, उनके इधर आने के लिए हम सखा रूप इन्द्र की स्तुति करते हैं। यह इन्द्र सभी कर्मों के फलों को प्रेरित करने वाले हैं ।१। हे स्तोताओ ! इन तेजस्वी, दर्शनीय; याणी रूप अन्न वाले गौओं को न रोकने वाले इन्द्र को मधु घृत से भी मधुर वाणी का उच्चारण करो ।२। कार्य-साधन के लिए यह इन्द्र अपरमित बल वाले हैं और दीप्तमती दक्षिणा के रूप हैं ।३।

सूक्त-६६

(ऋषि—विश्वमनाः । देवता—इन्द्रः । छन्द—उष्णिक्)

स्तुहीन्द्र व्यश्ववदनूर्मि वाजिनं यमम् ।
अर्यो गयं मंहमान वि दाशुषे ।१
एवा नूनमुप स्तुहि वैयश्व दशमं नवम् ।
सुविद्वांसं चर्कृत्य चरणीनाम् ।२
वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् ।
अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ।३

हे ऋत्विज ! जो इन्द्र अपने अश्वों को खोलकर अविचलित भाव से यज्ञ में बैठे हैं, उन्हीं प्रशंसनियों इन्द्र की यजमान के मंगल के लिए स्तुति करो ।१। वे इन्द्र नवीन, महा मेधावी हैं, तुम इन्द्र उन्हीं इन्द्र की पूजा करो ।२। हे वज्रिन्! जैसे आदित्य अपने परिषदों को जानते हैं, वैसे ही तुम सन्तान करने वाले सशक्त असुरों के ज्ञाता हो ।३।

सूक्त-६७ (छठवाँ-अनुवाक)

(ऋषि—मरुच्छेपः, गृत्समदः । देवता—इन्द्रः, मरुतः, अग्निः, । छन्द—अष्टि, जगती)

वनोति हि सुन्वन् क्षय परीणसः सुन्वानो हि ष्मा ।
यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः ।
सन्वान इत् सषासति सहस्रा वाज्यवृतः ।
सुन्वानायेन्द्रा ददात्याभुव रयिं ददात्याभुवम् ।१
म षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन् द्युम्नानि
मोत जारिषरस्मत पुरोत जारिषुः ।
यद् वश्चित्रं युगेयुगे नव्य घोषदममर्त्यम् ।
अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधता यच्च दुष्टरम् ।
अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्त वसूं सूनुं सहसा ।
जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।

य ऊर्ध्वंया स्वध्वरोदेवो देवाच्या कृपा ।
घृतास्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शाचिषाजह्वानस्य सर्पिष: ।३
यज्ञः समिश्शाः पृषतोभिर्ऋष्टिभियोमञ्छुभ्रासोअञ्जिषुप्रियाउत
आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूतवः पोत्रादा सोम पिबता दिवो नरः ।४
आ बक्षि देवाँ इह विप्र पक्षि चाशत होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु।
प्रति वोहि प्रस्थित सोम्यं मधु पिवाग्नोघ्रात तव भागस्यतृष्णुहि
।५
एष स्यते तन्वो नृम्णबर्धनः सह ओजः प्रदिवि वाह्वाहितः ।
तुभ्यं सुतो मघवन् तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादा तपद् पिब।६
यमु पूर्वमहुवे तमिद हुवे सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते :
अध्वयुभिः प्रस्थितं साम्य मधु पात्रात् सोम द्रविणोदुः पिव
ऋतुभिः ।७

सोमाभिषवकर्त्ता अपने शत्रुओं का और देवताओं के शत्रुओं का पराभव करता है वह बहुत घरोंको प्राप्त करता हुआ विविध पदार्थों के दान की इच्छा करता है वह शत्रुओंसे घिरा हुआ न रहकरअन्नवान होता है। उसे इन्द्र समस्त पार्थिव धनों को प्रदान करते हैं ।१। हे मरुतो ! तुम्हारा सन्ताप देने वाला तेज हमारे सामने आकर हमें जीर्ण न करे। तुम्हारा जो नवीन, चयनयोग्य अविनाशी बल है, उसे शत्रुओं को दुष्प्राप्य बल को हममें प्रतिष्ठित करो ।२। अग्निदेव धनप्रदातादेव होता उत्पन्न हुओं के ज्ञाता और बलके अनुज है। यह अपनी ज्वालाओं से यज्ञ को सुसज्जित करते हैं। यह होते हुए घृत की बूंदी औरउसकी दीप्ति की इच्छा करते है ।३। हे मरुतो ! तुम स्वर्ग के नेता हो। फल देने के समय तुम अपनी पुषती नामक अश्विनो द्वारा यज्ञ में आगमन करते हो। तुम कुशाओं पर विराजमान होकर सोम पियो ।४। हे अग्ने देवताओं को इस यज्ञ में लाकर उनका पूजन करो। तुम होतारूप से तीनों स्थानों में विराज कर हविर्भाग पहुंचा कर स्वयं भी हविग्रहण करो और मधुर सोम को पीकर तृप्त होओ ।१। हे इन्द्र ! यह सोम तुम्हारे देह के बल की बृद्धि करने वाला है, अन्यों को वश करनेकेलिए तुम्हारी बाहुओं में बल और ओज सयुक्त है। हे इन्द्र ! यह अभि-

षत होकर तुम्हारे लिए पात्र में रखा है तुम ब्राह्मण के तृप्त होने तक इसे पियो ।६। मैं पहले के समान ही इन्द्र का आह्वान करता हूं । यह हवि ऐश्वर्यवान बनाने वाला है । हे इन्द्र ! अध्वर्युओं द्वारा प्रदत्त इस सोम रूप मधु को पिओ ।७।

सूक्त—६८

(ऋषि—मधुच्छन्दाः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

सूरूपकृत्नुमुतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहुमसि द्यविद्यवि ।१
उप न सवना गहि सोमस्य सोमपा पिब । गोदा इद्रेवतो मदः।२
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् ।
मा नो अति ख्य आ गहि ।३
परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम् ।
यस्ते सखिभ्य आ वरम् ।४
उत ब्रुवन्तु मो निदो निरन्यतश्चिदारत । दधाना इन्द्र इद् दुवः।५
उत नः सुभगा अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ।६
एमाशुमाशवे यज्ञश्रियं नृमादनम् । पतयन्मन्दयत् सखम् ।७
अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः ।
प्रावो वाजेषु वाजिनम ।८
त त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो धनानामिन्द्र आयते ।६
यो रायोवनिर्महान्त्सुपारः सुन्वात सखा तस्मा इन्द्राय गायत।१०
आ त्वेया नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत सखाय स्तोमवाहसः ।११
पुरूतमं पुरुणामीशानं वार्याणाम् । इन्द्र सोमे सचा सुते ।१२

सरलता से दूध दुहने के लिए दोहनकर्त्ता को जैसे बुलाते हैं; वैसे ही रक्षा का अवसर आने पर हम हर बार इन्द्र को ही आहूत करते हैं ।१। हे इन्द्र ! इन सोम सवनों में हर्षित रहते हैं और गौयेंप्रदान करते हैं । हे इन्द्र ! इन सोम सवनों में आकर सोम पियो ।२। हे इन्द्र ! तुम्हारे पास जो सुबुद्धियाँ हैं; उन्हें हमजानते हैं। तुम हमारी निंदाहोने से रोको और हमारे यहां आगमन करो ।३। हे स्तोताओं ! इन्द्र का कोई हिंसित नहीं कर सकता, वह इन्द्र मित्रों का मंगल करती हैं उन्हीं

का आश्रय लो ।४। हे स्तोताओ ! तुम इन्द्र का आश्रय लो जिससे हमारी निंदा करने वाले निन्दा न करें ।५। हम इतने यशस्वी हों कि हमारे यश को भी पावें, इन्द्र द्वारा सुख देने पर हम सुन्दर कृषियों से सम्पन्न हों ।६। हे स्तोता ! यह इन्द्र मनुष्यों को मुदित करते सखाओं को प्रसन्न करते और यज्ञ की शोभा रूप, इन इन्द्र का अश्व के ऊपर भरण कर ।७। हे इन्द्र! तुम सोम पान करके वृत्र के लिए घन रूप होओ और रणक्षेत्र में हमारे अश्व के रक्षक होओ ।८। हे इन्द्र तुम सैकड़ों कर्म करने वाले हो । हम हवियों द्वारा तुम्हें आहूत करते हैं । हे इन्द्र धन प्राप्ति के निमित्त हम तुम्हें अपने यज्ञ में बुलाते हैं ।९ इंद्र धन के पालन करने वाले एवं रक्षक हैं वे सोम का संस्कार करने वाले के लिए सखा रूप हैं । स्तोताओ ! तुम उनकी स्तुति करो ।१०। हे मित्र रूप स्तोताओ! तुम यहाँ आकर विराजमान होओ और इंद्र का गुण गाओ ।११। हे स्तोताओ ! वरण करने वालों के ईश्वर—वे इन्द्र अत्यन्त विशाल हैं, उनको सोमाभिषव होने पर बुलाओ ।१२।

सूक्त-६९

(ऋषि—मधुच्छंदः । देवता—इंद्रः, मरुत । छंद—गायत्री)

स घा नो योग आ भुवत् स पुरंध्याम् ।
गमद् वाजेभिरा स नः १
यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः । तस्मा इन्द्राय गायता।२
सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये सोमासो दध्याशिरः ।३
त्व सुतस्यपीतये सद्यो वृद्धोअजायथाः इन्द्र ज्येष्ठ्याय सुक्रतो ।४
आत्वा बिशन्त्वाशवः सोमास इंद गिर्वणः । शं ते सातु प्रचेसते।५
त्वां स्तोमा अवीवृधन्त्वामुक्थाशतक्रता । त्वां वर्धन्तु नो गिरः। ६
अक्षितातिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम् ।
यस्मिन् विश्वानि पौंस्या ।७
मा नो मर्ता अभिद्रुहन् तनूनामिन्द गिर्वण ।
ईशानो वधम् यवया ।८
युञ्जन्तिब्रध्नमरुष चरन्तंपपि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि।९

युञ्जंत्यस्यकाम्या हरी विपक्षा रथे ।
शाणाधृष्णुनृवाहसा ।१०
केतु कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ।११
आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम ।१२
देवयन्तो यथा मतिमच्छा विवद्वसुं गिरः । महामनूषत श्रुतम्२

इंद्र चिंता के अवसर पर हमारे सामने आविर्भूत होते हैं वे हमारे पास अश्वों सहित आगमन करे ।१। जिन इंद्र के युद्ध रत होने परइनके अश्वों को शत्रु नहीं घेरते, हे स्तोताओ ! उन इंद्र की स्तुति करो ।२। दधियुक्त सोम पवित्र है । यह सोमपायी इंद्र के सेवन के लिए अग्रसर हो रहे हैं ।३। हे इंद्र ! तुम सोम को पीने के लिए शीघ्र ही अपने देह का विस्तार करते हो ।४। हे इन्द्र ! स्फूर्तिदायक सोम तुम्हारे शरीर में प्रविष्ट हो और वे तृप्त करें ।५। हे इंद ! तुम्हें स्तोम, उक्थ्य और हमारी वाणीं रूप स्तुतियाँ प्रवृद्ध करें ।६। जिन इंद्र से सहस्रों पराक्रम व्याप्त हैं, वे इंद्र यज्ञ कर्म की रक्षा करने वाले हैं । हम उन्हीं की सेवा करें ।७। हे इंद्र ! शत्रु हमारे देह के प्रति हिंसा भावना न रखे । तुम हमारे वध रूप कारण को दूर हटाओ । तुम हमारे स्वामी हो ।८। इंद्र के रथ में हर्यश्व जोड़े जाते हैं, यह आकाश में दमकते हुए स्थावर जङ्गम प्राणियों को लांघते हैं ।९। इंद्र के रथ में हर्यश्वों को सारथी जोड़ते हैं वह रथ के दोनों ओर रखने वाले अश्व कामना करने योग्य, सवारी करने के योग्य हैं और सबको वश में करते हैं ।१०। हे मृतधर्मा मनुष्यों ! अज्ञानी को ज्ञान देने और अंधेरे में छिपे रूप रहित पदार्थ को रूप देने वाले सर्व रूप इंद्र अपनी रश्मियों सहित उदित हो गये है । इनके दर्शन करो ।११। मरुद्गण यह हवि देने वाले गर्भत्व को प्राप्त होते हुए यज्ञिय नाम से प्रसिद्ध होते है ।१२।

सूक्त–७०

(ऋषि–मधुच्छंदाः । देवता–इंद्रः, मरुतः । छंद—गायत्री)

वीडु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः ।
अविन्द उस्त्रिया अनु ।१
देवयन्तो यथा मतिमच्छा विवद्वसु गिरः । महामनूषतश्रुतम् ।२

ईन्द्रेण सं हि दृक्षसे सजग्मानो अविभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ।३
अनवद्य'रविद्यु मिमंख यहस्वदर्चति । गणैरिन्दस्य काम्य: ।४
अत: परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि ।
समस्मिन्नृञ्जते गिर: ।५
इतो वा सातिमीमहे दिवा वा मार्थिवादधि ।
इन्द्र महो वा रजस: ।६
इन्द्रमिद् गाथिनो वहृदिन्द्र मर्कभिर्रकिण: । इन्द्र वाणीरनूषत ।७
इन्द्र इद्धर्यो सचा समिण्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्य।।८
इन्द्रो दीर्घा चक्षस आ सयं रोहयद् दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयद् ९
इन्द्रो वाजेषु नोऽव सहस्रद्धनेषु च । उग्राभिरूतिभि: ।१०

हे इन्द्र ! तुमने उषा के पश्चात ही अपनी ज्योतिर्मयी शक्तियों द्वारा गुफा में छिपे धन को पाया ।४। हे स्तुतियो ! हम देवताओं की इच्छा वाले स्तोता उन इन्द्र के सामने अपनी सुबुद्धि को प्रस्तुत करें, इस प्रकार उन महिमावान इंद्र को स्तुति करो ।२। हे इंद्र तुम सदा ही निर्भीक मरुतो के साथ देखे जाते हो । तुम मरुतों के साथ नित्य ही प्रसन्न रहते हो । तुम्हारा और उनका तेज भी एक सा ही है ।३। इन्द्र की कामना करने वालों से यज्ञ सुशोभित होता है ।४। हे इन्द्र ! तुम ज्योतिमान स्वयं से आओ । हमारी वाणी रूप स्तुतियाँ इन्द्र में ही जुड़ती हैं ।५। इन्द्र पृथिवी पर हों, महर्लोक में हों अथवा स्वर्ग में हो जहाँ कही भी हों वहीं से उन्हें बुलाना चाहतेहैं ।६। पूसक यजमानइन्द्र को पूजते हैं, स्तोता इन्द्र के ही यश का पान करते हैं ।७। इन्द्र केसाथ रहने वाले अश्व मन्त्रों द्वारा रथ में जोड़ जाते हैं वे मनुष्यों के हितैषी इन्द्र वज्र धारण करते हैं ।८। इन्द्र ने ही सूर्य को दीर्घ दर्शन के निमित्त स्वर्ग में आरूढ़ किया और इन्द्र नेहीसूर्य रूपसे अपनी रश्मियों द्वारा मेघ को भेदन किया ।९। हे इन्द्र ! श्रेष्ठ धन प्राप्त कराने वाले युद्धों में अपनी असीमित रक्षासाधनों से रक्षा करो ।१०।

इंद्र वयं महाधन् इन्द्रमर्भे हवामहे । युज वृत्रेषु वज्रिणम् ।११
स नो वषन्नमुं चरु सत्राहावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कुत ।।१२

तुञ्जे तुञ्जे य उत्तरे स्तोम इन्द्राय वज्रिणः ।
न विंध शस्य सुष्टुतिम् ॥१३
वृषा यूथेव वमगः कृष्टीरित्यर्योजसा। ईशानो अप्रतिष्कृतः॥१४
य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति । इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम्॥१५
इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः। अस्माकमस्तु केवल॥१६
इन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् । वर्षिष्ठमूतये भर॥१७
नि येन मुष्टिहत्यया नि पृत्रा रुणाधामहै । त्वोतासो यर्वत्ता।१८
इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घमा ददीमहि ।
जयेम स युधि स्वृधः ॥१९
वयं शूरेभिरस्तुभिरिन्द्र त्वयायुजा वयम्। सासह्यामपृतन्यतः।२०

यह इन्द्र वृत्र पर वज्र प्रहार करते हैं। अधिक या थोड़ा धन पाने पर भी हम इन्द्र को ही आहूत करते हैं ।११। हे इन्द्र ! तुम सत्य धन के दाता हो और फलों के वर्षक । तुम किसी के हटाये भी नहीं हटते। इस चारु का भक्षण करो और हमारी वृद्धि करो ।१२। मैं धन प्राप्ति के हर अवसर पर तथा बराबर मिलते रहने वाले धन से संयुक्त रहता हुआ इन्द्र के जिन स्तोत्रों को ध्यान में लाता हूँ उनमें इन्द्र की महिमा के छोर को नहीं पाता ।१३। हे इन्द्र ! तुम कृषियों को सम्पन्न करने वाली शक्ति से फलों को भेजते हो । तुम ईशानहो । तुम्हारा तिरस्कार कोई नहीं कर सकता ।१४। इन्द्र पञ्च क्षितियों के ईश्वर तथा मनुष्यों और ऐश्वर्यों के भी ईश्वर हैं ।१५। इन्द्र का ध्यान यदि अन्य प्राणियों की ओर होतो भी हम उन्हें आहूत करते हैं । वे इन्द्र हमारे ही हों।१६ हे इन्द्र ! तुम सदासह, प्रीतिकर धनरूप और फलवर्षक बलको हमारी रक्षा करने के लिए धारण करो ।१७। हम तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर अश्वों से सम्पन्न हों और वृत्राकार को नष्ट कर डालें ।७। हे इन्द्र ! तुम्हारे द्वारा रक्षित हम तुम्हारे वज्र को विकराल रूप से ग्रहण करते हुए, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें ।१९। हे इन्द्र ! हमारे वीर अहिंसित रहें, उन्हें साथ लेकर हम सेना सहित आक्रमण करने वालों को वश में करें ।२०।

सूक्त ७१

(ऋषि—मधुच्छन्दाः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

महाँ इन्द्र परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे । द्योनं प्रथिना शवः।१
सीमहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ।विप्रासोव धियायवः।२
यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्रइव पिन्वते । उर्वीरापो न काकुदः।३
एवाह्यस्य सूनृताविरप्शो गोमती मही।पक्वा शाग्वा न दाशुषे।४
एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते । सद्याश्चत्सन्ति दाशुषे।५
एवा ह्यस्य काम्य स्तोम उक्थं च शंस्या । इन्द्राय सोमपीतये। ६
इन्देहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिःसोमपर्वभिः। महाँअभिष्टिरोजसा।७
एमेनं सुजता सुते तन्दिमिन्द्राय मन्दिने। चक्रिविश्वानि चक्रये।८
मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभि स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे। सचैषु सवनेष्वा।९
असुग्रमिन्द्र ते गिरः प्रतित्वामुदहासत। अजोषा वृषभं पतिम्।१०

इन्द्र श्रेष्ठ और महानहैं,वे महिमावान् हों उनका पराक्रम आकाश के समान विशाल हो ।१। बुद्धि की कामना वाले विद्वान् मनुष्य पुत्र के साथ भी युद्ध में लग जाते हैं ।२। सोमपायी इन्द्र की कुक्षि ककुदयुक्त बैल तथा गहन जल वाले समुद्र के समान वृद्धि की प्राप्ति होती है ।३ इन्द्र की गो देने वाली पृथिवी हवि देने वालेको वृक्षकी पकी हुई शाखा के समान है ।४। हे इन्द्र ! हविदाता यजमान के निमित्त तुम्हारे रक्षा साधन सदा उपलब्ध रहते हैं ।५। सोम-पान के समय स्तोम उक्थ और शास्या इन्द्रके लिए रमण करने योग्य होतीहै।६। हे इन्द्र! यहाँ आओ। सब सोम सवनों में सोम से हर्ष मैं भरे ओजसे तुम्हारा अभीष्ट महान् है ।७। हे अर्ध्वओ ! तुम उक्थों और चमसों से सोम को मनाओ सोम अभिषव होने पर इन्द्र को प्रफुल्लित करने वाला है ।८। हे इन्द्र तुम सुन्दर चिबुक वाले हो । तुम सोम सवनों में इन हर्षवर्द्धक सोमो के द्वारा हर्ष को प्राप्त होओ ।९। जैसे विद्वेषिणी स्त्रियाँ सेंचन समर्थपति को भी छोड़ देती हैं, वैसे ही यह स्तुतियाँ क्या तुम्हें भी त्याग देती हैं ।१०।

स चोदय चित्रमर्वाग राध इन्द्र वरेण्यम ।
असिदत् ते विभु प्रभृ ॥११
अस्मान्त्सु तत्र चोदयन्द्र राये रभस्वतः। तुविद्युम्न यशस्वमः।१२
स गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो वृहत्। विश्वायुर्धेह्यक्षितम्।१३
अस्मे धेहि श्रवो बृहद् द्युम्न सहस्त्रसातमम् इन्द्र तारथिनीरिषः ॥१४

वसोरिन्द्रं वसुपति गोर्भिगृणन्त ऋग्मियम् ।
होम गन्तारमूयये ।।१५
सुतसुते न्योकसे बृहद् बृहद् एदरिः । मन्द्राय शूषमर्चति ।।१६

हे इन्द्र ! वरण करने योग्य, सुन्दर, सत्त वान धनों को हमारी ओर प्रेरित करो ।११। हे इन्द्र तुम हमको महान् और यशस्वी होने के ऐश्वर्य की प्रेरणा करो ।१२। हे इन्द्र! धेनुओं से युक्ति और हवियों से सम्पन्न यज्ञ को हमें दो और अक्षुण्ण आयु को भी हमें दो ।१३। हे इन्द्र! सहस्त्रों द्वारा सेवन करने योग्य 'श्रव' को तथा रथिनी इषाओंको हमें दो ।१४। हंस धनेश्वर, वसुपति, ऋग्मिय और यज्ञ आने वाले इन्द्र के रक्षा-साधनों को पूजते हैं ।१५। महान् इन्द्र के लिए 'न्योकस' में हर वार सोम अभिषुत होने पर शत्रु भी इन्द्र के बल की सराहना करते हैं ।१६।

सूक्त ७२ (सातवां अनुवाक)

(ऋषि—परुच्छेपः । देवसा—इन्द्रः । छन्द—अष्टि)

विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेक वृषमण्यवः
पृथक् स्वः सनिष्यवयः पृथक् ।
तं त्वा नावं न पर्षणि शषस्य धुरि धीमहि ।
इन्द्र न यतैश्चितयन्त आयव स्योमेभिरिन्द्रमायवः ॥१
वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य
निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः ।
यद् गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि ।
आविष्करिकद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥२
उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्यर्कस्य बोधि हविषो

हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभि ।
यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चकेतसि ।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रूधि नवीयसः ।।३

हे इन्द्र ! फल की याचना वाले विभिन्न स्वर्गों की कामना वाले, सब सवनों में तुम्हीं से याचना करते हैं । नौका के समान अन्न के पुले से युक्त तुम्हें हम बल भार से नियुक्त करते हैं । हम इन्द्र की कामनासे स्तोत्र को प्रवोधिनी करते हैं ।१। हे इन्द्र ! अन्न कामना वाले दम्पत्ति गो-दान के अवसर पर तुम्हारा ध्यान लगातेहैं और फल देनेकी याचना करते हैं । तुम स्वर्ग गमन करने वाले दो व्यक्तियोंके ज्ञाताहो, तुम्हारा वर्षणशील एवं सहायक वज्र प्रकट होता है ।२। सूर्य का ज्ञापन करने वाली उषा की हवि को स्वर्ग प्राप्ति के निमित्त प्रदान करते हैं । हे वर्षणशील इन्द्र ! तुम युद्ध की इच्छा वाले शत्रुओं से संसार करने को वज्र ग्रहण करते हों । तुम मेरे नवीन रचे हुए स्तोत्र का श्रवण करो ।३।

सूक्त ७३

(ऋषि—वसिष्ठः, बसुक्र । देवता—इन्द्र । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि ।
त्व नृभिर्हव्या विश्वधासि ।।१
नु चिन्नु ते मन्यमामस्य दस्मोदश्नुवश्नुवन्यि तहितानमुग्र ।
न वीर्यं मिन्द्र ते राधः ।।२
प्र वो महे महिवृध भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमति कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः ।।३
यदा वज्र हिरण्यमिदथा रथ हरी यमस्य वहती वि सूरिभिः ।
आ तिष्ठाति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसम्पतिः।।४
सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या स्वा सचाँ इन्द्रःश्मश्रूणिहरिताभिप्रुष्णुते
अव वेति सुक्षय सुते मधुदिद्ध नोति वातो यथा वनम् ।।५

यो वाचा विवाचो मृध्रवाच पुरू सहस्राशिवा जघान ।
तत्तदिदस्य पौंस्य गृणोमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ॥६

हे वीर इन्द्र ! यज्ञ के सभी सवन तुम्हारे लिये हैं । तुम्हारे लिए ही इन मन्त्रोंको पढ़ाता हूँ । तुम सबके पोषक एवं आहूत के योग्य हो ।१। हे इन्द्र! तुम उग्रहो । तुम्हारे सुन्दर दर्शन, वीर्य,धन और महिमा को अन्य कोई नहीं पा सकता ।२। हे यजन करने वालो ! तुम हवियों द्वारा इन्द्र को सम्पन्न करो । तुम मनुष्यों को अभीष्ट फलों से सम्पन्न करते हो । मेरे हवि रूप छन्द का सेवन करो ।३। इन्द्र के हर्यश्व स्वर्णिम वज्र को एवं रथमें लगी लगामों से उसे खेंचते हैं, तब अत्यन्त तेजस्वी इन्द्र रथपर आरूढ़ होते हैं।४। सोमके अभिषुत होने पर इन्द्र हमारे यह गृह में आते हैं और वायु जैसे वन को कम्पित करता है, वैसे ही मधु को कम्पायमान करते हैं। उस सोमरस से अपनी मूँछोंको आर्द्र करने वाले इन्द्र की ही यह वृष्टि है ।५। जो इन्द्र दुष्कर्म करने वालों का वध करते हैं, विस्कृत वाणी वालों की वाणी को मधुर कर देते हैं, उनके पिता के समान बल की वृद्धि करने वाले पराक्रमों की हम स्तुति करते हैं ।६।

सूक्त ७४

(ऋषि—शनः शेषः । देवता—इन्द्रः । छन्द—पंक्ति)

यच्चिद्धि सत्या सोमपा अनाशस्ताइव स्मसि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु तुवीमघ ॥१
शिप्रिन् वाजाता पते शचीवस्तव दसना ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥२
नि ष्वापया मिथूदसा सस्ताव बुध्यमाने ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥३
ससन्तु त्या असातयो बोधन्तु शूर रातय ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥४

समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया ।
आ तू न इन्द्र गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ।।५
पताति कुण्डृणाच्या दरं वातो वनादधि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ।।६
सर्वपरिक्रोश जहि जम्भया कृकदाश्वम् ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्ववेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ।।७

हे सोमपायी इन्द्र! हमारे सहस्रों गो, घोड़े और शुभ्रियोंको अमृतत्व कहो क्योंकि तुम अमृतत्व को प्राप्त हो।१। हे धनपति इन्द्र! तुम शत्रुओं को दंशित करने में समर्थ हो, तुम अपने उस सामर्थ्य को हमारे सहस्रों गो, अश्व और शुभ्रियों में भरो ।२। हे इन्द्र! मुझे दोनों नेत्रों द्वारा निद्रित करो। हमारे सहस्रों गवादिमें निद्रा प्रदान करो ।३ हे बहु धनेन्द्र ! तुम हमारे सहस्रों गो, अश्व आदि में धन को भरो। हम जागृत रहे और शत्रु निद्रा के वशीभूत हो ।४। हे इन्द्र ! तुम पाप रूप वृत्ति वाले राक्षस कों मार डालो। तुम हमारे गवादि में नाशक शक्ति भरो ।५। वायु कुण्डणाची के द्वारा जङ्गल से दूर प्रस्थान करता है। हे इन्द्र ! हमारे गो आदि प्राणियों में कुण्डृणाची को कहो ।६। हे इन्द्र ! कृकदाश्व को नष्ट करो, परिक्रोश को हटाओ। हमारे गो, अश्व आदि प्राणियों में से परिक्रोश को दूर करो ।७।

सूक्त ७५

(ऋषि–परुच्छेदः। देवता–इन्द्रः। अत्यष्टिः।

वि त्वा ततस्रे मिथुना प्रवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः
सक्षन्त इन्द्र निःसृजः
यद गव्यन्ता द्वा जना स्वयन्ता समूहसि।
आविष्कारिक्रन्द वृषनं सचाभुवं वज्रं मिन्द्र सचाभुवम् ।।१
विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरबः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः।

सासहानो अवातिरः ।
शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते ।
महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥२
आदित् ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ
सखीयतो यदाविथ ।
चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे ।
ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥३

हे इन्द्र ! गोदान के अवसर पर अन्न की कामना वाले दम्पत्ति तुम्हारा ध्यान करते हुए फल देने के लिए तुम्हें आकर्षित करते हैं। तुम स्वर्ण को गमन करने वाले दोनों को जानते हो । उस समय तुम अपने वर्षणशील सहायक बज्र को प्रकट करते हो ।१। यह इन्द्र शरद् ऋतु की वस्तुओं में प्रकट होकर बारम्बार शत्रुओं को व्यथित करतेहैं इनके बल को मनुष्य जानते हैं। हे इन्द्र ! जो मर्त्यलोक वाली तुम्हारा पूजन नहीं करता उस पर तुम शासन करो और इस पृथिवी तथा जलों को प्रवृद्ध करो ।२। हे सेंचन समर्थ जलो! हम तुम्हारे वीर्यका वर्णन करते हैं । इन्द्र के हर्षोन्मत्त होने पर तुम उनकी रक्षा करते हो । मित्रों का पालन करते हो । पृतनाओं में सेवनीय कर्मों के करने वाले हो । तुम नदियों के आश्रय में रहो और अन्न प्रदान करते हुए स्नान करानेवाले होओ ।३।

सूक्त ७६

(ऋषि–वसुक्र । देवता–इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप्)

वने न वायो न्यधायि चाकञ्छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजागः ।
यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् ॥१
प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् ।
अनु त्रिशोकः शतमावहन्नॄन् कुत्सेन रथो यो असत् ससवान् ॥२
कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो भूद् दुरो गिरो अभ्युग्रो वि धाव ।
कद वाहो अर्वागुप मा मनीषा आ त्वा शक्यामुपमं राधो अन्नैः ।३

कदु द्युम्नमिन्द्र त्वावतो नन् कथा धिया नरसे कन्न आगन् ।
मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या अन्ने समस्य यदसन्मनीषाः ।।४
प्रेरय सूरो अर्थं न पारं ये अस्य काम जनिधाइव स्मन् ।
गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीर्नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ।।५
मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्योर्मज्मना पृथिवी काव्येन ।
वराय ते धृतवन्तः सुतासः स्वाद्मन् भवन्तु पीतये मधूनि ।।६
आ मध्वो अस्मा असिचन्नमत्रमिन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः ।
स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या अभि क्रत्वा नर्यः पौंस्येश्च ।।७
व्यानडिन्द्रः प्रजानाः स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय पूर्वीः ।
आ स्मा रथे न पृतमासु तिष्ठ यं भद्रया सुमत्या चोदयासे ।।८

हे अश्विनीकुमारो ! तुम देवताओं के भरण करने वाले हो । यह निर्दोष और इन्द्र की कामना करने वाला स्तोम हममें है, इन्द्र इसकी बहुत समयसे कामना करते थे वे इन्द्र मनुष्यों में श्रेष्ठ, सोम को प्राप्त करने वाले हैं । यह स्तोम उन्हींकी ओर अग्रसर होता है।१। हम वीरों में श्रेष्ठ इन्द्र के सत्य में रहे और दूसरी उषा के भी पार हों । त्रिलोक ऋषि ने सैकड़ों उषायें प्राप्त कराई । कुत्स ऋषि ने संसार रूपी रथ को अन्नवान् किया।२। हे इन्द्र! तुम्हें प्रसन्न करनेवाला कौन-सा स्तोम हमको देने वाला होगा ? कौन-सा अश्व तुम्हें मेरे पास लावेगा ? तुम मेरे स्तोम के प्रति आओ, तुम उपमेघ हो, मैं तुम्हें हवियों द्वारा प्रसन्न कर सकूँगा ।३। हे इन्द्र! तुम अपने आश्रितोंको किस बुद्धि से यशस्वी बनाते हो ? तुम महान् कीर्ति वालेहो । अतः यथार्थ सखाके समान इसे अन्नवती बुद्धि से सम्पन्न करो ।४। हे इन्द्र ! इसकी इच्छा पूर्तिके लिए जो माता के समान मिलती है, उन रश्मियोंसे हमें अर्थ के समान पार करो । पवन इसे अन्न दें । हे इन्द्र ! तुम अपनी पुरातन स्तुतियों को इसकी मति में लाओ ।५। हे इन्द्र! घृतयुक्त सोम तुम्हारे लिए सुस्वादु हो । पृथिवी और आकाश अपने श्रेष्ठ काव्य के लिए सुमति वाले हैं

।६। इन्द्र के निमित्त यह पात्र मधुर रस से पूर्ण किया गया है। वह इन्द्र अपने बल से ही पृथिवी पर प्रवृद्ध होते हैं और वही सत्यके द्वारा पूजित होते हैं ।७। इन्द्र का बल श्रेष्ठहैं, वह सेनाओंमें व्याप्त होतेहैं। असंख्य वीर इनके सख्य भाव की कामना करते हैं। हे इन्द्र! तुम जिस सुमति द्वारा प्रेरणा देते हो, उसी रथ के समान सुमति से हमारे वीरों में व्याप्त होओ।८।

सूक्त ७७

(ऋषि—वामदेवः। देवता—इन्द्र। छन्द—त्रिष्टुप्)

आ सत्यो यातु मधवां ऋजाषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः ।
तस्मा इध धः सुषुमा सुदक्षमिहाभिषित्व करने गृणानः ।।१
अव स्य शूराध्वनो नान्तेऽस्मिन् नो अद्य सत्रने मन्दध्यध्य ।
शसात्युक्मुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्साय मन्म ।।२
कविर्न निण्य विदथानि साधन वृथा यत् सेक विपिपानो अर्चात।
दिव इत्था ज जनत् सप्त कारूनह्ना चिच्चक्रुर्वयुना गृणान्तः।३
स्वर्यद वेदि सुदृशीकमर्कैर्महि ज्योती रुरुवुर्यद्ध वस्तोः ।
अन्धः तमासि दुधिता विचशे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ ।।४
ववक्ष इन्द्रा अभितमृजीष्युभे आ पप्रौ रोदसो महित्वा ।
अतश्चिदस्य महिमा वि रेच्यभि यो विश्वा भुवना बभूव ।।५
विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः ।
अश्मानं चिद ये चिभिदुर्वचोभिव्रंज गोमन्तमुशिलो वि वव्रुः।।६
अपो वृत्रं वव्रिवांस रराहन् प्रावत् ते वज्रं पृथिवी सचेताः ।
प्रार्णांसि समुद्रियाण्यैनोः पयिभवञ्छवसा शूर घृष्णो ।।७
अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविभु वत् सरमा पूर्व्यं ते ।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरि गोत्रा रुचन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ।।८

इन्द्र के अश्व हमारी ओर गतिवान हों धन के स्वामी, सत्यनिष्ठ सोमपायी इन्द्र यहाँ आगमन करे स्तुति करनेवाला विद्वान् इसी कारण

स्नानादि कर्म कर रहा है और हम सोम का संस्कार कर रहे हैं ।१। हे वीर ! हमारे इस यज्ञ को प्राप्त करो, अपने मार्ग को हमारे समीप करो । यह विद्वान् उशनाके समान, इन्द्र के लिए उक्थ उच्चारण करते हैं ।२। इन्द्र फलों के वर्षक हैं, वे वर्षाजल के द्वारा पृथिवी को सम्पन्न करते हुए आगमन करे । ऋत्विज यज्ञ कार्य कर रहा है । सात स्तोता शोभन स्तोत्रों से स्तुति कर रहे हैं ।३। जिन मन्त्रों के द्वारा दर्शनीय स्वर्ग का ज्ञान होता है, जो मंत्र सूर्य को प्रकाशित करते हैं, जिन मंत्रों से सूर्य रूपी इन्द्र दूरसे भी अंधेरे को दूर करते हैं वे अत्यन्त बलीइन्द्र कामनाओं की स्थापना करते हैं ।४। सोमपायी इन्द्र अपरिमित धन का प्रेरण करते हैं वे सब लोकों में व्याप्त होने से महिमामय हैं । उन्हीं इन्द्र की महिमा पृथिवी और आकाश को पूर्ण करती है ।५। स्वेच्छा से संचालित मेघों द्वारा इन्द्र ने हितकारी जलों की वृद्धि की । वे जल अपने शब्दसे पाषाणों को भी तोड़ देते हैं और अच्छा होने पर गोचर भूमि पर छा जाते हैं ।६। हे इन्द्र! यह पृथिवी तुम्हारे वज्र की साव-धानी से रक्षा करती है । यही समुद्र की भी रक्षा करती है । आवरक वृत्र जलों ने छिन्न-भिन्न कर दिया है । हे इन्द्र ! तुम अपने बल से ही पृथिवी के स्वामी हो ।७। हे इन्द्र ! तुम अनेक यजमानों द्वारा बुलाये जा चुके हो तुम जल को प्रदान करते हो, वह जल पहले ही प्रकट होकर बहने लगता है । तुम आंगिरसों द्वारा स्तुत मेघों को चीरते हुए हमको अपरिमित अन्न देते हो ।८।

सूक्त ७८

(ऋषि—शयुः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

तद् वो गाव सुते सच पुरुहूताय सत्वने ।
शं यद गवे शकिने ।।१

न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः ।
यत् सीमुप श्रव द्गिरः ।।२

कृवित्सस्य प्र हि ब्रजं गोमन्तं वस्युहा गमत् ।
शचीभिरप नो वरत ।।३

हे स्तोता ! सोम संस्कारित होने पर इन्द्र की स्तुति करो, जिससे वे हम सोमवानों के लिए गौ के समान कल्याण करने वाले हो ।१। यह इन्द्र हमारी स्तुतियों को यदि सुन लेतेहैं तो गौओं से सम्पन्न अन्न को देने से नहीं रुकते ।२। हे इन्द्र! तुम वृत्रहन हो, अहरिमित अन्नवाले हो । तुम गौ से सम्पन्न स्थान पर आकर हमको बल से पूर्ण करो ।३।

सूक्त ७९

(ऋषि–शक्तिः, वसिष्ठः, । देवता–इन्द्रः । छन्द–वार्हतः प्रगाथः)

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ।।१
मा नो अज्ञाता पृजाना दुराध्यो माशिवासो अव क्रमुः ।
त्वया वयं प्रवयः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ।।२

हे इन्द्र ! पिता द्वारा पुत्र को इच्छित वस्तु देने के समान ही हमें अभीष्ट वस्तु प्रदानकरो । हे पुरुहूत! इस संसार यात्रामें इच्छित पदार्थ दो जिससे हम दीर्घजीवी होकर इस लोक के सुखों का अनुभव करें ।१। हे वीर इन्द्र ! हम पर अधि-व्याधियों का आक्रमण न हो । अमंगलमय वाणियाँ और पाप हम पर आक्रमण न करें। हम तुम्हारी कृपा को पाकर मनुष्यों से युक्त रहें और कर्मों को सदा सफलतापूर्वक करें ।२।

सूक्त ८०

(ऋषि–शंयुः । देवता–इन्द्रः । छन्द–प्रगाथः)

इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरं ओजिष्ठं पपुरि श्रवः ।
येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुप्रिश प्राः ।।१
त्वामग्रमवसे चर्षणीसहं राजन् देवेषु हूमहे ।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोऽमित्रान् सुषहान् कृधि ।।२

हे इन्द्र! तुम अपने महान् और ओजस्वी धनसे हमें सम्पन्नकरो। वे वज्रिन् तुमने अपने जिस धन में आकाश-पृथ्वी को पूर्ण कियाहै उसी धन को हमें प्रदान करो।१। हे इन्द्र ! तुम उग्र हो हमारे भय के सब कारणों को दूर करो और शत्रुओं को वशीभूत करने वाले बल से हमें सम्पन्न करो। हम तुम्हें रक्षा के लिये आहूत करते हैं।२।

सूक्त ८१

(ऋषि–पुरुहन्मा। देवता–इन्द्रः। छन्द–प्रगाथ)

यद् द्याव इन्द्र ते शत शतं शतं भूमींरुत स्युः।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥१
आ पप्राथ महिना पृष्ण्या वृषन् विश्वः शविष्ठ शवसा।
अस्मां अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रि चित्राभिरूतिभिः ॥२

हे इन्द्र ! हे प्रभो सैकड़ों आकाश-पृथिवी भी यदि तुम्हारी समानता करना चाहें तो भी तुम्हारे समान प्रवृद्ध नहीं हो सकते।१। हे वज्रिन ! हमारे गोचर स्थान में अपने अद्भुत रक्षा-साधनों से हमारी रक्षा करो और अपनी महिमा द्वारा ही हमारी वृद्धि करो।२।

सूक्त ८२

(ऋषि–वसिष्ठः। देवता–इन्द्रः। छन्द–प्रगाथ)

यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदमीशीय।
स्तोतारमिद दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय ॥१
शिक्षयमिन्महगते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे।
नहि त्वदन्मघवन् आप्य वस्यो अस्ति पिता धन ॥२

हे इन्द्र ! तुम्हारे समान प्रभुता को मैं प्राप्त होऊँ, मैं स्तुति करने वालों को धन देने वाला होऊँ और पापत्व के कारण पक्षियों द्वारा व्यथित न किया जाऊँ।१। हे इन्द्र ! मैं जिधर से चाहूँ वहीं से धन

पाऊँ जो मुझसे उत्कृष्ट होना चाहे उसे स्वर्ग का दण्ड दूँ। हे इन्द्र ! मुझे इस प्रकार की शक्ति देने वाला अन्य कौन रक्षक हो सकता है ? ।२।

सूक्त ८३

(ऋषि–शयुः । देवता–इन्द्रः । छन्द–प्रगाथः)

इन्द्र त्रिधातु शरण त्रिवरूथ स्वस्तिमत् ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्‌भ्यश्च मह्यं च यावया विद्युमेभ्यः ॥१
ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नान्ति धृष्णुया ।
अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्यस्तूपा अन्तमो भव ॥२

हे इन्द्र! मुझे मङ्गलकारी गृह प्रदान करो और हिंसात्मक शक्तियों को वहाँ से दूर करो ।१। तुम्हारे जो बल शत्रुओंको सन्तप्त करते और मारते हैं, अपने उन्हीं बलों से हे इन्द्र ! हमारे शरीरों की रक्षा करो ।२।

सूक्त ८४

(ऋहि–मधुच्छन्दा । देवता—इन्द्रः । छन्द–गायत्री)

इन्द्र याहि चित्रभानो सुया ईमे त्वायवः ।
अण्वीभिस्तना पूतासः ॥१
इन्द्र याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः ।
उप ब्रह्माणि वाघतः ॥२
इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः ।
सुते दधिष्व नश्चनः ॥३

हे इन्द्र! यहाँ आओ। यह निष्पन्न सोम तुम्हारे ही हैं।१। हेइन्द्र! यह विद्वान ब्राह्मण तुम्हें अपने से श्रेष्ठ मानते हैं। अतः इन मन्त्रों से सम्पन्न एवं सोमवान ऋत्विजोंके समीप आओ।२। हे इन्द्र! तुम अश्वों वाले हो, शीघ्रही हमारे स्तोत्रों की ओर आगमन करो और हमारे संस्कारित सोम के पास अपने अश्वों को रोको ।३।

सूक्त ८५

(ऋषि–प्रगाथ मेध्यातिथि । देवता–इन्द्रः । छन्द–प्रगाथः)

मा चिन्दयद् वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था न शंसत ।।१
अवक्रक्षिण वृषभं यथाजुर गां न चर्षणीसहम् ।
विद्वेषण संवननोऽभयंकर मंहिष्ठमुभयाविनम् ।।२
यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये ।
अस्माक ब्रह्मेदतिन्द्र भूतु तेऽहा विश्वा च वर्धनम् ।।३
वि तत् र्यन्ते मघवन् विश्चिपतोऽर्यो विपो जनानाम् ।
उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं देदिष्ट मूतये ।।४

हे स्तोताओ! तुम शन्य किसी देवताका आश्रय न लो,अन्य किसी देवता की स्तुति न करो । हे संस्कारित सोम वाले होताओ! तुम इन्द्र की स्तुति करते हुए बारम्बार उक्थों को गाओ।१। वे इन्द्र वृषभसमान चरने वाले, शत्रुओं के द्वेषी, व्रवकक्षी अजुर, महिष्ठ, संवननीय एवं दोनों लोकों में रक्षक है ।२। हे इन्द्र ! तुम्हारी रक्षा प्राप्त करने को अनेक पुरुष तुम्हें आहूत करते हैं । हमारा यह स्तोत्र भी तुम्हारी वृद्धि करने वाला है ।४। हे इन्द्र ! तुम शीघ्र आकर विशाल रूप धारणकरो इन विद्वानों मनुष्यों और यजमान की उङ्गलियाँ शीघ्रता कर रही हैं । तुम हमारे पालन के लिए अन्न को हमारे समीप लाते हुए हमें प्रदान करो ।४।

सूक्त ८६

(ऋषि–विश्वामित्रः । देवता–इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप्)

ब्रह्मण ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी जखाया सधमाद आशू ।
स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन् प्रजानन् विद्वाँ उपयाहिसोमम्।१

कर्मवान् मंत्र द्वारा तुम्हारा रथ में अश्वों को संयुक्त करता हूँ । हे

विद्वान् इन्द्र ! इस सुखकारी रथ पर आरूढ़ होकर हमारे इस सोम के पास आगमन करो ।१।

सूक्त ८७

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—इन्द्र, बृहस्पतिः । छन्द—त्रिष्टुप्)

अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम् ।
गोराद वेदीयां अवपानमिन्द्रो विश्वहेद्याति सुतसोममिच्छन् ॥१
यद् दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि ।
उत हृदीत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान् पाहिसोमान्॥२
जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच ।
एन्द्र पप्राथोर्वन्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥३
यद जाधया महतो मन्यमानान् साक्षाम तान्बाहुभिःशाशदानान्
यद्वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्यास्तं त्वायाजि सौश्रवस जयेम् ॥४
प्रेन्द्रस्य वाच प्रथमा कृत्तानि प्र नूताना मघवा या चकार ।
यदेददेवीरसहिष्ट्र माया अथा भवत केवलः सोमो अस्य ॥५
तवेदं विश्वमभितः पशव्य यत् पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य ।
गवामसि गोपतरेक इन्द्र भक्षीमहि त प्रयतस्य वस्वः ॥६
बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये विद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७

हे अध्वर्यु ओ! इन्द्र पृथिवी पर वर्षाकरने वाले हैं,उनके लिए सोम के दूध रूप अंशको आहूति दो । वह इन्द्र सोम की कामना करते हुए पीने के लिए आते हैं ।१। हे इन्द्र! तुम आकाश में सुन्दर अन्न धारण करते हो और यज्ञादि कर्मों के अवसर पर सोम का पान करते हो । अतः इस सोम की कामना करते हुए, इसकी रक्षा करो ।२। हे इन्द्र ! तुम प्रकट होतें ही सोम पर जाते हो । तुमने संग्राम में जीतकर देव-

देताजों को धन दिया। तुम विशाल अन्तरिक्ष में गमन करते हो वह अन्तरिक्ष तुम्हारी महिमा का बखान करता है।३। हे इन्द्र ! तुम मनुष्य सहित संग्राम करो। हम तुम्हारी शक्ति से इस स'ग्राममें विजय पाते हुए यशस्वी हों। तुम अपनी जिन भुजाओंसे बड़े-बडों से युद्ध करते हो तो उन भुजाओं के बलसे हम युक्त हो।४। हे इन्द्र ! मैं तुम्हारे नये पुराने कर्मोंका वर्णन करताहूँ। तुमने जिन राक्षसों मायावी का सामना किया है इसमें सोम तुम्हारा ही हो गया है।५। हे इन्द्र! यह सब पशु धन तुम्हारा है, तुम गौओंके पालन करने वालेहो। तुम सूर्य रूपी चक्षु से देखने वाले हो। तुम अपने उपासक के फल में यत्नवान रहते हो, ऐसे तुम्हारा धन हम पावे।६। हे बृहस्पते ! हे इन्द्र ! तुम दोनों ही दिव्य और पार्थिव धनोंके स्वामी हो। तुम अपनी रक्षक शक्तियों द्वारा हमारी रक्षा करते हुए स्तुति करने वाले हमें धन प्रदान करो।७।

सूक्त ८८

(ऋषि—वामदेवः। देवता—बृहस्पतिः। छन्द—त्रिष्टुप्)

यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्यो अन्तान् बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण।
त प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम्।।१
धुनेतयः सुप्रकेत मदंती वृहस्पते अभि ये नस्तत्रे।
पृषन्त सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम्।।२
बृहस्पते या पामा परावदत आ त ऋतस्पृशो नि षेदुः।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्व श्चोतन्तभितो विरप्शम्।।३
बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन्।
सप्तास्यतुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत् तमांसि।।४
स सुष्टुभा स ऋकव्यता गणेन वल रुरोज फलिग रवेण।
बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद् वावशतीरुदाजत।।५
एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम्।।६

जिन बृहस्पति ने पृथिवी के छोर को भी अपने घोष से स्तम्भित किया, उनका पुरातन ऋषि बारम्बार ध्यानकरते हैं। वे बृहस्पति प्रसन्न करने वाली जिह्वा वाले हैं विद्वान् ब्राह्मण उन्हें प्रथम रखते हैं ।१। हे बृहस्पते ! जो ऋत्विज तुम्हें हमारी ओर आकर्षित करते हैं, उन गमनशील अहिंसित घृत बिन्दु युक्त ऋत्विजों की तुम रक्षा करो ।२। हे बृहस्पते ! ऋतस्पृश ऋत्विज तुम्हारी रक्षा साधनों वाली महान् रक्षाके निमित्त बैठे हुये पर्वतों से चयन किये हुए सुन्दर मधु की तुम पर वर्षा करते हैं ।३। वे बृहस्पति महान् ज्योतिषचक्र से परम व्योम में आविर्भूत होते हुए सप्त रश्मि बनकर अन्धकार को मिटा देते हैं ।४। ऋचा युक्त गण द्वारा वे बृहस्पति मेघ को चीरते हैं। वे हव्यसे प्रेरित होकर इच्छा करने वाली गोओंको बारम्बार शब्द करते हुए प्राप्त होते हैं ।५ हे बृहस्पते ! हम सुन्दर और संतानों से सम्पन्न धनके स्वामी हों। हम उन बृहस्पति की हवियों और नमस्कारों द्वारा पूजा करते हैं ।६।

सूक्त—८९

(ऋषि—कृष्णः। देवता—इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप्)

अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन् भूषन्निव प्र भरा स्तोममस्मै ।
वाचा विप्रास्तरत वाचमर्यो नि रामय जरितः सोम इन्द्रम् ।१
दोहेन गामुप शिक्षा सखाय प्र बोधय जरितर्जारमिन्द्रम् ।
कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टमा च्यावय मघदेयाय शूरम् ।२
किमङ्ग त्वा मघवन् भोजमाहुः शिशीहि मा शिशयं त्वा शृणोमि
अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्र वसुविदं भगमिन्द्रा भरा नः ।३
त्वां जना ममसत्येष्विन्द्र सन्तस्थाना वि ह्वयन्ते समीके ।
अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः ।४
धनं न स्पन्द्रं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्त्सोमाँ आसुनोति प्रयस्वान् ।
तस्मै शत्रून्त्सुतुकान् प्रातरह्नो नि स्वष्ट्रान् युवति हन्ति वृत्रम् ।५

यस्मिन् वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्राय मघवा काममस्मे ।
आराच्चित् सन् भयतामस्य शत्रुर्न्यस्मैद्युम्ना जन्या नमन्ताम् ।६
आराच्छत्रुमप बाधस्व दुरमुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन ।
अस्मे धेहि यवमद् गोमदिन्द्र कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम् ।७
प्र यमन्तवृषसवासो अग्मान् तो व्राः सोमा बहुलान्तासं इन्द्राम ।
नाह दामान मघवा नि यंसन् सृन्वसे वहति भूरि वामम् ।८
उत प्रहामतिदीवा जयति कृतमिव श्वध्नी वि चिनाति काले ।
यो देवकामो न धनं रुणद्धि समित् तं रायः सृजति स्वधाभिः ।९
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन वा क्षुध पुरुहूत विश्वे ।
बयं राजसु प्रथमा धनान्यरिष्टासो वृजनीभिजयेम ।१०
वृहस्पतिनः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादधायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सभा सखिभ्यो वरोवः कृणोतु ।११

हे ब्राह्मणो ! तुम इन्द्र के लिए स्तोमों को भरो । मंत्र रूप वाणी से पार जाओ । हे स्तुति करने वालो! तुम इन्द्रको सोमसे सुसङ्गत करो ।१। हे स्तोताओ ! अपनी मित्र रूप वाणी को दुहो और शत्रुओं को क्षीण करने वाले इन्द्रको बुलाओ । धनसे सम्पन्न कोष समान शुद्ध सोम को इन्द्र के लिए सींचो ।२। हे इन्द्र ! तुम भोगने वाले हो । तुम शत्रु के क्षीण करने वाले हो । मुझे क्षीण न करो । मुझे धन मिलने वाला सौभाग्य दो । मेरी बुद्धि कर्मों की ओर अग्रसर हो ।३। हे इन्द्र ! मेरे पुरुष तुम्हें ही आहूत करते हैं । जो वीर तुम्हारी मित्रता की कामना करता है और हवि वाला अनुष्ठान करताहै, वह सोमका संस्कार करता है ।४। जो हविर्वान् पुरुष इन्द्र के निमित्त सोमों को संस्कारित नहीं करता उसका धन सरकता जाता है और इन्द्र उसे शत्रुओं में मिलाते हुए उस पर वज्र प्रहार करते हैं ।५। जो इन्द्र हमारे अभीष्टों को पूर्ण करने वाले हैं, जिन इन्द्रकी हम प्रशंसा करते हैं, उन इन्द्रसे शत्रु समीप आते ही भयभीत हो और संसारके सभी प्राणी इन इन्द्र को नमस्कार

करें।६। हे इन्द्र ! तुम अपने उग्र वज्र से पास के या दूर के शत्रु को व्यथित करो। हमको अन्न वाली बुद्धि देते हुए अन्न तथा पशुओंसे पूर्ण धन में प्रतिष्ठित करो।७। फिर जिन इन्द्र के पास तीव्र सोम गमन करते हैं, वे इन्द्र धन की बाधक रस्सी को रोकते और सोम का संस्कार करने वाले स्तोता को असीमित धन प्रदान करते हैं।८। जैसे क्रीड़ा कुशल व्यक्ति प्रतिपक्षी को द्यूत में हराता है क्योंकि वह कृत नामक अक्ष हुए धन को व्यर्थ ही न रोकता है। हुआ इन्द्र के कार्य में लगाता और उन्हें स्वाद्यावान् करता है। ९। हे इन्द्र ! दरिद्रता से प्राप्त हुई दुर्बुद्धि को हम पशुओं के द्वारा लांघ जांय। अन्नों से भूख को शान्त करें। प्रतिपक्षी खिलाड़ी से जीतते हुए हम राजाओं में स्थित उत्कृष्ट धन को बल सम्पन्न अक्षरों से प्राप्त करें।१०। जो शत्रु हमारे बध रूप पाप इच्छा करता है, उससे बृहस्पति देवता चारों दिशाओं से हमें रक्षित करें और अपने अन्य मित्रों से हमें उत्कृष्ट बनावें।११।

सूक्त—६०

(ऋषि—भरद्वाजः। देवता—बृहस्पतिः। छन्द—त्रिष्टुप्)

यो अद्रिभित् प्रथमजा ऋतावा वृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान्।
द्विबर्हज्मा प्राथर्मसत् पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति।१
जनाय चिद् य ईवत उ लोकं वृहस्पतिदेवहूतौ चकार।
घ्नन् वृत्राणि विपुरो दर्दरोति यजच्छत्रूं रमित्रान पृत्सु साहन्।२
बृहस्पतिः समजयद् वसूनि महो ब्रजान् गोमतो देव एषः।
अपः सिषासन्त्यरप्रतोतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमकः।३

प्रथम प्रकट होने वाले, मेघों को चीरने वाले, सत्य से सम्पन्न आंगिरस बृहस्पति हवि प्राप्त करने योग्य हैं। वे पालन करने वाले, आकाश-पृथिवी में शब्द करने वाले, द्विवर्हज्मा, प्राघमंसन् और वर्षा करने वाले हैं।१। देवहूति में लोक को करने वाले, मनुष्यों के लिए गमनशील बृहस्पति मेघों को चीर कर पुरों को तोड़ते हैं, पशुओं पर

विजय प्राप्त करते हुए सेनाओं का सामना करते हैं ।२। बृहस्पति ने गौओं से सम्पन्न बृहद गोष्ठों और धनों पर विजय प्राप्त कर ली । वे जल-दान के निमित्त स्वर्ग में आरूढ़ होते और मंत्रों शत्रुओंसे को नष्ट करते हैं ।३।

सूक्त–६१ [आठवाँ अनुवाक]

(ऋषि—अयास्यः । देवता—वृहस्पतिः छन्द—त्रिष्टुप्)

इमां धीयं सप्तशीर्ष्णी पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत् ।
तुरीयं स्विज्जनवद् विश्वजन्योऽयास्यः उक्थमिन्द्राय शसन् ।१
ऋत शंसन्त ऋजु दीध्याना दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
विप्र पदमङ्गिरसो दधाना यज्ञस्यं धाम प्रथमं मनन्त ।२
हंसैरिव सखिभिर्वावदद्भिरश्मन्मयानि नहना व्यस्यनू ।
बृहस्पतिरभिकनिक्रदद् गा उत प्रास्तीदुच्च विद्वां अगायत् ।३
अवो द्वाभ्यां पर एकया गा गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ ।
बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्नुदुस्रा आकर्वि हि तिस्र आव ।४
बिभिद्या पुरं वयथेसपाचीं निस्त्रीणि साकमुदधरकृन्तत् ।
बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गामर्कं विवेदं स्तनयन्निव द्यौः ।५
इन्द्रो वल रक्षितारं दुधानां करेणेव वि चकर्ता रवेण ।
स्वेदाञ्जभिराशिरमिच्छमानोऽरोदयत् पणिमा गा अमुष्णात् ।६
स ई सत्येभिः सखिभिः शुचद्भिर्गोधायस वि धनसरदर्दः ।
व्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैर्धर्मस्वेदेभिद्रविणं व्यानट् ।७
ते सत्येन मनसा गोपतिं गा इयानास इषणयन्त धीभिः ।
बृहस्पतिर्मिथोअवद्यपेभिरुदुस्त्रिया असृजतं स्वयुग्भिः ।८
त वर्धयन्तो मतिभिः शिवाभिवः सिहाभिः नानदत सधस्थे ।
बृहस्पतिं बृषणं शूरसातौ भरेभरे अनु मदेम जिष्णुमु ।९
यदा वाजमसनद् विश्वरूपमा द्यामरुक्षदुत्तराणि सद्म ।
बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा ।१०

सत्यामाशिवं कृणुता वयोधैं कोरिं चिद्ध्यवथ स्वेभिरेवैः ।
पश्चा मृधो अपभवन्तु विश्वास्तद् रोदसी शृणुतं विश्वमिन्वे ।११
इन्द्रो मह्ना महतो अर्णवस्य वि मूर्धानमभिनदर्बुदस्य ।
अहन्नहिमरिणत् सप्त सिन्धुन् देवैर्द्यापृथिवी प्रावतं नः ।१२

बृहस्पति ने सत्य द्वारा आविर्भूत सप्तशीर्षा बुद्धि को प्राप्त किया है और विश्व से उत्पन्न उन अस्यास्य ने इन्द्र से कह कर तुरीय को उत्पन्न कराया ।१। सत्य कथन द्वारा प्राण के वीर्य से उत्पन्न हुए अङ्गिरा यज्ञ स्थान में प्रथम समझे जाते हैं ।२। वधक मेघों का उद्-घाटन करते हुए बृहस्पति स्तुति सी करते हुए विद्वान से लगते हैं ।३। दो से फिर एक से हृदय गुहा में अवस्थित वाणियों को उदभुत करते हुए अन्धेरे में प्रकाश की कामना वाले प्रकाशों को प्रकट करते हैं ।४। पुर को चीर कर पश्चिम में सोते हैं । समुद्र के भागों का त्याग नहीं करते । आकाश में कड़कते हुए बृहस्पति उषा, सूर्य, मन्त्र और गौ को पाते हैं ।५। कामधेनुओं के पालक मेघ को इन्द्र छिन्न भिन्न करते हैं । इन्द्रोंने दधि की इच्छा से गौ अप हारक पणियों को व्यथित किया ।६। वह इन्द्र धन देने वाले तथा पृथिवीको पुष्ट करने वाले मेघको चीरते हैं और ब्रह्मणस्पति वर्षणशील मेघों द्वारा धन मे व्याप्त होते हैं ।७। यह मेघ वृषभ और गौओं पर जानेकी कामना करते हुए अपनी बुद्धियोंद्वारा उन्हें पाते हैं । उन अनवद्यप शब्द का पालन करने वाले बृहस्पति मेघों द्वारा गौओ में संयुक्त होते हैं ।८। उस युद्ध में सिंह के समान गर्जन करने वाले बृहस्पतिको हम अपनी सुबुद्धियोंसे प्रबृद्ध करते हैं और युद्धों के अवसर पर उन्हें प्रसन्न करते हैं ।९। जब यह विश्व रूप आकाश रूपी भवन पर चढ़कर अन्न प्रदान करने की इच्छा करतोहैं,गब ज्योति को ग्रहण करते हुए बुद्धि के द्वारा बृहस्पति को प्रवृद्ध करते हैं ।१०। अन्नके पोषक कारणोंके आशीर्वाद को सत्य करते हुये स्तुति करने वाले के रक्षक होओ। हे द्यावापृथिवी ! तुम अग्नि सम्बन्धी ऋचाओं के प्रचण्ड होने पर श्रवण करो । जितने युद्ध हैं वे सब बिगत हो जांय ।११। मेघ के मस्तकको अपनी महिमा द्वारा ही इन्द्र काट देते हैं । वे

प्रहार करके सात नदियोंको प्रकट करते हैं। हे आकाश और पृथिवी ! तुम हमारी पोषण करने वाली होओ ।१२।

सूक्त—९२

(ऋषि—प्रियमेघः पुरुहन्मा। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री, अनुष्टुप्, पंक्ति, बृहती प्रगाथ)

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्चं यथा विदे ।
सूनु सत्यस्य सत्पतिम् ।१
आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि वर्हिषि ।
यत्राभि सनवामहे ।२
इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्न वज्रिक्र मधु ।
यत् सीमुपह्वरे विदत् ।३
उद् यद व्रध्नस्य विष्टृप गुहमिन्द्रश्च गन्वहि ।
मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रि सप्त सप्त सख्युः पदे ।४
अर्चंत प्रार्चंत प्रियमेधासो अचत ।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न भृष्ण्वंत ।५
अव स्वराति गर्गरो गोधा परि समिष्वणत ।
पिङ्गा परि चनिष्कदिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ।६
या यत् पतन्त्येन्यः सुदुधा अनपस्फुरः ।
अपस्फुर च्रभायत सोममिन्द्राय पावते ।७
अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमन्सत ।
वरुण इदिह क्षयत् तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरोरिव ।८
सदेवा असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः ।
नुक्षरन्ति आकुद सूर्म्यं सुषिरामिव ।९
यो व्यतीर फाणयत् युयक्तां उप दाशुषे ।
तक्वो नेता तदिद वपरुपमा यो अमुच्यत ।१०

हे स्तोता ! गौओंके स्वामी इन्द्रको जिस प्रकार पाऊँ,उसी प्रकार तुम उनका पूजन करो । यह इन्द्र अपने सत्यनिष्ठ उपासकों की रक्षा करते हैं ।१। जिन कुशाओं पर हम इन्द्र का पूजनकर रहेहैं, उन कुशाओं पर इन्द्र के अश्व रथ को जोड़े ।२। जब गौयें इन्द्र के लिए दूध को दुहती हैं, तब वे इन्द्र सब ओर से मधुर सोम रसोंको प्राप्त करते हैं ।३। ब्रध्न के गृह रूप स्वर्ग में हम और इन्द्र गमन करें । हम इक्कीस बार मधु को पीकर इन्द्र का सख्य भाव प्राप्त करें ।४। हे स्तोताओ ! इन्द्र को श्रेष्ठ रीति से पूजो । अपने शत्रुओं को वश करने के लिए उनका पूजन करो ।५। जब इन्द्र के प्रति मन्त्र चलता है तब कलश शब्दवान होता है, उस समय पिशंग पदार्थ गमन करता हुआ धनुषकी प्रत्यञ्चाके समान शब्द करता है ।६। हे स्तोताओ ! इन शुभ्र धेनुओं में स्थित अविनाशी पदार्थ को ग्रहण करते हुए इन्द्रके पीनेके लिए सोमको लाओ ।७। इस पदार्थ को इन्द्र ने, अग्निने, विश्वेदेवताओं ने पी लिया है । हे जलो ! संशिश्वरी के वत्स के समान वरुण की स्तुति करो।८।हे वरुण ! तुम्हारे पास पुरस्तात, वर्षयन्ती, अभ्रपत्नी, अश्वा, मेघषत्ना, त्रितुवा असन्धा नाम की सात नदियां हैं, जैसे नगर से बाहर जल निकलता है, वैसे ही उन नदियोंसे जल प्रवाहित होता है ।९। जो हविदाता के लिये सुयुक्तों को फणित करते हैं, जो नेता हैं, तक्व हैं, उनकी उपमा उनका देह ही है, अर्थात् अन्य कोई नहीं है ।१०।

अतीदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा द्विषः ।
भिनत् कनीन ओदनं पच्यमान गिरा ।११
अर्भको न कुमारकोऽधि यिष्ठन्नवं रथम् ।
स पत्रन्महिषं तृग पित्रे मात्रं विभुक्रतुम ।१२
आ त सुषिप्र दपते रथ तिष्ठा हिरण्ययम ।
अध क्षुक्षं सचेवहि सहस्त्रपाद मरुषं स्वतिगामनेहसम् ।१३
त घेमित्था नमस्विन उपराजमासते ।
अर्थं चिदस्य सुधित यदेतव आवर्तयन्ति दावने ।१४

अनुप्रत्नस्योकसः प्रियमेधास एषाम् ।
पूर्वमनु प्रयति वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आशत ।१५
यो राजा चर्षणीनां याया रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ।१६
इन्द्रं त शम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शयो महो विवे न सूर्यः ।१७
नकिष्टं कर्मणा नशद यश्चकार सदावृधम् ।
इंद्र न यज्ञविश्वगर्तमृश्वसमध्रष्ट घृष्णोजम् ।१८
अषाढमुग्र पृतमासु सासहि यस्मिन् महीरुरुज्रयः ।
स धेनवो जायमाने अनोनबुर्द्याव क्षामो अनोनवुः ।१९
यद् द्याव इन्द्र ते शत शत भमीरुत स्युः ।
म त्वा व ज्रात्सस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ।२०
आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृशन् विश्वा शविष्ट शवसा ।
अस्माँ अब मघवन् गोमति ब्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूमिभिः ।२१

इन्द्र सब शत्रुओं को वश में करते हैं, वे भार को संभालने वाले हैं। इन्होंने मन्त्र से पकड़े हुये मोदनका कठिन होते हुए भी भेदन किया ।११। वे अपने रथ पर उत्कृष्ट कुमार के समान आरूढ़ होते हैं और द्यावापृथिवी रूप पिता माता के निमित्त विभुक्रत, पाक करते हैं ।१२। हे इन्द्र ! तुम इस स्वर्ण निर्मित रथ पर आरूढ़ होओ और हम भी तुम्हारी कृपा से सुन्दर वाणियों से सम्पन्न, सहस्रों मार्गसे युक्त स्वर्ग पर चढ़ें ।१२। उन इन्द्र की इस प्रकार की महिमा जानने वाले व्यक्ति अपने राज्य में अधिष्ठित करते हैं। हवि देने वाले यजमान के लिये ऋत्विगण इनके समीपस्थ धन को प्राप्त कराते हैं ।१४। प्रिय मेधा वाले ऋत्विज इनके पूर्व भवन से हितकारी अन्नसे सम्पन्न होकर प्रयति का उपयोग करते हैं ।१५। राजा इन्द्र ज्येष्ठ हैं, वे रथ द्वारा गमन करते हुए सभी सेनाओं के पार होते हैं। मैं उनका स्तव करता हूं ।१६। हे पुरुहन्मन् ! इन्द्र की सत्ता मध्यलोक, अन्तरिक्ष और स्वर्गलोक में भी

है। क्रीड़ा के निमित्त ऊँचा हुआ वज्र उनके हाथमें सूर्यके समान दर्शनीय है इस धारक यज्ञ में अन्न प्राप्ति के निमित्त उन्हीं इन्द्र को सुसज्जित करो ।१७। जो पुरुष उन महान पराक्रमी, ऋध्वस, अधृष्ठ, वृद्धि कर घर्षक तेज से सम्पन्न इन्द्र की उपासना में लगता है, उसे उसके कर्म से कोई रोक नहीं सकता ।१८। वे प्रचण्ड इन्द्र विशाल आश्रय मार्ग वाले, वाणियों द्वारा स्तुत और सेनाओं में असहयोग हैं,उनका आकाश और पृथ्वी लोक स्तव करते हैं ।१६। हे इन्द्र ! सो सो आकाश और पृथ्वी हों या सहस्त्रों सूर्य आकाश पृथ्वी बन जाँय तो भी वह तुम्हारी समानता करने में समर्थ नहीं हैं ।२०। हे इन्द्र ! हमारी गोचर भूमि में अपने रक्षा साधनों से हमें रक्षित करते हुए हमारी वृद्धि करो ।२१।

सूक्त—६३

(ऋषि—प्रगाथ: देवताजय: । देवता—इन्द्र: । छन्द—गायत्री)

उत् त्वा मन्दन्तु स्तोमा: कृञ्ष्व राधा आद्रिव: ।
अव व्रह्माद्विषो जहि ।1
पदा पणोरराधसो नि बाघस्व महाँ असि । नहित्वा कश्चन प्रतिर
त्यमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतनाम् । त्वं राजा जनामाम् ।३
ईंखयन्तीरपस्युव इन्द्र जातमुपासते । भेजानास: सुवीर्यम् ।४
त्वंमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजस: । त्वं वृषेदसि ।५
त्यमिन्द्रासि वृत्रहा व्यन्तरिक्षमतिर:। उद् द्यामस्तम्ना ओजसा।६
त्वमिन्द्र सजोषसमकं विभर्षि बाह्वो । वज्र शिशान ओजसा ।७
त्वमिन्द्राभिभूरसि विश्वा जातान्योजसा । स विश्वा अभाव: ।८

हे वज्रिन ! यह स्तुति तुम्हारे लिये प्रमुदित करने वाली हो, तुम ब्रह्मद्वेषियों को नष्ट करो और हमको धन दो ।१। हे इन्द्र ! पणियों के धन को छीन कर उन्हें मार डालो । तुम महान् हो । कोई भी तुम्हारी प्रतिस्पर्धा में नहीं टिक सकता ।२। हे इन्द्र ! तुम संस्कारित सोमों के तथा मनुष्यों के स्वामी हो ।३। जल की कामना करती हुई

और श्रेष्ठ वीर्य से व्याप्त होती हुई औषधियाँ उत्पन्न होते ही इन्द्रकी आराधना करती हैं ।४। हे इन्द्र ! तुम फलों की वर्षा करने वाले अपने धर्षक ओज सहित आविर्भूत हुए हो ।५। हे इन्द्र ! तुम अन्तरिक्ष को लांघने में समर्थ हो । वहाँ तुम वृत्र का नाश करते हो । तुम्हारा ओज स्तम्भित करने वाला है जिससे द्युलोक स्थित हुआ है ।६। हे इन्द्र ! तुम प्रीतिकर मंत्र के धारण करने के पश्चात् तीक्ष्ण वज्र को अपने ओज से धारण करते हो । हे इन्द्र ! सभी उत्पन्न होने वाले पदार्थोंको तुम अपने बल से अधीन करते हो । अतः सब शक्तियों को अपने वशमें करो ।८।

सूक्त–६४

ऋषिः—कृष्णः । देवता—इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप्, जगती)

आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मद य धर्मणा ततुजानस्तुविष्मान् ।
प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपापरेण महता वृष्ण्येन ।१
सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ ।
शोभ राजन्त्सुपथा याह्यर्वांङ वर्धाम ते पपुरुषो वृष्ण्यानि ।२
एन्द्रवाहो नृपति वज्रबाहुमुग्रास्तविषास एनम् ।
प्रत्यक्षसं वृषभं सत्यशुष्ममेमस्मत्रा सधमादो वहन्तु ।३
एवा पतिं द्रोणासाचं सचेतसमुर्जं स्कम्भ धरुण ना वृषायसे ।
ओजः कृष्व स गृभाय त्वे अप्यसो तथा केनिपानामिनो वधे ।४
गमन्नस्मे वसून्या हि शसिष स्वशिषं भरमा याहि सोमिनः ।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिष्यनाधृष्या तव पात्राशि धर्मणा ।५
प्रथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्या नि दुष्टरा ।
न ये भेकुयज्ञियाँ नावमारुहमीमैव ते न्यविशन्त केपयः ।६
एवैवापागरे सन्तु धूढ़यो श्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे ।
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र वयुनानि भोजना ।७
गिरीरजान रेजमानां अधारयद द्यौः क्रन्ददंतरिक्षाणि कोपयत ।

समीचीने घिषणे वि ष्कभायति वृष्ण: पीत्वा मद उक्थानि शंसति ।८
इमं विभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवञ्छभारुज: ।
अस्मिंत्सु ते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ मघवन् बोध्याभग: ।९
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुध पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभि: प्रथमा धनांयस्माकेन वृजनेना जयेम ।१०
वृहस्पतिर्न: परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायो: ।
इन्द्र: पुरुस्तादुत मध्यतो न: सखा सखिभ्यो वरिव: कृणोतु ।११

जो इन्द्र धन के ईश्वर हैं, धर्म से त्वरावान् हैं, वे हर्ष के निमित्त आगमन करें और वह अपनी शक्ति से, दबाने वाले शत्रुओं को हर प्रकार से क्षीण करें ।१। हे इन्द्र ! तुम्हारे हाथमें वज्र रहता है, तुम्हारे अश्व हर प्रकार से तुम्हारे अधीन रहते हैं, तुम्हारे रथ में बैठने का स्थान श्रेष्ठ है, अत: स्वर्ग से सुन्दर मार्ग द्वारा आओ और हम तुम्हारे सोम-पान की कामना वाली शक्ति को प्रवृद्ध करते हैं ।२। इन वज्रधारी राजा, भयङ्कर शत्रुओं का क्षय करने वाले, सत्य से सशक्त, फलों की वर्षा करने वाले इन्द्र को हमारे इस यज्ञ स्थान में इनके बलवान अश्व लेकर आवें ।३। हे ऋत्विज ! ज्ञानी बली द्रोण पात्र से सुसंगत होने वाले स्कम्भ को जल में खींचो । मैं कनिपानों, को बढ़ाने के लिए तुझमें. होऊँ । तुम मुझे बल दो और भले प्रकार आश्रय दो ।४। हे इन्द्र ! इस स्तोता को शुभ आशीर्वाद दो, इस यजमान में धन को प्रतिष्ठित करो । हे स्वामिन् ! इस सोम के गृह में आकर कुशा के इस आसन पर विराजमान होओ। तुम्हारे पात्र धारण शक्ति के कारण अनाधृष्य हैं ।५। हे इन्द्र ! जो अपने ज्ञान और कर्म के अनुसार देवयान आदि मार्गों से जाने की कामना करते है, जो सर्व साधारणको कष्टसाध्य देव-हूति आदि कर्मों को करते हैं, परन्तु तुम्हारी कृपा न होने से यज्ञ रूप नाव पर नहीं चढ़ पाते, इसलिए साधारण कर्मों को करते हुए मर्त्य-लोक में ही रुके रहते हैं ।६। जिन अश्वों को दुयुंज संयुक्त करते हैं, वे

'अपाक' रहें। जो दाता को बहुत से भोज्य पदार्थों से युक्त है, वे मेघ ही ।७। सोम के रस से हर्षित हुये इन्द्र पर्वतों को धारण करते, अन्तरिक्ष के पदार्थों को कुपित करते और द्युलोक को क्रन्दित करते हैं। आकाश पृथ्वी को विष्कमित करते हुए उक्थों को श्रेष्ठ बनाते हैं ।८। हे इन्द्र ! मैं तुम्हारे अंकुश को धारण करता हूं। तुम उसके द्वारा नख वाले पीडक प्राणियों को नष्ट करते हो। इस सवन में तुम पूजित होओ और सोम के निष्पन्न होने पर धन को जानने वाले होओ ।९। हे अनेकों द्वारा आहूत इन्द्र ! हम यजमान तुम्हारे द्वारा प्रदत्त गौओ से दरिद्रता को लांघ जांय और तुमने जो अन्न दिया है, उससे हम अपने भृत्व पुत्र आदि की भूख को मिटावें। हम अपनी शक्ति से शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें और अपने समान पुरुषोंमें श्रेष्ठ बनकर धन पावें ।१० पूर्व दिशा से आते हुए सिंहक शत्रु से इन्द्र हमारी रक्षा करें और धन दें। पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशा से आते हुए हिंसक शत्रुओं से बृहस्पति हमें बचावें ।११।

सूक्त–६५

(ऋषि–गृत्समदः सुदाः। देवता–इन्द्रः। छन्दः–अष्टिः शक्वरी)

त्रिकद्रुकेषु महिषोयवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत् सोममपिबद विष्णुना सुतं यथावशत्। सईं ममाद महि कम कर्तवे महामुरु सैनं सश्चद देवो देवं सत्यमिंद्र सत्य इन्दुः ।१
प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत।
अभीके चिदु लोककृत् संगे समत्सु वृत्रहास्माकं बोधि चोदिता
नभन्तात्वं सिन्धूंरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम्।
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यासि वार्यं तं त्वा परि ष्यजानहे
नमन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ।३
वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशंतनो धियः।

अस्तासि शत्रवे वध यो न इन्द्र जिघांसति या ते पातिर्दंदिर्वसु नभन्तामंयकेषां ज्याका अधि धंवसु ।४

वे इन्द्र त्रिकद्रुम सोम यागों में सोम पीते और यज्ञादि के मिश्रण से तृप्ति पाते हैं। विष्णु द्वारा निष्पन्न सोमपर अधिकार करतेहैं क्योंकि वह सोम उन्हें हर्ष देता हुआ इनसे सुसंगत होता है। १। इन्द्र को पूजो, इन्द्र की आराधना करो। यह युद्ध में शत्रुओं को मारते हैं। अन्य पुरुषों की प्रत्यंचायें धनुषोंपर चढ़ पावे। यह प्रेरक इन्द्र हमारी स्तुति को जान गये हैं।२। हे इन्द्र ! तुमने मेख को मारकर नदियों को दक्षिण की ओर गमनशील बनाया। तुम सब वरणीय पदार्थों को पुष्ट करते और शत्रुओं को मिटाते हो। हम तुम्हें हृदय से लगाते हैं। अन्य पुरुषों की प्रत्यंचायें उनके धनुषों पर चढ़ पायें ।३। हे स्वामिन हमारे सब शत्रुओं की बुद्धियाँ नष्ट हों। जो शत्रु हमारी हिंसा करने की कामना वाला है, उस पर मरण साधन वज्र को चलाओ, अपना धन हमको दो। अन्य पुरुषोंकी प्रत्यंचायें उनके धनुषों पर चढ़पावें ।४

सूक्त—९६

(ऋषि—पूरण: प्रभृति: । देवता—इन्द्र:, प्रभृति । छन्द:—त्रिष्टुप् जगती, अनुष्टुप्, उष्णिक, वृहती षड्क्ति)

तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्बरथा वि हरी द्दह सुञ्च ।
इंद्रे मा त्वा यजमानासो अंये नि रीरमन् तुभ्यमिमे सुतास: ।१
तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्वासस्त्वां गिर: श्वाया आ ह्वयन्ति ।
इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इहा पाहि सोमम् ।२
य उशता मनसा सोममस्मै सर्बहृदा देवकाम: सुनोति ।
न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति ।३
अनृस्पष्टो ह्यवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान् न सुनोति सोमम ।
निररत्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्माद्विषो हन्त्यनानुदिष्टा: ।४
अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उ ।

आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम ।५

मुश्वामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इंद्राग्नो प्र मुमुक्तमेनम् ।६

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्यातिक नी त एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्षमेनं शतशारदाय ।७
सहस्राक्षण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
इंद्रो यथैनं शरदो नयात्ययि विश्वस्य दुरितस्य पारम् ।८

शतं जीव शरदो बधमानः शतं हेनन्ताञ्छतमु वसन्तान् ।
शतं य इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषार्षमेनम्।९
आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः ।
सर्वाङ्ग सर्वं ये चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ।१०

हे इन्द्र ! तुम इस हवि रूप अन्न वाले यजमान के रथियों के रक्षक बनो । हे इन्द्र ! सोमों को संस्कारित किया जा चुका है । अतः अपने अश्वोंको छोड़कर यहां आओ । अन्य जयमानोंके यहाँ रमण मत करो ।१। हे इन्द्र ! यह सोम तुम्हारे लिए ही अभिषित हुये हैं, यह स्तुतियाँ तुम्हारा ही आह्वान कर रही हैं तुम सबके ज्ञाता हो । हमारे यज्ञ में आकर इस सोम को पीओ ।२। जो देब-काम्य पुरुष सोम को निष्पन्न करता है, उसके स्तोत्रों को इन्द्र स्वीकार कर लेते और सुन्दर वाणी द्वारा उसे तुष्ट करते हैं ।३। जो पुरुष सोम का संस्कार नहीं करता, वह इन्द्र के प्रहार के योग्य होता है । उस ब्रह्मद्वेषी और हवि-र्दान न करने वाले को इन्द्र नष्ट कर देते हैं ।४। हे इन्द्र ! हम अश्व, धेनु और अन्न की कामना वाले तुम्हारे आश्रय के लिए नवीन सुबुद्धि से सुसङ्गत होकर तुम्हें आहूत करते हैं ।५। हे रोगी पुरुष ! मैं तेरे जीवन के निमित्त हवि देता हुआ तुझे क्षयादि रोगों से मुक्त करता हूं । हे इन्द्राग्ने ! यदि पिशाची ने पकड़ लिया हो तो उसतु पाप से उसे छुड़ा दो ।६। यह दुर्गति को प्राप्तहो गया है, इसकी आयु क्षीणहो गईहै

और मृत्युका सामीप्य प्राप्तकर चुका है तो भी मैं इसे निर्ऋति के अंक से खींचता हूं। इसे सौ वर्ष की आयु प्राप्त करने के लिए मैंने इसका स्पर्श किया है ।७। मैं इस रोग को सहस्रों सूक्ष्म दृष्टियों सैंकड़ों वीर्यों और सौ वर्ष वाली आयु के लिए हवि द्वारा मृत्यु से छीन लाया हूं। इसे इन्द्र की आयु पर्यन्त के लिए पापों से पार लगावे ।८। हे रोगिन्। तू सौ वर्ष तक जीवित रहता हुआ बढ़। सौ हेमन्तों और सौ बसंतों तक स्थित रह। इन्द्र, अग्नि, सविता बृहस्पती तुझे शतायुष्य बनावें। इस हवि द्वारा मैं तुझे शतायु करके ले आया हूँ ।९। हे रोगिन्! तू लौट आ। तू पुनः नवजीवन प्राप्तकर। इस कर्म द्वारा मैंने तेरी दर्शन शक्ति और पूर्ण आयु प्राप्त कर ली है ।१०।

ब्रह्मणाग्निः सविद नो रक्षोहा व धतामितः।
अमीवा यस्ते गर्भ दुर्णामा योनिमाशये ।११
यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये।
अग्निष्ठं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत ।१२
यस्ते हन्ति पतयन्तं निन्स्नुं सरीसुनम्।
जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ।१३
यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये।
योनिं यो अन्तरारेढि तमितो पाशयामसि ।१४
यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामासि ।१५
यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते।
प्रजां मरते जिघासति तमितो नाशयामासि ।१६
अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि।
यक्ष्म शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ।१७
ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनुक्यात्।
यक्ष्मं दोषण्यमसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ।१८
हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्यासम्।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्तस्ते बि वृहामसि ।१९

आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि ।
यक्ष्म कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्या वि वृह मि त ।२०
ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रवदाभ्याम् ।
यक्ष्म भसद्यं श्रोणिभ्यां भाननं भसमो वि वृहामिते ।२१
अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्वाभ्यो धमनिभ्यः ।
यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नेखेयभ्यो वि वृहामि ते ।२२
अङ्गे अङ्गे लोम्निलोम्नि यस्ते पर्वणिवर्वणि ।
यक्ष्मं त्वचस्यं ते वयं कश्यपस्य वीवर्हणी विष्पञ्चं
वि वृहामसि ।२३
अपेहि मनसस्पतेप क्राम पराश्चर ।
परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः ।२४

अग्नि देवता राक्षसों को नष्ट करने वाले हैं, वे मन्त्र से युक्त होते हुए तेरे दूषित रोगी को बाधा दें । वह रोग तेरे गर्भाशय में व्याप्त हो रहा है ।११। जो दुष्ट रोग तेरे गर्भाशय में व्याप्त हो रहा है, उसे अग्निदेव मंत्र के बल से नष्ट करें ।१२। तेरे गिरते हुए या निकलते हुये गर्भ को नष्ट करने की जो इच्छा करता है, हम इसे नष्ट करते हैं ।१३। जो रोग तुम पति पत्नी में व्याप्त है, जो तेरी योनि में और उरुओं में व्याप्त हैं, हम उसे करते हैं ।१४ जो पिशाच पति उपपति या भाई बनकर आता हुआ तेरे गर्भस्थ शिशु को नष्ट करना चाहता है, उसे हम मारते हैं । ।१५। जो तुझे स्वप्न में अन्धकार में व्याप्त होकर तेरी संतान का क्षय करना चाहता है, उसे हम नष्ट करते हैं ।१६। मैं तेरे नेत्र, नासिका, श्रोत्र, ठोड़ी आदि से शीर्षण्य और यक्ष्मादि रोगोंको मस्तक और जीभसे बाहर करता हूं ।१७। मैं तेरी अस्थियों से, नाड़ियों से, कन्धों और भुजाओं से तेरे यक्ष्मा रोग को नष्ट करता हूं ।१८। हे रोगिन् ! मैं तेरे हृदय से यक्ष्मा को निकालता हूं । हृदय के समीपस्थ क्लोंम से, हलीक्ष्य से

पित्ताधारों, पार्श्वों, प्लीहा और यकृत से तथा उदर से भी तेरे यक्ष्मा रोग को नष्ट करता हूँ ।१९। हे क्षय-ग्रस्त रोगिन् ! तेरी आँखो से, गुदा से, उदर से, दोनों कुक्षियों से, प्लाशि से तथा नाभि से तेरे यक्ष्मा रोग बाहर निकाल कर हटाता हूँ ।२०। तेरे उरु, जानु, पाँवों के ऊपर तथा आगे के भाग से, कमर से, कटि के नीचे और गुह्य देश में प्राप्त हुए यक्ष्मा रोग को निकाल कर पृथक करता हूँ ।२१। मज्जा, अस्थि, सूक्ष्म नाड़ियाँ, उङ्गलियाँ,नख तथा तेरे शरीर की सब धातुओं से तेरे यक्ष्मा रोग को निकाल कर हटाता हूँ ।२२। हे रोगिन् तेरे सब अङ्गों, सब रोम कूपों और जोड़ों में व्याप्त यक्ष्मा को हम दूर करते हैं । तेरे त्वचागत, नेत्र गत यक्ष्मा रोग को भी मन्त्र द्वारा नष्ट करते हैं ।२३। हे रोग ! तू मन पर भी अधिकार करने वाला है, तू दूर हो । इस जीवित पुरुष के मन से दूर होने को निर्ऋति से कह ।२४।

सूक्त--९७

(ऋषि·—बलि । देवता—इन्द्र । छन्द—प्रगाथ, वृहती)

वयमेनमिदा ह्योऽपोपेमह वज्रिणम् ।
तस्मा उ अद्य समना सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ।१
वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।
सेमं न स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया ।२
कदून्वस्याकृतमिन्द्रयास्ति पौंस्यम् ।
केनो नु कं श्रोततेन न शुश्रुवे जनुषाः परि वृत्रहा ।३

हे स्तोताओ ! हमने इन्द्र को सोम से पुष्ट किया है । तुम भी प्रसन्न मन से उन्हें संस्कारित सोम प्रदान करो । उन इन्द्र को स्तोत्रों द्वारा सज्जित करो ।१। इन्द्र का वृक शत्रुओं को भगाने वाला है, वह मेढ़ों का मथन करने वाला है । हे इन्द्र ! तुम अपनी रमणीय बुद्धि द्वारा इस यज्ञ में आकर हमारी स्तुतियों को सुनो ।२। यह किसने नहीं सुना कि इन्द्र ने वृत्र का नाश किया । ऐसे कोई पराक्रमण नहीं जो इन्द्र में न हों ।३।

सूक्त-६८

(ऋषि–शंयुः । देवता–इन्द्रः । छन्दः–वार्हता, प्रगाथः)

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।
त्वाँ वृत्रैष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्ववंतः ।१
स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः ।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र स सिर सत्रा वाजं न जिग्युषे ।२

हे इन्द्र ! हम स्तुति करने वाले, अन्न प्राप्ति वाले यज्ञ में तुम्हें ही बुलाते हैं । सज्जनों के रक्षक और जलों को प्रेरित करने वाले हो । जब कोई घेर लेता है, तब तुम्हीं आहूत किये जाते हो ।१। हे इन्द्र ! तुम हमारे द्वारा होकर इस विजयाकांक्षी नरेश के लिये अश्वरथ धेनु आदि दो । हे इन्द्र ! तुम हाथों में वज्रधारण करने वाले हो ।२।

सूक्त-६६

(ऋषि—मेध्यातिथिा । देवता—इन्द्र । छन्द—वार्हत, प्रगाथ)

अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
समीचीनास अभवः समरस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ।१
अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्ये शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूवथा ।२

हे इन्द्र ! तुमने पहिले सोमपान किया था, उसी प्रकार सोमपान के लिए ऋभु देवता और रुद्र देवता तुम्हारी स्तुति करते हैं ।१। निष्पन्न सोम का हर्ष प्राप्त होने पर वे इन्द्र यजमानको धन वृष्टि की और बल की वृद्धि करते हैं । यह स्तुति करने बाले उन इन्द्र की महिमा को ही पूर्ववत गाते हैं ।२।

सूक्त—१००

(ऋषि–नृमेधः । देवता —इन्द्र । छन्द—उष्णिक्)

अधा होन्द्र गिर्वणउप त्वा कामान् महः ससृज्महे ।

उदेव यन्त उदभिः ।१
वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि ।
वावृध्वासं चिदद्रिवो दिवेदिव ।२
युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे ।
इन्द्रवाहा बचोयुजा ।३

जैसे जल की कामना करने वाले मनुष्य जल में जल को मिलाते हैं, वैसी ही हे इन्द्र ! तुम्हारी कामना वाले मनुष्य तुम्हें सोमरूपी जलों से मिलाते हैं ।१। हे वज्रिन् ! तुम प्रत्येक स्तुति पर अपनी वृद्धि की इच्छा करते हो, इसलिये यह मन्त्र तुम्हें जल के समान प्रवृद्ध करते हैं ।२। युद्ध में प्रस्थान करने वाले इन्द्र के यशोगान से मन्त्र द्वारा जुड़ने वाले इन्द्र के अश्व रथ में संयुक्त होते हैं ।३।

सूक्त—१०१

(ऋषि—मेध्यातिथिः । देवता—अग्निः । अग्निः छन्द—गायत्री)

अग्निदूतं बृणीमहे होतारविश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम ।१
अग्निमग्निं हवीमभिःसदाहवन्तविपतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम्।२
अग्ने देवां इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । असिहोता न ईडयाः।३

वे अग्नि सबके ज्ञाता और होता रूप हैं, वे यज्ञ के कर्मोंको उत्कृष्ट बनाते हैं । अतः हम उन अग्निदेव का वरण करते हैं ।१। हव्यवाहक, बहुतों के प्रिय, प्रजापति अग्नि को यजमान हवि प्रदान करते हैं इस-लिये हम भी अग्नि को हवि देते हैं ।२। हे अग्ने ! ऋत्विज के लिये प्रदीप्त होते हुए तुम हमारे होता हो, अतः देवताओं को हमारे यज्ञ में लाओ ।३।

सूक्त—१०२

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—अग्निः । छन्द—गायत्री)

इडेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शत समग्निरिध्यते वृषा ।१

वृषो अग्नि: समिध्यतेऽश्वौ नदेववाहन: तं । हविष्मन्त ईड ते।२
वृषणं त्वा वयंवुषन् वृषण: समिधीमहि । अग्ने दीद्यत वृहत ।३

वे अग्ने स्तुतियों और नमस्कारों के योग्य हैं, वे फलों की वर्षा करने वाले एवं दर्शनीय है वे अपने धनको तिरछा करते हुए प्रज्वलित होते हैं ।१। देवताओं को वहन करने वाले अश्व के समान वे फलों की वृष्टि करने वाले अग्नि प्रदीप्त होतेहैं,तब हविदाता यजमान उन अग्नि की पूजा करते हैं ।२। हे वृषन् ! हे अग्ने ! हम हवि की वर्षा करने वाले तुम फलों की वर्षा करने वाले को भले प्रकार प्रज्ज्वलित करते हैं, अत: तुम भले प्रकार प्रदीप्त होओ ।३।

सूक्त—१०३

(ऋषि—सुदीतिपुरुमीढ़ी, भर्ग । देवना—अग्नि । छन्द—बृहती)

अग्निमीडिष्वावसे गाथाभि शीरशोचिषम् ।
अग्नि राये पुरुमीढ श्रुतं नरोऽग्नि सुदीतये छर्दि: ।१
अग्न आ याह्याग्निभिर्होतारं त्वा बृणीमहे ।
आ त्वामनक्तु प्रयताहविष्मती यजिष्ठ बर्हिरासदे ।२
अच्छा हि त्वा सहस: सुनो अङ्गिर: स्रुचश्चरत्न्यध्वरे ।
ऊर्जा नपातं घृतकेशमीमहेऽग्नि यज्ञेषु पूर्व्यं ।३

हे मनुष्य ! अग्नि की गाथाओं द्वारातूअन्न प्राप्तिके लिये अग्निकी स्तुति कर । वह अग्नि धन देने के लिये प्रसिद्ध, दीप्त एवं शोभायमान हैं । तू उन्हें ही पूज ।१। हे अग्ने! हम होता तुम्हें आहूत करते हैं, तुम अपनी सभी शक्तियों के सहित आओ । प्रयता हविष्मती वर्हि तुम से सुसंगत हो ।२। हे अग्ने ! तुम अङ्गिरा गोत्रीहो । तुम जल के पुत्र रूप हो । यज्ञ के स्रुच तुम्हारे सामने घूमते हैं । तुम सदा नवीन, बलवान, अग्नि की यज्ञ में हम भी स्तुति करते हैं ।३।

सूक्त—१०४

(ऋषि—मेध्यातिथि: नृमेध: । देवता—इन्द्र: । छन्द—प्रगाथ:)

इमा उत्वापुरुवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णा: शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषव ।१
अयं सहस्रमृषिभि: सहस्कृत: समुद्र इव पप्रथे ।
सत्य: सो अस्यमहिमागृणो शवो यज्ञेषु बिप्रराज्ये ।२
आ नोविश्वासु हव्य इन्द्र: समत्सु भूषतु ।
उप ब्रह्माणि सवनानि बृत्रहा परमज्य ऋचीषम: ।३
त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत ।
तुविद्युम्नस्य युज्जा बृजीमहे पुत्रस्य शवसो मह: ।४

हे इन्द्र ! तुम अपरिमित ऐश्वर्य से युक्त हो हमारी अग्निके समान पवित्र वाणियाँ तुम्हें प्रबृद्ध करें। हे स्तोताओ ! तुम इन्द्र के लिये स्तोत्र उच्चारण करो ।१। जल द्वारा प्रबृद्ध समुद्र के समान यह अग्नि ऋषियों हवियों से सहस्रगुणा प्रवृद्ध होते हैं। मैं इन अग्नि की महिमा का यथार्थ रूप में बखान कर रहा हूँ। इन अग्नि का बल यज्ञों में दर्शनीय होता है ।२। हे इन्द्र ! हवि के योग्य हो। तुम हमको सभी यज्ञों से सुशोभित करो। वह इन्द्र वृत्र के हननकर्त्ता हैं, यह ऋचाओं के अनुकूल अपना रूप प्रकट करते हैं। वे इन्द्र हमारे सूक्तों को, हवियों को मन्त्रों को सुशोभित करें ।३। हे अग्ने ! तुम धनों के देने वाले हों, तुम प्रभुता प्रदान करते हो, तुम जल के पुत्रों को हम प्रदीप्त सहित वरण करते हैं ।४।

सूक्त—१०५

(ऋषि—नृमेध, पुरुहन्मा । देवता—इन्द्र। छन्द—बार्हत: प्रगाथ, बृहती)

त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्व असि स्पृध: ।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यत: ।१
अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतु: क्षोणी शिशुं न मातरा ।
विश्वास्ये स्पृध: श्नथयन्त मन्वे वृत्रं तूर्वति ।२

इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् ।
आशुं जेतारं रथीतममतूर्तं तुग्यृवृधम् ।३
यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगु ।
विश्वासां तरुता ज्योष्ठो यो वृत्रहो गृणे ।४
इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्ताय वज्रः प्रति धायिदर्शतो महो दिवे न सूर्यः ।५

हे इन्द्र ! तुम अशस्मिे के नाशक, कल्याणके करने वाले हिंसात्मक युद्धों में प्रतिस्पर्धा करने वाले हो । तुम स्वयं सब से त्वरा करते हो । ।१। तुम्हारे त्वरावान बल के पीछे, पुत्र से पीछे माता-पिताके पहुँचने के समान, आकाश पृथिवी जाते हैं जब तुम वृत्र का नाश करने में लगे थे, तब उसकी द्वेष अष्टियाँ तुम्हें नष्ट करने की कामना कर रही थीं ।२। यहाँ से प्रेरित होने वाली रक्षक शक्तियाँ तुम्हें अप्रहित, अजर रथितम अपूर्ष तुग्यवृध प्रहेता और द्रुतकर्मा बना रही थीं। ३ । मनुष्यों के राजा सेनाओं के उल्लंघक, वृत्रहन ज्येष्ट और रथों द्वारा मन्त्रों के सामने जाने वाले हैं उनका स्तोत्र करता हूँ ।४। हे पुरुहन्मन उन इन्द्र की सत्ता अन्तरिक्ष और स्वर्ग में है । उनका क्रीड़ा के लिये हाथ में ग्रहण किया हुआ वज्र के समान दर्शनीय है । इस यज्ञ में तुम उन इन्द्र को ही सुशोभित करो ।५।

सूक्त--१०६

(ऋषि--गोषवत्यवसूक्तिनी । देवता--इन्द्रः--उष्णिक्)

तब त्यदिन्द्रियं बृहत् तव शुष्ममुत क्रतुम् ।
वज्रं शिशाति धिषणवरेण्यम् ।१
तव द्यौरन्द्र पौस्यं पृथिवी वधंति श्रवः ।
त्यामापः पवतासश्च हिन्विरे ।२
त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः
त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ।३

तुम्हारा इन्द्रात्मक वृहद बल बुद्धिसे बरण करने योग्य हैं। वह कर्म रूपी वज्र को तीक्ष्ण करता है।१। हे इन्द्र। आकाश तुम्हारा वीर्य है, जल और पर्वत तुम्हें प्रेरित करते हैं और पृथिवी तुम्हारे द्वारा ही अन्न की वृद्धि करती है।२। हे इन्द्र ! सूर्य, वरुण, यम और विष्णु तुम्हारे प्रशंसक हैं। वायु का अनुगत बल तुम्हें हर्ष देता है।३।

सूक्त—१०७

(ऋषि-वत्सः, ब्रहिद्दवोऽथर्वा, ब्रह्मा, कुत्सः। देवता-इन्द्र सूर्य।
छन्द-गायत्री, त्रिष्टुप्, पङ्क्तिः)

समस्य मन्यवेविशोविश्वानमन्त कृष्टयः। समुद्रायेव सिन्धवः।१
ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत् समवर्तयत् इन्द्रश्चर्मेव रोदसी।२
वि चिद् वृत्रस्य दोध्रतो वज्रेण शतर्वणा। शिरो विभेद वृष्णि।३

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठ यतो यज्ञ उग्रस्त्वेषनम्णः।
सद्योजज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यदेन मदन्ति विश्व ऊमाः।४
वावृधानः भूर्योजाः शत्रूर्दासाय भियसं दधाति।
अव्यनच्च व्यनच्च रास्नि स ते प्रभृता मदेषु।५
त्वे क्रतुमपि पृञ्चन्ति भूरि द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्युमाः।
स्वादोः स्वादीयःस्वादुना सृजासमदः तु मधु मधुनामि योधिः।६
यदि चिन्नु त्वा धना जयन्तं रणरणे अनुमदन्ति विप्राः।
ओजीयः शुष्मिन्स्थिरमा मनुष्व भा दभन् दुरेवासः कशोका।
।७

त्वया वयंशाशद्महे रर्णेषु प्रपश्यन्तो युवन्यनि भूरि।
चोदयामि त सयुधा वचोभिः स ते शिशामि व्रह्मणा वयांसि।८
नि तत् दधिषेऽबरे परे च यस्मिन्नाविधा सा दुरोणे।
आ स्थापयतः मातर जिगत्नुमत इन्वत कर्मराथि भूरि।९
स्तुऽव वर्ष्मन पुरुवर्त्मानं समृभ्वाणमिनवतमाप्त्यम प्त्यानाम्।
आ दशेति शवसा भूर्योजाः प्र सक्षति प्रतिमानं पृथिव्याः।१०

समुद्र के लिये जैसे नदियाँ झुक कर चलती हैं, वैसे ही इन कर्मवान इन्द्र के लिये समस्त प्रजायें झुकती हैं ।१। आकाश-पृथिवी को इन्द्र ने चर्म के समान लपेट लिया था। इन्द्र का यह महान् पराक्रम है ।२। क्रोधित पुत्र के शिर को इन्द्र ने अपने शतपर्वा एवं शोणित वर्षक वज्र द्वारा काट डाला था ।३। यह इन्द्र बलवान् तथा घनवान हैं, भवनों में उत्कृष्ट हैं, उत्पन्न होते ही शत्रुओं का वध करते हैं, स्थावर जगम जगत ब्रह्म में लीन हो जाता है, बल द्वारा प्रवृद्ध दासों को त्रास देता है। युद्धों में वैतनिक सैनिक उन इन्द्र की ही प्रार्थना करते हैं ।५। यहवीर जन्म संस्कार और युद्ध की दीक्षा लेने के कारण त्रि-जन्मा कहाते हैं। उन वीरो को स्वादिष्ट पदार्थोंसे सम्पन्न करो। हे इन्द्र तुम वीरों में प्रविष्ट होकर संग्राम में तत्पर होओ ।६। हे वीर ! तुम प्रत्येक युद्ध में घनों को जीतते हो। यदि ब्राह्मण तुम्हारी स्तुति करे तो उन्हें बली बनाओ। सुख के अवसर पर दुःख देने वाले पुरुष उन्हें प्राप्त न हों ।७। तुम्हारे द्वारा ही रणक्षेत्र हम विपक्षियों को मरवा डालते हैं। मैं अपने पक्षी के समान देग वाले तुम्हारे सहस्रों को प्रेरित करता और पक्षी के समान वेग वाले तुम्हारे वाणों को मन्त्रों के द्वारा तीक्ष्ण करता हूँ ।८। जिस घर में अन्न द्वारा पालन हुआ है जिसे श्रेष्ठ प्राणियों ने धारण किया है, उस में माता द्वारा शक्ति स्थापित हो। फिर इस घर में सब शोभन पदार्थों को लाओ ।९। हे स्तोता ! परम तेजस्वी, विचरणशील, श्रेष्ठ स्वामी इन्द्र की स्तुति करो। वह पृथिवी रूपी इन्द्र इस यज्ञ स्थान में व्याप्त हो रहे हैं ।१०।

इमा ब्रह्म बृहद्दिवः कृणवदिन्दाय शूषमग्रियः स्वर्षाः ।
महो गोत्रस्यक्षयतिस्वराजतुरिश्चद् विश्वमर्णवत तपस्वान ।११
एवा महान् बृहद्दिवो अथर्वावोचत् स्वां तत्वमि द्रमे ।
स्वसारौ मातरिभ्वरी अरिप्रे हिन्वन्ति चैनेशवसा बर्धयन्तिः।१२
चत्रं देवाना केतुरनीक ज्योतिष्मान प्रदिश, सूर्य उद्यन् ।
दिवाकरोऽति द्युम्नैस्तमांसि विश्वातारीव दुरितानि शुक्र ।१३

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुमित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्राद द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्यस्थुषश्च ।१४

सूर्यो देवोमुषसं रोचपानाँ मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगामि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ।१५

यह राजा स्वर्गाधिपति इन्द्र के लिये स्तोत्रोंको करता हुआ स्वर्गकी कामना करता है । वह इन्द्र मेघ के जल की वृष्टि करते हुये संसार को जल से पूर्ण करते हैं ।११। महर्षि अथर्वा ने अपने को इन्द्र मानते हुये कहा—'पाप'–रहित मातरिश्वरी इसे प्रसन्न करती हुई बल-वृद्धि करती है ।१२। यह रश्मिवंत इन्द्र सब दिशाओं की ओर उठते हुये अपने प्रकाश से दिन को प्रकट करते हैं और सब अन्धकारों और पापों से पार होते हैं ।१३। रश्मियों का पूजनीय समूह मित्र वरुण और अग्निके आत्मा हैं और अपनी महिमा से आकाश पृथिवी और अन्तरिक्षको पूर्ण करते हैं ।१४। पति के पत्नी के पीछे जानेके समान सूर्य भी इन उषाओं के पीछे जाते हैं । उस समय भद्र पुरुष देवकार्य में दिन को लगाते हुये सूर्य के निमित्त श्रेष्ठ कर्मों को करते हैं ।१५।

सूक्त–१०८

(ऋषि–नृमेधः । देवता इन्द्र । छन्द–गायत्री, उष्णिक्)

त्वं न इन्द्रा भरे ओजो नृम्ण शतकतो बिचर्षणे ।
आ वीरं पृतनाषहम् ।१
त्वं हि नः पिता वसो त्व माता शतक्रतो वभूविथ ।
अधा ते सुम्नर्म महे ।२
त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे शतक्रतो ।
स नो रास्व सुवार्यम् ।३

हे सैकड़ों कर्म करने वाले इन्द्र ! हमको धन, बल और शत्रुओंको हराने वाली संतान दो ! ।२। हे इन्द्र ! तुम हमारे विना और माता

हो अतः हम तुमसे सुख माँगते हैं ।२। हे इन्द्र! तुम हविरत्न की कामना करने वाले हो । मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ । मुझे वीरों से युक्त धन प्रदान करो ।३।

सूक्त–१०९

(ऋषि--गोतमः । देवता--इन्द्रः । छन्द्र--पंक्ति)

स्वात्रोरित्था बिषूक्तो मध्व पिवयन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रण सयावरीबृष्णा मदन्तिशोमसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ।१
ता यस्य पृशनायुवः सोम श्रोणन्ति पृश्नयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्र हिन्यन्ति सायकं अस्वीरनु स्वराज्यम् ।२
ता अस्य नमसा सहः सपयन्ति प्रचेतसः ।
व्रताप्यस्य सदिवरे पुरूणि पूर्ववित्तये वस्वीरनु स्वरायम् ।३

स्तोत्र रूप वाणियाँ विषुवत यज्ञ के स्वादिष्ट मधु को इस प्रकार पीती हैं, जिससे रात्रियों तक इन्द्र से सुसङ्गत होकर वह इन्द्रको हर्षित करती रहें । हे यजमान! इसके पश्चात् तू अपने राज्यपर सुशोभित होगा ।१। पृश्नियाँ इस सोम को पक्व कर रही हैं । इन्द्र की यह गौएं इन्द्रके वाणों और वज्र की प्रेरणा करती हैं । इन रात्रियों के पश्चात् हे यजमान! तू अपने राज्य पर प्रतिष्ठित होगा ।२। वाणियाँ हवि के द्वारा इन्द्र को पूजती हैं और यजमान के महान व्रत इन्द्र में मिलते हैं । इन रात्रियों के पश्चात् हे यजमान! तू अपने राज्य पर प्रतिष्ठित होगा ।३

सूक्त–११०

(ऋषि-श्रुतवक्षः सुक्क्षो वा । देवता-इन्द्रः । छन्द-गायत्री)

इन्द्रास्य मद्रने सुतं पनि ष्टोभन्तु नो गिरः अर्कमर्चन्तु कारवः ।१
यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः । इन्द्रं सुते हवामहे ।२
त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यत्र मत्नत । तमिद वर्धन्त नो गिरः ।३

सेवा के योग्य इस यज्ञ में निष्पन्न सोम से युक्त हमारी वाणियाँ स्तुति करती हुई इन्द्र को पूजे ।१। सब विभूतिमयी सभायें जिन्हें प्राप्त होती है, उन इन्द्र को सोम के संस्कारित होने पर आहूत करते हैं ।२। इस ज्ञानदायक को त्रिकद्रकों ने प्रारम्भ किया, उसे हमारी वाणियाँ प्रवृद्ध करें ।३।

सूक्त-१११

(ऋषि—पर्वतः । देवता—इन्द्र । छन्द—उष्णिक)

यत् सोम मिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्ये ।
यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ।१
यद्वा शक्र परावति समुद्रे अधि मन्दसे ।
अस्माकमित् सुते रणा समिन्दुभिः ।२
यद्वासि सुन्वतो बृधो यजमानस्य सत्पते ।
उक्थे वा यस्य रण्यसि समिन्दुभिः ।३

हे इन्द्र ! त्रित में यज्ञ में, आप्तय और मरुतमें जो तुम हर्षित होते हो, वह जलमय सोम से ही हर्षित होते हो ।१। हे इन्द्र ! तुम दूरस्थ समुद्र अथवा हमारे यज्ञ में हर्ष को प्राप्त होते हो, वह जलमय सोम से ही हर्षित होते हो ।२। हे इन्द्र ! तुम सोम के संस्कार यजमान की वृद्धि करने वाले हो, जिसके उक्थ्य में तुम विहार करते हो, वह जलयुक्त सोम से ही करते हो ।३।

सूक्त—११२

(ऋषि—सुकक्षः । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ।१
यद्वा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे। उतो तत् सत्यमित तव।२
ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे। सर्वांस्तां इन्द्र गच्छसि ।३

हे सूर्यात्मक इन्द्र ! तुम वृत्र का नाश करने वाले हो, जिस समय उदित होते हो, वह समय तुम्हारे ही आधीन है।१। हे इन्द्र ! तुम जिसे चाहते हो कि यह मृत्यु को प्राप्त न हो तो वह सत्य ही होता है ।२। जो सोम पास या दूर कहीं भी संस्कृत होते हैं उनके पास इन्द्र स्वयं पहुँच जाते हैं ।३।

सूक्त-११३

(ऋषि--भर्गः । देवता--इन्द्रः । छन्द--प्रगाथः)

उभयं शणवच्च न इन्द्रो अर्वागिद वचः ।
सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ।१
तं हि स्वराज वृषभ तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः ।
उतोपमानां प्रथमो नि षादसि सोमकामं हि ते मनः ।२

इन्द्र दोनों लोकोंमें हितकर कार्य करने वाले हैं,वे इन्द्र हमारे वचन को मानने से सुनें कि इन्द्र देवता सोम पीने को आ रहे हैं ।१। वे इन्द्र अभीष्टों के वर्षक और अपने तेज से तेजस्वी हैं । आकाक पृथ्वी को तनू करते हैं । तुम उपमान को प्राप्त होते हो और सोम की कामना करते हो ।२।

सूक्त-११४

(ऋषिः—सोभरिः । देवता—इन्द्रः । छन्दः—गायत्री)

अभ्रातृव्यो अना स्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि ।
युधदापित्वमिच्छसे ।१
नकी रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः ।
यदा कृणोषि नदनु समूहस्यादित् पितवे हूयसे ।२

हे इन्द्र! तुम प्रकट होते ही सभक्ति करते होऔर युद्ध में 'आप्त्वि, की कामना करते हो । तुम्हारा कोई शत्रु नहीं है ।१। हे इन्द्र ! तुम्हें 'सुराशु' पुष्ट करते हैं । तुम जब गर्जनशील होते हो, तब पिताके समान आहूत किये जाते हो । तुम धन वाले मनुष्य को संख्य भाव के लिये प्राप्त करते हो ।२।

सूक्त—११५

(ऋषि—वत्सः। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री)

अहमिद्धि पितुष्परि मेघामृतस्य जयभ। अहं सूर्यइवाजनि ।१
अह प्रत्नेन मन्माना गिरः शुम्भामि कण्ववत्।
येनेन्द्र शुष्ममिद् दधे ।२
ये त्वामिन्द्र तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः।
ममेद वर्धस्व सुष्टुतः ।३

मैं सूर्य के समान उत्पन्न हुआ हूँ और पिता ब्रह्माकी बुद्धि को मैंने पा लिया है।१। मैं प्राचीन स्तोत्र द्वारा वाणियों को सुसज्जित करता हुआ इन्द्र को बली करता हूँ।२। हे इन्द्र! जिन ऋषियों ने तुम्हारी स्तुति की है या जिन्होंने स्तुति नहीं की, इससे उदासीनरहते हुए मेरी स्तुति द्वारा ही वृद्धि को प्राप्त होओ ।३।

सूक्त—११६

(ऋषि—मेध्यातिथीः। देवता—इन्द्र। छन्द—वृहती)

ना भूम निष्टयाइवेन्द्र त्वदरणाइव।
वनानि न प्रजहितान्यद्रिवी दुरोषासो अमन्महि।१
अयन्महीदनाशवोऽनुग्रासश्च वृत्रहन्।
सुकृत् सुते महता शूर राधसानु स्तोत्रं मुदीमहि।२

हे इन्द्र! हम तुम्हारा ऋण न चुका सकने के कारण दुष्ट शत्रु के समान न माने जायँ। तुम्हारे द्वारा त्याज्य वस्तुओंको हम भी दावा-नल के समान त्याज्य समझें।१। हे वृत्रहन! हम तुम्हारी वृद्धि के द्वारा सुखी हों। हम अपने को नाश से रहित मानें।२।

सूक्त—११७

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री)

पिवा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा य ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः।

सोतुर्बाहुभ्यां सुमतो नर्वा ।१

यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि ।

स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ।२

बोधा सु मे मघवन् वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।

इता ब्रह्म सधमादे जुषस्व ।३

हे इन्द्र ! जो सोम पाषाण से संस्कारित किया है, वह तुम्हें हर्षित करे । पाषाण संस्कार करने वाले के हाथ में स्थित है । हे इन्द्र ! तुम इस सोम को पीओ । हे हर्यश्ववान् इन्द्र तुम अपने जिस शोभन रुद्र से मेघ को चीरते हो, वह तुम्हें हर्षित करे ।२। हे इन्द्र ! जिस यश को वसिष्ठ पूजते हैं, उस मन्त्र समूह वाली मेरी वाणी को यश में स्वीकार करो ।३।

सूक्त-११८

(ऋषि-भर्ग, मेध्यातिथिः देवता-इन्द्रः । छन्द बार्हतः प्रगाथ)

शग्ध्यु ष शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभि ।

भग षु न हि त्वा यशस वसुविदमनु शूर चरामसि ।१

पौरो अश्वस्य पुरुकृद गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः ।

नकिर्हि दानं परिमर्धिषत् त्वे यद्यद्यामि तदा भर ।२

इन्द्रमिद देवतात इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।

इन्द्रं समीके वनिनो हवामहे इन्द्रं धनस्य सातये ।३

इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सुयमरोचयत् ।४

हे इन्द्र! मेरी याचना है कि मैं तुम्हारे सब रक्षा-साधनोंसे यश और सौभाग्य प्राप्त करने के लिये तुम्हारा अनुयायी होऊँ ।१। हे इन्द्र ! तुम नगर वासियों को अश्व रूप हो और धन अपरिमित करते हो । तुम गौओं के बढ़ने वाले, हिरण्यमय और अहिंसित दान वाले हो । मैं तुम्हारे आश्रय में जिन वस्तुओं के लिये आया हूँ, उन वस्तुओं को मुझ में प्रविष्ट करो ।२। हम इन्द्र की सेवा करने वाले संग्राम उपस्थित होने पर धन प्राप्ति के निमित्त इन्द्र को आहूत करते हैं ।३। इन्द्र ने सूर्य को

तेजोमय किया है और आकाश पृथिवी को अपनी महिमा से विस्तृत किया है। यह इन्द्र सब भुवनों में आश्रित होते हैं। यह सोम इन्द्र के लिये निष्पन्न किये जाते हैं।४।

सूक्त—११६

(ऋषि—आयु, श्रुष्टिगु:। देवता—इन्द्र:—बार्हत: प्रगाथ:)

अस्तादि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत।
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत् स्तोतुर्मेधा आक्षत।१
तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चु तं विप्रासो अकमानृधः।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्म सुवानास इन्दवः।२

हे ऋत्विजो! मैंने प्राचीन स्तोत्र से इन्द्र की स्तुति की है। अब तुम भी यश की प्राचीन ऋचाओं से स्तुति करो। स्तोताओं की बुद्धि मन्त्रों से सम्पन्न हो गई है।१। इस यजमानके लिये धन बढ़ता और बल प्राप्त होता है। इन इन्द्र के लिमे सोम सिद्ध होते हैं। शीघ्रता करने वाले ब्राह्मण पूजा मंत्र की प्रशंसा करते हैं।२।

सूक्त-१२०

(ऋषि—देवातिथि:। देवता—इन्द्र:। छन्द---बार्हत: प्रगाथ:)

यदिन्द्र प्रागपागुदङ् न्यग्वा हूयते नृभिः।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशध तुर्वशे।१
यद्वारुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा।
कण्वासस्त्वा ब्रह्मभि स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि।२

हे इन्द्र! तुम चारों दिशाओं में स्थित मनुष्यों द्वारा आहूत होते हो। तुम पूर्ण रूप से शत्रुओं के नाश करने वाले हो। तुम इस यजमान के लिये आओ।१। हे इन्द्र! कण्व गोत्री ऋषि तुम्हें हवि प्रदान करते हैं। तुम रुम, रुषम और श्यावक में एक साथ आनन्द प्रकट करते हो। तुम यहाँ आओ।२।

सूक्त—१२१

(ऋषि–देवातिथिः । देवता—इंद्रः । छन्द—वार्हतः प्रगाथः)

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धाइव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ।१
न त्वावां अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मधवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामये ।२

हे वीर इन्द्र । हम तुम्हें बिना दुही गौ के समान प्रेरित करते हैं । तुम संसार के ईश्वर और स्वर्ग के दृष्टा हो ।१। हे इन्द्र! कोई पार्थिव और दिव्य प्राणी तुम्हारे समान नहीं हैं ।१। हे इन्द्र ! हम गौ अश्व और अन्न की कामना से तुम्हें आहूत करते हैं ।२।

सूक्त—१२२

(ऋषि–शुनः शेपः । देवता–इन्द्रः । छन्द–गायत्री)

रेबतीनः सधमाद इन्द्रे सन्तुतु विवाजा । क्षयन्तो याभिममंदेम।१
आ घ त्वावान् त्मनाप्त स्तोतृभ्यो कृष्णवियानः ।
ऋणोरक्ष न चक्रयोः ।२
आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितुणाम् ।
ऋणोरक्ष नशचीभिः ।३

हम यज्ञ में इन्द्र के आगमन करने पर अन्न की विभिन्न विभूतियों से सम्पन्न होते हुये सुख पावें ।१। हे इन्द्र ! तुम्हारी दया प्राप्त करने वाला पुरुष स्तोताओं के अनुग्रह से चलने वाले रथ के दोनों पहियों के अक्ष के समान दृढ़ हो जाता है ।२। हे इन्द्र, तुम्हारा उपासक़ तुम्हारे वल को प्राप्त करता हुआ चलने वाले रथ के समान दृढ़ होता है ।३।

सूक्त—१२३

(ऋषि–कुत्सः । देवता—सूर्यः छन्द–त्रिष्टुप्)

ततु सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्त्तोर्विततं सं जभार ।

यद्दे युक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री बासस्तनुते सिमस्मै ।१
तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूप कृणुते द्यारुपस्थे ।
अन तमन्यद् रुशदस्य पाज कृष्णमन्यद्धरितः सम्भरन्ति ।२

वे सूर्य अपनी महिमा से रश्मियों को अपने में समेट लेते हैं तो फैले हुये सब कार्यों को समेट लेते हैं और तब अन्धकार को सब ओर से समेटती हुई पृथिवी वस्त्र को अर्पण करती हैं ।१। मैं मित्रावरुण की महिमा को कहता हूं । वे सूर्य रूप से स्वर्ग में अपना रूप बनाते हैं, उनका तेज प्रकाशमान है । इनका दूसरा तेज काले वर्ण का है, उसे सूर्य रश्मियां भरण करती हैं ।२।

सूक्त-१२४

(ऋषि-वामदेवः भुवनः देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्रीः त्रिष्टुप्)

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा ।
कया शचिष्ठया वृता ।१
कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः ।
दृढा चिदारुजवसु ।२
अभी षु णः सखीनामविता जरितृणाम् । शत भवास्यूतिभिः ।३
इमा नु कं भवना सीषाधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ।
यज्ञं च नस्तन्व च प्रजां चादियरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ।४
आदित्यरिन्द्र सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्ववितात नूनाम् ।
हत्वाय देवा असुरान् यदायन देवा देवत्व भभिरक्षताणाः ।५
प्रत्यञ्चमर्कमनयञ्छचीभिरादित् स्व धामिषिरा पर्यपश्यन् ।
अयावाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ।६

वे सदा बढ़ाने वाले मित्र किस रक्षा-साधक द्वारा हमारी रक्षा करेंगे। वह रक्षात्मक वृत्ति किस प्रकार पूर्ण होगी ।१। हे इन्द ! हर्षजनक हवियों में सोम रूप अन्य का कौन-सा अंश श्रेष्ठ, जिसके द्वारा प्रसन्न

होते हुए तुम धन को भक्तों में बाँट देते हो ।२। हे इन्द्र! तुम हमस्तुति करने वालों के सखा रूप हो । तुम हमारे सामने सैकड़ों बार आविर्भूत हुए हो ।३। इस यश को ऋत्विज और सब देवताओं सहित इन्द्रसम्पन्न करें, आदित्यवान इन्द्र हमारे देह और सन्तान को सशक्त करे ।४। देवत्व की रक्षा के निमित्त जिन देवता ने राक्षसों को नष्ट किया, वेइन्द्र आदित्यों और मरुतों सहित हमारे शरीरों की रक्षा करे ।५। वे देव अपने बल से सूर्य को सबके सामने उदय करते हैं । उन्होंने पृथिवी को हवियुक्त किया है । हम देवताओं के सेवक उन्हींके द्वारा अन्न प्राप्तकरें और वीरों से सुसंगत रहते हुए सो वर्ष की आयु करें ।६

सूक्त-१२५

(ऋषि—सुकीर्तिः । देवता—इन्द्रः, अश्विनौ । छंद-त्रिष्टुप, अनुष्टुप्)

अपेन्द्र प्राचो मघवन्नमित्रानपापाचो अभिभूते नुदस्व ।
अपोदीचो अप शूराधराच उरौ यथा तव शर्मन् मदेम ।१
कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद् यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न जग्मुः ।२
नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति नोत श्रवो विविदे संगमेषु ।
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ।३
युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।
विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ।४
पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः ।
यत् सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ।५
इन्द्रः सुत्रामा स्ववां अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं नः कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ।६
स सुत्रामा स्ववां इन्द्रो अस्मदाराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।७

हे इंद्र, तुम तूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों दिशाओं से हमारे शत्रुओं को रोको जिससे हम तुम्हारे द्वारा प्रदत्त सुख से सुखी हो सकें ।१। हे अग्ने, जैसे जो सम्पंन कृषक बहुत से जीवों को मिलाकर काटते हैं, वैसे ही हवि से संयुक्त हुई कुशाओं का सेवन करो।२। युद्धों में हमको अन्न नहीं मिला, फसलों के समय भी आवश्यकतानुसार अन्न प्राप्त नहीं हुआ, इसलिए मित्र इंद्र की कामना करते हुये हम अश्व, गो और अन्न याचना करते हैं ।३। हे अश्विद्वय, नमुचि राक्षस से युद्ध होते समय तुमने रमण योग्य सोम को पीकर इंद्र की रक्षा की ।४। हे अश्विद्वय माता-पिता द्वारा पुत्र का पालन करने के समान तुमने अपने शत्रुनाशक कौशल से इंद्र की रक्षा की है। हे इंद्र, तुमने सुशोभित सोम को पिया है। तुम्हें सरस्वती अपनी विभूतियों से सींचे।५। रक्षक एवं ऐश्वर्यवान इंद्र अपने रक्षा साधनों से हमको सुख दें। यह बलवान इंद्र हमारे शत्रुओं को मारकर हमारे भय को दूर करें। हम सुंदर प्रभावपूर्ण धन से सम्पंन हों ।६। रक्षक इंद्र दूर से हमारे शत्रुओं को भगावे । उन यज्ञ के योग्य इंद्र की कृपा बुद्धि में रखते हुए हम उनकी मङ्गल-मय भावना को सदा प्राप्त करते रहें ।७।

सूक्त-१२६

(ऋषि—वृषाकपिरिंद्राणी च । देवता—इंद्रः छंद-पंक्ति)

वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत ।
यत्रामदद् वृषाकपिरर्यः पुष्टेषू मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।१
परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरित व्यथिः ।
नो अह प्र विंदस्यंयत्र सोमपीतये विश्वस्मादिंद्र उत्तरः ।२
किमयं त्वां वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः ।
यस्मा इरस्यसीदु ंवर्यो वा पुष्टिमद् वसू विश्वस्मादिंद्र उत्तरः ।३
यमिम त्व वृषाकपि प्रियमिंद्राभिरक्षरसि ।
श्वा ंयस्य जम्भिषदपि कर्णं वराहयुर्पिश्वस्मादिंद्र उत्तरः ।४

प्रिया तष्ठानि मे कपिर्व्यक्ता व्यदूदुषत् ।
शिरो न्वस्य राविष न सुगं दुष्कृते भुवं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।५
न मत्स्त्री उभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत ।
न मत् प्रतिच्यवीयसीन सक्थ्युद्यमीयसी न विश्वस्मादिन्द्रउत्तर:
।६।
उवे अम्ब सूलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति ।
भसत्मे अम्बसक्थि मे शिरो मे बावहृष्यति विश्वस्मादिन्द्रउत्तर७
कि सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने ।
कि शूरपत्नि नस्त्वमभ्यमीषि बृषाकपिं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।८
अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते ।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्रः उत्तरः ।९
संहोत्र स्म पुरा नारी समनं वाद गच्छति ।
वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।१०

बृषाकपि देव ने इन्द को देवता के समान समझा। वे बृषाकपि पुष्टियों पालक हैं और मेरे मित्र हैं। इसलिए मैं इन्द सबसे उत्कृष्ट हूं ।१। हे इन्द्र ? तुम बृषाकपि द्रुत वेग वाले हो। तुम शत्रुओं को व्यथित करने में समर्थ हो। तुम जहां सोम-पतन का साधन नहीं है, वहां प्राप्त नहीं होते। इसलिये इन्द्र सबसे बढ़कर हैं ।२। हे इन्द्र इन बृषाकपि ने क्यों तुम्हें हपामृग बनाया है जो तुम इन्हें पुष्टिदायक अन्नदायक करते हों, इन्द्र सबसे उत्कृष्ट हैं ।३। हे इन्द्र, तुम जिन बृषाकपि का पालन करते हो; क्या इसके समान कुत्ता अंगड़ाई लेता है; क्या वराह की कामना वाला कान पर जंभाई लेता है ? इन्द्र सबसे उत्कृष्ट हैं ।४। कपि ने मेरे स्नेहियों को तनू किया और व्यक्ता ने दोषयुक्त किया। दुष्कृत्य में प्राकट्य सुगम नहीं होता, मैं इसके शिर को शब्दवान् करता हूं। इन्द्र सबसे उत्कृष्ट हैं '५। मेरी स्त्री न तो सुयाशुतरा है, न मुभसत्तरा हैं, और प्रतीच्यवीयसी तथा सक्थियों को उठाने वाली भी नहीं है, इन्द सबसे उत्कृष्ट हैं ।६। हे अम्ब, मेरा शिर कटि, सक्थि पक्षी के समान फड़क रहे हैं। जैसा होना वैसा हो।

इन्द्र जब से उत्कृष्ट हैं ।७। हे शूरपत्नी, तू सुन्दर भुजा, सुन्दर उङ्गली, पृथुस्तु एवं धुष्त जांघ वाली है तू क्यों हमें वृषाणि के सामने हिंसित करती हैं ? इन्द्र सर्वोत्कृष्ट हैं ।८। यह नहुष अपने देह को नष्ट करने की इच्छा करता हुआ मुझे वीर रहित समझता है। परन्तु मैं वीर पति से मुक्त हूँ। मेरे पति मरुद्गण के मित्र इन्द्र सर्व श्रेष्ठ हैं ।९। यज्ञ में पुरुष के साथ नारी स्तोत्र रूप से बैठती है। वह इस प्रकार यज्ञ की रचयित्री है, वह वीर पत्नी इन्द्राणी की स्तुति के के योग्य है क्योंकि सर्वश्रेष्ठ हैं ।१०।

इन्दाणीमासु दारिषु सुभगामहमश्रवम् ।
नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।११
नग्नहिन्द्राणि रारणा सख्ययुर्वृषाकपेऋते ।
वस्येदमप्यं हविः प्रिय देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।१२
वृषानपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे ।
धसत त इन्द्र उक्षणः प्रिया वाचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।१३
उक्षणो हिमे पंचदश साकं पचन्ति विंशतम् ।
उताहमद्मि तीव्र इदुभा कुक्षो पृणन्तिमे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।१४
वषभो न तिग्मश्रृङ्गाऽन्तर्यूथेष रोरुबत ।
भन्थस्त इन्द्र श हृदे य ते सुनोति भावयुविश्वस्मादिन्द्र उत्तरः१५
न सेशे यस्य रमन्तेऽन्तरा सक्थ्या कपत् ।
सेदीशं यस्य रोमश नियेदुषो विजृम्भते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।१६
न सेशे यस्य रोमश निषेदुषो बिजृम्भते ।
सेदीशे यस्य रमबतेऽन्तरा सक्थ्या कपृद विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः१७
अयमिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्तं दृतं विदत् ।
असि सूनां नबं चरुमादेधस्यान आचितं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः१८
अयमेमि विचाकशद् विचिन्वन् दासमार्यम् ।
पिबामि पाकसुत्वनोऽभि धोरमचाकशं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।१९

धन्व च यत् कृन्तत्र कति स्थित तावियोजना ।
नेदीयसो वृषा॰ पेऽस्तमेहि गृहाँ उप विश्वास्मादिन्द्र उत्तरः ।२०
पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयाव हैं ।
य एष स्वप्ननशनोऽस्तमेषि यथा पुनर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।२१
यदुदञ्चो वृषासपे गृहमिन्द्राजगन्तन ।
क्वस्य पुल्वघो मृगः कमग जनयोपनो विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।२२
पर्शुर्हं नाम मानवो साक ससूव विशतिम् ।
भद्रं फल त्यस्या व्रभूद यस्या उदरमामयद विश्वस्मादिन्द्रउत्तरः
।२३

मैं इन्द्राणी को अत्यन्त सोभाग्य शालिनी मानता हूं क्योंकि इनका पति मृत्यु को प्राप्त नहीं होता ओर न वृद्ध होता है, अन्य नारियों के पति तो मरणधर्मा मनुष्य हैं ।११। हे इन्द्राणि, मैं अपने सखा वृषाकपि के सिवाय ओर कहीं नहीं जाता । इनकी हवि जल से संस्कारित होती है, वे मुझे सब देवताओं में अधिक प्रिय है, मैं इन्द्र सब देवताओं से उत्कृष्ट हूं ।१२। हे वृषाकपिरूप सूर्य की पत्नी, तू सुपुत्रों से सम्पन्नओर धन से युक्त है । तेरी बल रूपी हवि को यह इन्द्र सेवन करें क्योंकि वे सबसे उत्कृष्ट है ।१३। मुझ महान के पन्द्रह साक बीस पाक करते हैं,मैं उनका सेवन करता हूं । मेरी कुक्षया पूर्ण हैं । ईन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं ।१४। हे इन्द्र! तीक्ष्ण सींग वाले बैलों के गोओं में शब्द करने के समानजिनके हृदय में तुम्हारा मन्थ सुख देता है, वही सुख पाता है, क्योंकि इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं ।१५। सक्थियों में कपृत लटकाने वाला ऐश्वर्य प्राप्त नहीं करता है । बैठने की इच्छा वाले जिसका रोमश अँगड़ाइ लेता, वह सामर्थ्यवान होता है । इन्द्र सर्वश्रेष्ठ है ।१६। जिसका रोमश विजभण करता है, वह असमर्थ होता हैओर जिसका कपृत सक्थियों में लटकाता है वह सामर्थ्य वाला होता है इन्द्र सर्वश्रेष्ठ है ।१७। हे इन्द्र, वृषाकपि ने अपने पास नष्ट हुये शत्रुधन को प्राप्त किया ओर असि, सूना,नवीन चरु को ग्रहण किया वह इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं ।१८। मैं कर्मांवत् कोदेखता

आता हूं। मैं निष्पन्न जीव को पी रहा हूं। इंद्र सर्वश्रेष्ठ हैं।१६। मरुस्थल और अंतरिक्ष का वियोजन कितना है ? वृषाकपे ! तुम पास के स्थान से घरों के पास आगमन करो।२०। हे वृषाकपे, तुम उदित होते हो, स्वप्न को नष्ट कर देते हो और अस्त को भी प्राप्त होते हो। तुम संसार में सर्वश्रेष्ठ हो। अतः पुनः उदित होओ। फिर हम विश्व के हित में सुंदर कर्मों की योजना बनावे।२१। तुम मत्तार में रहते हुये भुवनों की प्रदक्षिणा करते हुए छिपते हो, तब तुम्हारे घर मेंपहुंचने पर सब लोक अंधकार से विस्मय हुए कहते हैं कि सूर्य कहां गए ? वे प्राणियों को मोहने वाले सूर्य सर्वश्रेष्ठ हैं।२२। मानवी पशु ते बीसका उद्भव किया, जिसका उदर रोगी था, उसके लिये भद्र हुआ। इंद्रसबं महान हैं।२३।

सूक्त—१२७

इदं जना उप श्रुत नराशंस स्तविष्यते।
षष्टिं सहस्रा नवतिं च कौरम आ रुषमेषु दद्महे।१
उष्ट्रा यस्य प्रवाहरणी वधूमन्तो द्विर्दश।
वर्ष्मा रथस्य नि जिहीडते दिव ईषमाणा उपस्पृशः।२
एषा इषाय मामहे शतं निष्कान् दश स्रजः।
त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम्।३
वच्यस्व रेभ वच्यस्व वृक्षे न पक्वे शकुनः।
नष्टे जिह्वा चर्चरीति क्षुरो न भुरिजोरिव।४
प्र रेभासो मनीषा वृषा गावइवेरते।
अमोतपुत्रका एषाममोत गाइवासते।५
प्ररेभ धी भरस्व गोविदं वसुविदम्।
देवत्रेमां वाच क्षोणाहोपर्नावीरस्तारम्।६
राज्ञो विश्वाजनीस्य यो देवोऽमर्त्यां अति।
वैश्वानरस्य सुष्टुतिमा सुनोत परिक्षितः।७
परिछन्नः क्षेममकरोत् तम असनमाचरन्।

कुलायन् कृण्वन् कौरव्यः पतिवदति जायया ।८
कतरत् त आ हराणि दधि मन्थां परि श्रुतम् ।
जाया पति वि पृच्छति राष्ट्रे रात्र परिक्षितः ।९
अभीवस्वः प्रजिहीते यवः पक्वः परो विलम् ।
जनः स भद्रमेधते राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ।१०
इन्द्र कारुमबवुधदुतिष्ठ वि चरा जनम् ।
ममेदुयस्य चक्र धि सर्व इतृ पृणादरिः ।११
इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरवाः ।
इहों सहस्रदक्षिणोऽपि पूषा नि षीदति ।१२
नेमा इन्द्र गावो रिषन् मो आसां गोपतो रिषत् ।
मासाममित्रयुर्जन इन्द्र मा स्तुन ईशत ।१३
उप नो न रमसि सूक्तेन वचसा वयं भद्रण वचसा वयम् ।
वनादधिध्वनो गिरो न दिष्येम कदा चन ।१४

हे नराशंज, कौरम, स्तोताओं के विषय में सुनो कि हम साठ सहस्र रुशम प्रदान करते हैं ।१। जिसके देह-रथ के रथ बीच ऊंट बहन करने वाले हैं, वह आकाश को छूते हुए हीडन करते हैं ।२। अंन प्राप्ति के निमित्त मैं सो निष्क तीन सो अश्व, दस सहस्र धेनु और दश माल येदेता हूं ।३। हे स्तुति करने वाली, जैसे पक्व फल युक्त वृक्ष पर बैठा पक्षी मधुर शब्द करता है, वैसे ही तुम भी करो । हाथ में ग्रहण किए छुरे के समान, कर्म के समाप्त होने पर भी तुम्हारी जीभ न रुके ।४। यह मनीपी स्तोता वीर्यवान वृषभों के समान वर्तमान हैं। इनके गृह में पुत्र, गो आदि हैं ।५। हे स्तोता, वाण से जैसे मनुष्य रक्षित रहता है वैसे ही वाणी से तू रक्षित हो । गो और धन प्राप्त कराने वाली बुद्धि को ग्रहण कर ।६। यदि यहदेवता पाजा के मनुष्यों का अतिक्रमण करे तोवैश्वानर की मंगलमयी स्तुति करनी चाहिए ।७। देवता मंगल करने वाला है, आसन को विस्तृत करता है । ऐसे पढ़ाता हुआ कौरव्य पति अपनी पत्नी से कहता है ।८। परिक्षित के राज्य में पत्नी अपने पति से

पूछती हैं कि परिश्रुत दही मंथा में तेरे निमित्त कितना लाऊं ।६। उदर रूप बिल को पक्व जो प्राप्त होता है। राजा परीक्षित के राज्य में इस प्रकार मनुष्य सुखी है ।१०। स्तुति करने वालों के प्रति इन्द्र बोले-उठ खड़ा हो। मनुष्यों से धूम। तू मेरे अनुग्रह से कर्म करने वाला हो। तेरा शत्रु तेरे पास अपनी सर्वस्व छोड़ दे ।११। यहां मनुष्य और अश्व उत्पन्न हों, गौयें प्रसव करें। सहस्र संख्यक दक्षिणाओं के दाता पूषा यहां विराजमान हों ।१२। हे इन्द्र, गौयें नष्ट न हों, इनका पालक हिंसित न हो। शत्रु और चोरका भी इन पर प्रभाव न हो ।१३ हे इन्द्र, तुम हमको सूक्त द्वारा हर्षित करते हो। हम तुम मंगलमयी वाणी से प्रसन्न करते हैं। तुम हमारी वाणियों को अन्तरिक्ष से सुनो। हम कभी नाश को प्राप्त न हों ।१४।

सूक्त–१२८

यः सभेयो विदथ्यः सुत्वा यज्वाथ पुरुषः ।
सूर्यं चामू रिशादसस्तद्‌ देवः प्रागकल्पयन् ।१
यो जाम्या अप्रथयस्तद् यत् सखायं दुधूर्षति ।
ज्येष्ठो यदप्रचेतास्तदाहुरधरागिति ।२
यद भद्रस्य पुरुषस्य पुत्रो भवति दाधृषिः ।
तद् प्रा अववीदु तद् गन्धर्वः कारय उचः ।३
यश्च पणि रघजिष्ठ्यो यश्च देवां अदाशुरिः ।
धाराणां शश्वतामहं तदपागितिशुश्रुम ।४
ये च देवा अयजन्ताथो ये च परादर्दिः ।
सूर्यो दिविमिव गत्वाय भघवा नो वि रप्शते ।५
यो साक्ताक्षो अनभ्यक्तो अनणिवो अहिरण्यवः ।
अब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु स मिता ।
य आक्ताक्षः सुभ्यक्तः सुमणिः सुमणिः सुहिरण्यवः ।

सुब्रह्मा ब्रह्मण: पुत्रस्तोता कल्पषु समिता ।७
अप्रपाणा च वेशन्ता रेवां अप्रतिदिश्यय: ।
अयभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु समिता ।८
सुप्रपाण च वेशन्तारेवान्त्सुप्रतिदिश्यय: ।
सूयन्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु समिता ।६
परिवृक्ता च महिषा स्वस्त्या च युधिगम: ।
अमाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु समिता ।१०

अभिषवकर्त्ता, यज्ञकर्त्ता, सम्य पुरुष सूर्य लोक को भेद कर ऊर्ध्व लोकों में जाता । देवताओं ने यह बात पहिले कल्पित करली थी ।१। मित्र का दुर्घषक, जामि से विस्तारक,अप्रचेता, ज्येष्ठ अघराक् कहता है ।२। जिस ब्राह्मण का घर्षणशील पुत्र होता है, वह ब्राह्मण अभीष्टवचन को कहने में समर्थ है, वह गन्धर्व कहाता हैं ।३। जो वणिक देवताओंको हविर्दान करने वाला नहीं होता, वह शाश्वत वीरों का अबक् होता है—ऐसा सुनते हैं ।४। जो स्तोत्रा यज्ञ एवं परदान आदि करने वाले हैं, वे सूर्य के समान ही स्वर्ग में गमन करते हैं । इन्द्र श्रेष्ठ हैं ।५। तो अनभक्त, अनाक्ताक्ष अमणिव, अहिरण्य तथा अब्रह्माण है; वह ब्रह्मपुत्र स्तोता कल्पों में सम्मित है ।६। जो आक्ताक्ष, सुभ्यक्त, सुहिरण्यव, सुमणि, सुब्रह्मा हैं, वह ब्रह्मपुत्र तोता कल्पों सम्मित है ।७। अप्राणा; वेशान्तर, रेवा, अप्रतिदिशय, अयम्भा, कन्या, कल्याण, तोता कल्पों में सम्मित है ।८। सुप्राणा वेशन्ता,रेवा,सुप्रतिदिम्य सुयम्वा, कन्याकल्याणी तोता कल्पों में सम्मित है ।६। परिबृक्ता, महिषी स्वस्या, युधिगम अनुसार और आयामी तोता कल्पों में सम्मित हैं ।१०।

वावाता च महिषी स्वस्त्या युधिगम: ।
श्वाशुरज्चायामी तोता कल्पेषु समिता ।११
यदिन्द्रादो दाशराज्ञे मानुषं वि गाहथा: ।
विरूप: सर्वस्मा आसीत् सह यज्ञाय कल्पते ।१२

त्व वृषाक्षु मघवन्नभ्रं मर्याकरो रविः।
त्व रौहिणं व्या स्यो वि वृत्रस्याभिनच्छिरः।१३
यः पर्वतान व्यदधाद यो अपो व्यगाहथाः।
इन्द्रो यो वृत्रहान्महं तस्मादिन्द्र नमोऽस्तुते।१४
पृष्ठं धावन्तं हर्योरौच्चैः श्रवसमब्रूवन्।
स्वस्त्यश्व जैत्रायेन्द्रमा वह सुस्रजश्र।१५
ये त्वा श्वेता अजैश्रवसो हार्यो युज्जन्ति दक्षिणम्।
पूर्वा नमस्य देवानां विभ्रदिन्द्र महीयत।१६।

वावाता, महिषी स्वस्त्या; युधिगम, श्वासुर और आयामी तोता कल्पों में सम्मित हैं।११। हे इन्द्र ! तुमने दाशराज के पुरुषों को विगाहित किया था और तुम सबके लिये रूप रहित हुये थे। तुम यक्ष के साथ कल्पित होते हो।१२। हे वर्षक इन्द्र ! तुम सूर्य रूप में अक्षु को झुकाते हो और रोहिण को विस्तृत मुख वाला करते हो। तुमने ही वृत्र का शिर छेदन किया था।१३। जिन्होंने पर्वतों को स्थिर किया और जल का मवगांह किया, जो वृत्रहन हैं, उन इन्द्र को नमस्कार है।१४। हयश्वों की पीठ पर द्रुगति को प्राप्त हुये इन्द्र के सम्बन्ध में उच्चैश्रवा से कहा—हे अश्व ! तेरा कल्याण हो। तू माला के सुशोभित विजयी इन्द्र को चढ़ता है।१५। हे इन्द्र ! श्वेत तुम्हारे दक्षिण की ओर जुड़ते हैं, उन 'पूर्वाओं पर चढ़ने वाले तुम देवताओं द्वारा नमस्कारों के योग्य तथा महिमा सम्पन्न हो।१६।

सूक्त-१२६

एता अश्वा आ प्लवन्ते।१। प्रतीपं प्राति सुत्वनम्।२
तासामेका हरिविनाका।३। हरिक्नने किमिच्चसि।४
साधु पुत्र हिरण्यम्।५। क्वाहतं परास्यः।६।
अत्रामूस्तिस्र शिंशपाः।७। परि त्रयः।८
पृदाकवः।९। शृङ्गं धमन्त आसते।१०

अयन्महा ते अर्वाहः ।११ स इच्छकं सघाघते ।१२
सघाघते गोमीद्या गोगतोरति ।१३ पुमां कुस्त निमिपछसि ।१४
पल्प बद्ध वयो इति ।१५ बद्ध वो अघा इति ।१६
अजागार केविका ।१७ अश्वस्य वारो गोशयद्य के।१८
श्येनोपतीं सा ।१९ अनामयोपजिह्विका ।२०

यह अश्वा आती है ।१। सृत्वा प्रतीप को सम्पन्न करता है ।२। उनमें से एक हरिक्निका हैं ।३। हैं हरिक्निके, तेरी क्या इच्छा है !।४। साधु पुत्र को हिरण्य ।५। परास्व अहिंसित रूप से कहाँ है ।३। जिस स्थान पर यहाँ तीन शिशपा है ।७। सब ओर तीन हैं ।८। सर्प ।९। सींगों को धमस्त करते बैठे हैं ।१०। यह दिन तुम्हारा महान् अश्व है । ।११। वह कामना वाले का सघाघत करने वाला है ।१२। गोमीद्या योगतिय के लिए सघाघ करता है ।१३। पुरुष और पृथिवी तुझे निमिच्छ करते हैं ।१४। हे बद्ध पल्प, यह तेरा अन्न है ।१५। हे बद्ध, तेरी अघा है ।१६। केबिका जागृत न हुई ।१७। गोशपछक में अश्व व बार हैं ।१८। वह श्येनीपति है ।१९। वह उपजीविका अनामय है ।२०।

सूक्त—१३०

को अयं बहुलिमा इषूनि ।१ कोअसिद्याः पयः ।२
को अर्जुन्याः पयः ।३ कः काष्ण्यां पयः ।४
एतं पृच्छ कुह पृच्छ ।५ कुहाक पक्वक पृच्छ ।६
यवानो यतिस्तभिः कुभिः ।७ अकुऽयन्तः कुषायकुः ।८
आमणको मणत्धकः ।९ देव त्वप्रतिसूर्य ।१०
एतश्विपङ्क्तिका हविः ।११ द्रदुद्र दो मघाप्रति ।१२
श्रृङ्ग उत्पन्न ।१३ मा त्वाभि सखानो विदन् ।१४
वशायाः पुत्रमा यन्ति ।१५ इरावेदुमयं दत्त ।१६
अथो इयान्नियन्निति ।१७ अथो इयन्निति ।१८

अथ श्वा अस्थिरो भवत् ।१९ उये यकांशलोकका ।२०

बहुत से बाणों को अपने अधिकार में कौन रखता है ? ।१। असिक्षापय कौन सा है ? ।२। अर्जुन्तापय कौन सा है ? ।३। कार्ण्णेय पय कौन सा है ?।४। इससे पूछ; कुह से पूछ ।५। कुहाक पक्वक से पूछ ।६। यति के समान पृथिवियों के युक्त हुआ ।७। कुपायकुक्रोधित हो गया ।८। आमणक मणत्सक ।९।हे सूर्यदेव! ।१०। एनश्व पंक्ति वाला हवि ।११। प्रदद्रूदो मघापति ।१२। श्रृङ्ग उत्पन्न ।१३। मेरा मित्र तुझे और मुझे मिले ।१४। बशा के पुत्र को मिलते हैं ।१५। हे इरातेदुमय दत, ।१६। इनके पश्चात् यह ऐसे हैं ।१७। फिर यह इस प्रकार है ।१८। फिरश्वा अस्थिर होता है ।१९। उग्र यकांशलोकका ।२०।

सूक्त-१३१

आमिनोनिति भद्यते ।१
तस्य अनु निभ्जनम् ।२
वरुणो याति बस्वभिः ।३
शतं वा भारती शवः ।४
शतमाश्वा हिरण्ययाः
शतं रथ्या हिरण्ययाः ।
शतं कुथा हिरण्ययाः
शतं निष्का हिरण्ययाः ।५
अहल कुश वर्त्तक ।६
शफेनइव ओहते ।७
आय बनेनता जनी ।८
वनिष्ठा नाव गृह्यन्ति ।९
इदं मह्यं मद्रिति ।१०
ते वृक्षाः सहः तिष्ठति ।११
पाकः गलिः ।१२
शक वलिः ।१३
अश्वत्थ खदिरो धवः ।१४
अरदुपरम ।१५
शयो हतइव ।१६
व्याप पुरुषः ।१७
अदूहमित्यां पूषकम् ।१८
अत्यघर्चं परस्वत। १९
दौव हस्तिनो दृती ।२०

आमि नोनिति कहते हैं ।१। उसके पश्चात् निर्मजन हैं ।२। रात्रि के साथ वरुण जाते हैं ।३। वाणी के शत संख्यक बल ।४। सौ स्वर्णिम अश्व सौ स्वर्णमय रथ; सौ स्वर्णिाम कुथ्या सौ स्वर्णिम निष्क हैं ।५। अहलकुश वर्त्तक ।६। शफ द्वारा वहन करता हैं ।७। आय वनेनती जनी ।८। वनिष्ठा नाव ग्रहण की जाती हैं ।९। यह मुझे मुदितकरता है ।१० वह वृक्षों में स्थित होता है ।११ पक्व बलि ।१२ शक गति ।१३ पीपल, खदिर घी ।१४ विराम को पा ।१५। शयन कर्त्ता मृत्तक के समान ।१६। पुरुष व्याप्त हैं ।१७। मैं पूषा को दोहन करता हूँ ।१८ परस्वान मृग को लांघ कर अर्धचं प्रवृत्त हो ।१९। हाथी की वृत्तियों को दुह ।२०

सूक्त–१३२

आदलाबुकमेकम् ।१।　　　　अलाबुकं निखातकम् ।२
कर्करिको निखातकः ३　　　　तद् वात उन्मथायति ।४
कुलायं कृणवादिति ।५　　　　उय वनिषदातम् ।६
न वनिषदनाततम् ।७　　　　क एषां कर्करो लिखित ।८
क एयां दुन्दुभि हनत् ।९　　　　यदीय हनत कथं हनन् ।१०
वेबी हनत् कुहनत् ।११　　　　पर्हागाप पुनः पुनः ।१२
त्रीण्युष्ट्रस्य नामानि ।१३　　　　हिरण्य ईत्यके अब्रवात् ।१४
द्वौ वा यशिशवः ।१५　　　　नोलशिखण्डवाहनः ।१६

फिर एक राम तुरई ।१। रानुतुराइ खोदने वाला ।२। कर्करी को खोदने वाला ।३। वायु को उखाड़ता है ।४ कुलाय करता है ।५। विस्तृत उग्र की सेवा करता है ।६। अविस्तार वाले की सेवा नहीं करता ।७। कर्करी को इनमें से कौन लिखता हैं?।८।दुन्दुभिको इनमें से कौन मारता है ?।९। यह हिंसित करती है तो कैसे हिंसित करती है ।१०। देवी ने हिंसित किया बुरी तरह हिंसित किया ।११। निवास स्थान के

सब ओर पुनः पुनः ।१२। ऊँट के तीन नाम है ।१३। एक हिरन ने यह तहा ।१४। दो बालक हैं ।१५। नीलशिखं डो वाहन है ।१६।

सूक्त-१३३

वितती किपणौ द्वौ तावा पिनष्टि पूरुपः ।
न वै कुमारि तत् यथा कुमारि तत् यथा कुमारि मन्यसे ।१
मातुष्टे किरणौ द्वौ निवृत्तः पुरुषानृते ।
न वै कुमारि तत तथा कुमारि मन्यसे ।२
निगृह्य कर्णकौ द्वौ निरायच्छसि मध्यसे ।३
उमागायै शयानायै तिष्ठन्तो वाव मूहसि ।
न वै कुमारि मन्यसे ।४
श्लणायां श्लक्ष्णिकायां श्लक्ष्णमेवाव गूहसि ।
न वै कुमारि तत तथा कुमारि मन्यसे ।५
अवश्लणभिव भ्रं शहन्तलोंममति हृदे ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ।६

हे कुमारिके ! तू उसे जैसा समझती है वह वैसा नहीं है दोकिरण विस्तृत हैं, पुरुष उनका पिशन करता है ।१। हे पुरुष ! तू जिस असत्य से छूटा है, तेरी माता की दो किरणें हैं । कुमारिके ! तू जैसा समझती है, वह वैसा नहीं है ।२। हे मध्यमे ! तू दोनों को पकड़ कर देती नहीं। हे कुमारिके ! तू उसे जैसा समझती है, वह वैसा नहीं है।३। शयन के निमित्त तू जाती है । हे कुमारिके ! तू उसे जैसा समझतीहै वह वैसा नहीं है ।४। तू श्लक्ष्णिका, श्लक्षण में श्लक्षण अवगूहन करती है । हे कुमारिके ! तू उसे जैसा समझती है, वह वैसा नहीं है ।५।

अवश्लक्षण के समान टूटे हुए दांत और लोम युक्त सरोबर में है। हे कुमारिके, तू उसे जैसा समझती है, वह वैसा नहीं है।६।

सूक्त-१३४

इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्—अरायागुदभत्संथ ।१
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्—वत्साः पुरुषन्त आसते ।२
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्—स्थालीपाको वि लीयते ।३
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्—स वै पृथु लीयते ।४
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्—अष्टे लाहणि लीशाथी ।५
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्—अक्ष्लिली पुच्छिलीयते ।६

यहाँ चारों दिशाओं के अराल से उत्भर्सन करो।१। पुरुष बनने की कामना से वत्स बैठे हैं।२। स्थालीपाक विलनी हो जाता है।३। वह अत्यन्त लीन होता है।४। लाहन् में लिशावी उपजीवन करती है।५। पूर्व, पश्चिम, उत्तर में इस प्रकार अक्ष्लिली पूंछ वाली होती हैं।६।

सूक्त-१३५

मुगित्यभिगतः शलीत्यपक्रान्तः फलित्यभिष्ठितः ।
दुन्दुभिमाहननाभ्यां जरितरोऽथामो दैव ।१
कोशविले रजनि ग्रन्थेर्धानमुपानहि पादप ।
उत्तमां जनिमां जन्यानुत्तमां जनीन् वर्त्मन्यात् ।२
अलाबूनि पृषातकान्यश्वत्थपलाशम् ।
पिपीलिकावटश्वसो विद्युत्स्वापर्णशफो गोशफो जरितरोऽथामो देव ।३।
वी मे देवा अक्रसताध्वर्यो क्षिप्रं प्रचार ।
सुसत्यमिद् गवामस्यसि प्रगुदसि ।४
हत्नी दृश्यते पत्नी यक्ष्यमाणा जरुतरोऽथामो दैव

होता विष्टीमन जरितरोऽथामो देव ।
आदित्या हरितरति रोभ्यो दक्षिणमनयन् ।
तां ह जरित: प्रत्यायंस्तामु ह जरित प्रत्यायन् ॥६
तां ह जरितर्नं प्रत्यगृभ्णस्तामु ह जरित्त नः प्रत्यगृभ्यणः ।
अहानेतरसं न वि चेतानानि यज्ञानेतरसं त पुरोगवामः ॥७
उत श्वेत आशुपत्वा उत्तो पद्याभिर्यविष्ठः । उतेमाशु मानं पिपर्ति ॥८
आदित्य रुप्रा वसबस्त्वेनु त इदं रांधः प्रति गृभ्णीह्यङ्गिरः ।
इदं राधो विभु प्रभु इदं राधो बहत् पृथु ॥६
देवा ददत्वासुर तद् वो अस्तु सुचेतनम् ।
युष्माँ अस्तु दिवेदिवे प्रत्येब गृभायम् ।१०
त्वमिन्द्र शर्मरिणा हव्यं पारावतेभ्यः ।
विप्राय स्तुवते वसुवनि दुपश्रवसे वह ।११
त्वभिन्द्र कपोताय च्छिन्नपक्षाय वञ्चते ।
श्यामाकं पक्वं पीलु च वारस्मा अकृणोर्बहुः ।१२
अरंगरो वावदीति त्रेधा वद्धो वरत्रया ।
इरामह प्रसंसत्यनिरामप सेधति ॥१३

"भुक्' "अभिगत", "शल्", "अप्रक्रांत; "फल" अभीश्ठित है । हे स्तुति करने वालो ! फिर तुम दुन्दुभि को बजाने वाले दो दण्डों से खेलो ।१। पांव को जूते में, धान को कोठी में और उत्तमा जनिमा जन्य तथा उत्तमा जनियों को मार्ग में रखे ।२। हे स्तोता ! पृषातक, लौकी, पीपल, ढाक, वट, अवटश्वस स्वापर्णशफ, विद्युत और गोशफं के पश्चात् बल से क्रीड़ा कर ।३। हे अध्वर्यो! इन दमकते हुए देवताओं के सामने शीघ्र ही मंत्रोच्चार करो तुम गौओं के लिए सत्य रूप हो ।४। पत्नी पूजन करती हुई दिखाई देती है । इसके पश्चात तुम भयों पर विजय प्राप्त करने की कामना करो ।५। हे स्तोता ! अङ्गिराओं से दक्षिणा लाये थे, उसे वह लाये थे । वह उसे लाये थे ।६। हे स्तोता !

उसको उन्होंने ग्रहण किया। उसे तुमने ग्रहण किया। चतनों को; अहानेतरस को और यज्ञानेतरस को नहीं विशिष्ठ चेतनों को हम पाते हैं।७। तुम श्वेत और आशुपत्वा पद वाली ऋचाओं से युवावस्थाप्राप्त करते हो। उन्हें मान शीघ्र पूर्ण करता है।८। हे आंगिरस ! आदित्य वसु, रुद्र, सब तुझ पर अनुग्रह करते हैं; तू इस धन को ले। यह धन विशाला, बृहत् विभु और प्रभूता से भी सम्पन्न है।६। देवता तुझे प्राण, बल, चैतन्यता देते हुए प्रत्येक अवसर पर प्राप्त होते रहें।१०। हे इन्द्र तुम इहलोक, परलोक दोनोंसे पार करने वालों के लिए शर्मरी से हवि वहन करो। जिसे अन्न प्राप्त होना कठिन है, उस स्तोता ब्राह्मण को बल प्रदान करो।११। हे इन्द्र ! परकटे कबूतर के लिए तुम पके हुए पीलु, अखरोट और बहुत सा जल प्रकट करो।१२। चर्मरसरी से बँध हुआ अरंगर बारम्बार शब्द करता हुआ पृथिवी की स्तुति करता है तथा पृथिवी विहीन स्थान का अपसेध करता है।१३।

सूक्त—१३६

यदस्या अंहुभेद्याः कृधु स्थूलमुलपातसत् ।
मुष्कावदस्य एजतो गोशफे शकुलाविव ॥१
यदा स्थूलेन पससाणौ मुष्का उपावधीत् ।
विष्वञ्चा वस्या वर्धतः सिकतास्वेव गर्दभौ ॥२
यदल्पिकास्वल्पिका कर्कन्धूकेव पद्यते ।
वासन्तिकमिव तेजनं यन्त्यवाताय वित्पति ।३
यद् देवासो ललामगुं प्रविष्टीमिनमाविषुः ।
सकुला देदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा ॥४
महानग्न्य तृप्नद्वि मोक्रदस्थानासरन् ।
शक्तिकानना स्वचशकं सक्तु पद्यम ॥५
महानग्न्यु लूखलमतिक्रामन्त्यब्रवीत ।
यथा तव वनस्पते निरघ्नन्ति तथैवेति ।

महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोऽथाप्य भूभुवः ।
यथैव ते वनस्पते पिप्पति तथैवेति ॥७

महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोऽथाप्यभूभुवः ।
यथा वयो विदाह्य स्वर्गे नमबदह्यते ॥८

महाग्न्युप ब्रूते स्वसावेशित पसः ।
इत्थं फलस्य वृक्षस्य शूर्पे शूपं भजेमहि ॥९

महानग्नी कृकवाकं शम्यया परि धावति ।
अयं न विद्म यो मृगः शीर्ष्णा हरति धाणिकाम् ॥१०

इस पाप का क्षय करने वाली का कृधु क्षीण हो गया । इसके मुष्क शकुल के समान गोशफ में प्रकम्पित होते हैं ।१। जब स्थूल पस द्वारा मुश्कों का अणु में प्रहार किया गया, तब रेत में गधों के बढ़ने केसमान आच्छादिका में मुश्क प्रवृद्ध होते हैं ।२। जो 'कर्कंधूका" सदृश अवषदन करने वाली है और जो अल्प से भी अल्प है । वासन्तिक तेज के समान आवात के निमित्त वित्पत में गमन करते हैं।३। जल सुन्दर गौ मेंप्रविष्ट देवता हर्षित होते हैं तब अक्षिभू के समान नारी जलायी जाती है ।४। महान अग्नि ऊपर खड़ें हुओं को उत्क्रमण न करता हुआ, तृप्ति को प्राप्त होता है । हम दमकते हुओं को शक्ति कानन प्राप्त हो।५। महान् अग्नि उलूखल को लांघती हुई कहने लगी–हे वनपस्ते ! वैसे तुझे क्रूटते है, वैसे ही हो ।६। महान् अग्नि ने कहा–तू मिटकर भी बारम्बार उत्पन्न होता है । हे वनस्पते ! जिस भाँति तू पूर्ण होता हैं, वैसे ही हो ।७। महान् अग्नि ने कहा—तू नष्ट होकर भी उत्पन्न हो जाता है । जीर्ण अवस्था होकर स्वर्ग में हवि के समान दुही जाती है ।८। महान् अग्नि का कथन है कि यह पस भले प्रकार उत्तेजित कर दिया गया है। हम फल वाले वृक्ष के सूप में सूप को प्रविष्ट करते हैं ।९। कृक शब्द वाले पर महान अग्नि दौड़ते है और हमें यह ज्ञात है कि वह मृग समान शिर के द्वारा धाणिका को हरते हैं ।१०।

महानग्नी महानग्नं धावन्त मनु धावति ।
इमास्तदस्य गा रक्ष यभ मामद्ध्योदनम् ।११
सुदेवस्त्वा महा नग्नीर्बवाधतु महतः साधु खोदनम् ।
कुसं पीबरो नवत् ।।१२
वशा दग्धामिमाङ्गुरिं प्रसृजतोऽग्रतं परे ।
महान् वै भद्रो यभमामद्धयौदनम् ।।१३
विदेवस्त्वा महानग्नीर्विबाधते महथः साधुं खोदनम् ।
कुमारिका पिङ्गलिकार्द भस्मा कु धावति ।।१४
सहान् वै भद्रो विल्वो महान् भद्र उदुम्बर ।
महां अभिक्त बाधते महतः साधु खोदनम् ।।१५
यः कुमारी पिङ्गलिका वसन्तं पीवरी लभेत् ।
तैलकुण्डामिमाङ्गुष्ठ रोदन्तं शुदमुद्धरेत् ।।१६

महान् अग्नि महानग्न के पीछे दौड़ते हैं । इनकी इन्द्रियों कारक्षक हो । इस ओदन को खा।११। महान् अग्नि उत्पीड़न करने वाला, बड़े-बड़ों को कुरेदता है । यह स्थूल या कृश सभी को नष्ट कर देता है।१२। वशा ने दग्ध उंगली की रचना की । अन्य इग्रत को रचते हैं । यह अत्यन्त कल्याणमय है । इसे ओदन को खा ।१३। यह महान् अग्नि विशिष्ट पीड़ा दायक है,बड़ों को खोद डालता है । पिंगली कुमारीकायें के पश्चात् भाग जाती है ।१४। विदब और उदुम्बर दोनों ही महान् एव भद्र है । जो महान ओर से पीड़ित करता है वह बड़े बड़ों को कुरेदता है ।१५। कुमारी पिंगला यदि बसन्त को प्राप्त करे तो तैल कुण्ड में से अगुष्ठा के समान कुरेदती हुई इसका उद्धार करे ।१६।

सूत-१३७

(ऋषि—शिरिम्बिठिः, बुध, वामदेव, ययाति, तिरश्ची द्युतानी वा, सुकक्षः । देवता-अलक्ष्मीनाशनम्, विश्वदेवा, ऋत्विक्स्तुतिर्वा, सोमः पवमान, इन्द्र, मरुत, इन्द्रो, बृहस्पतिश्च । छन्द—अनुष्टुप्, जगती त्रिष्टुप्, गायत्री)

यद्ध प्राचीरजन्तोरो मण्डूरधाणिकीः ।
हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे दद्बुदयाशवः ॥१
कपृन्नरः कपृथमुद् दधातन चोदयत खुदत वाजसातये ।
निष्टिग्र्यः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सबाध इह सोमपीतये ॥२
दधिक्राव्णा अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत् प्रण आयूंषि तारिषत् ॥३
सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥४
इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् ।
वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा ॥५
सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः ।
सोम पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥६
अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।
आवत् तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥७
द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः ।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ ॥८
अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेऽधारयत् तन्वं तित्विषाणः ।
विशो अदेवीरभ्याचरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे ॥९
त्वं ह त्यत् सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र ।
गूढे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः ॥१०
त्वं ह त्यदप्रतिमानमोजो वज्रेण वज्रिन् धृषितो जघन्थ ।
त्वं शुष्णस्यावातिरो वधत्रैस्त्वं गा इन्द्र शच्येदविन्दः ॥११
तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।
स वृषा वृषभो भुवत् ॥१२
इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः ।
द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥१३

गिरा वज्रो न स भृत: सबलो अनपच्युत ।
ववक्ष: ऋष्वा अस्तृत: ।।१४

जब प्राची मण्डूरधाणिकी हृदय प्रदेश को प्राप्त हुई, तब इन्द्र के सब शत्रु नष्ट हो गए ।१। तुम कपृथ को गृहण करो, मनुष्य कपृथ् है । तुम अन्न प्राप्तिके लिये प्रेरणा करो । रक्षाके लिए पुत्रोत्पत्ति करोओर सोम पीने के लिए इन्द्र को बुलाओ ।२। इन्द्र के आरोहण के निमित्त में वेगवान अश्व का पूजन कर चुका हूँ । वे इन्द्र हमें सुरभिवान करें और हमको श्रेष्ठ बनाते हुए हमारे जीवन को भी उत्कृष्ठ करें ।३ हर्ष प्रद सोम इन्द्र के लिए संस्कारित हो चुके । छने से सोम रस टपक रहा है । हे सोमो ! तुम्हारी शक्ति देवताओं को हर्षित करे ।४। इन्द्र के लिए सोम का शोधन किया जाता है । संसार के स्वामी वाचस्पति अपने खोज से प्रशंशित होते हैं ।५। सहस्रों धारा वाला गमनशीलसोम संस्कारित किया जा रहा है । यह धनेश्वर सोम प्रत्येक स्तोत्र में इन्द्र का सखा होता है ।६। दशासहस्र रश्मियों से आकृष्ट करने वाले सूर्य पृथिवी पर आकर अपने खोज से खड़े हुए और अपनी शक्ति सेपृथिवी को हिंसित करने लगे । तब इन्द्र ने अपने बल से उन्हें वहाँ से हटाकर पृथिवी की रक्षा की ओर अपने बल से ही जलवती शक्तियों कोउन्होंने स्थापित किया ।७। विषम विचरणशील शुक्र को अंशुमती के पासघूमते देखा है । सूर्य के समान वह भी आकाशमें निवास करते हैं । मैं उनका आश्रित होता हूँ । वह फल की वर्षा करने वाले युद्ध में तुम्हारासाथ दें ।८. फिर अपने शरीर को शक्र ने सूक्ष्म करके अशुमती ने क्रोड में प्रतिष्ठित किया, बृहस्पति की सहायतासेइन्द्रने देवसत्ता न माननेवाली प्रजाओं को मार दिया ।९। हे इन्द्र ! तुमने आकाश-पृथिवी का स्पर्श किया और उन्हें प्राप्त कर लिया । तुम सप्त अशत्रुओंसे उत्पन्न होकर उनके शत्रु हो जाते हो । तुमने विभुत्व वाले भुवनों से युद्ध किया ।१० हे वज्रिन ! तुमने बलासुर को वज्र से मारा । तुमने उसे अपने हिंसात्मक साधनों से दूर कर दिया और गौएँ प्राप्त कर लीं ।११। निवास

कप्य वृत्र का नाश करने के कारण हम इन्द्र की प्रशंसा करते हैं। वह अभीष्ट वर्षक इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हो।१२। पापियों को वश में करनेकेलिए बलवान को रस्सी के समान किया। वह हर्षप्रद यज्ञ में प्रतिष्ठित होते हैं। वह इन्द्र सोम्य, प्रसिद्ध एव तेजस्वी हैं।१३। वह इन्द्र पर्वत से प्राप्त वज्र समान बली है, वह कभी पतित नहीं होते। वह श्रेष्ठ यजमानों के लिए शत्रु के धन को प्राप्त कराते हैं।१४।

सूक्त--१३८

(ऋषि—वत्सः। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री

महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँइव। स्तोमैर्वत्सस्यवावृधे।१
प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद् भरन्त वह्नयः।विप्रा ऋतस्यवाहसा।२
कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम।जामि ब्रुवतआयुधम्।३

इंद्र महान हैं, यह वर्षा-जल से सम्पन्न मेघके समान वत्सकेस्तोम द्वारा बृद्धि को प्राप्त होते हैं।१। हे अश्विद्वय ! तुम सत्य बाली का पालन करो। उस प्रजाको अग्नियाँ पुष्ट करती हैं और यज्ञ बाहक अग्नि से ब्राह्मण उस प्रजा की रक्षा करते हैं।२। इन्द्र को कण्व के स्तोमों द्वारा यज्ञ साधन रूप से किया और उसी को जामि आयुध कहती है।३।

सूक्त-१३९

(ऋषि–शशकर्णः। देवता–अश्विनोः। छन्द–बृहती, गायत्री,ककुप्)

आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमवसे।
प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथुच्छर्दिर्युयुतं या अरातयः।।१
यदन्तरिक्षे यद् दिवि यत पञ्च मानुषां अनु।
नृम्णं तद धत्तमश्विना।।२
ये वां दसांस्यश्विना विप्रासः परिमामृशुः।
एवेत् काण्वस्य बोधतम्।।३
अयं वां धर्मो अश्विना स्तोममेन परि षिच्यते।
अयं सोमो मधुमान् बाजिनोवसू येन वृत्रं चिकेतथः।।४

यदप्सु यत् वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदंससा कृतम् ।
तेन माविष्टमश्विना ॥५

हे अश्विद्वय ! इसके शिशु के विचरणार्थ एवं रक्षा के लिए इसे शृगाल रहित गृह प्रदान करो और इसके शत्रुओं को दूर करो ।१। हे अश्विनीकुमारो! अन्तरिक्ष और स्वर्गमें जो धन है,निषाद पंचममनुष्यों में जो धन हैं; उसे हमें में प्रतिष्ठित करो ।२। हे अश्विनीकुमारो ! ब्राह्मण तुम्हारे कर्मों का परिमर्शन करते हैं; उस सब कर्म को तुमकण्व कृत ही समझो ।३। हे अश्विद्वय ! यह हवि धनसे युक्त है, यह स्तोम धर्म द्वारा सिंचित होता है, यह सोम माधुर्यमय है। तुम इसी सोम के आवरक बैरी के जानने वाले हो ।४। हे अश्विद्वय ! जल, ओषधियों और वनस्पतियों में जो कर्म निहित है, उससे मुझे सम्पन्न करो ।५।

सूक्त-१४०

(ऋषि-शशकर्णः । देवता—अश्विनौ । छन्द-बृहती,अनुष्टुप्)

यन्नासत्या भुरण्यथो यद् वा देव भिषज्यथः ।
अयं वा वत्सो मतिभिर्न विन्धते हविष्मन्तं हि मच्छथः ।१
आ नूनमश्विनोऋषि स्तोम चिकेत वातया ।
आ सोमं मधुमत्तम धर्मं सिञ्चादथर्वणि ।२
आ नून रघुवर्तनि रथ तिष्ठाथो अश्विनाः ।
आ वां स्तोमा इमे मम नभी नभो न चुच्यवोरत ।३
तदद्य बां नासत्योक्थंराचुवीमहि ।
यद् वा हाणोभिरश्विनेवेत् काण्वस्य बोधतम् ।४
यद् वां कक्षीवां उत यद् व्यश्व ऋषिर्यद वां दीर्घतमा जुहाव ।
पृथो यद् यां वैश्यः सादनेष्वेदतो अश्विना चेतयेथाम् ।५

हे अश्विद्वयो! तुम द्रुतगामी और चिकित्सा कर्म में कुशल हो । तुम्हारा यह वत्स मतियों द्वारा बीधा नहीं जाता । तुम हवि-सम्पन्न के निकट गमन करतेहो ।१। अपनी उपासना योग्य बुद्धियोंके द्वारा ऋषियों

ने अश्विनी कुमारों के स्तोत्र को जान लिया। अतः माधुर्यमय सोम को अथर्व में सिंचित करो।२। हे अश्विनीकुमारो ! तुम द्रुतगामी रथ पर आरूढ़ होने वाले हो। तुम्हारे निमित्त की जाती हुई स्तुति व्योम के समान स्थिर रहे।३। हे अश्विनीकुमारो ! हम उक्थों द्वारा तुम्हारा आश्रय लेते हैं। यह कण्व की कृपा है कि हम वाणी के द्वारा तुम्हारी सेवा कर रहे हैं।४। हे अश्विद्वय ! कक्षीवान्, दीर्घतमा और व्यश्व ऋषियों ने तुम्हें आहुति दी है। वेन का पुत्र पृथु तुम्हारे सब सदनों में है, अतः तुम चैतन्य होओ।५।

सूक्त—१४१

(ऋषि—शशकर्णः। देवता—अश्विनौ। छन्द—अनुष्टुप्, जगती, वृहती)

यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत न तनूपा।
वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम् ॥१
यदिन्द्रेण सरथ याथो अश्विना यद्वा वायुना भवथः सनोकसा।
यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोषसा यद् वा विष्णोर्विकणेषु तिष्ठथः ॥२
यदद्याश्विनावह हुवेय वाजसातये।
यत् पृत्सु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः ॥३
आ नून यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता।
इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्ववेषु वामथ ॥४
यन्नासत्या पराक अर्वाकि अस्ति भेषजम्।
तेन नून विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम् ॥५

हे अश्विनीकुमारो ! तुम हमारे रक्षक के रूप में आओ। तुम हमारे गृह की रक्षा करते हुए मिलो। हमारे शरीर के पुत्र-पौत्रादि के रक्षक रूप में प्राप्त होओ और संसार की रक्षा करने वाले होकर मिलो।१। हे अश्विनीकुमारो! तुम इन्द्र के रथ में साथ ही बैठकर चलते हो। तुम वायु के साथ रहते हो। तुम आदित्य और ऋभुओं के स्नेही हो। तुम विष्णु के विक्रमणों से भी युक्त हो।२। हे अश्विनीकुमारो! तुम यजमानों को

शीघ्रता से प्राप्त होते हो। तुम अपनी श्रेष्ठ रक्षण-शक्ति से युद्ध में शत्रु को वश करते हो। अन्न प्राप्ति के लिये मैं तुम्हें आहूत करता हूँ। हे अश्विद्वय ! यह हव्य तुम्हारे लिये हितकारी है। यह सोम तुर्वश, यदु और कण्व के हैं। तुम यहाँ अवश्य आओ।४। हे अश्विनीकुमारो ! दूर की या निकट की औषधि को अपने दानी मन द्वारा विशिष्ट शक्ति के लिये प्रदान करो और शिशु के निमित्त गृह प्रदान करो।५।

सूक्त–१४२

(ऋषि—शशकर्णः। देवता—अश्विनौ। छन्द—अनुष्टुप्, गायत्री)

अभूत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः।
व्यावदव्या मतिं वि रात्ति मर्त्येभ्यः ॥१
प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि।
प्र यज्ञहोतरानुषक् प्र मदाय श्रवो बृहत् ॥२
यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे।
आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥३
यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊधभिः।
यद्वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना ॥४
प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृषाह्याय शर्मणे।
प्र दक्षाय प्रचेतसा ॥५
यन्नून धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः।
यद्वा सुम्नेभिरुक्थ्या ॥६

मैं अश्विनीकुमारों को ज्ञान बुद्धि के साथ रहने वाला मानता हूँ। हे मेधे ! तुम मेरी बुद्धि को प्रकाशित करो और मनुष्यों को धन दो।१। हे स्तोताओ! तुम प्रातः समय अश्विद्वयको प्रबोधित करो। हे सत्यरूप देवी! तुम उन्हें प्रशंसनीय करो। हे होता ! तुम उनके विस्तृत यश को सब ओर फैलाओ।२। हे अश्विनीकुमारोंके रथ ! तू अपने तेज से उषा से मिलता हुआ सूर्य के साथ दमकता है वह रथ, अश्वों द्वारा मार्ग को प्राप्त होता है।३। जब रश्मियाँ पान की हुई के समान होती हैं, तब गौओं

का ऐनों से दोहन होता है। उस समय हे अश्विद्वय ! ऋत्विजों की वाणी तुम्हारी स्तुति करती है ।४। हे अश्विनीकुमारो ! महान ऐश्वर्य मनुष्यों को वश में करने वाला बल और कल्याण को प्राप्त करने के लिये सुन्दर बुद्धि द्वारा मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ ।५। हे अश्विनीकुमारो ! तुम अपने पालन करने वाले के निमित्त अपनी बुद्धियों द्वारा विराजमान होते हो और तुम कल्याणकारी कारणों द्वारा प्रशंसा के योग्य होते हो ।६।

सूक्त—१४३

(ऋषि—पुरुमीढाजमीढौ: वामदेव:, मेध्यातिथि: । देवता—
अश्विनी । छन्द—त्रिष्टुप्)

तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना संगति गो: ।
य: सूर्यां वहति वन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् ॥१
युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथ: शचीभि: ।
युवोर्वपुरभि पृक्ष: सचन्ते वहन्ति यत् कंकुहासो रथे वाम ॥२
को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कै: ।
ऋतस्य व वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत् ॥३
हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेम यज्ञं नासत्योप यातम् ।
पिबाथ इन्मधुन साम्यस्य दधथो रत्नं विधते जनाय ॥४
आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुव्रता रथेन ।
मा वामन्ये नि यमन् देवयन्त: स यद् ददे नाभि: पूर्व्या वाम ॥५
नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे ।
नरो यद् वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीढासो अग्मन्।६
इहेह इद् वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं चरितार युव ह श्रित: कामो नासात्या युवद्रिक् ॥७
मधुमतीरोषधार्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्ती अन्वेनं चरेम् ॥८
पनाय्यं तदश्विना कृत वां वृषभो दिवो रजस: पृथिव्या: ।
सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वां इत् तां उप याता पिवध्यै: ॥९

हे अश्विनीकुमारो ! तुम्हारे वेगवान् रथ का आज आह्वान करते हैं। तुम्हारा वह रथ ऊँचे-नीचे स्थानों में जाता तथा सूर्या का वहन करता है। वह वाणी का वहनकर्ता, वसुओं को प्राप्त करने वाला तथा गौओं से सुसंगत होने वाला है। मैं उसी रथ को आहूत करता हूँ ।१। हे अश्विद्वय ! तुम लक्ष्मी के अधिष्ठात्री देवता हो, तुम उसे अपनी शक्तियों द्वारा सेवन करते हो और उसे आकाश से पतित नहीं होने देते। रथ में तुम्हें वहन करने वाले विशाल अश्व और अन्न तुम्हारे शरीर से सदा मिले रहते हैं ।२। कौन हविर्दाता रक्षा-प्राप्ति के लिये और संस्कारित सोम को पीने के लिये तुम्हें आहूत कर रहा है, कौन तुम्हारी सेवा कर रहा है ? यज्ञ-सेवी इन्द्र को नमस्कार है। अश्विनीकुमारों को यहाँ लाने वाले के लिये भी मैं नमस्कार करता हूँ ।३। हे अश्विद्वय ! तुम अपने स्वर्णिम रथ के द्वारा इस यज्ञ स्थान में आगमन करो। तुम सोम के मधुर रसपान करते हुए इस सेवक पुरुष को रत्न-धन प्रदान करो ।४। हे अश्विद्वय ! तुम अपने स्वर्णिम रथ के द्वारा आकाश से पृथिवी पर आगमन करो। अन्य पूजक तुम्हें रोक न सकें, मैं तुम्हारे निमित्त स्तुति करता हूँ ।५। हे अश्विद्वय ! स्तोता मनुष्य स्तुति के साथ ही आजमीढ़ होते हैं। इस स्तोता यजमान को वीर्य द्वारा आविर्भूत होने वाले पुत्र पौत्रादि से युक्त लोकों में दो ।६। हे अश्विद्वय ! इन्हें ऐसी सुबुद्धि दो, जिससे यह यजमान परस्परं समान मति वाले हों। इनकी अभिलाषा तुम पर ही निर्भर रहे और तुम इस स्तोता के रक्षक होओ ।७। हमारे लिये आकाश मधुमय हो, अन्तरिक्ष मधुमय हो, औषधियाँ भी मधुमती हों और क्षेत्रपति भी मधुमय हो। हम अमृतत्व को प्राप्त हुये उसके अनुगामी होते हुए घूमें ।८। तुम्हारा स्तोत्र-कर्म आकाश और पृथ्वी में फलों का वर्षक है। तुम सोम-पान करके गौ-पूजा वाले सैंकड़ों स्तोत्रों को प्राप्त होते हो ।९।

॥ इति विंश काण्ड समाप्तम् ॥

❀ इति अथर्व वेद समाप्तम् ❀

भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठतम धर्म-ग्रन्थ

१—ऋग्वेद ४ खण्ड .... ७६)
२—अथर्व वेद २ खण्ड ... ३८)
३—यजुर्वेद ... १९)
४—सामवेद ... १७)
५—१०८ उपनिषद् ३ खण्ड ... ६०)
६—बृहदारण्यकोपनिषद् ... १२)
७—छान्दोग्योपनिषद् ... १२)
८—ईशावास्योपनिषद् (भा.टी.) ... १२)
९—कठोपनिषद् (भा.टी.) ... १२)
१०—वैशेषिक दर्शन ... १३)
११—न्याय दर्शन ... १३)
१२—सांख्य दर्शन ... १३)
१३—योग दर्शन ... १२)
१४—वेदान्त दर्शन ... १४)
१५—मीमांसा दर्शन ... १८)
१६—मनुस्मृति ... २८)
१७—योग वासिष्ठ २ खण्ड ... ४८)
१८—ज्ञानेश्वरी भगवद्गीता (भा.टी.) ... २५)
१९—अष्टावक्र गीता ... १२)
२०—विचार सागर ... ३०)
२१—विचार चन्द्रोदय ... ७)
२२—पञ्चीकरण ... १०)
२३—उपदेश साहस्री ... १२)
२४—वृत्ति प्रभाकर ... १५)
२५—सौन्दर्य लहरी ... १२)

प्रकाशक—संस्कृति संस्थान, ख्वाजाकुतुब, वेदनगर
बरेली-२४३००३ (उ०प्र०)